आत्म-परिचय

रिचय एवं प्रसंग-परिचय सहित]

युधिष्ठिर मीमांसक

आत्म-परिचय

[वंश-परिचय एवं पूर्वज-परिचय सहित]

युधिष्ठिर मीमांसक

प्रकाशक—
युधिष्ठिर मीमांसक
बहालगढ़ (१३१०२१)
सोनीपत (हरयाणा)

प्राप्ति-स्थान—
रामलाल कपूर ट्रस्ट
बहालगढ़ (१३१०२१)
सोनीपत (हरयाणा)

प्रथम संस्करण—३००
संवत्—२०४६; सन्—१९८८
मूल्य—३०-००
(लागत का दो तिहाई)

मुद्रक—
शान्तिस्वरूप कपूर
रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रेस
बहालगढ़ (सोनीपत)

---

१. इस ग्रन्थ के पृष्ठ २५६ से आगे परिशिष्ट भाग के पृष्ठ १ से १८४ तक के पृष्ठ रामकिशन सरोहा प्रिंटिंग प्रेस बहालगढ़ में छपे।

लेखक का निवेदन

प्रस्तुत आत्म-चरित को लिखने का प्रयास मैं इससे पूर्व दो बार कर चुका हूं। प्रथम वार सन् १९८०के शीतकाल में हैदराबाद में इसका लेखन आरम्भ किया था, परन्तु चि० वाचस्पति की पत्नी सौ० स्नेहलता की बीमारी की सूचना पाकर तत्काल वापस लौटने के कारण लेखन का कार्य रुक गया। दूसरी बार सन् १९८४ में अज- मेर में लेखन आरम्भ किया था, परन्तु श्रीमती इन्दिरागांधी की हत्या के पश्चात् मची मार-काट तथा कर्फ्यू से अपने दिल्ली स्थिति परिवार की चिन्ता के कारण लेखन में बाधा उत्पन्न हुई।

धर्मपत्नी देवी यशोदा के निधन के कुछ मास पश्चात् इस कार्य को आरम्भ किया। दाहिने कन्धे के जाम होने से कन्धे में तथा बाहू में पीड़ा के कारण स्वयं लेखन में असमर्थ होने से कथंचित् बोलकर लिखाने का प्रयास किया। सारी आयु स्वयं लेखनी पकड़कर लिखने का कार्य किया है। अतः बोलकर लिखाने का अभ्यास न होने से न तो भावाभिव्यक्ति ही ठीक प्रकार से हो सकी और न ही भाषा-सौष्ठव तथा एकरूपता रह सकी। कुछ आवश्यक प्रसंग तो लेखन काल में छूट भी गये।

इसी कारण मैंने इस संग्रह का नाम आत्म-कथा अथवा आत्म-चरित नहीं रखा है क्योंकि इसमें कथा अथवा चरित्र-लेखन के मूलभूत तत्त्व का अभाव है। परिचय में उक्त न्यूनताएं बाधक नहीं होती हैं। जब दो अपरिचित व्यक्ति परस्पर अपना परि- चय देते हैं तो उसमें सामान्य भाषा का ही प्रयोग करते हैं, न कि साहित्यिक भाषा का। अर्थात् उस समय परिचय देना ही मुख्य होता है। मेरा भी इस ग्रन्थ के द्वारा स्ववंश और पूर्वजों का तथा अपना परिचय मात्र देना प्रयोजन है।

सहायक सामग्री

१. पिताजी द्वारा संगृहीत वंशावली (मायली ग्वाड़ी वालों की)।

२. भाई सुवालालजी गुरावा द्वारा संकलित वंशावली (बारली ग्वाड़ी वालों की)।

३. पिताजी की सन् १९१०, ११, १२, १३, १४, १५ वर्षों की ६ डायरियां।

४. पिताजी द्वारा सुरक्षित रखे गये पत्रादि—

क. सरकारी नोकरी के समय के शिक्षाविभाग के आदेश-पत्र।

ख. पिताजी द्वारा शिक्षाविभाग को लिखे गये पत्र ।

ग. सर्विस बुक की प्रतिलिपि ।

घ. वार्षिक परीक्षा के समय इन्स्पैक्टर द्वारा लिखे गये सम्मति-पत्रों की नकलें (सम्मति-संग्रह) ।

ङ. मेरे शिक्षण के लिये विभिन्न संस्थाओं से किये गये पत्र-व्यवहार की फाइल।

च. आर्यप्रतिनिधिसभा राजस्थान वा मालवा को लिखे गये पत्र ।

छ. विशिष्ट व्यक्तियों, मित्रों तथा पारिवारिक जनों के आये हुए कतिपय पत्रों का संग्रह ।

ज. मेरे समावर्तन संस्कार का 'हिन्दी-मिलाप' लाहौर के ७ जून १९३६ के अंक में छपा विवरण ।

५. पिताजी तथा परिवार के वा ग्राम के वृद्धजनों द्वारा मुझे बताई गई और यथावत् स्मृत घटना (जिनमें कुछ भी विस्मृति के कारण सन्देह था उन्हें नहीं लिखा)।

६. बाल्यकाल की कतिपय मुझे यथावत् स्मृत घटनाएं ।

इस प्रकार इस संग्रह में पिताजी के निधन तक का जो कुछ वर्णन किया गया है, वह सर्वथा प्रामाणिक है। प्रामाणिकता की पुष्टि में परिशिष्ट १-९ तक सभी प्रकार के पत्रादि मैंने छाप दिये हैं ।

वैशिष्ट्य—इस ग्रन्थ के परिचयात्मक होने पर भी यह केवल एक परिवार वा व्यक्ति का परिचय मात्र नहीं है, अपितु यह एक वैदिक-धर्म-प्रेमी साधारण मिडिल पास अध्यापक मेरे पिता गौरीलाल आचार्य द्वारा वैदिक-धर्म के प्रचार के लिये किये गये कार्यों का विवरणरूप एवं उनके आत्मोत्सर्ग का जीता जागता ऐसा चित्र है जो उस समय के आर्यों के महनीय चरित को उजागर करता है। साथ ही ऋषि दयानन्द के भक्त एवं वैदिक-धर्म के प्रचारक को अपने एक मात्र बालक को वेद-वेदाङ्ग की शिक्षा प्राप्त कराने में कितनी कठिनाइयां झेलनी पड़ीं, इसका वर्णन विस्तार से किया गया है । इसके निदर्शनार्थ आर्यसमाज के गुरुकुल के साथ किया गया पत्र-व्यवहार तृतीय परिशिष्ट में दिया है। मेरे पैर के विकृत होने तथा माता के असामयिक निधन के कारण एक डेढ़ वर्ष आयु अधिक हो जाने के कारण जब आर्यसमाज के गुरुकुल आदि में मुझे प्रवेश नहीं मिला तो पिताजी का हृदय रो उठा। एक पत्र में वे लिखते हैं—

मैं यथाशक्ति मेरे ब्रह्मचारी के लिये कि वह गुरुकुल में शिक्षण पावे, पर्याप्त उपाय कर चुका। अब निश्चय हो गया है कि आर्यसमाज एक बीहड़ वन है।

उसमें मेरा रुदन किसी ने नहीं सुना। उस वन में कोई दयापूर्ण त्यागी भी नहीं था। मैं अभी नहीं कह सकता कि मेरा पुरुषार्थ बालक के लिये दूसरे प्रयत्न में लग जावे। द्र०—तृतीय परिशिष्ट के 'ङ' भाग में उद्धृत संख्या ३ का पत्र, पृष्ठ ३२।

१. इस पत्र में दयापूर्ण त्यागी का संकेत श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी की ओर है। वे आर्यसार्वदेशिक सभा के प्रधान भी थे। उनसे तथा सार्वदेशिक सभा के द्वारा गुरुकुल कांगड़ी में प्रवेश दिलाने के लिये अनेक पत्र लिखे थे। द्र०--तृतीय परिशिष्ट 'ग' में छपा श्री स्वामीजी के साथ किया पत्र-व्यवहार [यह अंश कुछ पत्रों के छूट जाने के कारण पुन: नवम परिशिष्ट में छपा है। द्रष्टव्य पृष्ठ १४२-१४७]। तथा तृतीय परिशिष्ट के ही 'घ' भाग में छपा आ० सा० प्रतिनिधिसभा के साथ किया गया पत्र-व्यवहार, पृष्ठ २६-३०।

२. 'कह नहीं सकता कि मेरा पुरुषार्थ बालक के लिये दूसरे प्रयत्न में लग जावे' इस संकेत का सम्बन्ध 'भरत महाविद्यालय हृषीकेश की ओर है। जब पिताजी को अपने पुत्र को वेदपाठी ब्राह्मण' बनाने का संकल्प आर्यसमाज के गुरुकुलों द्वारा पूरा होता दृष्टिगोचर नहीं हुआ तो मुझे वेदपाठी ब्राह्मण बनाने के लिये सनातन धर्म के 'भरत महाविद्यालय ऋषिकेश' के साथ पत्र-व्यवहार किया (द्र०—तृतीय परिशिष्ट में 'च' भाग के पत्र, पृष्ठ ३२-३५)। परन्तु महाविद्यालय के अधिष्ठाता ने सम्भवत: पिताजी के आर्यसमाजी होने के कारण मना कर दिया। इस पर पिताजी ने भरत महाविद्यालय के अधिष्ठाता को जो पत्र लिखा (परिशिष्ट भाग पृष्ठ ३४-३५) वह भी विशेषरूप से पठनीय है।

अन्त में श्री स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज के साधु आश्रम (पुल काली नदी, हरदुआगंज, अलीगढ़) में गुरुवर श्री पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु द्वारा सन् १९२० में आरम्भ किये गये 'विरजानन्द आश्रम' में मुझे प्रवेश मिला (द्र०—तृतीय परिशिष्ट 'झ' भाग में (पृष्ठ ३९-४३) छपा पत्र-व्यवहार।

प्रभु जहां न्यायकारी है, वहां वह दयालु भी है। पिताजी के दोनों पैर जहां प्रभु की न्याय-व्यवस्था के अनुसार विकृत हुए वहां पैरों के विकार के कारण ही परम्परागत कृषि-कर्म की निवृत्ति हुई और परिवार में शिक्षा का प्रवेश हुआ (द्र०—पृष्ठ २६)। यही मेरे साथ भी हुआ। पैरों की विकृति के कारण सान्ताक्रुज (बम्बई) गुरुकुल में प्रवेश नहीं मिला। थोड़ी सी आयु अधिक होने से गुरुकुल

---

१. द्र०—पृष्ठ ५५, पं० ३ तथा ९-१०।

कांगड़ी आदि में प्रवेश नहीं प्राप्त हुआ। भरत महाविद्यालय ऋषिकेश के संचालकों ने आर्यसमाजी होने से मुझे प्रविष्ट नहीं किया (द्र०—पृष्ठ ५८-६३)। अन्त में पूज्य गुरुवर पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु की मुझ पर कृपा हुई। 'ईश्वर जो कुछ करता है उसमें जीव की भलाई ही निहित होती है' यह कथन कम से कम मेरे पर तो पूर्णतया चरितार्थ हुआ। यदि गुरुकुल सान्ताक्रुज और कांगड़ी आदि में मुझे प्रवेश मिल जाता तो मुझे वेदाङ्गों उपाङ्गों और वेद का जो ज्ञान प्राप्त हुआ उससे मैं निश्चित ही वञ्चित हो जाता। क्योंकि इन गुरुकुलों में तो व्याकरण का भी यथावत् पठन-पाठन् नहीं होता है, अन्य वेदाङ्गों उपाङ्गों की तो कथा ही व्यर्थ है (यह बात भिन्न है कि इन गुरुकुलों से घुणाक्षर न्याय से पांच-सात विशिष्ट विद्वान् प्रकट हुए)।

शिरोमणि सभाओं के अधिकारियों की उदासीनता—आज से लगभग ६० वर्ष पूर्व भी आर्यसमाज की शिरोमणि सभा के अधिकारियों की प्रायः वही स्थिति थी, जो प्रायः आज है। व्यक्तिगतरूप से कोई ऋषि-भक्त वैदिक-धर्म-प्रेमी व्यक्ति वैदिक-धर्म के प्रचार के लिये कितना ही कार्य क्यों न करे उसे सभाओं से कोई सहायता नहीं मिलती (विरोध तो मिल सकता है[1])। पिताजी के साथ भी यही हुआ। महेश्वर में आर्यसमाज-भवन की भूमि पर जब राज्य ने बलात् अधिकार कर लिया तो पिताजी नन्दवाई जैसे सुदूर स्थान से भी मुकद्दमा लड़ते रहे, परन्तु 'राजस्थान और मालवा' की प्रतिनिधिसभा ने यह केस अपने हाथ में नहीं लिया (द्र०—पृष्ठ १२२-१२६ तथा षष्ठ परिशिष्ट में 'ग' भाग के पत्र, पृष्ठ ९०-११७)। इसी प्रकार साधारण आर्यपरिवारों विशेषकर आर्यसमाज के कार्य में लगे परिवारों की सहायता के लिये **आर्य कुटुम्ब सहायक द्रव्यनिधि** की योजना बनाकर सभा को दी। इस प्रकार की एक योजना **'इन्दौर राज्य के सरकारी नौकरों की कुटुम्ब सहायक द्रव्यनिधि'** के रूप से सुचारु रूप से चल रही थी। उसी से प्रेरणा प्राप्त करके पिताजी ने यह योजना बनाई थी। परन्तु सभा ने एक उपसमिति बनाकर मौन धारण कर लिया (द्र०—पृष्ठ ११८-१२२ तथा षष्ठ परिशिष्ट में 'ख' भाग के पत्र, पृष्ठ ८३-८९)।

पूज्य पिताजी द्वारा किये गये वैदिक-धर्म के प्रचार प्रसार सम्बन्धी कार्यों का उल्लेख करके अन्त में मैंने स्व-परिचय लिखा है।

---

१. द्र०—पृष्ठ ९९ पर छपा मन्त्री आर्यप्रतिनिधिसभा का पत्र तथा पृष्ठ १०० पर पिताजी का पत्र।

मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद[1]

इस वचन के अनुसार मैंने अपने जीवन में जो भी उपलब्धियां प्राप्त की हैं, उस सबका प्रधान श्रेय मेरे माता-पिता और गुरुवर श्री पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु तथा अन्य गुरुजनों को ही है। इन्हीं के आशीर्वाद एवं सतत प्रयत्न से मैं पुच्छ-विहीन पशु मानव नाम का अधिकारी बन सका।

दूसरे स्थान पर मेरी सहधर्मचारिणी अखण्डसौभाग्यवती यशोदा देवी का इच्छानुकूल भरपूर सहयोग कारण है। यदि देवीस्वरूपा यशोदा का मुझे पूरा सहयोग प्राप्त न होता तो मैं अपने जीवन में कभी सफल नहीं हो सकता था।

तीसरे स्थान पर अनेक सत्पुरुषों एवं मित्रों का सहयोग कारण है।

मैं स्वयं तो अपने को निमित्त मात्र मानता हूं। तथापि गृहस्थाश्रम में प्रवेश के पूर्व और पश्चात् मैंने कुछ व्रत (=संकल्प) धारण किये थे वे भी कुछ सीमा तक सहायक रहे होंगे। वे व्रत इस प्रकार हैं—

१. माता-पिता एवं गुरुजनों की इच्छा और आकांक्षा की पूर्ति के लिये सदा जागरूक रहकर प्रयत्न करना।

२. ब्राह्मणकुल की श्रेष्ठ मर्यादानुसार अपरिग्रह और अयाचक वृत्ति से जीवन निर्वाह करना।

३. गुरु ऋण से मुक्त होने के लिये किसी भी पढ़ने के इच्छुक छात्र के लिये सदा द्वार उद्घाटित रखना, अर्थात् मना न करना।

४. पठनार्थी से किसी प्रकार के द्रव्य लेने की आकांक्षा न रखना, अर्थात् ट्यूशन न करना।

५. **स्वाध्याय-प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्** इस शास्त्राज्ञा का यथाशक्ति पालन करना।

६. अर्थ की शुचिता के लिये यथाशक्ति सदा जागरूक रहना।

७. वयोवृद्ध और विद्यावृद्धों के सत्सङ्ग के लिये तत्पर रहना।

८. **विद्या ददाति विनयम्** वचनानुसार विनीत रहना, कभी अभिमान न करना।

९. सहयोगियों एवं मित्रों से, उनके स्वविरुद्ध आचरण करने पर भी यथोचित सम्बन्ध बनाये रखना।

---

१. इसका अर्थ है—प्रशस्त माता-पिता और आचार्य से सम्बद्ध ही पुरुष बनता है, ऐसा जानना चाहिये।

मैंने जीवन में वैदिक वाङ्मय के प्रचार-प्रसार के लिये जो विविध कार्य किये हैं और मुझे जो सम्मान तथा पुरस्कार मिले हैं उनका संक्षिप्त विवरण दशम परिशिष्ट में दिया है।

अन्त में उन व्यक्तियों का नामोल्लेख करना आवश्यक है जिन्होंने इस परिचय के लेखन संशोधन आदि में सहयोग दिया है—

१. ब्र० धर्मवीरजी विद्यावारिधि—इन्होंने इस संग्रह के पूर्वभाग के तीन चौथाई भाग को लिखने में सहायता की।

२. पं० चन्द्रदत्त शर्मा—इन्होंने लेख में रही भूल-चूक के संशोधन एवं मुद्रण-पत्र (प्रूफ) के संशोधनरूप जटिल कार्य में पूर्ण दत्तचित्त होकर सहायता की।

३. अक्षर-संयोजक (कम्पोजीटर) श्री बालकिशनजी और श्री रामकिशनजी ने भी लेखन आदि प्रमाद से उत्पन्न अशुद्धियों वा स्खलनों को प्रूफ संशोधन के समय बड़ी उदारता से विशेष परिश्रम का ध्यान न रखकर संशोधन काल में महती सहायता की।

इन सबको उपर्युक्त सहयोगों के लिये आशीः प्रदान करता हूं और भावी जीवन में उन्नति की कामना करता हूं।

लगभग दो वर्ष से दाहिने कन्धे के जाम हो जाने से लिखने में सर्वथा असमर्थ हो गया हूं। बोलकर लिखाने का अभ्यास न होने से लेखन कार्य से बलात् मुक्त हो गया हूं। दोनों पैर इतने निर्बल हो गये हैं कि चलना फिरना भी बन्द हो गया है। इस से मैं नैत्यिक कर्मों के करने में भी पराधीन हो गया हूं। रही सही कसर अर्धाङ्गिनी यशोदादेवी के निधन ने पूरी कर दी। अतः अब निष्क्रिय सा रहने से जीवन-यापन भी दुष्कर हो चुका है। जीवन में देवी यशोदा अपर नाम 'नर्मदा'[1] के साहचर्य से मैंने सुख भोगा तो दुःख का भोग भी अनिवार्य है।

चक्रवत् परिवर्तन्ते सुखानि च दुःखानि च

यह संसार का शाश्वत नियम है। दुःखों को भोगकर काटो अथवा बुद्धिपूर्वक सहकर भोगो। इन्हें भोगना ही है—अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्। इनसे छुटकारा तो अशरणों के शरण परमपिता परेश की कृपा से ही सम्भव है।

सं० २०४५, चैत्र शुदि १५, गुरुवार — **युधिष्ठिर मीमांसक**

---

१. नर्म=सुख, दा=दात्री।

संशोधन परिवर्तन परिवर्धन

संशोधन

पृष्ठ	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
६	६	रघनाथजी	रघुनाथजी
७	१५	दामामोजी	दामोजी
९	१०	व्यवसाय	व्यवसायों
१३	२४	रक्षार्थ दिया था।	रक्षार्थ वेच दिया था।
१९	३०	लोगों पर	लोगों को
२३	१२	आखातीर	आखातीज
२५	२५	सज्जनता की	सज्जनता और
२८	२७	का इतिहास	का भूगोल
३३	३	है।[1]	है।
,,	५	चाहिये।"[1]	चाहिये।

विशेष—इस पृष्ठ की टिप्पणी संख्या १ भी हटा देवे। पत्र परिशिष्ट में नहीं छपा है।

पृष्ठ	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
४१	२९	संख्या ५	संख्या ६
४३	२९	संख्या ६	संख्या ७
४५	९	सम्भवतः १९२३	अक्टूबर १९२२[1]
,,	१०	में जब	में उत्सव पर जब[1]
५७	२७	अप्रेल १९२० में	अप्रेल १९२१ (वैशाख मास) में[2]
६१	११	[के]	[पावे],
६६	१६	तावर	तावूत
७३	३	१०३६/१७- -२६	१०३८/१८-८-२६
,,	२८	चतुर्थ परिशिष्ट में संख्या ४ पर	पञ्चम परिशिष्ट में संख्या १ पर
७९	२९	आर० आर० व्यास	आर० एल० व्यास

१. इसके लिये तृतीय परिशिष्ट 'झ' में संख्या ७ पर छपा लेख देखें।

२. द्र०—तृतीय परिशिष्ट 'झ' पृष्ठ ४० पर छपा पत्र।

पृष्ठ	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
८०	१८	समुद्रित	सामूहिक
,,	२१	चतुर्थ परिशिष्ट में संख्या ४ पर	पञ्चम परिशिष्ट में संख्या १ पर
,,	२७	साथ खरगोन	साथ भेजी गई खरगोग
८५	१	(द्वितीय कक्षा)	(तृतीय कक्षा)[3]
,,	७	पिताजी सम्भवतः	पिताजी ने सम्भवतः
,,	२८	संख्या १	संख्या २
११७	२१	१ से पूर्व	१९३९ से पूर्व
१३६	२८	अमृतसर से	अमृतसर में
१५७	१२	विद्वान्.........से	विद्वान् शंकरराम त्रिपाठी से
१६३	२३	सन् १९३० की	सन् १९३०-३१ की
१९३,१९५	फोलियो में	विरजानन्द आश्रम में(लाहौर)	अजमेर
२१७	२१	स्वतः प्रामाण्यसिद्धे	स्वतः प्रामाण्ये सिद्धे

परिवर्तन-परिवर्धन

पृष्ठ २६, पंक्ति २६-३१—इन पङ्क्तियों में छटी कक्षा तथा चार वर्ष का निर्देश अपने समय की दृष्टि से लिखा गया है। यहां छटी के स्थान में पांचवी और चार साल के स्थान में तीन साल पाठ होना चाहिये ।

पृष्ठ ६२, पं० २५ के आगे बढ़ावें—पूर्व २४-६-२१ को लिखे गये पत्र का उत्तर प्राप्त न होने पर पिताजी ने ता० १२-७-२१ को पुनः व्यवस्थापक भरत महाविद्यालय हृषीकेश को एक पत्र लिखा।[५] इसका भी उत्तर उक्त संस्था से प्राप्त नहीं हुआ।

पृष्ठ ६२, पं० ३० की टि० संख्या ४ के पश्चात् बढ़ावें—'५ यह पत्र तृतीय परिशिष्ट 'च' में संख्या ४ पर छपा है ।

पृष्ठ ६५, पं० ३० 'संत्रन्ध थे।' के आगे बढ़ावें—द्र०—दशम परिशिष्ट, पृष्ठ १४८, १४९ पर छपा पत्र ।

पृष्ठ ६७, पं० ३०—'छापा है' के आगे बढ़ावें—इस पञ्चायत के सम्बन्ध में

आगे पृष्ठ १०२-१०५ पर छपे २८८-२६ को मन्त्री आ०प्र० सभा राजस्थान मालवा को लिखे गये पत्र में भी है।

पृष्ठ ८०, पं० ४-५-६ में जो छपा है वह ठीक नहीं है। खरगोन में पिताजी के जाने से **पूर्व आर्यसमाज विद्यमान थी**। द्र०—षष्ठ परिशिष्ट 'क' संख्या ६ का पत्र, पृष्ठ ६७।

पृष्ठ ८०, टि० २, ३ में जिस पत्र की चर्चा है वह पञ्चम परिशिष्ट संख्या २, पृष्ठ ५६ पर छपा है।

पृष्ठ ८२, पं० १० '(६००) रुपयों में' इसका ब्यौरा आगे पृष्ठ १२४ पर दिया गया है।

पृष्ठ ८३, पं० २९ से आगे बढ़ावें—पिताजी की खरगोन से पीपलिया बदली होने पर खरगोन की जनता की ओर से उनका जो सम्मान किया गया था, उसके कार्यक्रम की सूचना के लिये जो **सूचना-पत्र** छपा था उसे चतुर्थ परिशिष्ट में संख्या ७, पृष्ठ ४९ पर देखें।

पृष्ठ ८४, पं० १९—आदेश-पत्र—इस पर टिप्पणी देवें—'यह आदेश-पत्र—'द्वितीय परिशिष्ट संख्या २ पर देखें'।

पृष्ठ ८५, पं० २१ के आगे नया सन्दर्भ बढ़ावें—'नन्दबाई की बदली का आदेश-पत्र प्राप्त होने पर पिताजी ने इस सम्बन्ध में १०-१-३० तथा १९-२-३० को इंस्पैक्टर शिक्षाविभाग इन्दौर को जो पत्र लिखे थे उनमें नन्दबाई से अन्यत्र सावेर, गोतमपुरा, पेटलावद, स्टेशन पीपलिया आदि स्थानों में स्थानान्तरण करने के लिये प्रार्थना की थी (द्र०—चतुर्थ परिशिष्ट, संख्या ९ पर छपे पत्र)। परन्तु इन्स्पैक्टर शिक्षाविभाग इन्दौर पर कोई असर नहीं हुआ। अन्ततः पिताजी को नन्दबाई ही जाना पड़ा।

पृष्ठ ८६ पं० १ से पूर्व बढ़ावें—नन्दबाई में शाला का चार्ज लेने के पश्चात् पिताजी ने ५-६-३० को शिक्षाविभाग के डायरेक्टर और इंस्पैक्टर को एक विशेष पत्र लिखा, जिसमें स्थानान्तरणों के परिप्रेक्ष्य में अपने सम्बन्ध में किसी प्रकार के भ्रम होने का उल्लेख करते हुए लिखा—'सेवक से कोई अपराध बन गया हो तो कृपा करके उसे मुझे प्रकट किया जाये, जिससे मैं उस दोष को दूर करके अपने आत्मक्लेश और सर्विस में होती हुई हानियों से मुक्ति पाऊं (द्र०—चतुर्थ परिशिष्ट पत्र संख्या १०, पृष्ठ ५२)। इसके उत्तर में शिक्षाविभाग की ओर से नं० ५९२८ ता० २७-६-३० का पत्र प्राप्त हुआ जिसमें लिखा था—आपकी बदली आपकी इच्छानुसार की गई है (द्र०—च० परि० संख्या ११, पृष्ठ ५३)।

आत्म-परिचय की विषय-सूची

---

१. खरगोन में आर्यसमाज पूर्वतः विद्यमान थी। द्र०—संशोधन-परिवर्धन पत्र।

परिशिष्ट-भाग

---

१. इस विभाग में कुछ पत्र छूट गये थे। अतः नवम परिशिष्ट में सभी पत्र क्रमवार छापे हैं। इसलिये श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी के साथ हुआ पूरा पत्र-व्यवहार नवम परिशिष्ट में देखें।

आत्म-परिचय
[वंश-परिचय एवं पूर्वज-परिचय]

वंश-परिचय

वंश—हम ब्राह्मण वर्ण के अन्तर्गत सारस्वत वंश के हैं। हमारा गोत्र भारद्वाज प्रवर भरद्वाज बृहस्पति और अङ्गिरा (त्रिप्रवर), अवटंक (=पदवी) आचार्य; खांप—गुरावा[1], चरण—वाजसनेय, शाखा—माध्यन्दिनी और सूत्र—कात्यायन है।

मूल-स्थान—सारस्वत ब्राह्मणों का मूलस्थान पंजाब में पूर्वकाल में प्रवाहित होने वाली सरस्वती नदी का कूलानुवर्ती प्रदेश है—सरस्वती एषां निवासो जनपदस्ते सारस्वताः।[2] समय-समय पर इनकी कई शाखाएं मूलस्थान से हटकर सुदूर प्रदेशों में पहुंच गईं। तदनुसार सरस्वती एषाम् अभिजनो देशस्ते सारस्वताः[2] जानना चाहिये। यह क्रम अभी भी चालू है और आगे भी अनन्त काल तक चलता रहेगा।

सारस्वत नाम का कारण—जैसा कि ऊपर कहा है कि सरस्वती नदी के किनारों पर बसने के कारण वहां के ब्राह्मण सारस्वत कहाये। एक कारण यह भी कहा जाता है कि ब्रह्माजी की पुत्री सरस्वती के वंशज होने से 'सारस्वत' नाम पड़ा।

चतुर्वेदविद् ब्रह्मा, आलङ्कारिक भाषा में 'चतुर्मुख ब्रह्मा' से जो ज्ञानरूपी सरित् प्रवाहित हुई, वही उनकी पुत्रीरूपा सरस्वती है। उस वेदज्ञानरूपी सरस्वती के जो उपासक थे, वे सारस्वत कहाये।

---

१. आचार्य अवटंक में चार खांपे हैं—कालाणी, गुडगीला, गुरावा और नागोरिया। चिरकाल से विवाहकाल में गोत्र-परित्याग के स्थान पर खांपों को तथा उपखांपों को छोड़ने का ही पालन होता है।

२. यत्र सम्प्रत्युष्यते स निवासः, यत्र पूर्वैरुषितं सोऽभिजनः (काशिका ४।३।९०)।

पुराणों में एक आख्यायिका है— एक बार देश में १२ वर्ष का दुर्दान्त अकाल पड़ा। उस काल में समस्त ऋषि मुनि अपना आवास और वेदाध्ययन छोड़कर देश-देशान्तर में चले गये। अकेले सरस्वतीपुत्र 'सारस्वत' ने सरस्वती नदी से प्राप्त मत्स्यों पर निर्वाह करते हुये वेदाध्ययन चालू रखा। इस दीर्घकालिक दुर्भिक्ष के कारण अन्य ऋषि-मुनि जो वेदाध्ययन छोड़ने के कारण वेद-ज्ञान से विरहित हो गये, उन्होंने सरस्वती-पुत्र सारस्वत से पुनः वेदाध्ययन किया।

पुराणों की उक्त कथा का सारांश यही है कि जो ब्राह्मण अत्यन्त विषम परिस्थितियों में भी वेदरूपी सरस्वती की उपासना में तल्लीन रहे वे **'सरस्वत्या उपासकाः'** सरस्वती के उपासक बने रहने के कारण सारस्वत कहाये।

सारस्वत ब्राह्मणों के प्रति अपवाद—उक्त पौराणिक कथा के कारण और पञ्जाब प्रान्तस्थ सारस्वत ब्राह्मणों में कुछ व्यक्तियों के मांसाहारी होने के कारण लोक में साधारणतया सारस्वत ब्राह्मण मांसाहारी माने जाते हैं।[1] परन्तु यह तथ्य से विपरीत है। पंजाब से बाहर के सारस्वत ब्राह्मण उतने ही निरामिष-भोजी हैं, जितने गौड़ और सनाढ्य हैं। अत एव राजस्थान में छन्याती (=छ जाति के) ब्राह्मण[2], जिनमें गौड़ भी सम्मिलित हैं, चिरकाल से एक पङ्क्ति में भोजन करते हैं।

हमारा वर्तमान प्रदेश—जो ब्राह्मण सरस्वती नदी के तट से पृथक् होकर घूमते-फिरते राजस्थान (राजपूताना) के मारवाड़ (मरुस्थल) प्रदेश में आकर बस गये, वे मारवाड़ी सारस्वत कहाये। उनकी कई खांपें हैं।[3]

हमारे वंश के मूल पुरुष—हरिद्वार के पण्डों और जातीय ब्रह्मभट्टों (भाटों) की बहियों के आधार पर हम आगे दो वंशावलियां दे रहे हैं। उनमें से दूसरी वंशावली के अनुसार प्रथम नाम श्री छाजूजी का है। ये बीकानेर राज्य के सुजानसर से निकलकर सं० १५३५ में 'डेह' में आकर बसे थे। डेह में इनका वंश लगभग चार पांच पीढ़ी तक रहा। वंश चित्र इस प्रकार है—

---

१. इसका ज्ञान हमें काशी में अध्ययन करते समय (सन् १९२६) अन्नक्षेत्रों में भोजन व्यवस्था के समय मिला। इसी अपवाद के कारण मुझे सरजूपारियों (जो मांसाहारी हैं) की पङ्क्ति में बैठना पड़ा।

२. छन्याती ब्राह्मणों में सारस्वत, सिखवाल, दाधीच, पारीख, आदगौड़ और गुर्जरगौड़ ब्राह्मण सम्मिलित हैं।

३. सारस्वत ब्राह्मणों के सभी भेद-प्रभेदों का उल्लेख अन्तिम परिशिष्ट में देखें।
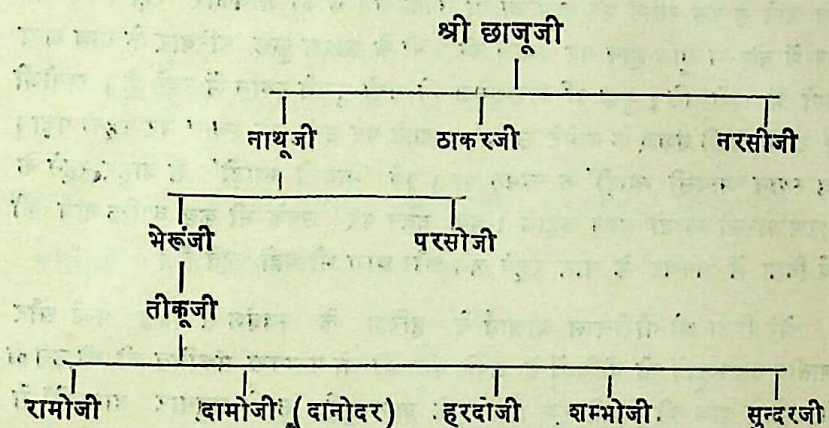
बिरकच्यावास में आना—तीकूजी के पांच पुत्रों में से रामोजी दामोजी(दामाजी) और सुन्दरजी डेह से निकलकर पुष्कर क्षेत्रान्तर्गत अजमेर (अजयमेरु) मण्डल के बिरकच्यावास (=विरञ्च्यावास) ग्राम में पहुंचे। यह ग्राम आसपास के ग्रामों की अपेक्षा अधिक सुभिक्ष था और है। रामोजी कुछ समय यहां रहकर अपने नानेरे (ननिहाल) चले गये और सुन्दरजी बिरकच्यावास से दक्षिण में एक कोस दूर लीढ़ी ग्राम में जाकर बस गये। लीढ़ी के सारस्वत ब्राह्मण इन्हीं के वंशज हैं। एक मात्र दामोजी ही बिरकच्यावास में स्थायी रूप से रहे। रामोजी कुछ समय नानेरे में रहकर वापस बिरकच्यावास आगये। इसके पश्चात् तीन चार पीढ़ी पूर्व सारस्वत वंश के उपाध्याय अवटंक के श्री हरदेवजी गोकुलजी के दादाजी 'खटाणे' गूजरों के साथ कुचील से आकर हमारे ग्राम में बस गये। संप्रति हमारे ग्राम में इस उपाध्याय परिवार के अतिरिक्त सभी सारस्वत ब्राह्मण दामोजी और रामोजी के ही वंशज हैं।

दो विभाग—दामोजी के वंशज 'मायली ग्वाड़ी[1] वाले' के और रामोजी के वंशज 'बारली ग्वाड़ी वाले[1]' के नाम से दो विभागों में विभक्त हैं।

इन नामों का कारण—दामोजी और रामोजी बिरकच्यावास आकर जिस स्थान पर रहे थे, वह गांव की वैश्य बस्ती से लगा हुआ उत्तर की ओर है। यह ग्राम के मध्य में है। दामोजी के वंशज इसी स्थान में रहे। रामोजी के नानेरे में

१. ग्वाड़ी शब्द राजस्थानी भाषा का है। इसी अर्थ में गुजराती में 'वाड़ी' शब्द प्रयुक्त होता है। इसका अर्थ है—मुख्य द्वार के भीतर का अहाता, जिस में कई घर हों।

चले जाने से इस स्थान पर दामोजी वा उनके वंशजों का अधिकार रहा। काला-न्तर में वंश में वृद्धि होने पर स्थान की कमी के कारण कुछ परिवार के गांव अन्य भागों में रहने लगे। कुछ परिवार आज भी उसी पुराने स्थान में रहते हैं। रामोजी वा उनके किसी वंशज के नानेरे से वापस आने पर उन्हें नये स्थान पर रहना पड़ा। यह स्थान 'मायली ग्वाड़ी' के सामने था। पूर्व 'मायली ग्वाड़ी' से बाहर रहने के कारण'वारली ग्वाड़ी' वाले कहाये। वश बढ़ने पर उनके भी कुछ व्यक्ति गांव की पूर्व दिशा में 'पनघट' के पास रहने लगे और आज भी वहीं रहते हैं।

मेरे पिता श्री गौरीलाल आचार्य ने हरिद्वार के स्ववंश से संबद्ध पण्डे और जातीय ब्रह्मभट्टों की पोथियों से अपने वंश की जो परम्परा संकलित की थी,उसकी पिताजी के हाथ की लिखी एक प्रति मुझे प्राप्त हुई, उसके अनुसार दामाजी[1] से लेकर वर्तमान पीढ़ी तक वंशविस्तार इस प्रकार है—

'मायली ग्वाड़ी वालों' का वंश
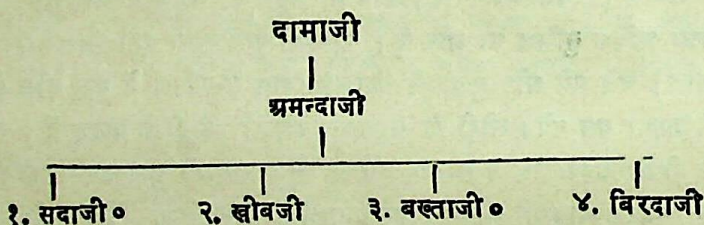
संख्या १ सदाजी और संख्या ३ बख्ताजी का वंश आगे नहीं चला। इसका कारण अज्ञात है। इस वंशावली में जिस नाम के पीछे ० चिह्न दिया है उसका अभिप्राय यही है कि इनका वंश आगे नहीं चला।

---
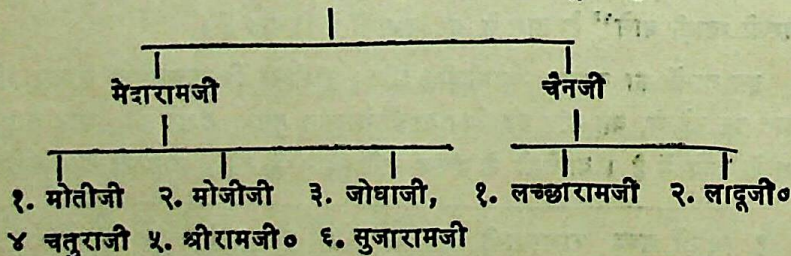
२. आगे 'दामोजी' का निर्देश 'दामाजी' नाम से ही किया जायेगा।
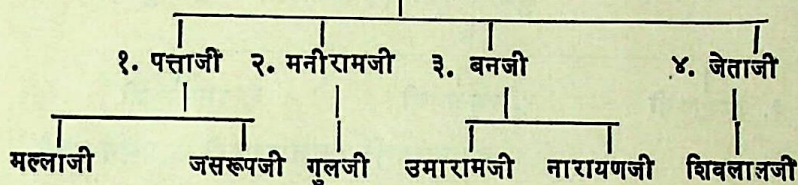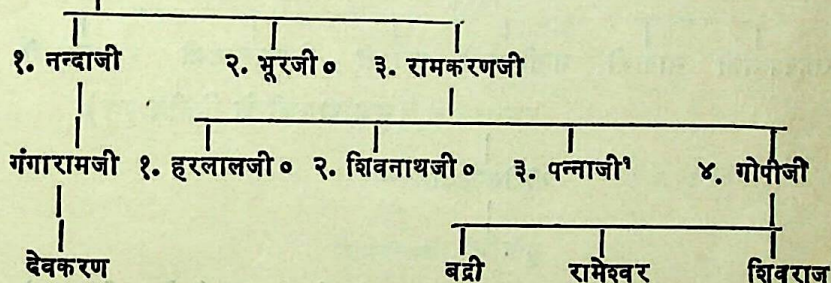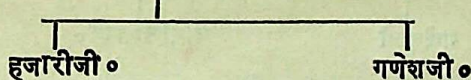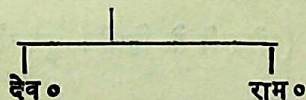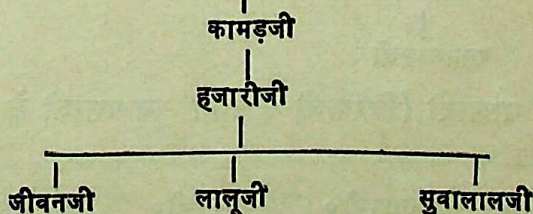
१. ये 'पन्नाजी' बनजी (बिरदाजी के तीसरे पुत्र) के पुत्र 'नारायणजी' के पौत्र 'कस्तूरजी' के गोद गये (द्र०—आगे पृष्ठ ७)।

सुजारामजी (मेदारामजी के छठे पुत्र)
१. जगन्नाथजी
२. रघुनाथजी
३. रामनाथजी
जगन्नाथजी (सुजारामजी के प्रथम पुत्र)
महादेवजी
रामदयालजी
मानाजी
भागीरथजी
फूलाजी
किशनलालजी
रतनलालजी
रघनाथजी (सुजारामजी के द्वितीय पुत्र)
गौरीलालजी
युधिष्ठिर
रामनाथजी (सुजारामजी के तृतीय पुत्र)
गणेशजी
नांगीलालजी०
विष्णुदत्त
मदनलाल
रामेश्वर
जमनालाल
पांचूलाल
लच्छारामजी (खीबजी के द्वितीय पुत्र चैनजी के पुत्र)
शुकदेवजी
रामदयालजी
रतनलालजी
मल्लाजी (विरदाजी के प्रथम पुत्र पत्ताजी के प्रथम पुत्र)
लछमनजी०
परतापजी०
बलदेवजी०
हरदेवजी०
गुलजी (विरदाजी के द्वितीय पुत्र मनीरामजी के पुत्र)
पोकरण

बनजी (बिरदाजी के तीसरे पुत्र)

- उमारामजी
  - बैजनाथजी
    - मोहनलालजी
- नारायणजी
  - रामनाथजी
    - कस्तूरजी
      - पन्नाजी
        - मोहन
        - भृगु

जेताजी (बिरदाजी के चौथे पुत्र)

- शिवलालजी
  - वंशीजी
    - रामदयालजी।

बारली ग्वाड़ी वालों का वंश

आगे दी जा रही वंशावली श्री काका राधाकृष्णजी के पुत्र भाई सुवालालजी ने अपने वंश की जातीय ब्रह्मभट्टों की पोथियों से संगृहीत की है। इसके आरम्भ का भाग श्री छाजूजी से लेकर तीकूजी के पुत्र श्री रामोजी दामोजी (दामोदरजी) आदि तक पूर्व पृष्ठ ३ पर दिया है। दामामोजी (दामोदरजी=दामाजी) की वंशावली पूर्व दे चुके हैं। यहां उनके भाई रामोजी की वंशावली दी जा रही है—

- हरजी
  - केसरजी
    - हीराजी
      - सेवाजी
      - छोटाजी
        - जेठमलजी
          - हजारीजी
            - पूसालाल
            - मिश्रीलाल
          - राधाकृष्णजी
            - सुवालाल
            - मोहनलाल
        - रामलालजी ०
        - सुखदेवजी ०
    - मालाजी ०
    - धन्नाजी
    - होताजी
    - भेरूंजी
  - कृपाजी
  - मेदोजी

धन्नाजी (केसरजी के तीसरे पुत्र)

- धन्नाजी
  - चतुराजी
  - मथुराजी
    - बदरीलाल (गोद गया)
      - रामपाल
        - गिरिराज
        - गणपत
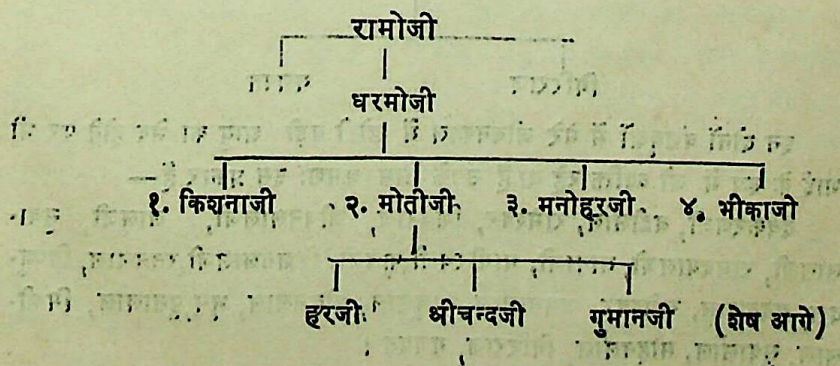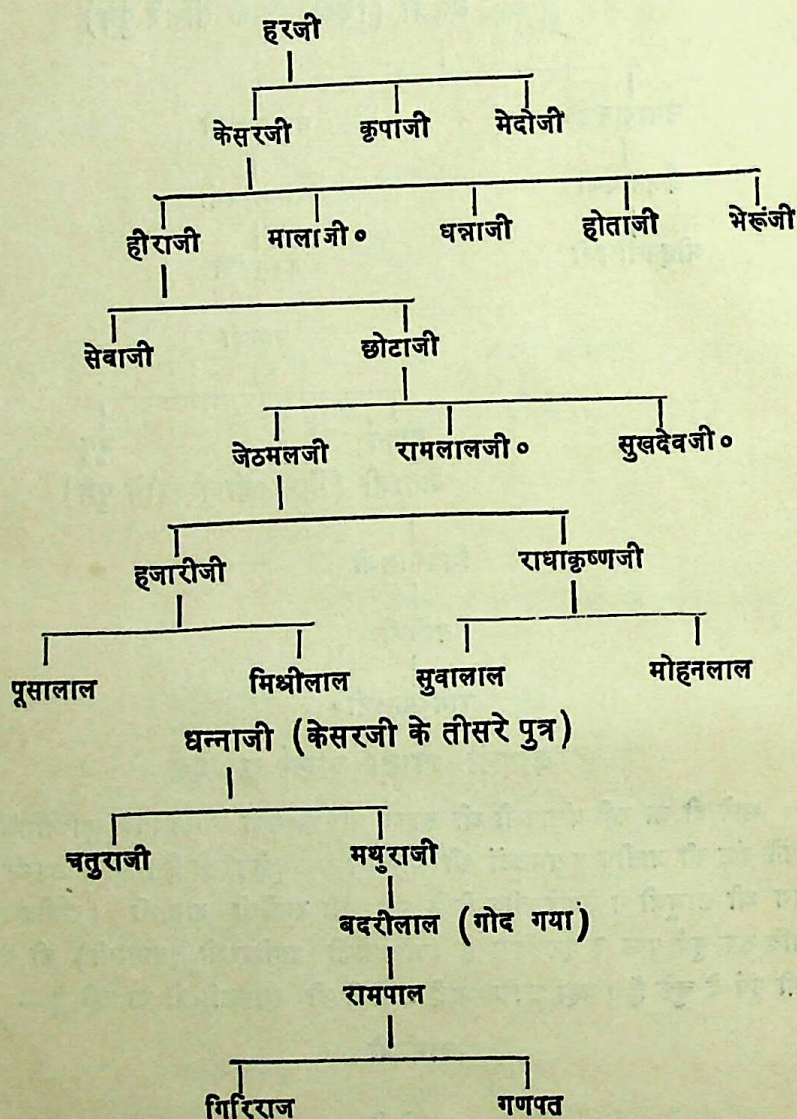
इन दोनों वंशवृक्षों में मेरे जीवनकाल में छोटी बड़ी आयु का भेद होने पर भी भाई के रूप में जो व्यक्ति रहे या हैं उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—

देवकरणजी, बद्रीलाल, रामेश्वर, शिवराज, जीवनलालजी, लालूजी, सुवालालजी, रामदयालजी, मानाजी, भागीरथजी, फूलजी, किशनलालजी, रतनलाल, विष्णुदत्त, मदनलाल, रामेश्वर, जमनालाल, पांचूलाल, मोहनलाल, भृगु, पूसालाल, मिश्रींलाल, सुवालाल, मोहनलाल, गिरिराज, गणपत।

इनमें से अधिकतर भाई वर्तमान काल तक दिवंगत हो चुके हैं। इनके आगे का वंशविस्तार यहां नहीं दिया जा रहा है।

इस प्रकार दामाजी से मुझ तक आठ पीढ़ी होती हैं और पन्नाजी के कस्तूरजी के गोद जाने के कारण मोहनलाल तथा भृगुलाल तक ९ पीढ़ी होती हैं।

हमारा वंश लगभग ७ पीढ़ी तक कृषक रहा है। इस वश के उत्तरवर्ती व्यक्ति कृषि के साथ-साथ व्यापार, अध्यापन, पटवारगिरी आदि विविध व्यवसायों में लगे हुए हैं।

चित्राङ्कित अन्तिम पीढियों तक श्री दामाजी और रामोजी का वंश मुख्य रूप से लगभग १५ परिवारों में बंटा हुआ था। सम्प्रति इन परिवारों की संख्या लगभग ३५ हो चुकी है। इनमें से अनेक परिवार विभिन्न व्यवसाय की दृष्टि से विभिन्न नगरों में जाकर बस गये हैं।

पूर्वज–परिचय

प्रपितामह सूजारामजी

आदि की तीन पीढ़ियों के अनन्तर जहां से हमारे वंश का मुख्यतया आरम्भ होता है, वे हैं मेरे प्रपितामह श्री सूजारामजी। ये श्री दामाजी की चौथी पीढ़ी में थे। प्रपितामह सूजारामजी के सम्बन्ध में मुझे पिताजी से इतना ही ज्ञात हुआ था कि उनकी जीविका का प्रधान साधन परम्परागत कृषि था, परन्तु उनके काल में हमारे गांव पर जब ग्वालियर राज्य का अधिकार हुआ (यह अधिकार थोड़े समय तक ही रहा), तब वे ग्वालियर राज्य की सेवा में भी रहे। गांव की वर्तमान पाठशाला के पश्चिम की ओर कुछ वर्ष पूर्व तक जीर्ण-शीर्ण मकान सा बना हुआ था (उसका रूपान्तरित एक भाग अभी भी विद्यमान है), उसे ग्वालियर राज्य ने अपनी घुड़साल के लिये बनवाया था। अंग्रेजी शासन होने पर जब गांव में कक्षा दो तक पाठशाला खुली, तब इस घुड़साल में ही पाठशाला चालू हुई। यह घुड़साल लगभग सन् ४० तक प्राइमरी पाठशाला के उपयोग में आती रही।

गांव की भीतरी बस्ती (मांयली ग्वाड़ी) में पारिवारिक जनों की वृद्धि हो जाने पर सम्भवतः प्रपितामह सूजारामजी भीतरी बस्ती से निकल कर गांव के पश्चिम दिशा में नये स्थान पर आ गये। भीतरी बस्ती में भी एकशाल (=कमरा) हमारे

भाग में आया था। जो मेरे समय में टूटी-फूटी अवस्था में था। इसे मैंने भृगु भाई, जो भीतरी बस्ती में ही रहते थे, १०० रुपये में दे दिया।

श्री सूजारामजी के पुत्र—प्रपितामह सूजारामजी के तीन पुत्र थे। इनके नाम क्रमश: जगन्नाथजी, रघुनाथजी और रामनाथजी थे। इनकी पुत्रियों के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

घर और खेतों का बटवारा—प्रपितामह सूजारामजी के तीनों पुत्रों में घर और खेतों का बंटवारा होने पर दादा जगन्नाथजी और दादा रघुनाथजी के हिस्से में जो घर आया, वह पश्चिम से गांव में प्रवेश करने पर दाहिने हाथ पर पहला मकान पड़ता है। इसका पूर्व दक्षिण का आधा भाग दादा जगन्नाथजी को मिला, जिस में पूर्व में मुख्य दरवाजा और पोल (बैठक) थी। दक्षिण में दो शालें थीं। और पश्चिम का आधा भाग दादा दघुनाथजी के हिस्से में आया। इसमें बाहर अन्दर दो शालें थीं। पोल के बराबर बाहरी शाल थी और दक्षिण की दो शालों के बराबर अन्दर की एक लम्बी शाल थी। मुख्य द्वार से हमें केवल आने जाने का अधिकार था। बीच में जो आंगन था वह भी आधा-आधा दो भाइयों में बंटा हुआ था। आंगन का बंटवारा तिरछा हुआ था अर्थात् दक्षिण पश्चिम कोने से पूर्वोत्तर कोने की रेखा के दक्षिण का भाग दादा जगन्नाथजी का और उत्तर का भाग हमारा था। इस कारण आंगन की उत्तरी भीत हमारे अधिकार में थी। मकान कच्चे थे। इस मकान से पूर्व में गली छोड़कर एक नोहरा (खाली स्थान) था। वह दादा रामनाथजी के हिस्से में आया था।

बड़े पितामह जगन्नाथजी

दादा जगन्नाथजी ने कुछ समय पश्चात् गांव से दक्षिण की ओर 'नये तालाब' के पास रहना आरम्भ कर दिया। यह स्थान उनके खेतों के समीप था। यह 'बाड़ा'[1] के नाम से जाना जाता है। यहां कुछ अन्य कृषकों के भी मकान थे। सम्प्रति उसमें पर्याप्त वृद्धि हो गई है।

दादा जगन्नाथजी को मैंने बचपन में देखा है। उस समय उनके हाथ काम करते

---

१ बाड़ा उसे कहते हैं जिसके चारों ओर कांटे की बाड़ लगाकर पशु रखे जाते हैं। कृषक जन अपने खेतों की देख-रेख के लिये गांव से बाहर, जहां पशुओं के साथ रहते हैं, उसे भी 'बाड़ा' नाम से ही पुकारा जाता है। ऐसे बाड़े हमारे गांव के चारों ओर विद्यमान हैं।

हुए कांपते थे। गांव में उनके हिस्से का जो मकान था, उसमें वे प्राय: अन्न रखा करते थे। कभी-कभी अन्न उधार देने या बेचने के लिये वहां आते रहते थे।

दादा जगन्नाथजी के एक पुत्र श्री महादेवजी थे। पिताजी के बड़े भाई होने के नाते मैं इन्हें 'बाजी' कहा करता था। इनके परिवार के गांव से दूर रहने के कारण तथा कुछ अन्य कारणों से इनके साथ हमारा विशेष सम्पर्क नहीं था।

महादेवजी के पुत्र—इनके छह पुत्र थे—श्री रामदयालजी, श्री मानाजी, श्री भागीरथजी, श्री फूलाजी, श्री किशनलालजी और श्री रत्नलालजी। इनकी बहनों के विषय में मुझे जानकारी नहीं है।

विशेष घटना—फूला भाई की धर्मपत्नी का २ मास की कन्या को छोड़ कर, स्वर्गवास हो गया था। फूला भाई दूसरे गांव में रहते थे। वे कन्या को अपनी मां, जो लगभग ६० वर्ष की थी, के सुपुर्द कर गये। आरम्भ में रुई भिगो कर दूध की बूंदें उसके मुंह में टपकाती रही और साथ ही वे उसे अपने स्तनों से चिपकाती रहीं। इस प्रकार करने से ६० वर्ष की अवस्था में भी उनके स्तनों में ममता के कारण दूध उतर आया और नवजात बालिका की जीवन रक्षा हुई।

दूसरी घटना—बड़ी मां (रामदयाल भाई की माता) एक बार अत्यन्त बीमार हुई। जीवन की आशा क्षीण हो चुकी थी, किन्तु उसी समय बा महादेवजी बीमार हुए और देखते-देखते बड़ी मां अच्छी हो गई और बाजी इस लोक से प्रयाण कर गये।

बा महादेवजी के भाग में आये गांव वाले मकान का पुनः निर्माण—सम्भवत: सन् १९३४ के अन्त में श्री किशनलाल भाई गांव के घर में आये अपने परिवार के भाग को तोड़कर दो मञ्जिला पक्का मकान बनवाया। उसमें श्री रामदयाल भाई और किशनलाल भाई के अतिरिक्त एक या दो भाइयों का भी हिस्सा था। इसके पश्चात् किशनलाल भाई गांव में ही रहने लगे और लेन-देन का कार्य करने लगे। कुछ समय पश्चात् गांव में दुकान भी कर ली। रामदयाल भाई पटवारगिरी की सेवा से निवृत्त होने पर इसी नये मकान में रहने लगे। इस कारण मेरा सम्पर्क इन दो भाईयों के साथ ही विशेष कर रहा है।

विशेष घटनाएं—मेरा अध्ययन काल से ही विशिष्ट वैद्य महानुभावों के साथ सम्पर्क रहा है। इस कारण आयुर्वेद का विधिवत् अध्ययन न करने पर भी आयुर्वेद के सिद्धान्त और ओषधियों का मुझे पर्याप्त ज्ञान हो गया था। इस कारण लाहौर आदि से गांव जाने पर प्राय: गांव के लोग दवा लेने मेरे पास आते रहते थे। अजमेर निवास काल में तो कई व्यक्ति चिकित्सा के लिये अजमेर भी आते रहे। मैं या तो औषध अपने पास से बिना मूल्य लिये देता था, अथवा अपने पास औषध

न होने पर लिख देता था। इसी प्रसङ्ग की दो घटनाएं जिनका सम्बन्ध भाई किशनलालजी और भाई जीवनजी के परिवार के साथ था, दे रहा हूं—

प्रथम घटना—इस घटना का काल तो निश्चित रूप से स्मरण नहीं है, परन्तु यह सन १९३९ के आस-पास की है। भाई किशनलाल की धर्मपत्नी अर्थात् भौजाई को पुराना ज्वर था। उसकी पर्याप्त चिकित्सा कराई। कुछ समय तक व्यावर अस्पताल में भी रखा। परन्तु डाक्टरों ने राजयक्ष्मा (टी० बी०) का निदान करके अस्पताल से छुट्टी दे दी। उन दिनों मैं गांव आया हुआ था। श्री भाई किशनलालजी ने भौजाई को देखने को कहा और बताया कि डाक्टरों ने टी० बी० बताई है। मेरे निदान के अनुसार ज्वर के अतिरिक्त और कोई भी यक्ष्मा का लक्षण नहीं था। मैं पांच सात दिन के पश्चात् वापस लाहौर लौटने वाला था। अतः १ मास की दवा बनाकर दे दी, सेवनविधि और पथ्य बता दिये। पन्द्रह दिन पश्चात् समाचार लिखने के लिये कहकर मैं लाहौर चला आया। बहुत दिनों तक सूचना न मिलने से मुझे चिन्ता हुई। मैंने पत्र द्वारा पूछा तो पता चला भौजाईजी पूरी तरह ठीक हो गई हैं।

डाक्टर लोग विना पूरा विचार किये ही दो तीन मास ज्वर रहने पर ही टी०बी० का फतवा दे देते हैं। रोगी न मरता हो तो भी टी० बी० के भय से ही उस का स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिरता जाता है। मेरे साथ भी सन् १९३५ में ऐसी ही घटना हुई थी, उसका वर्णन आगे यथास्थान किया जायेगा।

दूसरी घटना—इसके पश्चात् एक बार गांव जाने पर भाई जीवनजी की धर्मपत्नी दिखाने के लिये मेरे पास आई। उसकी तिल्ली और जिगर दोनों बहुत बढ़ गये थे। श्वास लेने में भी कठिनाई होती थी। उस समय भी मैं पांच छह दिनों में लाहौर लौटने वाला था। अतः उसे वैद्यनाथ फार्मेसी की 'तिल्ली की दवा' के नाम से प्रसिद्ध दवा की १६ मात्राओं की पांच छह शीशियां लेने का परामर्श दिया। मुझे हालत को देखते हुए जीवन की आशा कम थी। परन्तु प्रभु की कृपा और बाल-बच्चों के भाग्य से वह तीन चार शीशियां लेने पर ही ठीक हो गई। स्वास्थ्य पहले से भी अच्छा हो गया। परन्तु २-३ वर्ष बाद वही खेत से लौटते समय ठोकर खाकर गिरी और स्वर्ग सिधार गई।

पितामह रघुनाथजी

मेरे पितामह रघुनाथजी श्री सूरजमलजी के मझोले पुत्र थे। रघुनाथजी के एक पुत्र और तीन पुत्रियां थीं। जिनके नाम क्रमशः रामीबाई, गौरीलाल,तुलसीबाई और

जानीबाई थे । इस प्रकार एक बहन रामीबाई पिताजी से बड़ी थी और दो छोटी। पिताजी की बहनों का वर्णन इसी प्रकरण में आगे करेंगे । पिता श्री गौरीलालजी का वर्णन आगे पृथक् शीर्षक से किया जायेगा ।

जीवन-वृत्त —पितामह रघुनाथजी के जीवन की अनेक घटनाएं मुझे अपने पिताजी, दादाजी के छोटे भाई दादा रामनाथजी, उनके पुत्र चाचा गणेशीलालजी एवं तत्कालीन वृद्धजनों से सुनने को मिलीं, उनसे सुनकर दादाजी के जीवन की जो झांकी मेरे मन में उतरी, उसके अनुसार वे पूर्वजन्म के सम्भवतः योगभ्रष्ट पुरुष थे। उनमें प्राणों के वशीकार की अद्भुत क्षमता थी। वे प्रायः कुएं की तलहटी में चिरकाल तक श्वास रोके बैठे रहते थे । वे सत्यवाक् थे, अतः उनके मुख से निकली बात चाहे अच्छी हो या बुरी, वैसी ही घटित होती थी। इस कारण गांव के लोग उन्हें सदा प्रसन्न रखने की चेष्टा करते थे । उनके सामने कोई ऐसी बात या कार्य नहीं करते थे, जिससे वे कुपित होकर अनिष्ट वचन बोलें । आप अत्यन्त भोले, सरल चित्त और मित-भाषी थे । उन्हें अपनी सुध-बुध भी कम ही रहती थी । इस कारण यद्यपि वे अपने ध्यान में ही मस्त रहते थे, तथापि परम्परागत कृषि में अत्यन्त प्रवीण एवं परिश्रमी थे । भूमि के बंटवारे में जो भी निकृष्ट खेत उन्हें मिलता, उसमें अन्य भाइयों को प्राप्त अच्छे खेतों की अपेक्षा अधिक अन्न उपजता था ।

खेती का प्रमुख साधन बैल होते हैं । वे अपने बैलों की जोड़ी को प्राणों से भी अधिक प्यार करते थे । परिवार के लोगों से छिपाकर भूसे के साथ बैलों को अन्न खिलाना उनका प्रतिदिन का धन्धा था । यद्यपि इस पर परिवार के अन्य लोग नाराज भी होते थे, तथापि उन पर इसका कोई असर नहीं होता था । अतः वे अपने प्राणों से अधिक प्यारी बैलों की जोड़ी के बलबूते पर ही साधारण खेतों में भी अपने दोनों भाइयों से भी अधिक अन्न उपजाया करते थे । सं० १९५६ (सन् १८९९) में देशव्यापी भयङ्कर अकाल पड़ा था । उसमें लोगों ने पेड़ों की पत्तियां, छालें ही नहीं खाईं, अपितु अपने शिशुओं तक को भी प्राण रक्षार्थ दिया था । ऐसे समय में भी हमारे घर में पर्याप्त अन्न सुरक्षित था । इससे संबद्ध विशेष घटना आगे लिखी जायेगी ।

पितामह रघुनाथजी का स्वर्गवास—पिताजी की सन् १९१० की डायरी में १६ दिसम्बर (=मार्गशीर्ष शुक्ला १५ सं० १९६७) पर लिखा है—'पिताजी की अन्त्येष्टि दिवस ३ वर्ष ।' पुनः १३-१२-१३ (मार्गशीर्ष शुक्ला १५ सं० १९७०) की डायरी में लिखा है —'पिताजी के स्वर्गवास को ६ वर्ष हुए ।' इन लेखों से ज्ञात होता है

कि दादाजी का स्वर्गवास सं० १९६४ मार्गशीर्ष शुक्ला १५ (दिसम्बर १९०७ को हुआ था।

पितामही—पितामही (दादीजी) का नाम जड़ावबाई था। दादीजी का पीहर 'नरसिंहपुरा' नया शहर (व्यावर) के पास के गांव में था। दादीजी के पिता का नाम श्री हीरानन्दजी था। दादीजी के चार भाई थे, श्री गोपालजी स्वदासजी, रामचन्द्रजी और राधावल्लभजी।[1] वे दादाजी के स्वर्गवास के पश्चात् लगभग तेरह वर्ष जीवित रहीं। उनका स्वर्गवास मेरी माताजी के स्वर्गवास के लगभग १ मास पश्चात् मार्च सन् १९१८ में हुआ था। उस समय मैं लगभग साढ़े आठ वर्ष का था।

पितामह रघुनाथजी का शेष वर्णन पिताजी के जीवनवृत्त में लिखा जायेगा।

पितामह रघुनाथजी की पुत्रियां

पितामह रघुनाथजी की पुत्रियां अर्थात् पिताजी की बहिनों का यहां क्रमशः वर्णन किया जाता है—

रामीबाई—पिताजी की बड़ी वहिन अर्थात् मेरी बड़ी भुवाजी का विवाह हमारे गांव से पश्चिम में एक कोस दूर **मांगलियावास** के **श्री जगन्नाथजी जोशी** के साथ हुआ था। भुवाजी का एक पैर खराब था। इनके तीन पुत्र वा दो कन्यायें थीं। बड़े पुत्र का नाम **जयकरण** था, मझले पुत्र का नाम **भेरूंलाल** था। तीसरे अर्थात् सबसे छोटे का नाम ज्ञात नहीं। दो कन्याओं में से एक नाम का सुगनीबाई था, दूसरी का नाम ज्ञात नहीं। सुगनीबाई का विवाह **मारोठ** (मारवाड़) में हुआ था।

जयकरण का विवाह सं० १९६७ फाल्गुन सुदी २ गुरुवार [=२ मार्च १९११] को हुआ था और छोटी अवस्था में ही सं० १९६९ आश्विन वदी १२ सोमवार (=७ अक्टूबर १९१२) को स्वर्गवास हो गया था।

इसकी सूचना 'बिरकच्यावास' से पं० रामचन्द्रजी ने अपने पत्र में दी थी। यह पत्र पिताजी को १३ अक्टूबर १९१२ को मिला था। इस तारीख पर डायरी में पिताजी ने लिखा है—

"हा भाणेज जयकरण! तुम्हारी अकाल मृत्यु ने हमारे हृदयों को अत्यंत संतप्त

---

१. विशेष वृत्त प्रथम परिशिष्ट में संख्या १ पर श्री काका आनन्दीलालजी के पत्र में देखें।

किया है । भगवान् [ने] माता-पिता को सुख देने सरीखा और युवा पुत्र को मेरे बहिन बहनोई की गोद से क्यों हरण कर लिया, इसकी विधवा अबोध स्त्री की भी दया नहीं आई । गृहस्थ शोकमय है, प्रभो ! तेरी लीला अपार है, शोक !"

फूफाजी श्री जगन्नाथजी का स्वर्गवास सं० १९६९ फाल्गुन सुदी ११ मंगलवार (=१८ मार्च १९१३) को हुआ था। पिताजी की ५ अप्रेल १९१३ की डायरी में लिखा है—

"आज घर से अति भयानक शोकजनित पत्र पं० रामचन्द्रजी का आया । शोक है कि मांगलियावास में बहनोईजी जगन्नाथजी का देहान्त फाल्गुन सुदी ११ को हो गया। हे जगदीश ! इस कुल पर क्या कोप है ? ६ मास में ३ युवा पुरुषों का स्वर्गवास—शोक ! महाशोक !"

फूफाजी का मोसर (श्राद्ध) सं० १९७० चैत्र शु० ८ सोमवार (१४ अप्रेल १९१३) को हुआ था। १४ अप्रेल १९१३ की डायरी में पिताजी ने लिखा है—

"आज बहनोई जी जगन्नाथजी का मोसर हुआ। सूरजकरणजी की सदा से बड़ी सहायता रही। ये 'पीसांगन वासी' बहनोईजी के भाई हैं। पगड़ी छोटे लड़के को बंधाई गई। जयकरण की पगड़ी उसके बारहवें पर बड़े लड़के भेरू' को बंध चुकी रामसुखजी ने इसमें आज आपत्ति और विघ्न बहुत किया। परन्तु गांव वालों पटेलों और न्याति के पंचों के निष्पक्ष व्यवहार से वही दृढ़ हुई। अपनी तरफ से कल पहरावणी और ११ रु० रोकड़ दिये गये आदि·· ···"

मझोले भाई भेरुंलाल का विवाह कब हुआ और कब उनकी पत्नी अर्थात् मेरी भाभीजी का स्वर्गवास हुआ, यह मुझे ज्ञात नहीं। हां ! इतनी बात सुनी हुई स्मरण है कि सबेरे चक्की पीसते हुऐ उन्हें सांप ने डस लिया था और उसी से उनका निधन हुआ था। भेरू' भाई का एक पुत्र 'परमानन्द' है। भेरू' भाई अन्तिम वर्षों में पुष्कर में एक मन्दिर में रहते थे। उनका स्वर्गवास कब हुआ, यह मुझे ज्ञात नहीं।

रामी भुवाजी फूफाजी के निधन के पश्चात् कई वर्ष तक जीवित रहीं। उनका स्वर्गवास कब हुआ ज्ञात नहीं। हां, इतना स्मरण पड़ता है कि जब फरवरी से १९१८ में माताजी बिरयच्यावास में बीमार थी, तब मैंने उनको देखा था।

तुलसी बाई—पिताजी की मझोली बहिन अर्थात् मेरी मझोली भुवा तुलसीबाई का विवाह जयपुर के श्री पं० काशीनाथजी के साथ हुआ था। इस विवाह के अवसर पर हमारे परिवार के कुछ प्रमुख व्यक्तियों ने बहुत बाधा डाली। इसका कारण यह था कि उस समय २५ कोस के घेरे में ही सम्बन्ध करने की परिपाटी थी। इससे पूर्व

हमारे कुटुम्ब में किसी का विवाह 'जयपुर' के इलाके में नहीं हुआ। विवाह के समय विशेष बाधा उत्पन्न न हो जावे, इसलिये पिताजी ने दो तीन सिपाहियों का प्रबन्ध कर लिया था। इस प्रकार यह विवाह पुलिस की उपस्थिति में निर्विघ्न सम्पन्न हुआ। भुवाजी की सात कन्यायें[1] तथा एक पुत्र था। कन्याओं अर्थात् मेरी बहनों में से रुद्रीबाई, कमलाबाई, शाम्भवीबाई, शाकम्बरीबाई, शान्ताबाई और ललिताबाई' इन ६ के नाम मुझे ज्ञात हुए हैं। शेष १ बहन का नाम अज्ञात है। पुत्र अर्थात् मेरे भाई का नाम **'चन्द्रभूषण'** था। रुद्रीबाई के अतिरिक्त चार बहनों के नाम मुझे शाकम्बरीबाई और शाम्भवीबाई के उन पत्रों से ज्ञात हुए, जो इन्होंने १९१५ के जनवरी से अक्टूबर के मध्य पिताजी को 'नन्दबाई' (इन्दौर स्टेट) के ठिकाने पर लिखे थे और पिताजी के संग्रह में मुझे सुरक्षित मिले। बहिन शान्ताबाई का नाम श्री फूफा काशीनाथजी के १९-११-१९३२ के पत्र से ज्ञात हुआ।[2]

तुलसी भुवाजी के पुत्र उत्पन्न होने के सम्बन्ध में पिताजी ने सं० १९७० मार्गशीर्ष बदि ४ सोमवार (१७ नवम्बर १९१३) की डायरी में लिखा है—

'जयपुर से अपूर्व आनन्दप्रद समाचार मिलें हैं। बाई तुलसी के मिति कार्तिक सुदी १३ मंगलवार सं० १९७० (=११ नवम्बर १९१३) को रात्रि को ८॥ बजे पुत्र जन्म हुआ। ईश्वर को धन्यवाद है कि इस घर में पुत्र की हीनता को पूर्ण किया। ६ पुत्रियों के होने के अनन्तर यह पुत्रलाभ अत्यन्त आनन्द की बात है। ईश्वर इसे चिरञ्जीव रखे।'

रुद्रीबाई का विवाह—तुलसी भुवाजी की बड़ी पुत्री 'रुद्रीबाई' का विवाह सं० १९६८ फाल्गुन कृष्णा ४ मंगलवार (=६ फरवरी १९१२) को अजमेर के श्री पं० **गोपीकृष्णजी शुक्ल** के साथ हुआ था। इस अवसर पर बाबा परतापजी, पिताजी; मैं मेरी माताजी और नाइन तथा मांगलियावास वाले बड़े फूफा जगन्नाथजी और मुरमा (जि० जालना) वाले छोटे फूफा शंकरलालजी सभी जयपुर गये थे। फाल्गुन कृष्णा ३ सोमवार (५ फरवरी १९१२) को 'बत्तीसी नूतने' का दस्तूर किया। अगले दिन मंगलवार को 'मायरा' पहनाया गया, जिसमें लगभग १८० रुपये खर्च हुए। यह विवरण सं० १९६८ फा० कृ० २-३-४ (=४-५-६ फरवरी १९१२) की डायरी के अनुसार लिखा है। इस अवसर पर फूफाजी

---

१. अगले डायरी से उद्धृत सन्दर्भ में निर्दिष्ट पिताजी के लेख में ६ कन्याओं के पीछे पुत्र (चन्द्रभूषण) का होना लिखा है। चन्द्रभूषण के पश्चात् ललिताबाई हुई थी। इस प्रकार ७ कन्याएं थी।

२. यह पत्र प्रथम परिशिष्ट में संख्या २ पर देखें।

शंकरलालजी के साथ जानी भुवाजी भी बिड़कच्यावास आईं थीं। उन्होंने मुझे कड़े तथा हंसली दी थी। इसका उल्लेख पिताजी ने ४ फरवरी १९१२ की डायरी में किया है।

रुद्रीबाई का स्वर्गवास छोटी अवस्था में ही हो गया। उनका एक पुत्र अभी विद्यमान है। बहनोई श्री गोपीकृष्णजी ने रुद्रीबाई के स्वर्गवास के पश्चात् दूसरा विवाह कर लिया था। वह स्थानापन्न बहन 'मारोठ' (मारवाड़) की थी। उसके भी कई पुत्र पुत्रियां हैं। लगभग ३५ वर्ष से उनके यहां मेरा आना जाना नहीं है।

रुद्रीबाई के विवाह के कुछ वर्ष पश्चात् तुलसी भुवाजी का स्वर्गवास हो गया।[1] सन् १९१५ में तुलसी भुवाजी की दो पुत्रियों कमलाबाई और शाम्भवीबाई[2] का विवाह हुआ था। दोनों बरातें आगरा से आईं थीं। इस अवसर पर पिताजी के साथ माताजी, छोटी भुवा जानीबाईजी जयपुर गईं थीं। फूफाजी गये थे या नहीं, स्मरण नहीं। इस अवसर पर जानी भुवाजी तुलसी भुवाजी की छोटी कन्या 'ललिताबाई', जिसे दो मास की छोड़कर तुलसी भुवाजी का स्वर्गवास हो गया था, अपने साथ ले आईं। इस अवसर पर फूफाजी के अत्यधिक मिठाई बांधने के हठ के कारण पिताजी का और फूफाजी का पत्र-व्यवहार बन्द हो गया।

शाकम्बरीबाई का विवाह फूफाजी ने नहीं किया था। आगरे वाले बहनोईजी ने किया था। यह शाकम्बरीबाई के १ मार्च १९३५ के पत्र से ज्ञात होता है[3]। कमलाबाई के पति और शाम्भवीबाई के पति दोनों में से किसने किया था, इसका उल्लेख पत्र में नहीं है। शाकम्बरी हैदराबाद (निजाम स्टेट) में रहती थीं।

तुलसी भुवाजी की सात कन्याओं में से एक का नाम ज्ञात नहीं हो सका। सम्भव है ७ बहनों में से एक का असामयिक निधन हो गया हो। अन्यथा विवाह के पश्चात् निधन होने वाली रुद्रीबाई के अतिरिक्त कमलाबाई और शाम्भवी के आगरे में, शाकम्बरीबाई के हैदराबाद में, और शान्ताबाई का भागलपुर में होने के

१. तुलसी भुवाजी का स्वर्गवास सम्भवतः सन् १९१३ में हुआ होगा। क्योंकि सन् १९१५ में कमलाबाई और शाम्भवीबाई के विवाह पर जानी भुवाजी जिस ललिताबाई को साथ ले आईं थीं, वह लगभग दो साल की थी।

२. पिताजी की २० नवम्बर १९१५ की डायरी में लिखा है—'पत्र जेपुर से कुशलता का आया। बाई कमला तथा शाम्भवी की सगाई करेंगे और फाल्गुन तक विवाह करने का विचार है।'

३. यह पत्र (कार्ड) पिताजी के संग्रह में मिला है।

लेख के साथ फूफाजी उसका भी अपने पत्र[1] में उल्लेख करते । सबसे छोटी ललिता-बाई का उल्लेख न करने में तो कारण यह है कि उसे 'जानी भुवाजी' अपने साथ ले गईं थीं, यह पिताजी को ज्ञात ही था ।

तुलसी भुवाजी के एक मात्र पुत्र 'चन्द्रभूषण' से मेरा दूसरी बार और अन्तिम मिलन सन् १९३१ के उत्तरार्ध में जयपुर में हुआ था। उस समय मैं अध्ययनार्थ १ मास जयपुर में रहा था । वह उस समय किसी मोटर-गैरीज में मिस्त्री का काम सीख रहा था । भाई चन्द्रभूषण के सम्बन्ध में मैंने पिताजी को लिखा । उन्होंने मुझे पत्र में चन्द्रभूषण को अपने साथ लाने को लिखा था, परन्तु वह नहीं आया । उसका भी फूफाजी के समान हेठ (हठ) और अभिमान का स्वभाव था[2]। कुछ समय पश्चात् उसका स्वर्गवास हो गया । फूफाजी के अन्तिम दर्शन सन् १९४३-४४ में नसीराबाद में किये थे । वे नसीराबाद आये थे और संयोगवश हमारे गांव के एक खाती से मेरे सम्बन्ध में उन्होंने पूछा, उसके यह बताने पर कि मैं आजकल गांव में ही हूं, मिलने के लिये मुझे बुलाया था ।

तुलसी भुवाजी लक्ष्मी का अवतार—पिताजी सुनाया करते थे कि 'जब तुलसी भुवाजी का श्री पं० काशीनाथजी के साथ विवाह हुआ था, तब फूफाजी की आर्थिक स्थिति भी हमारी जैसी साधारण ही थी, परन्तु तुलसी भुवाजी के उनके यहां जाने पर 'दिन-दूनी रात चौगुनी' कहावत के अनुसार धन सम्पत्ति बढ़ी । वे जयपुर के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति बन गये । बाग-बगीचा, कोठी, नौकर-चाकर आदि सभी कुछ रईसी ठाठ हो गये । जब भुवाजी अपने पीहर (हमारे गांव) आती थीं, तो दो दो दासियां साथ में आती थीं । इतनी समृद्धि पाने पर भी तुलसी भुवाजी में अहंकार नाममात्र भी नहीं आया था। जब गांव आतीं तो निनाई गुड़ाई के लिये घर की अन्य स्त्रियों के साथ खेतों पर चलीं जातीं । जब कोई खेत पर जाने से रोकता तो वे कहतीं यह तो मेरा पीहर है, खेतों में काम करते ही मैं बड़ी हुई हूं, इसमें शरम की बात क्या है ? भुवाजी के स्वर्गवास के पश्चात् उनके यहां बढ़ी हुई धन सम्पत्ति क्रमशः सिमटती गई । इस घटना के परिप्रेक्ष्य में पिताजी तुलसी भुवा-जी को 'लक्ष्मी का अवतार' मानते थे । तुलसी भुवाजी के विवाह के अनन्तर उनके घर में कितनी समृद्धि हुई थी, इसका निदर्शन रुद्रीबाई के विवाह पर ९०० व्यक्तियों

---

१. यह पत्र प्रथम परिशिष्ट में संख्या दो पर देखें।

२. फूफाजी का अन्तिम पत्र प्रथम परिशिष्ट में संख्या २ पर देखें । उससे उनके दुर्दैव के समय भी बढ़ चढ़कर डींग मारने के स्वभाव का ज्ञान हो जायेगा ।

के भोजन के आयोजन से हो सकता है। ९०० व्यक्तियों के भोजन के आयोजन की बात पिताजी ने ७ फरवरी १९१२ की डायरी में लिखी है।

जब मैं पिताजी के साथ १९१५ में दो बहनों के विवाह में गया था, तब भी उनके पास शहर से कुछ दूर बड़ी कोठी और बगीचा था। अन्त में उन्हें वह दुर्दिन भी देखना पड़ा कि भाई को मोटर-गैरीज में नौकरी करनी पड़ी और फूफाजी दर-दर भटकते रहे। यह मेरी स्वयं देखी स्थिति है।

जानी बाई—पिताजी की छोटी बहन अर्थात् मेरी छोटी भुवाजी का विवाह मारवाड़ के 'थांवला' (हमारे गांव से ८-१० कोस दूर) नामक गांव में हुआ था। फूफाजी का नाम श्री शङ्करलालजी था। कुछ काल पश्चात् वे तत्कालीन दक्षिण हैदराबाद राज्य (निजाम स्टेट) के 'जालना' जिले के 'मुरमा' ग्राम में जाकर बस गये थे। अमृतसर के 'जलियानवाला बाग' की हत्याकाण्ड के समय १९१९ में मैं पिताजी के साथ मुरमा में ही था। और वहीं इसका वृत्तान्त समाचार पत्र में पढ़ा था। जानी भुवाजी के कोई सन्तान नहीं हुई। आप अपनी बड़ी बहन तुलसीबाई की सबसे छोटी कन्या 'ललिताबाई' जिसे हम सब 'मुन्नी' कहते थे, को पूर्व उल्लिखित विवाह के अवसर पर अपने साथ ले गईं थीं। उसे पुत्रवत् पाला, विवाह किया, परन्तु वह भी कुछ वर्ष पश्चात् परलोक सिधार गईं। ललिता बाई का विवाह संभवत: १९२९ के फरवरी मास के प्रारम्भ में अथवा जनवरी के अन्त में हुआ होगा। इस विवाह में पिताजी सम्मिलित हुए थे। पिताजी के पत्रों के संग्रह में '५० रुपये मुरमा भेजने' की एक मनिआर्डर की रसीद मिली है, उसकी पीठ पर लिखा है—

"मुरमा में मुन्नीबाई के मायरे में २०१ रुपये का देना निश्चय किया, उसमें से १२५ देना शेष रख आया था, जिनमें से ये ५०) भेजे हैं। शेष अब ७५) देने रहे। २-३-२९ गौरीलाल आचार्य।"

सन् १९१९ के पश्चात् जानी भुवाजी से भेंट—सन् १९१९ में मैं पिताजी के साथ जानी भुवाजी के गांव मुरमा गया था। उसके पश्चात् मैं सन् १९२१ में अध्ययनार्थ अमृतसर काशी आदि स्थानों में रहा। अतः सुदीर्घकाल तक जानी भुवाजी से भेंट न हो सकी। परस्पर पत्र-व्यवहार भी नहीं था। सन् १९३५ के पश्चात् निजाम स्टेट में मुसलमानों ने हिन्दुओं को लूटने मारने आदि का आरम्भ कर दिया था। निजाम स्टेट के जिस जालना जिले में जानी भुवाजी रहती थीं, वह मराठा बहुल था। मराठों ने भी बाहरी लोगों पर विशेष करके मारवाड़ियों को तंग करना आरम्भ

कर दिया था। अतः भुवाजी एक बार अपने जेठ के साथ हमारे गांव में आईं थीं। सम्भवतः उनका आना सन् १६३६ में किसी समय हुआ था। हम भी उस समय गांव में थे। फूफाजी साथ में नहीं आये थे। सम्भव है उनका इससे पूर्व स्वर्गवास हो गया होगा या अन्य कारण रहा हो (मुझे विशेष स्मरण नहीं है)। इसके पश्चात् उनका सम्भवतः सन् १६४३ या ४४ में दुबारा आना हुआ। इस बार 'मुरमा' की अपनी सब जमीन जायदाद वेचकर अपने ससुराल 'थांवला' में रहने के विचार से आई थीं। हमसे गांव में मिलकर 'थांवला' गईं। वहां जाकर कुछ दिन पीछे ही उनका स्वर्गवास हो गया। समाचार मिलने पर मैं थांवला गया था।

पितामह रघुनाथजी के प्रसङ्ग में दूर के पितामह **श्री परतापजी** का वर्णन करना आवश्यक है, क्योंकि पितामह रघुनाथजी के स्वर्गवास के पश्चात् हमारी खेती बाड़ी और गृह की सम्पूर्ण देख-रेख अन्त तक आप ही करते रहे। आपके भरोसे पर ही पिताजी अपनी माताजी को गांव में छोड़कर परदेश में यत्र-तत्र नौकरी करते हुए निश्चिन्ति रहते थे।

अन्य पितामह परतापजी

पूर्व दी हुई प्रथम वंशावली के अनुसार 'दामाजी' के पुत्र 'अमन्दाजी' के कनिष्ठ पुत्र 'विरदाजी' के ज्येष्ठ पुत्र 'पत्ताजी' के ज्येष्ठ पुत्र 'मल्लाजी' के 'लछमनजी, परतापजी, बलदेवजी और हरदेवजी' नामक चार पुत्र थे। इन चारों का वंश आगे नहीं चला। ये सभी वंश-परम्परा के रूप में पितामह रघुनाथजी के भाई थे। परतापजी के अतिरिक्त शेष भाइयों का वंश विवाह न होने से,सन्तान न होने अथवा होकर मर जाने के कारण नहीं चला, यह ज्ञात नहीं। हां, इतना ज्ञात है कि परताप दादाजी का विवाह नहीं हुआ था। वंश परम्परा में कुछ दूर का सम्बन्ध होने पर भी मेरे दादाजी के साथ परताप दादाजी की घनिष्ठता थी और वे हमारे घर पर ही भोजन किया करते थे। इसी कारण दादाजी के स्वर्गवास के पीछे आपने हमारे घर को स्वघरवत् संभाला। इनके दर्शन मैंने बचपन में किये हैं। उसी के आधार पर अगला 'अन्न ब्रह्म के उपासक' वृत्त तथा स्व कानों से बहुधा श्रुत भविष्य-वाणी लिख रहा हूं।

परताप दादाजी गांव के पूर्व में पनघट के साथवाली गली में रहते थे। वे केवल भोजन के समय या विशेष कार्य होने पर ही हमारे घर आते थे। दादीजी इनका देवर की भांति ध्यान रखती थीं। आप बड़े ही सात्त्विक व्यक्ति थे।

अन्न-ब्रह्म के उपासक—यद्यपि पुराकाल के सभी व्यक्ति अन्न का बड़ा आदर

करते थे, परन्तु आपकी 'अन्नं ब्रह्म इत्युपासीत'[1] इस वैदिक भावना के अनुसार अन्न ब्रह्म की उपासना सबसे निराली थी। मार्ग में चलते हुए यदि अन्न का कोई दाना दिखाई दे जाता था तो वे रुककर उसे उठाकर पगड़ी में रख लेते थे (इस प्रकार इकट्ठे हुए अनाज को वे पक्षियों को खिला देते थे)। भोजन करने के पश्चात् थाली में एक दो चुल्लु पानी डाल कर थाली को धोकर पी जाते थे, जिससे अन्न का कोई दाना वर्तन मांजने के स्थान में या पात्रों के धोवन के साथ इधर-उधर न फेंका जावे।

आपकी इस 'अन्नं ब्रह्म' की उपासना का साक्षात् फलरूप कहे गये वचन की सत्यता मैं अपने जीवन में बराबर देख रहा हूं। यह जहां उनके जीवन की और सत्यवाक्त्व की महती घटना है, वहां मेरे लिये भी अत्यन्त आश्चर्यजनक भी है। बात इस प्रकार है—

खेती का व्यवसाय होने से हमारे घर में प्राय: अन्न के ढेर लगे रहते थे। मैं जब कभी माता-पिता के साथ गांव जाता था, तो मांगलियावास वाली बड़ी भुवा के बच्चे भी हमारे यहां आ जाते थे। दो चार बच्चों के इकट्ठे होने पर उनका खेलना-कूदना स्वाभाविक ही होता है। हम खेलते-कूदते अन्न के ढेर को बिखेर देते थे, कुछ दाने घर के बाहर दालान में बिखर जाते थे। जब परताप दादाजी भोजन करने आते और अन्न को बिखरा हुआ देखते थे, तो वे बहुत कुपित होते थे। अन्न की दुर्दशा वे देख नहीं सकते थे। इसी प्रसङ्ग में मैंने बाल्यकाल में उनके मुख से जो एक वाक्य बार-बार सुना वह मुझे आज भी स्मरण है। तदनुसार वर्तमान-काल में हमारे घरों में जो अन्न का निरादर होता है उसे देखकर आगे हमारी क्या दशा होगी, यह सोचकर मन कांप उठता है।

परताप दादाजी अन्न बिखेरने पर नाराज होकर और गाली देकर कहा करते थे—थाने खाला ने नाज नहीं मिलसी। थे अन्न देवतानो निरादर करोहो, रुप्या को नाज खूंज्या में आवसी। घी देखवाने शीशी में रहसी।' अर्थात् तुम लोगों को अनाज खाने को नहीं मिलेगा, तुम अन्न देवता का निरादर करते हो। रुपये का अनाज जेब में भरने लायक आवेगा और घी देखने को शीशी में रहेगा।

दादाजी ने ये वचन आज से लगभग ७५ वर्ष पूर्व कहे थे। उन दिनों इस स्थिति का विचार किसी अतिदूरदर्शी के मन में भी नहीं आ सकता था, क्योंकि उन दिनों अनाज घी दूध पुष्कल मात्रा में मिलता था। परन्तु आज मैं यह प्रत्यक्ष देख रहा हूं

१. अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्। तै० उप० ३।२॥ तुलना करो—अन्नमात्मेत्युपासीत। मैत्रा० ६।१२॥

कि अच्छा गेहूं ढाई तीन रुपये किलो मिल रहा है, और वह भी कृत्रिम खाद से उपजाया हुआ पोषक तत्त्व रहित है। घी 'शुद्ध घी' के नाम पर ६०-७० रुपये किलो हो गया है। इसकी शुद्धता भी कितनी है, यह अलग प्रश्न है। यह तो आज की स्थिति है, कल क्या होगा यह भगवान् ही जानें।

लगभग ७५ वर्ष पूर्व ऐसी भविष्यवाणी उन जैसे सात्त्विक एवं अन्नरूप ब्रह्म के उपासक ही कर सकते थे।

परताप दादाजी का स्वर्गवास और मृत्यु का पूर्व आभास—सम्भवतः सन् १९१६ के मध्य परताप दादाजी बीमार पड़े।[1] उन्होंने अपनी आसन्न मृत्यु का आभास पाकर पिताजी को तार देकर मण्डलेश्वर से बुलाया। उस समय पिताजी मण्डलेश्वर (नीमाड़ जिला) में हिन्दी मिडिल स्कूल के प्रधान अध्यापक थे। हम सब को लेकर पिताजी गांव पहुंचे। उस समय दादाजी विशेष अस्वस्थ नहीं थे। साधारण ज्वर था। पिताजी ने बुलाने का कारण पूछा तो दादाजी ने कहा कि अब मैं कुछ दिनों का महमान हूं, तुम मरने पर मेरा श्राद्ध नहीं करोगे, इसलिये मैं चाहता हूं कि जीतेजी अपना मोसर(श्राद्ध)करलूं। पिताजी ने निवेदन किया कि अभी आपकी ऐसी अस्वस्थता नहीं है। आप मुझ पर भरोसा रखें कि यदि ऐसा समय आयेगा तो आपकी इच्छानुसार मोसर आदि सब कार्य अवश्य करूंगा। इस पर भी दादाजी ने कहा 'मैं कुछ दिनों का ही महमान हूं। आज ही पंचों को बुलाकर चिट्ठी फाड़ो।' 'चिट्ठी फाड़ना' मारवाड़ी भाषा का विशिष्टार्थ बोधक मुहावरा है। इसका अर्थ है 'न्यात (=जाति के लोगों) को मोसर (श्राद्ध) में बुलाने के लिये समाचार भेजना'। दादाजी की इच्छानुसार सातवें या आठवें दिन मोसर में सम्मिलित होने का निमन्त्रण पत्र सब को भेज दिया गया। सब लोग नियत दिन गांव पहुंच गये। प्रथम दिन ब्रह्म भोज का प्रबन्ध हो रहा था कि लगभग ९ बजे दादाजी ने पूछा न्यात के सब लोग आ गये? पिताजी के स्वीकारने पर दादाजी ने कहा सबको बुला लो, न्यात के दर्शन कर लूं। प्रमुख लोग घर पर आये और उनके सामने हाथ जोड़कर सबके देखते-देखते स्वर्ग सिधार गये। बने हुये भोजन पर कुशा रख दी गई और शेष कार्य रोक दिया। जाति के लगभग २०० व्यक्तियों ने दाह-कर्म में भाग लिया। तत्पश्चात् आपत्काल की मर्यादा के अनुसार 'दस घड़ी का दसवां' और 'तेरह घड़ी की तेरहवीं' मनाकर तीन दिन का जाति भोज सम्पन्न किया।

---

१. उनकी सर्विस बुक की प्रतिलिपि में १-५-१६ से ३०-६-१६ तक की दो मास की छुट्टी का उल्लेख है। उसके पश्चात् माताजी के स्वर्गवास के समय की सन् १८ की छुट्टी का उल्लेख है।

इस मोसर अर्थात् जाति भोज पर होने वाले व्यय मध्ये परताप दादाजी ने पछोर के लगभग ५ बीघा के दो खेत और पनघट के पास वाली गली में उनका जो निजी मकान था, वह पिताजी को दे दिया।

पितामह रामनाथजी

मेरे दादा रघुनाथजी के सगे छोटे भाई रामनाथजी थे। दादा रामनाथजी और उनके परिवार के साथ हमारे परिवार के घनिष्ठ सम्बन्ध रहे हैं और अभी तक अर्थात् तीसरी पीढ़ी तक भी वर्तमान हैं।

दादा रामनाथजी अत्यन्त सरल प्रकृति के सात्त्विक पुरुष थे। दादा श्री रामप्रतापजी के स्वर्गवास के पश्चात् हमारे घर और खेती का काम-काज आप तथा आपके पुत्र श्री काका गणेशीलालजी ही देखा करते थे। मैं जब भी अमृतसर से गांव जाता था तो इनके पास ही ठहरता था।

दादा रामनाथजी लगभग ८० वर्ष की आयु में आखातीर सं० १६६० में स्वर्ग-सिधारे। जीवनभर प्रायः स्वस्थ रहे। इसका प्रधान कारण था परिश्रम, सन्तोष की भावना और सादा सरल जीवन। प्रायः प्रतिदिन प्रातः अधविलोये दही के साथ रात की मक्का की रोटी या घाट (दलिया) खाया करते थे। यह भी उनकी स्वस्थता का प्रमुख कारण था। अन्तिम समय तक उनका एक भी दांत नहीं टूटा था। दांतों पर पीले रंग की मोटी पपड़ी चढ़ी हुई थी, पर दांत इतने मजबूत थे कि उस समय भी कच्चे चने चबा सकते थे। आज-कल दांतों को स्वच्छ रखने का जितना प्रयत्न किया जाता है, दन्तरोग उसी मात्रा में बढ़ते जाते हैं। इसका प्रधान कारण कृत्रिम दिनचर्या तथा अत्यधिक उष्ण और शीत पदार्थों का सेवन है।

अन्तिम दिनों में जब दादाजी बीमार हुए तो काका गणेशीलालजी ने पूछा कि भाई (मेरे पिता गौरीलालजी) को बुलाने को तार दे दूं? तो हंसकर दादाजी बोले तू तार कहां देगा गौरीलाल तो आ रहा है। इसके कुछ घण्टे बाद पिताजी दादाजी की सेवा में पहुंच गये। यह बात श्री काका गणेशीलालजी ने मुझे सुनाई थी।

दादीजी दादा रामनाथजी के स्वर्गवास के पश्चात् कई वर्ष तक जीवित रहीं। वे बहुत भोली थीं और मजाकिया भी बहुत थीं, परन्तु उनके मजाक से कोई बुरा नहीं मानता था। अपनी पोती 'भंवरीबाई' के विवाह के समय एक नन्हें पिल्ले को रेशमी कपड़े में लपेटकर भवंरीबाई के ससुर के पास जाकर कहा कि समधीजी तुम्हारे लिये भेंट लाई हूं झोली मांडो (फैलाओ) कहकर उनकी झोली में कपड़े से

लिपटा पिल्ला डाल दिया। इस समय मैं वहीं था। दादा रामनाथजी के निम्न पुत्र पुत्रियां थीं—

चन्द्राबाई, नानीबाई, गणेशीलाल, नोजीबाई, अलोलबाई और मांगीलाल।

इनमें से चन्द्राबाई के विषय में कुछ ज्ञात नहीं। नानीबाई विवाह के पश्चात् ससुराल जाकर देवी-देवता भी नहीं धोक पाई की उनके पति का निधन हो गया। ससुराल से लौटने के पश्चात् वे गांव में ही रहीं। इनके साथ मेरा सम्पर्क बचपन से ही रहा है।

नोजीबाई और अलोलबाई दोनों का विवाह एक साथ हुआ था। नोजीबाई की चंवरी (मण्डप) में कन्यादान के लिये दादाजी और दादीजी बैठे थे। और अलोलबाई का कन्यादान मेरे पिताजी और माताजी ने किया था। यह मुझे भली-भांति स्मरण है।

गणेशीलालजी—काका गणेशीलालजी को मेरे पिताजी 'गीगा' और माताजी 'लालजी' कहा करती थीं। काका गणेशीलालजी का विवाह संभवतः सन् १९२० में हुआ था। बरात मारवाड़ के 'ललाणा' गांव (गच्छीपुरा स्टेशन से ४-५ मील दूर) में गई थी।

काकीजी के छोटी बहन का विवाह भी उसी समय हुआ। बचपन में मैं बहुत शरारती था। काकीजी के गांव में पीने के पानी का जो कुंआ था, उसमें पानी बहुत नीचा था। चार-पांच औरतें रस्सी का अगला भाग पकड़कर दूर तक खींच कर ले जाती थीं और एक आदमी पानी के डोल को पकड़ने के लिये कूएं पर खड़ा रहता था। मैं खींच कर ले जायी गई रस्सी पर बैठ जाता था, जैसे चरस से पानी निकालते समय आदमी रस्सी पर बैठता है। विवाह के समय काकीजी की आयु लगभग १३ वर्ष थी।

काकीजी का स्वभाव बहुत ही अच्छा था। यद्यपि वे मुझसे लगभग दो-तीन वर्ष ही बड़ी थीं, परन्तु उन्होंने मुझे मातृवत् स्नेह प्रदान किया। काकीजी भी मुझे 'लालजी' कहा करती थीं।

पारिवारिक घनिष्ठता—काकाजी के प्रति मेरी माताजी का असीम प्रेम था। उन्होंने अपने निधन के समय पिताजी से विशेषरूप से कहा था कि 'लालजी के साथ दुमांत (भेदभाव) न रखना।' पिताजी का भी काकाजी के साथ बहुत स्नेह था। काकाजी की आर्थिक स्थिति कुछ कमजोर थी। इसलिये प्रायः पिताजी उनकी सहायता करते रहते थे। लौकिकता की दृष्टि से हमारे खेत का जो अनाज आता

था, या पिताजी जो नकद सहायता करते,वह एक वही में हिसाब-किताब के रूप में नियमितरूप से लिखा जाता था। परन्तु पिताजी ने अपने निधन से कुछ समय पूर्व मुझसे कहा था कि लेन-देन का जो खाता मैंने लिखवाया हुआ है वह केवल इसलिये है कि भाई को पता रहे कि इतना रुपया उसे दिया है। परन्तु जो कुछ दिया है, वह लेने के लिये नहीं दिया। इस बात का तुम ध्यान रखना। पिताजी के स्वर्गवास के पश्चात् जब खाते की मियाद पूरी हुई तो काकाजी ने नया खाता लिखने के लिये मुझसे कहा। इस पर मैंने कहा—'देनेवाले ने दिया लेने वाले ने लिया, हिसाब पूरा हुआ। मुझे इससे कुछ लेना-देना नहीं है' यह कहकर मैंने खाते का वह पन्ना वही से निकाल कर इसलिये फाड़ दिया, कि कालान्तर में मेरे मनमें लालच न आवे और मैं पिताजी की इच्छा के विपरीत आचरण न कर बैठूं।

घर की और खेती की देखभाल तो काका गणेशीलालजी करते थे। उन्हीं की देख-भाल के कारण घर और खेत की जमीन सुरक्षित रहीं। यद्यपि पिताजी ने एक कापी में खेतों के नक्शे उनका नाप और खाता नम्बर आदि सब लिख रखे थे। उससे मुझे अपने खेतों का परिज्ञान हो सकता था, परन्तु पिताजी ने माताजी के कुछ गहने डिब्बे में बन्द करके काकाजी को दे रखे थे, जिनका न कहीं उल्लेख था और न ही पिताजी ने मुझे बताया था। वे सब गहने मेरे विवाह की बातचीत पक्की होने पर काकाजी ने मुझे सौंप दिये।

काका गणेशीलालजी के पुत्र पुत्रियां—पुत्रों के क्रमशः नाम हैं—विष्णुदत्त(जन्मनाम 'धूलचन्द'), मदनलाल, रामेश्वरलाल, जमनालाल और पांचूलाल। पुत्रियों के नाम हैं—भंवरीबाई, और रामीबाई। भंवरीबाई विष्णुदत्त से भी बड़ी थी।

काकाजी का स्वर्गवास—२६ जनवरी १९५४ में काकाजी का निधन हुआ। उस समय मैं सपरिवार काशी में था। निधन का समाचार मिलने पर मैं तो कार्य-विशेष से स्वयं गांव न जा सका, परन्तु यशोदा को तीनों बच्चों के साथ भेज दिया था। उस समय इलाहाबाद के कुम्भ की भारी भीड़ गाड़ियों में चल रही थी। बड़ी कठिनाई से और अनुनय विनय करने पर तथा गाड़ी में बैठे एक सज्जन की सज्जनता की सहायता से मैंने किसी तरह खिड़की के रास्ते सबको बिठाया। काकाजी ने अपने पारस्परिक प्रेम और मर्यादा को ध्यान में रखते हुए अपने बच्चों से कहा कि 'कोई भी काम करना हो तो युधिष्ठिर की सलाह के बिना मत करना।' इस प्रकार का पारस्परिक स्नेहपूर्ण सम्बन्ध आजकल बहुत कम दिखाई देता है। काकीजी काकाजी के निधन के पश्चात् लगभग २५ वर्ष जीवित रहीं। उनका मुझे और यशोदा को मातृवत् और बच्चों को दादी के समान स्नेह मिलता रहा। अन्त में काकीजी ६ वर्ष तक

अर्धाङ्ग रोग से पीड़ित होकर स्वर्ग सिधारीं। भाइयों में परस्पर सद्‌भावना का अभाव होने से उनका अन्तिम जीवन बहुत कष्टमय बीता।

पिता—गौरीलाल आचार्य

मेरे दादा श्री रघुनाथजी के एकमात्र पुत्र मेरे पिता गौरीलालजी थे। उनकी तीन बहनें थीं, एक बड़ी और दो छोटी। इनका वर्णन दादाजी के प्रसङ्ग में हो चुका है।

पिताजी का जन्म किस संवत् या मास में हुआ, यह अज्ञात है। पिताजी की सर्विसबुक में उनकी जन्म तिथि ५ जुलाई १८८१ लिखी हुई है। परन्तु यह तिथि ठीक नहीं है, यह पिताजी ने मुझे स्वयं कहा था। इसमें न्यूनातिन्यून २-३ वर्ष न्यून लिखाया गया था। सर्विस बुक में पिताजी की ऊंचाई ५ फुट ७ इंच लिखी हुई है।

कुल में शिक्षा का प्रवेश—हमारा सारा परिवार खेती करता था। पिताजी के दोनों पैर जन्म से टेढ़े थे। दादाजी ने विचारा कि यह इन विकृत पैरों से खेती नहीं कर सकता। अतः उन्होंने पिताजी को पढ़ाने के लिये सन् १८८७ या १८८८ में गांव की पाठशाला में प्रविष्ट करा दिया। उस समय तक हमारे गांव में कक्षा दो तक ही अध्यापन की व्यवस्था थी। प्रथम कक्षा से पूर्व 'अ' 'ब' कक्षाएं होती थीं।

प्रभु जहां न्यायकारी है, वहां वह अतिशय दयालु भी है। प्रभु की न्याय-व्यवस्था के अनुसार जहां पिताजी के पैर विकृत हुए, वहां उसी के कारण पिताजी को परम्परागत खेती के कार्य से छुटकारा मिला और शिक्षा प्राप्त करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। मनीषियों ने सत्य ही कहा है—'ईश्वर जो कुछ करता है,उसमें प्राणी की भलाई ही निहित होती है।' मेरे जीवन में भी ऐसा ही घटा है, उसका वर्णन आगे यथास्थान किया जायेगा।

शिक्षा के लिये राजगढ़ जाना—गांव में द्वितीय कक्षा उत्तीर्ण करके पिताजी को आगे अध्ययन के लिये 'राजगढ़' जाना पड़ा। यह कसबा हमारे गांव से लगभग ३ कोस पर है। वहां छठी कक्षा तक पाठशाला थी। दादाजी प्रति शनिवार सायं-काल पिताजी को गांव ले आते थे और सोमवार को प्रातः राजगढ़ पहुंचा देते थे। उस समय इस मार्ग पर सड़क नहीं थी। पिताजी को छुटियों में लाने और पहुंचाने के लिये दादाजी ने एक छोटीसी गाड़ी बनवा ली थी। राजगढ़ में चार वर्ष अध्ययन करके वहां से छठी कक्षा उत्तीर्ण की।

उच्च कक्षा के लिये अजमेर जाना—राजगढ़ से छठी कक्षा उत्तीर्ण करने के

पश्चात् आगे पढ़ने के लिये पिताजी को अजमेर जाना पड़ा। वहां दो वर्ष रहे। मिडिल वर्नाक्यूलर सन् १८६६ में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। उस समय यही हिन्दी की उच्च कक्षा मानी जाती थी। उस समय अजमेर मेरवाड़ा के शिक्षा विभाग का संचालन 'पश्चिमोत्तर प्रदेश आगरा वा अवध' (वर्तमान उत्तरप्रदेश) के द्वारा होता था। इस परीक्षा के पमाण पत्र पर 'क्वींस कालेज' बनारस (वाराणसी) की मोहर अङ्कित है। उस समय इसके रजिस्ट्रार 'डब्ल्यू० एच० राइट' थे।[1]

वैदिक धर्म की ओर प्रवृत्ति—हमारे गांव में गूजर वंश के एक श्री सूरजमल जी पटेल थे। गांव के लगान की उगाही और उसे राजकीय कोष में जमा कराने के लिये वे सरकार की ओर से नियुक्त थे और गांव के सरपंच भी थे। लगान वसूल करके उसे तहसील में जमा कराने के लिये उन्हें बराबर अजमेर जाना पड़ता था। एक समय श्री सूरजमलजी पटेल जब उक्त कार्य के लिये अजमेर गये, तो उस समय उन्होंने नवभारत के निर्माता वेदोद्धारक स्वामी दयानन्द सरस्वती के भाषण सुने। उससे उनके विचारों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। इनके ही संसर्ग से पिताजी एवं ग्राम के दो नवयुवक श्री रामचन्द्रजी लोया और श्री शिवचन्दजी ईनाणी आर्य समाज की ओर आकृष्ट हुए। अध्ययनार्थ दो वर्ष अजमेर में रहने के समय सीधे आर्यसमाज के संसर्ग में आने से पिताजी स्वामी दयानन्द सरस्वती के दृढ़ अनुयायी बन गये। अपना जीवन पूर्णतया उनकी शिक्षा के अनुरूप ढालने के लिये जीवनभर तत्पर रहे। आपके वैदिक धर्म प्रचार के लिये यावज्जीवन किये गये कार्यों में से कुछ का वर्णन आगे किया जायेगा।

श्री सूरजमलजी पटेल के प्रति श्रद्धा—यतः श्री सूरजमलजी पटेल के सत्संग से पिताजी वैदिक धर्म की ओर आकृष्ट हुए थे, अतः पिताजी उनका गुरुवत् बहुत आदर करते थे। सं० १९७० चैत्र शुक्ला ९ मंगलवार (=१५ अप्रैल १९१३) की डायरी में पिताजी ने लिखा है—'आज प्रातः (मांगलियावास से) रवाना होकर बिड़गच्यावास को गये। सबसे मिले भेंटे। मास्टर रामचन्द्रजी, पटवारीजी और पूज्य आदि गुरु सूरजमलजी पटेल सा० से भेंट हुई आनन्द हुआ।' यहां पिताजी ने श्री सूरजमलजी पटेल को 'आदि गुरु' विशेषण से अलङ्कृत किया है। जो उनके प्रति पिताजी की विशेष श्रद्धा का द्योतक है।

श्री सूरजमलजी पटेल के दर्शन मैंने भी बचपन में किये हैं। जब मैं सन् १९२५ की मथुरा जन्म शताब्दी के अवसर पर गांव गया था, तब आपने ऋषि दयानन्द के

---

१. इस प्रमाण-पत्र की प्रतिलिपि प्रथम परिशिष्ट में संख्या ३ पर देखें।

व्यक्तित्व के सम्बन्ध में अनेक संस्मरण सुनाए थे । बालबुद्धि के कारण मैं उन्हें भूल गया, परन्तु एक बात अभी तक स्मरण है । ऋषि दयानन्द के सम्बन्ध में उन्होंने कहा था—"वे ६ फुट से भी अधिक लम्बे थे । शरीर अत्यन्त गठा हुआ था, आजकल के चित्रों में जो उनका पेट बढ़ा हुआ दिखाया जाता है, वैसा नहीं था । आवाज उनकी शेर की तरह बुलन्द थी ।"

परिवार में विशेष घटना—भारत के इतिहास में सं० १९५६ का देश व्यापी अकाल एक भयङ्कर घटना थी । मैंने बचपन में वृद्धजनों से इस अकाल की भयङ्करता के रोंगटे खड़े करने वाले विवरण सुने थे । उनके स्मरण आने पर आज भी मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं । उनके अनुसार थोड़े से काल में ही लाखों लोग भूख से तड़फ तड़फकर काल कवलित हो गये । क्षुधापीड़ित जनों ने वृक्षों की पत्तियां, तनों की छाल और घास-फूस को भी नहीं छोड़ा । कुछ लोग बिल्ली कुत्तों को मारकर खाने के लिये भी विवश हो गये । ऐसे भयङ्कर काल का प्रभाव राजस्थान पर अधिक पड़ना स्वाभाविक था । परन्तु हमारा गांव तथा आस-पास के कुछ गांव इसके अपवाद थे । क्योंकि इस क्षेत्र में जल की विशेष न्यूनता नहीं है, फिर पूर्ववर्ष अच्छी वर्षा होने से अन्न भी अच्छा उपजा था ।

अकाल के समय जैसलमेर, जोधपुर, बीकानेर आदि के लोग अपने पारिवारिक जनों एवं पशुओं को लेकर प्रायः कोटा, बूंदी वा मालवा की ओर जाते हैं । उस समय मांगलियावास से नसीराबाद जाने वाली सड़क नहीं बनी थी । इस कारण अकाल पीड़ित जनों के कोटा बूंदी वा मालवा की ओर जाने का मार्ग हमारे ग्राम से होकर ही जाता था ।

अकाल-पीड़ित एक परिवार का आगमन—इसी अकाल से पीड़ित बीकानेर राज्य के 'लालगढ़'[1] गांव से चला हुआ एक ब्राह्मण परिवार, जिसमें पति पत्नी और एक कन्या थी, सायंकाल के समय हमारे गांव पहुंचा । उसने रात बिताने के लिये किसी से पूछा कि यहां कोई ब्राह्मणों का घर है ? जिस व्यक्ति से पूछा उसने हमारे

---

१. लालगढ़ 'नागौर' से १४ कोस पर है । अजमेर वालों को नागौर से ही लालगढ़ जाना पड़ता है । 'लालगढ़' के सम्बन्ध में पिताजी ने स्वनिर्मित 'बीकानेर राज्य का इतिहास' में इस प्रकार लिखा है—'इसको पहले काण्पाना कहते थे । राज्य की दक्षिणी सीमा पर है । यहां वैश्यों की अच्छी बस्ती है और पुलिस और जकात के थाने हैं । पानी मीठा और चूने की खान है ।' 'काण्पाना' का क्या 'काण्वायन' के साथ संबन्ध हो सकता है ?

घर की ओर संकेत करके कहा 'यह घर ब्राह्मणों का है' (पश्चिम दिशा से ग्राम में प्रवेश करने पर हमारा घर ही पहले पड़ता है[1])। अभ्यागत परिवार हमारे द्वार पर पहुंचा और उसने रात बिताने की अनुज्ञा चाही। दादाजी ने उन्हें ठहराया और उनके भोजन तथा शयनादि की व्यवस्था की। प्रातः उठकर वह परिवार आगे प्रस्थान करने लगा, तो दादाजी ने सोचा कि यह अपनी जाति का है, कहां जगह-जगह ठोकरें खायेगा, कष्ट उठायेगा। इससे अच्छा है कि इसे अपने ग्राम में ही ठहरा लिया जाये। प्रभु की कृपा से घर में पर्याप्त अनाज है। यह विचार कर आगन्तुक परिवार से अनुरोध किया कि जब तक आपके देश में वर्षा न होवे, आप यहीं आराम से रहें, कहीं जाने की आवश्यकता नहीं। यदि इससे अपने किसी सजातीय भाई का कष्ट दूर हो सकता है, तो यह हमारा सौभाग्य होगा। इस प्रकार उस आगन्तुक परिवार को अपने ग्राम में ही रोक लिया। एक अलग मकान में, जो एक खाती (बढ़ई) का था, उनके रहने की व्यवस्था कर दी।

पिताजी का विवाह—कुछ समय पश्चात् अपने देश में अच्छी वर्षा होने के समाचार सुनकर आगन्तुक परिवार ने अपने घर वापस जाने का विचार किया। उन्होंने हमारे घर की स्थिति एवं बर्ताव देखकर और विशेषकर भयङ्कर अकाल के समय भी घर में अन्न की विपुलता देखकर अपनी कन्या का विवाह पिताजी के साथ करने का विचार किया(पैर टेढ़े होने के कारण उस समय तक पिताजी का विवाह नहीं हुआ था)। उन्होंने अत्यन्त संकोच के साथ जिस व्यक्ति के घर में उन्हें टिकाया गया था, उसके द्वारा दादाजी से कहलवाया। दादाजी ने उपकृत व्यक्ति से कुछ भी स्वीकार करना भारतीय मर्यादा के विपरीत होने के कारण इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया, परन्तु आगन्तुक महानुभाव भी इस उपकार से किसी प्रकार उऋण होना चाहते थे, अतः उन्होंने परिवार और गांव के मान्य व्यक्तियों से इस सम्बन्ध को स्वीकार कराने का अनुरोध किया। इस प्रकार गांव के वृद्धजनों की प्रतिष्ठा रखने के विचार से दादाजी ने इस सम्बन्ध को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार मेरे नानाजी जिनका नाम नन्दरामजी जोशी[2] था, ने अपने देश में जाने से पूर्व ही अपनी

---

१. हमारे घर की इस विशिष्ट स्थिति के कारण प्रायः दादाजी को अभ्यागत अतिथियों की सेवा-शुश्रूषा करने का अनायास लाभ तो प्राप्त होता ही था, प्रस्तुत विशेष संयोग भी हमारे परिवार को प्राप्त हुआ। ऐसा ही एक संयोग सन् १९३५ में भी हमें प्राप्त हुआ था। उसका वर्णन आगे यथास्थान किया जायेगा।

२. जोशियों में अनेक खांपें हैं। नानाजी 'तांवणिया' जोशी थे। पिताजी के मामा रामचन्द्रजी की धर्मपत्नी सत्यभामाजी के पीहर के भी 'तांवणिया' जोशी थे।

कन्या का पिताजी के साथ विवाह कर दिया। इस प्रकार पिताजी का विवाह सं० १९५६ के उत्तरार्ध (सन् १८९९ के अन्त में) हुआ था। जिस खाती परिवार के घर में नानाजी रहे थे, उसके प्रमुख व्यक्ति को, राजस्थानी रीति के अनुसार अपनी पुत्री का स्थानापन्न पिता बनाकर प्रसन्नचित्त अपने घर लौट गये। उस खाती परिवार ने भी मेरी माता को अपनी पुत्री और पिताजी को अपना दामाद मानने में गर्व अनुभव किया और आजन्म होली दीवाली पर पिताजी को, देश की परिपाटी के अनुसार रुपया नारियल एवं माताजी को यथाशक्ति वस्त्रादि देता रहा [यह व्यवहार मैंने स्वयं देखा है]।

विवाह के समय पिताजी की आयु सर्विस बुक के अनुसार १८ वर्ष और उनके कहे अनुसार २० वर्ष की थी और मेरी माताजी, जिनका नाम **जमनाबाई** (यमुनाबाई) था, की आयु लगभग १३ वर्ष की थी।

मेरी माताजी को पढ़ाना—जिस समय पिताजी का विवाह हुआ था, उस समय लड़कियों को पढ़ाने की देश में परिपाटी नहीं थी, फिर उस राजस्थान जैसे शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़े प्रान्त में इसकी कल्पना तक नहीं हो सकती थी। इस कारण विवाह के समय मेरी माताजी पढ़ी-लिखी नहीं थीं। परन्तु ऋषि दयानन्द के अनुयायी होने से पिताजी गृहस्थ जीवन के प्रधान साथी का पढ़ा लिखा होना आवश्यक मानते थे। अतः उन्होंने विवाह के पश्चात् मेरी माताजी को पढ़ाकर एक कुशल जीवन-संगिनी बना लिया था। माताजी को किस काल में पढ़ाने का उपक्रम किया, इसका तो ज्ञान नहीं, परन्तु उनकी ज्ञान वृद्धि के लिये प्रयाग से प्रकाशित होने वाली **स्त्री-धर्म-शिक्षा** तथा **सरस्वती** आदि मासिक पत्र भी मगाते थे। इसका सन् १९१० की डायरी में संकेत है। (इन पत्रिकाओं की कई वर्षों की फाइलें पिताजी के संग्रह में मुझे प्राप्त हुई थीं)। पिताजी ने माताजी को इतना योग्य बना दिया था कि एक बार महेश्वर में कन्या-पाठशाला की प्रधानाध्यापिका के अवकाश पर चले जाने पर उन्होंने कुछ समय के लिये अध्यापन कार्य भी किया था। इसका वर्णन आगे यथास्थान किया जायेगा।

दुग्ध-चूर्ण संयन्त्र लगाने का प्रयास—विवाह के पीछे पिताजी कुछ वर्ष खाली रहे। उन दिनों हमारे दादाजी के पास लगभग ४० गायें थी। जहां आजकल भाई

इस नाते पिताजी की मामी सत्यभामाजी मेरी माताजी को बहन मानती थीं। मैं इन्हें दादीजी कहता था। विवाह के पश्चात् मैं सपरिवार इनके पास ब्यावर में कई बार गया हूं। ये हमसे बहुत प्रेम करती थीं। विशेष प्रथम परिशिष्ट में श्री काका आनन्दीलालजी के पत्र संख्या १ में देखें।

किशनलालजी और भाई मांगीलालजी खाती का मकान है, उस स्थान में गायों का बाड़ा था। उन दिनों गांव में पशु-धन (गायें भैंसें) बहुत था। इस कारण पिताजी के मन में दूध का पाऊडर बनाने का एक छोटा संयन्त्र लगाने का विचार उत्पन्न हुआ। उसके लाइसेंस के लिये अजमेर के कलैक्टर को प्रार्थना पत्र भेजा, परन्तु शासन ने उसे स्वीकार नहीं किया (यह घटना पिताजी ने स्वयं सुनाई थी)। वह समय ही ऐसा था, जब ब्रिटिश शासन भारतीय उद्योग-धन्धों को चौपट कर रहा था, ऐसी अवस्था में एक नये कार्य के लिये सरकार स्वीकृति कैसे दे सकती थी?

किशनगढ़ राज्य में अध्यापकी—कुछ काल खाली रहने के पश्चात् पिताजी ने किशनगढ़ राज्य, जो अजमेर से सटा हुआ है, में अध्यापकी की। इस राज्य में कब से कब तक कार्य किया यह ज्ञात नहीं, परन्तु आषाढ़ सुदी १२ सं० १९६१ (सन् १९०४) को १ मास की छुट्टी के प्रार्थना पत्र की प्रतिलिपि पिताजी के संग्रह में मिली है[1]। इससे इतना निश्चित होता है कि पिताजी किशनगढ़ राज्य में सं० १९६० के आस-पास नौकरी पर लगे थे। इसके पश्चात् २० जून १९०६ (सं० १९६३) को बीकानेर राज्य में नौकरी का स्वीकृति-पत्र[2] (जो उपलब्ध है) मिला। इससे विदित होता है कि पिताजी ने किशनगढ़ राज्य में लगभग दो वर्ष अध्यापन कार्य किया था। ऐसा ही संकेत उनकी बचपन में सुनी बात-चीत से ज्ञात हुआ था।

सरवाड़ की दो विशेष घटनाएं—किशनगढ़ राज्य में अध्यापन कार्य करते हुए पिताजी कहां-कहां रहे, यह ज्ञात नहीं हैं। सरवाड़ जो नसीराबाद के पास है और जो किशनगढ़ राज्य में था, की एक विशेष घटना पिताजी ने बचपन में सुनाई थी, वह इस प्रकार है—

१. पाठशाला आबादी से बाहर थी। सरवाड़ में भयङ्कर विषैले सांपों का बाहुल्य था। रात को सांप प्रायः घूमते रहते थे। कमरे में भी रात में अंधेरे में खाट से नीचे पैर रखना मौत को बुलाना था। एक दिन एक मुसलमान छात्र को पाठशाला के प्राङ्गण में सांप ने काट लिया। पिताजी ने तत्काल दंश वाले स्थान से रक्त निकालकर तांबे के टके (दो पैसे का सिक्का) को गरम करके उससे दंश वाले स्थान को दाग दिया। इससे बालक तो बच गया, परन्तु उसके पिता और अन्य मुसलमान बहुत नाराज हो गये। उनका कहना था कि हमारे मत में शरीर को

---

१. द्र०—प्रथम परिशिष्ट, संख्या ४। इसी पत्र पर हुक्म नं० २ लिखा है। इसके अन्त में 'सं० १९६२ श्रावण वदी १' लिखा है। हमारे विचार में हुक्म नं० २ में सं० १९६२ अशुद्ध लिखा गया है। क्योंकि पिताजी के छुट्टी के प्रार्थना पत्र में सं० १९६१ लिखा हुआ है। २. द्र०—प्रथम परिशिष्ट, संख्या ५ पर।

दागना निषिद्ध है। बात बढ़ने पर गांव के वृद्धजनों ने बच्चे के पिता से कहा कि यदि मास्टर साहब उपचार न करते तो तुम्हारा बच्चा मर जाता। तुम्हें तो इनका अहसानमन्द होना चाहिये, उसके बदले तुम मास्टर साहब को ही बुरा भला कह रहे हो। अन्त में बच्चे के पिता की समझ में आ गया और वह काण्ड समाप्त हुआ।

२. उक्त घटना के पश्चात् पिताजी ने सांपों को मारने का अभियान छेड़ा। लाठी से मारने पर सांप बच जाते थे, क्योंकि लाठी का अगला भाग ही भूमि पर लगता था। अतः थोड़ा सा भी अवकाश होने पर सांप बचकर निकल जाते थे। अत: पिताजी ने नसीराबाद जाकर बेंत की लम्बी छड़ी खरीदी। बेंत के लचीला होने से मुटठी के स्थान को छोड़कर पूरी बेंत की मार भूमि पर पड़ती थी। इससे सांप के बचकर निकलने की आशंका दूर हो गई। पिताजी ने अपने सरवाड़ निवास काल में सैकड़ों सर्पों का सफाया किया।

मुझे भी सांपों से भय नहीं लगता है। रावी पार लाहौर में जहां विरजानन्द आश्रम था, बहुत सांप निकलते थे। मैंने वहां बहुत से सांपों को मारा। तीन चार को तो जूते की एड़ी से ही कुचल दिया। मेरे सांप से भयभीत न होने के पीछे क्या पिताजी के उक्त कार्य का संस्कार है ?

बीकानेर राज्य में नौकरी—किशनगढ़ राज्य से नौकरी छोड़ने के पीछे पिताजी ने बीकानेर राज्य में नौकरी का प्रार्थना पत्र भेजा। बीकानेर के तहसीली पाठशालाओं की इंस्पक्टरी विभाग से २० जून १९०६ (सं० १९६३) का स्वीकृति पत्र प्राप्त हुआ[1]। जिसमें १५ रुपये माहवारी पर ६ मास के लिये इंस्पेक्टरी में क्लर्की पर नियुक्ति की स्वीकृति थी और ६ मास पीछे पक्की जगह पर नियुक्त करने का आश्वासन दिया गया था। इस नियुक्ति पत्र की पीठ पर पिताजी का अपने हाथ का लिखा लेख है—'ता० ७-७-०६ को चार्ज लिया। ता० १२-१२-०७ को पिताजी की बीमारी का तार आने से घर आया—वापस नहीं गया।' इस प्रकार पिताजी ने बीकानेर राज्य में लगभग १ वर्ष ५ महीने ४ दिन नौकरी की थी।

बीकानेर राज्य के भूगोल की रचना—उस समय बीकानेर राज्य का कोई भूगोल प्रकाशित नहीं हुआ था। अत: पिताजी ने बीकानेर राज्य का प्रथम भूगोल लिखा। इसकी पाण्डुलिपि पिताजी के पत्रों में सुरक्षित मिली है। बीकानेर राज्य में अल्प समय रहने के कारण यह प्रकाशित नहीं हुआ।

बीकानेर से कार्य छोड़ देने के पश्चात् और इन्दौर राज्य की सेवा में जाने से

---

१. द्र०—प्रथम परिशिष्ट, संख्या ५ पर।

पूर्व पिताजी ने कहीं कार्य किया अथवा नहीं, यह ज्ञात नहीं। पिताजी के पत्र संग्रह में किसी किशनगढ़ निवासी मांगीलाल शर्मा का ३०-३-१९०८ ई० का एक पोस्ट कार्ड मिला है।[1] जिसमें लिखा है—'यदि आप किशनगढ़ की रियासत में नौकरी करना चाहें तो जल्द उत्तर दें। मेरी राय है कि तुमको इसके उत्तर में हां लिखना चाहिये।'' इस पत्र का उत्तर पिताजी ने क्या दिया यह ज्ञात नहीं, परन्तु २७-४-०८ को सनावद की शाला में 'एवजी' पर चले जाने से इतना निश्चित है कि उन्होंने किशनगढ़ राज्य में पुनः नौकरी नहीं की।

इन्दौर राज्य में स्थायी नौकरी

हमने पहले लिखा है कि श्री सूरजमलजी पटेल के सान्निध्य से हमारे गांव के जो तीन व्यक्ति ऋषि दयानन्द की शिक्षा की ओर आकृष्ट हुए थे। उनमें एक 'श्री शिवचन्दजी ईनाणी' भी थे। वे मैट्रिक परीक्षा पास करके इन्दौर राज्य के शिक्षा-विभाग में चले गये थे। प्रतीत होता है पिताजी ने बेरोजगारी से तंग आकर श्री शिवचन्दजी इनाणी को इन्दौर राज्य में नौकरी के लिये लिखा होगा। शिवचन्दजी इनाणी इस समय इन्दौर राज्य के नीमाड़ जिले (विन्ध्याचल और सतपुड़ा पर्वत के मध्य का भाग) के 'सनावद' कस्बे में हेडमास्टर थे। उनके स्कूल में कोई अध्यापक तीन माह की छुट्टी पर चला गया। उसके स्थान में एवजी (स्थानापन्न) के रूप में इनाणीजी ने पिताजी को शिक्षा-विभाग, इन्दौर के माध्यम से बुला लिया। इस प्रकार पिताजी का इन्दौर राज्य के शिक्षा-विभाग में प्रवेश हुआ और अन्त तक इन्दौर राज्य के शिक्षा-विभाग में ही कार्य करते रहे।

पिताजी की 'सर्विस बुक'[2] की जो प्रति पिताजी के कागजों में मिली है, वह आरम्भिक काल से लेकर 'पीपलिया' (जीरापुर) में शाला का चार्ज लेने की तारीख तक की है। उसके आधार पर विभिन्न स्थानों में रहने, बदली होने पर चार्ज देने की तारीख, नये स्थान पर चार्ज लेने की तारीख आदि का ब्यौरा नीचे निर्देश कर रहे हैं। हमें इसी सर्विस बुक से पिताजी कब से कब तक कहां रहे, इसकी जानकारी प्राप्त हुई है। आगे हम सर्विस बुक के अनुसार वर्णन करेंगे।

स्थान का नाम	चार्ज लिया	चार्ज दिया	स्कूल वा ओहदा
सनावद	२७-४-०८	२३-६-०८	ए. व्ही. हिं. फ़स्ट अ०
वरूड़	७-७-०८	१९-७-०९	लो. प्रा. हेडमास्टर

१. पूरा पत्र प्रथम परिशिष्ट संख्या ६ पर देखें।

२. सर्विस बुक की संक्षिप्त प्रतिलिपि द्वितीय परिशिष्ट में संख्या १ पर देखें।

स्थान का नाम	चार्ज लिया	चार्ज दिया	स्कूल वा ओहदा
महम्मदपुर	२३-७-०६	१४-४-१२	मिडिल. हेडमास्टर
महेश्वर	१५-४-१२	८-६-१३	अ. प्रा. हेडमास्टर
	६-६-१३	२४-६-१५	ए. व्ही. हिं. फस्ट अ.
मण्डलेश्वर	२५-६-१५	-६-१७	व. फा. हेडमास्टर
महेश्वर	-६-१७	२६-७-२६	ए. व्ही. हिं. फस्ट अ.
खरगोण	७-८-२६	३०-६-२७	ए. व्ही. हिं. फस्ट अ०
,,	१-७-२७	७-११-२८	हाई. हिं. फ. अ.
पीपलिया	२२-११-२८		लो. प्रा. हेडमास्टर

पीपलिया (जीरापुर) से 'नन्दबाई' कब बदली हुई, इसका उल्लेख प्राप्त सर्विस बुक की नकल में नहीं है। पीपलिया से नन्दबाई की बदली का सरकारी आदेश पत्र पिताजी के संग्रह में मिला है, उसके नीचे पिताजी के हाथ से लिखा लेख है[1]—

"चार्ज दिया गया पीपलिया स्कूल का २१-५-३०, चार्ज लिया नन्दबाई स्कूल का ४-६-३०।" नन्दबाई में कार्य करते हुए ही पिताजी का २५-१२-३५ को स्वर्गवास हुआ था।

सनावद (२७-४-०८ से २३-६-०८)

हम पूर्व लिख चुके हैं कि श्री शिवचन्दजी इनाणी, जो हमारे गांव के ही थे, ने पिताजी को अपने पास सनावद में दो मास की एवजी के लिये बुला लिया था।[2] इनाणीजी उस समय ए व्ही. स्कूल (एङ्ग्लो वर्नाक्यूलर स्कूल) के हेड-मास्टर थे। सनावद में हिन्दी फर्स्ट असिस्टेण्ट मास्टर के पद पर २७-४-०८ से २३-६-०८ तक २५ रुपये मासिक पर पिताजी ने स्थानापन्नरूप से कार्य किया था।

तत्पश्चात् पिताजी ७-७-०८ से नियमित अध्यापक के रूप में इन्दौर राज्य में कार्य करने लगे।

बरूड़ (७-७-०८ से १६-७-०६)

सनावद की एवजी की अवधि पूरी होने पर पिताजी 'बरूड़' ग्राम के लोवर प्राइमरी स्कूल में ७ जुलाई १६०८ से १० रुपये मासिक पर हेडमास्टर के पद पर नियुक्त हुए[3]। बरूड़ में १६-७-०६ तक अध्यापन कार्य किया।

---

१. आदेशपत्र द्वितीय परिशिष्ट में संख्या २ पर देखें।

२. इस विषय का सरकारी आदेश पत्र द्वितीय परिशिष्ट में संख्या ३ पर देखें।

३. आदेश-पत्र द्वितीय परिशिष्ट संख्या ४ पर देखें।

माताजी का पिताजी के साथ रहना—पनावद में तो २ मास की एवजी (स्थानापन्न मास्टर के रूप) में कार्य किया था। अतः बरूड़ में स्थायी नौकरी मिलने के पश्चात् पिताजी माताजी को किसी समय अपने साथ लाये होंगे। क्योंकि महम्मदपुर में बदली होने के सवा ९ माह पश्चात् मेरा जन्म हुआ था।

महम्मदपुर (२३-७-०९ से १४-४-१२)

पिताजी की बरूड़ से चार रुपये मासिक की वृद्धि के साथ 'महम्मदपुर' के मिडिल स्कूल के हेडमास्टर के पद पर बदली हुई।[1] २३-७-०९ को महम्मदपुर की शाला का चार्ज लिया। पुनः दो रुपये की ता० १५-६-१० को वृद्धि हुई। तत्पश्चात् ४ रुपये की वृद्धि ता० १०-५-११ को हुई।

मेरा जन्म—महम्मदपुर की प्रधान घटना है, मेरा जन्म होना। मेरा जन्म महम्मदपुर आने के पश्चात् सवा ९ महिने के अनन्तर सं० १९६६, भाद्र शुक्ला ८ (=२२ सितम्वर १९०९) को हुआ।

जन्म पत्रियां—उस समय की मेरी दो जन्म पत्रियां मुझे उपलब्ध हुईं थीं। एक, जो गांव के किसी ज्योतिषी ने बनाई थी, उसमें भाद्रशुक्ला ७मी लिखा है। इस पर पिताजी ने अपने हाथ से लाल स्याही से '२२ सितम्बर' लिखा हुआ है। पुराने पञ्चाङ्ग को देखने से २२ सितम्बर को भाद्रशुक्ला ८ ही मिलती है। इतना ही नहीं, पिताजी की सन् १९१४ की डायरी में २८ अगस्त (=भाद्रशुक्ला ८मी) के दिन लिखा है—**'युधिष्ठिर को छठवां वर्ष प्रारम्भ'**। इससे भी जन्म तिथि भाद्रशुक्ला अष्टमी ही निश्चित होती है। दूसरी जन्म पत्री महम्मदपुर के ठाकुर दिलेसिंहजी, जो ज्योतिष में अच्छा ज्ञान रखते थे, ने बनाई थी। यह पत्री कागज के अत्यन्त जीर्ण होने से लगभग १५ वर्ष पूर्व नष्ट हो गई। इसमें जन्म तिथि क्या लिखी थी, यह सम्प्रति स्मरण नहीं। हां, उसमें मेरे जीवन के फलादेश के रूप में दो शब्द लिखे थे—**आमवी और राजयोग**। ये दोनों ही बातें मेरे जीवन में यथावत् सत्य सिद्ध हुईं। आमवी अर्थात् उदर रोगी तो मैं बचपन से ही रहा हूं। पिताजी की सन् १९१० से १९१५ तक की ६ वर्ष की जो डायरीयां मुझे मिली हैं, उनमें दस्त लगने, बुखार आने आदि का पदे-पदे उल्लेख मिलता है। राजयोग की दृष्टि से वेद और संस्कृत व्याकरण सम्बन्धी शोध कार्य के लिये सन् १९६३ में **'राजस्थान शिक्षा विभाग, जयपुर'** ने ३००० सहस्र के उस समय के सर्वोच्च सम्मान से सम्मानित किया। संस्कृत भाषा की उन्नति, प्रसार एवं साहित्यिक सेवा के लिये १५ अगस्त १९७६ को राष्ट्रपति-सम्मान की घोषणा हुई और २ अप्रेल १९७७ को राष्ट्रपति ने सम्मान-पत्रादि प्रदान किये। सन् १९७९ में उत्तरप्रदेश सरकार ने संस्कृत व्याकरण

---

१. यह आदेश पत्र द्वितीय परिशिष्ट में संख्या ५ पर देखें।

संबन्धी विशिष्ट कार्य के लिये उस समय के १५ सहस्र के सर्वोच्च पुरस्कार से सम्मानित किया (शेष पुरस्कारों का वर्णन आगे किया जायेगा)।

पैरों का विकृत होना—मेरे दोनों पांव पिताजी के समान ही टेढ़े थे। इसका कारण पिताजी ने बताया था कि 'मारवाड़ियों में रात्रि में सोते समय पैर दबवाने की आदत होती है। मैं भी तुम्हारी माता से प्रतिदिन पैर दबवाता था। गर्भावस्था में अनेक बातों का सूक्ष्म प्रभाव बालक के मन और शरीर पर पड़ता है। इसी कारण तुम्हारे पैर मेरे समान टेढ़े हुए। तुम्हारे जन्म के पश्चात् मैंने तुम्हारी माता से पैर दबवाना बन्द कर दिया। इससे तुम्हारे बाद जो भाई बहन हुए उनके पैर सीधे थे, कोई विकार नहीं था।'

दादीजी का महम्मदपुर आना—९ जनवरी १९१० की डायरी में पिताजी ने लिखा है—'माता ने सूंठ की मोई खानी शुरु की।' पुन: १५-१-१९१० की डायरी में लिखा है—'माता के मोई खाने के दिन आज पूरे हुए।' यत: सन् १९०९ की डायरी उपलब्ध नहीं है। अत: दादीजी के महम्मदपुर आने की निश्चित तिथि ज्ञात नहीं हो सकी। सम्भव है २२ सितम्बर १९०९ को मेरे जन्म से कुछ दिन पूर्व दादीजी महम्मदपुर आई होंगी।

२३२ रु० की बैलों की जोड़ी—पिताजी ४ जनवरी १९१० को 'गोगांवा' बाजार को गये थे। वहां से लौटने के विषय में लिखा है—'गणपतसिंह की गाड़ी से लौटा। इसमें २३२ रु० की बैल जोड़ी जो थोड़े दिन पूर्व मोल ली थी जुती हुई थी। २५ मिनट में [गोगांवा से महम्मदपुर] आ गई, १० मिनट प्रतिमील।

नीमाड़ का 'कर' का त्यौहार—इसके विषय में पिताजी ने १५-१-१९१० की डायरी में लिखा है—'कर का त्यौहार मकर संक्रान्ति का दूसरा दिन है। सक्रान्ति के उत्सव में आज परस्पर मिलन भेंट करने की इस प्रांत की रीति है।'

दादीजी को नर्मदा स्नान कराने के लिये महेश्वर की यात्रा—पिताजी ने ८-१६ मार्च १९१० की डायरी में इस यात्रा का वर्णन इस प्रकार किया है—

"आज (८-३-१९१०) मैं और रा० छोटेरामजी असिस्टेंट मास्टर नं० १ तथा बिहारीलालजी अ० मा० शिवरात्राजी यात्रा के निमित्त महेश्वर को २ बजे प्रयाण किया। श्रीमती माताजी भी साथ थीं। गाड़ी की सहायता ओंकार पटेल क्षत्री ने स्वयं साथ चलके की। रात को ९¾ बजे बड़ी कसरावद में पहुंचकर

वहां के हेडमास्टर सा० बीदर सूखड़जी के घर ठहरे और भोजन होने के पश्चात् बातें करते रहे ३ बजे सो गये। महम्मदपुर से कसरावद १० कोस है।

आज प्रातः सब विस्तर बर्तनादि यहीं छोड़कर धोनियों और लोटे लेकर महेश्वर को चले। यहां से १।। कोस है। नाला टोली जो नर्मदा के दक्षिण तटस्थ है वहां ठहरे और स्नानादि नित्य कृत्य कर नाव में बैठ कर नदी के मध्यस्थ द्वीप पर बने हुए बाणेश्वर के दर्शन किये। यह मन्दिर प्राचीन २०० वर्ष का होगा। यहां से फिर नाव द्वारा उत्तरीय तटस्थ घाट पर पहुंचे। इधर १५-१६ घाट बने हुए हैं, जिनमें प्रातः स्मरणीय श्रीमती माता अहिल्या महाराणी का घाट विस्तीर्ण सुदृढ़ केवल बड़े-बड़े पाषाणों को चीर-चीर कर बनाया हुआ उनकी धार्मिकत्व दायित्व और भक्तित्व को चिर बनाये हुए हैं, बड़ा स्वच्छ है। यहां पर किनारे के चबूतरे पर श्रीमन्त वीरशिरोमणि, कीर्ति उज्वलित बाहुबल से गौरवान्वित, होलकर वंश उन्नत-कारी, इन्दौर राज्य स्थापक श्री मल्हाररावजी महाराज की रौप्य प्रतिमा विराज-मान थी। बड़े गद्‌गद् भाव से उनका और उनके कर्तव्यों का स्मरण करते हुए प्रणाम किया। ऊपर श्रीमन्त स्वाभिमानी रणचतुर महाराज यशवन्तरावजी की और २, ४ प्रसिद्ध राजाओं की रौप्य प्रतिमायें थीं। ये प्रतिमायें पोली हैं जो शिव के लिङ्ग पर इस अवसर पर पहना दी जाती हैं। गले में सर्प की लपेट होकर पीछे से फण का छत्र किया हुआ, सिर पर सादी बंधी पगड़ी और उत्तम वस्त्रादि से सुसज्जित प्राचीन स्मरण कारक विराजमान थीं। घाट के ऊपर राजद्वार है, जो सीढ़ियों द्वारा प्राप्त होता है। द्वार पर अनुपम कारीगरी खुदाई यथास्थान मूर्तियें उभरी हुई दृढ़ता के साथ विद्यमान हैं। भीतर पहुंचते ही दक्षिण हाथ ओर मातु अहिल्या के पुत्र मालीराव का और वाम ओर माता का विशाल और अनेक रचना युक्त मन्दिर है। इसमें सन्मुख माता की प्रतिमा और बीच में इनके पति अर्थात् महाराज मल्हाररावजी के पुत्र श्री खंडेरावजी रौप्य प्रतिमा शिव के ऊपर सुशोभित हैं। इस स्थान से कई प्रकार के पत्थर स्वच्छ और चिकने रूप को लिये हुए खोदे और पच्ची किये जाने से विशेष मनोहरता [को] प्राप्त होकर तथा यथास्थान सुवर्णादि का कार्य शोभा में सहायक है। मन्दिर में जाते ही माता के सुकर्तव्यों का स्मरण आता है, जो कि केवल स्त्री-समाज और महारानी-समाज में ही नहीं, वरन् राजा-महाराजाओं में विशेष कर सुनीति धर्म्म और प्रजापालन के अर्थ अतीव गौरवकारी है। अर्वाचीन स्त्री और राजा समाज की वास्तविक शोभा को अस्तित्व [में] रखने को ही मानो महारानी माता ने अवतार लिया है। दर्शनानन्तर ऊपर जाकर दूर-दूर तक दृश्य दृष्टि अन्तर्गत लिया। विशेषकर नर्मदा की अतुल शोभा और

उसके भीतर बहाव की सीध में बीचों बीच नहीं वरन् कुछ हटकर उज्ज्वल श्वेत धार (१ फुट चौड़ी) ने चित्त को आश्चर्य-मग्न किया है। वहां से राजराजेश्वर महादेव के दर्शन किये। कहा जाता है कि यह महाराज मल्हाररावजी के समय से स्थापित है, फिर चक्कर देकर उस स्थान (बाड़े) में आय जहां आदि के मन्दिर मकान बने हुए हैं। अत्यन्त सादे, दीवार किवाड़ द्वार पाट आदि सब सादे,साधारण गृहस्थों के घरों समान,पर दृढ़तापूर्ण बने हैं। यह पुरानी विशुद्ध छटा नवीन रोशनी वालों के मन में न भाई होगी, तभी तो कितने ही महल मन्दिर गिरा दिये गये और स्थान-स्थान पर चटकीले अदृढ़ बंगलों के अनुसार खड़े कर दिये गये। राजभक्त प्रजा अथवा कर्मचारी को यदि व्यर्थ गिराये गये हों तो क्या संताप नहीं पहुंचेगा ? क्योंकि जिन घरों में राजसिंह शिरोमणि महाराज मल्हाररावजी देव सरीखे सुशोभित थे अथवा माता श्रीमती अहिल्या गृह कार्य में प्रवृत्त थी, एवं राजमंत्र, युद्ध-मंत्र, प्रजारक्षण आदि विचारे जाते थे, और भी अनेक दीन-दरिद्रियों को अन्न का आश्रय मिलता था,अनाथ से लेकर धनाढ्य और ठाकुरों तक समदृष्टि से देखे जाकर समान न्याय पाते थे।

इनमें से मुख्य गादीवाला गृह भी सादा ही है। बड़ी विस्तीर्ण बिछी हुई गादी के दर्शन किये। परमात्मा इस गादी को अमर रक्खे और गादी आधीनस्थ राज्य को वृद्धि देते हुए श्रीसम्पन्न रक्खे। इसके दक्षिण पार्श्व में छोटा सा शिव का मन्दिर, जिसमें स्वयं मल्हाररावजी महाराज की प्रतिमा और आस-पास सोने चांदी की पुजा सामग्री सोने का झूला आदि थे, कोई रत्न जटित भी थे। इन दोनों का महत्त्व अधिक है। कोट ऊंचे पर दृढ़ है। कुछ बस्ती भीतर और बहुतसी बाहर है जो सुहावनी जान पड़ती है। उसी प्रकार नाव में और गाड़ी में बैठकर कसरावद आ रहे। नर्मदा के थोड़े गहरे पानी में एक कबर भी है। और महल के एक भाग में ८८ ब्राह्मणों द्वारा १२५००० पार्थिवेश्वर (=मिट्टी के शिवलिङ्ग) प्रतिदिन बनाये जाते थे।"

पैरों का आप्रेशन कराने के लिये इन्दौर ले जाना—मेरे पैरों को सीधा करने के लिये पिताजी पैरों का आप्रेशन कराने मुझे इन्दौर ले गये। इसका वर्णन पिताजी ने २९ मार्च १९१० की डायरी में इस प्रकार किया है—

"आज प्रातः ५॥ बजे की गाड़ी से सनावद से इन्दौर छावनी के अस्पताल में सीधे पहुंचे। नान्हा (बच्चे) को डा० रावर्ट साहब को दिखाया। साहब ने कहा कि इस अवस्था में पैर सीधे हो जायेंगे। रा० रा० रामचरणसिंहजी कम्पाउन्डर

साहब से मिले। धार वालों के बनाये हुए घरों में रहने का स्थान मिला। रात दस बजे निपुण डाक्टर सरयू प्रसादजी साहब से बच्चे सम्बन्धी उचित बात की। उन्होंने कहा कि सीधा होना सहज है सोचकर काम किया जायेगा। संभव न होगा तो उत्तर दे दिया जायेगा, है जैसा ही ठीक है। बच्चे को पट्टी चढ़ाने बुलाया। मैंने इन्कार किया और डाक्टर साहब से कहा कि मेरे चित्त का समाधान हुए बिना मैं कैसे काम कराऊं? और विशेष बातें हुईं। मुख्य कि चीर से पूरा-पूरा तो नहीं सुधरेगा। पर बहुत लाभ होगा। और दूसरे उपाय सोचूंगा।"

"आज (३१-३-१०) डाक्टर साहब गोविन्दरामजी व उनके छोटे भाई केशव रावजी, जो विलायत से पास होकर आयें हैं, उनसे बच्चे के पैरों के लिये राय पूछी। तो उन्होंने कहा बच्चे को दिखाओ। उन्होंने स्वतन्त्र अस्पताल नगर में (सर्राफा में) खोल रखा है। सायंकाल को सरयू प्रसादजी साहब ने कहा कल साहब बहादुर को बच्चे को दिखलाना।"

"आज (१-४-१०) डाक्टर केशवरामजी साहब ने बच्चे को देख के कहा कि पांव सीधे हो जावेंगे और किसी तरह का जीव का धोखा नहीं।

फिर साहब बहादुर रावर्ट ने देखा और कहा कि एक पांव का आपरेशन करेंगे। एक महीने की छुट्टी ले लो। सार्टिफिकेट १।४।१० का दिया।

आज १२ बजे बच्चे को ज्वर अत्यन्त चढ़ा। मार्ग की ठंडक के कारण, और इसी से मुझको भी रात को [ज्वर] हो गया था।"

"आज (२-४-१०) प्रातः को रा० रा० डा० सरयू प्रसादजी पधारे। बच्चे के ज्वर की औषधि दी। ज्वर कल १२ बजे से आज १२ बजे तक रहा।

[पत्र] नं० २५—असिस्टेन्ट मास्टर नं० २ बिहारीलालजी को पत्र लिखा कि "छुट्टी १ मास की मिलने को प्रार्थना दी है और प्रबन्ध ठीक रखें आदि।"

"रात को (४-४-१९१०) ४ बजे ज्वर स्वल्प हुआ। फिर तीसरे पहर चढ़ गया। आज ३ बजे बच्चे को बादले (=डिब्बे=निमोनिये) का रोग हो गया। सेठ चुन्नीलालजी की पुड़िया दी, चार दस्त हुए। कुछ दबाव खाया (=कम हुआ)। रा० रा० डाक्टर साहब ने अनीमा भेजकर दस्त कराया पर थोड़ा आके रहा परन्तु जुलाब के दस्त थोड़ी देर में आरम्भ हो गये।"

"आज (१२-४-१०) डाक्टर साहब ने कहा कि बच्चे का स्वास्थ्य आपरेशन अनुकूल होने के लिये दो माह की आवश्यकता है। फिर १ पांव का आपरेशन होकर आराम होने पर अवकाश देकर दूसरे का कराना चाहिए।"

"आज (१४-४-१६१०) खबर लगने पर यहां से (इन्दौर) १ कोस सूंकल्या गांव गया और देखा कि १७ वर्ष के लड़के के दो पांव और आठ वर्ष के लड़के का एक पांव सीधे किये हुए थे। विधि उन्होंने बताई और उसी के अनुसार अपने भी करने का निश्चय किया है ईश्वर [कृपा] करें।"

"आज (१५-४-१६१०) मांजी को प्लेग का इनाक्यूलेशन का (टीका) लगवाया ३ बजे, और सार्टिफिकेट मिला।"

"आज (१८-४-१६१०) साड़े ६ बजे की गाड़ी से माताजी बिरकच्यावास रवाना हुई और हम सब महम्मदपुर को साढ़े १२ बजे की गाड़ी से [रवाना] हुए।"

पैरों पर भेड़ी के दूध की मालिश—१० जून १६१० की डायरी में पिताजी ने लिखा है—'भेड़ी का दूध लगाया'। प्रतीत होता है इस तारीख से मेरे पैरों पर भेड़ी के दूध की मालिश करनी आरम्भ की होगी।

मुझे स्मरण है कि भेड़ी के दूध की मालिश के अतिरिक्त ग्वार को पका कर भी पैरों पर बांधा जाता था। पशु चुरानेवाले लोग प्रायः करके चुराये गये पशु के सींगों की आकृति बदलने के लिये ग्वार पका कर सींगों पर बांधते थे, उससे सींगों के नरम होने पर उनको इच्छानुसार दूसरी शकल में बदल देते थे, जिससे पहचानने में न आवे।

पैर सीधे करने के लिये यह प्रयत्न प्रायः माताजी के जीवनकाल तक चलता रहा। उससे बायें पैर में कुछ कम लाभ हुआ, किन्तु दाहिना पैर प्रायः सीधा हो गया।

दूसरे भाई का जन्म—महम्मदपुर के निवास काल में ही मेरे दूसरे भाई का बिरकच्यावास में सं० १९६७, आश्विन कृष्णा १० बुधवार (=२८ सितम्बर १६१०) को तीसरे पहर जन्म हुआ। इसकी सूचना इसी तिथि की डायरी में ता० १२-१०-१६१० के पत्र का संकेत करके लाल स्याही से लिखे विवरण से मिलती है। यह विवरण बिरकच्यावास से पत्र प्राप्त होने पर स्मरणार्थ उक्त तिथि पर पीछे से लिखा है। इस भाई का नाम 'होतेन्द्र' रखा गया था। इसके तथा इसके पश्चात् होने वाले भाई बहन के पैरों में कोई विकार नहीं था।

भाई का स्वर्गवास—होतेन्द्र का सं० १९६७ पौष शुक्ला १४ शुक्रवार=१३ जनवरी १९११ को बिरकच्यावास में ही निधन हो गया। इस विषय में पिताजी ने सं० १९६७ माघ कृष्ण ५ गुरुवार=१९ जनवरी १९११ की डायरी इस प्रकार लिखा है—

'आज घर से पं० रामचन्द्रजी का पत्र आया। गृहस्थ के तापों में जो प्रबल ताप होते हैं, उनमें से पुत्र शोक रूप ताप मुझे सहना पड़ा। हा! छोटे बच्चे होतेन्द्र! क्या ३ ४ दिन की खुजली पीड़ा से ही तुम चल बसे? मैंने तो मुंह तक भी नहीं देखा था; हे परमात्मा! संयोग वियोगादि आपकी सृष्टि में स्वाभाविक बात है, परन्तु हम अज्ञानी सुख दुःख मान लेते हैं। धैर्य दीजिये।'

वेतन-वृद्धि—बरूड़ से ४ रुपये की वृद्धि होकर १४ रु० मासिक पर पिताजी की महम्मदपुर बदली हुई थी। महम्मदपुर में कार्य करते हुए १५-६-१० को २ रु० और १०-५-११ को ४ रुपये की वृद्धि होकर २० रुपया मासिक वेतन हो गया था। महम्मदपुर में लगभग ३ वर्ष ७ मास (२३-७-०९ से १४-४-१२) कार्य किया।

महेश्वर में पहले मिडिल स्कूल चलता था। अध्यापकों की लापरवाही से ए. व्ही. स्कूल की क्लासें टूट गईं। केवल अपर प्राइमरी (=कक्षा ३)[1] तक पाठशाला रह गई। शिक्षा विभाग ने पिता जी के कार्य की शैली और परिश्रम से प्रसन्न होकर महेश्वर में पुनः मिडिल क्लासें प्रारम्भ करने के उद्देश्य से एक साथ दस रुपये मासिक की वृद्धि कर १४-४-१२ को महेश्वर के लिये बदली की।[2]

महेश्वर (१५-४-१२ से २४-९-१५)

पिता जी की महम्मदपुर से दस रुपये मासिक की वृद्धि के साथ महेश्वर के प्राइमरी स्कूल की हेडमास्टर के पद पर बदली हुई। उन्होंने १५-४-१२ को महेश्वर की शाला का चार्ज लिया।

महेश्वर पुण्य सलिला नर्मदा नदी के उत्तरी तट पर विद्यमान है। इसके दूसरी ओर माहेश्वरी नाम की एक छोटी नदी बहती है। यह विन्ध्याचल से निकल कर त्रिकोण बनाई हुई महेश्वर से एक मील पूर्व नर्मदा में मिलती है। यह प्रायः बरसात के पश्चात् सूख जाती है। महेश्वर भारत का एक प्रमुख तीर्थस्थान है। इसका प्राचीन नाम माहिषमती नगरी था। इसे त्रेता युग में चन्द्र वंश के महिष्मान् नाम के राजा ने बसाया था[3]। भारतीय इतिहास में प्रसिद्ध महाराज सहस्रबाहु अर्जुन की भी यह राजधानी रहा है। यहीं सहस्रबाहु अर्जुन का रावण के साथ प्रसिद्ध युद्ध हुआ था, जिसमें रावण पराजित हुआ था। यहीं शङ्कराचार्य का भट्ट कुमारिल के प्रमुख शिष्य मण्डन मिश्र के साथ लोक-विश्रुत प्रसिद्ध शास्त्रार्थ हुआ था। जिसकी

---

१. द्रष्टव्य—द्वितीय परिशिष्ट में संख्या ५ के पत्र पर तीसरी टिप्पणी।

२. इस विषय का सरकारी आदेश-पत्र द्वितीय परिशिष्ट में संख्या ५पर देखें।

३. महिष्मता निर्वृत्ता नगरी माहिष्मती। तेन निर्वृत्तम् (अष्टा० ४।२।६७) से।

मध्यस्थता मण्डन मिश्र की परम विदुषी शारदा नाम की पत्नी ने की थी ।

इन्दौर नगर के बसने से पूर्व होल्कर राज्य की महेश्वर ही राजधानी थी। प्रातः स्मरणीया अहल्याबाई, जिसकी पुण्यगाथा भारत के प्रत्येक तीर्थस्थान में निर्मित मन्दिर, घाट और दीनदुःखियों के लिये चलाये गये सदाव्रत चिरकाल तक गाते रहेंगे (सदाव्रत प्रायः सन् १९३८ तक चलते रहे, तत्पश्चात् मंहगाई के बढ़ने से धीरे-धीरे बन्द हो गये)। अहल्याबाई यहीं बैठकर राजकार्य चलातीं थीं। किले के भीतर महल में वह स्थान अभी तक सुरक्षित है।

महेश्वर की घटनाएं—महेश्वर की कुछ प्रमुख घटनाएं, जिनका वर्णन पिता जी ने अपनी डायरियों में किया है, यहां दी जाती हैं—

नीमाड़ का विशेष फल—नीमाड़ में गरमियों के मौसम में एक लखनवी खरबूजे जैसा रंग रूप और स्वाद वाला फल होता है। इसे सरदा या शरदा कहते हैं। यह गुण में अपने नाम के अनुरूप ठण्डा होता है। इसका वर्णन २९-४-१९१२ की डायरी में पिता जी ने किया है।

कर्ण-वेध—११-६-१२ की डायरी के अनुसार इस तारीख में मेरा कर्णवेध(=कर्णछेदन) कराया गया था। कर्णछेदन एक सोनी (सुनार) ने किया था। इसकी मुझे भी स्मृति है।

पिता जी ने २९-११-१२ से दूसरी तीसरी श्रेणि के छात्रों को रात में लैम्प के प्रकाश में पढ़ाना आरम्भ किया। सम्भवतः इन्हीं दिनों में 'कुंवा' ग्राम के श्री देवदत्त जी भी पिता जी के पास पढ़ते थे। पिता जी के संसर्ग में आने से वैदिक धर्म के प्रति इनकी रुचि हो गई थी। इनका विशेष वर्णन आगे किया जायेगा।

हैजे की बीमारी—महेश्वर में ११ अगस्त १९१२ में हैजे का प्रकोप हुआ। उसके सम्बन्ध में ग्राम निवासियों ने जो कार्य किया उसका वर्णन पिता जी ने १४-८-१९१२ की डायरी में इस प्रकार किया है—

'आज महेश्वर में वासियों ने विशेष कर हिन्दुओं ने ४ दिन पहले दी हुई डोंडी के अनुसार हैजा दूर करने का उपाय किया सो यह कि लकड़ी की छोटी गाड़ी में २ मूर्ति काष्ठ की १ पाड़ा १ बकरी कुछ कुक्कुट को पूजा करके बाजे गाजे के साथ गांव के बाहर निकाला, बलाइयों के साथ सेलामीं को माता स्थान पर भेज दिये। और सबों ने गांव के बाहर भोजन खाया पीया। तथा गांव के चारों ओर मदिरा की धार दी गई। धन्य है ऐसे रोग निवारण उपाय के मानने वालों को। नीचों के प्रचलित किये हुए नीच उपायों में इतनी श्रद्धा? और यज्ञादि उत्कृष्ट कर्म का कुछ

भी विचार नहीं, जो कि ऋषियों द्वारा प्रचलित हुए थे। अविद्या की गोद में सोये हुए हैं।'

महेश्वर में हिन्दुओं की हालत—इस विषय में पिता जी ने १९-१२-१२ की डायरी में लिखा है—

'गांव में मुसलमानों की अपेक्षा हिन्दुओं ने अधिक ताबूत बनाए हैं। मुसलमानों के १५ होंगे तो हिन्दुओं के ५० तक होवेंगे। आश्चर्य हिन्दु धर्म पर! जो मुसलमानों के त्योहार घर में करते हैं, उनके पीर मदार को पूजते है। कहते हैं अपने को हिन्दू, करते हैं काम मुसलमानों के।'

ए. व्ही. स्कूल का प्रारम्भ होना—पिता जी के कठिन प्रयत्न से एक वर्ष पश्चात् ही तृतीय श्रेणी के अनेक छात्रों के उत्तीर्ण हो जाने से राज्य के शिक्षा विभाग ने पुनः ए. व्ही. स्कूल आरम्भ करने का निश्चय किया। तदनुसार ८-६-१३ को श्री देवकृष्ण जी महेश्वरकर को इन्दौर से हेडमास्टर बनाकर महेश्वर भेजा। हेडमास्टर देवकृष्ण जी महेश्वर के ही निवासी थे। किले में 'जम्बू वाड़ी' में आपके बड़े भाई शाह जी रहते थे। ९-६-१३ से ए. व्ही. (एङ्लो वर्नाक्यूलर) स्कूल की चौथी कक्षा आरम्भ हो गई।

इंस्पैक्टर साहब की सद्भावना—९-६-१९१३ को ए० व्ही० स्कूल के उद्घाटन के अवसर पर शिक्षा-विभाग के इंस्पैक्टर साहब भी महेश्वर आये थे। इंस्पैक्टर साहब ने पिताजी से कहा कि तुम हेडमास्टरी करते रहे हो। यहां तुम्हारे परिश्रम से ए० व्ही० स्कूल आरम्भ हो रहा है। तुम चाहो तो तुम्हें किसी और स्थान पर हेडमास्टर बनाकर भेज देवें। पिताजी ने उत्तर दिया—मुझे काम करना है। शाला की उन्नति होवे, यही मेरी कामना है। अपना काम यहां रहते हुए भी करता रहूंगा[1]। ९-६-१३ से पिताजी ए० व्ही० स्कूल के असिस्टेण्ट मास्टर नियुक्त हुए।

लालगढ़ (बीकानेर राज्य) जाना—पिताजी ने अजमेर, जयपुर, लालगढ़ आदि स्थानों में जाने के लिये ८-८-१३ से २७-९-१३ तक १ मास २० दिन का अवकाश लिया। इसमें विरकच्यावास रहकर जयपुर गये। विरकच्यावास से ही १२-८-१९१३ को 'लालगढ़' पत्र लिखा कि सं० १९७० भादों वदि ५ शुक्रवार (=२२ अगस्त १९१३) को सबेरे ५ बजे 'नागौर' स्टेशन ऊंट भेजो। जयपुर से रेल द्वारा

१. इस विषय में इंस्पैक्टर साहब का लेख द्वितीय परिशिष्ट संख्या ६ पर देखें।

फुलेरा होकर २२-८-१३ को प्रात: ५ बजे नागौर स्टेशन पर पहुंचे। नागौर शहर महाराज अमरसिंह की राजधानी रहा था।

लालगढ़ नागौर से १४ कोस दूर है। यह मेरी माता का पीहर है। पिताजी ने १२-८-१३ की डायरी में लिखा है—

'सायंकाल को लालगढ़ को रवाना हुए। रात भर चलकर (१४ कोस) लालगढ़ को प्रात: काल पहुंचे, श्री जोशीजी से और इतर सर्वजनों से बन्धुओं से मिले। सबको प्रसन्नता हुई। कोई १० वर्ष से मेरा आना और सबका मिलना आज हुआ। मेरे सासु श्वसुर वृद्ध हैं। ये अपनी बेटी, दौहित्र से मिलकर बड़े प्रेम से पुलकित हुए।'

लालगढ़ हम सब लोग २ सितम्बर तक रहे।

इस इलाके में वर्षा बहुत कम होती है, केवल बाजरा ही यहां पर पैदा होता है। वह भी प्राय: करके वर्षा के अभाव में अथवा टिड्डियों के प्रकोप के कारण नष्ट हो जाता है। पीने का पानी बहुत कठिनाई से प्राप्त होता है। इस विषय में पिताजी ने २६-८-१३ की डायरी में लिखा है—

'ताल के बीच में दो छोटे-छोटे तालाब खोदे हुये हैं। गांव को इनके पानी का बड़ा सहारा है पानी स्वच्छ है। जब तक इनमें पानी है, तब तक निस्तार इन्हीं के द्वारा होता है। २ कूएं भी हैं। अभी नहीं चलाये जाते हैं। पानी इनका भी उत्तम है। यहां पानी ६० हाथ नीचे है।'

कम्बल के लिये प्रसिद्धि—पूरा बीकानेर राज्य कम्बल आदि ऊनी वस्त्रों के लिये प्रसिद्ध रहा है। लालगढ़ निवास काल की ३१ अगस्त १९१३ की डायरी में पिताजी ने लिखा है—'कम्बलें यहां बनती हैं। तैयार माल मिलना दुर्लभ है। दो कम्बलें देखीं, ११॥) रु० प्रति कम्बल मूल्य ठहराया, पर भीतर से बाहर जैसी बनावट न होने से नहीं ली।' सम्भवत: यह कम्बल चार परतों वाला रहा होगा, तभी 'भीतर से बाहर जैसी बनावट न होने से नहीं ली' लिखा है। मुझे अच्छी प्रकार स्मरण है कि हमारे यहां (महेश्वर में) एक चार परत का कम्बल था। सम्भव है इसे किसी समय नानाजी ने भिजवाया होगा। चारों परतें बहुत महीन बुनाई की थीं।

इस प्रदेश के बड़े शहरों वा कस्बों में मकानों के नीचे प्राय: हौज बने हुए रहते हैं। जिनमें वर्षा का पानी इकट्ठा कर लिया जाता है। उसी से प्राय: वर्ष भर काम चलाया जाता है। उसके अभाव में ऊटों पर चमड़े के मशको में दूर-दूर से पानी लाया जाता है और वह काफी मंहगा बिकता है। वहां के लोग पानी को

बहुत कञ्जूसी से काम में लेते हैं। नागौर स्टेशन पर, जो घटना मैंने देखी और जिसका मुझे कुछ स्मरण है, वह इस प्रकार है—

स्टेशन पर एक मारवाड़ी सेठ ने छोटी सी बाल्टी में, जिसमें ४-५ सेर पानी आता होगा, पानी बेचने वाले से पानी लिया और परात रखकर उसमें बैठकर सावधानता से स्नान किया। परात में इकटठे हुए पानी में अपने कपड़े धोये।

माताजी का अन्तिम बार पीहर जाना—इस बार माताजी का अपने माता-पिता से जो मिलना हुआ था, वह उनके जीवन का अन्तिम मिलान था। क्योंकि इसके पश्चात् फरवरी १९१८ में उनका स्वर्गवास हो गया था।

पिताजी इसके पश्चात् भी एक बार सम्भवतः १९२३ में विरजानन्द आश्रम, गंडासिंह वाला, अमृतसर में जब आये थे, तब वे लालगढ़ होकर आये थे। उस समय मेरे नाना वा नानी में से कोई मिला या नहीं, इसका मुझे स्मरण नहीं।

लालगढ़ से आकर पिताजी २६-९-१९१३ तक बिरकच्यावास रहे। इसी बीच में (९-१२ सितम्बर १९१३) ४ दिन के लिये **'नया नगर'** (ब्यावर) अपनी माताजी के साथ मामाजी[1] के पास पहुंचे। नया नगर का **'तेजाजी का मेला'** प्रसिद्ध है। उसके सम्बन्ध में १० सितम्बर १९१३ की डायरी में लिखा है—

'आज यहां **तेजाजी का मेला** भरा है। यद्यपि वर्षा का अभाव है, तो भी मेरवाड़ा के मेर लोग बहुत आये हैं। मेला साधारण भर गया।'

ब्यावर का **'बादशाह का उत्सव'** नामक मेला भी प्रसिद्ध है। इसका वर्णन आगे ४ मार्च १९१५ के प्रसङ्ग में करेंगे।

मकान बदलना—२०-११-१३ की डायरी में पिताजी ने लिखा है—'आज दूसरा मकान भाड़े पर लिया। रामनाथजी **'टामनौर'** वाले का सवा रुपया मासिक में।' १ दिसम्बर को इस मकान में रहना आरम्भ किया।

मकान की स्थिति—यह मकान मुख्य बाजार से कुछ दूर पर दक्षिण में है। यह स्थान **'मंगलवार पेठ'** के नाम से प्रसिद्ध है। यहां प्रति मंगलवार बाजार लगता है। इसमें दूर-दूर के गांव के लोग और भील आदि आवश्यक वस्तुएं खरीदने के लिये आते हैं। मुख्य बाजार की ओर से मंगलवार पेठ में प्रवेश करने पर बायें हाथ की ओर ५-६ मकान छोड़कर यह मकान है। इससे पहले एक सोने चांदी के

---

१. पिताजी के मामाओं के नामों के लिये प्रथम परिशिष्ट में मुद्रित श्री काका आनन्दीलालजी का पत्र संख्या १ पर देखें।

व्यापारी का मकान है, और दूसरी ओर नाथूरामजी सेठ का मकान है। इस परिवार के साथ हमारी अधिक घनिष्ठता रही है। इनके पुत्र का नाम 'श्री कृष्ण' था। इनको मैं भैया कहा करता था। मकान के अगले भाग में बरामदा था और उसके आगे चबूतरा। बरामदे को लकड़ी की जाफरी से बन्द किया गया था। पिछवाड़े की ओर खाली स्थान था (यहां के प्रायः मकान इसी प्रकार के बने होते थे)। मकान के सामने एक दुमञ्जिला बड़ा मकान है, इसमें ऊपर की मञ्जिल में कन्या पाठशाला चलती थी। बीच के भाग में ऊपर जाने की सीढ़ी थी, उसके दोनों ओर दो-दो कमरे थे, जो किराये पर चढ़ाये जाते थे। दक्षिण भाग के दो कमरों में श्री रायसिहजी[1] अध्यापक और उनकी पत्नी नर्मदाबाई, जो इस कन्या पाठशाला की एक मात्र अध्यापिका थीं, रहते थे।

दशहरे की रीति—महेश्वर में दशहरा किस तरह मनाया जाता है, इसका वर्णन पिताजी ने ९ अक्टूबर १९१३ की डायरी में इस प्रकार लिखा है—

'आज दशहरा जीतने गये—यहां भी सवारी का ठाठ साधारण अच्छा निकलता है १ तोप ८-१० घोड़े सवार, १ हाथी, १ नाल की निशान आदि। जीन[2] के आगे तक अर्थात् १।। मील पर नीयत स्थान में जाते हैं। वहां जवारी के पौधे और अस्तरे[3] की डालियों की कुटिया में 'खंडेराव' (जो होल्कर के पूज्य हुए थे) की प्रतिमा की पूजा करते हैं। इधर ही भवानी के चौक में अच्छा मेला लगता है। रात को दशहरे से आने के पीछे और आज जाति-संबन्धी मित्र-मंडली, राज्य दर्बारी लोगों में मिलने भेंटने जाते हैं।

दशहरे से लौटते समय जंगल में से जवार के पौधे और अस्तरे के पत्ते ले आते हैं, और फिर जिससे मिलने को जाते हैं उनको कुछ पत्ते देते हैं, इसको 'सोना' कहते हैं। यह कैसा सोना है? क्या जवार और अस्तरे के पत्ते सोना हो सकते हैं? क्या राम के साथियों ने लंका का सोना लूटा था? कि जो लाके सबको विशेषकर बड़े लोगों को भेंट किया था। नहीं नहीं, राम ने तो लक्ष्मण आदि सब को लंका लूटने के लिये निषेध कर दिया था। फिर यह प्रथा कदाचित् यों चली होगी कि दशहरे के दिन राजा, व्यापारी अथवा धनार्थी लोग वर्षा बीतने के कारण विदेश जाते थे

---

१. इन्होंने मुझे कक्षा ३ में पढ़ाया था।

२. नगर से बाहर कपास ओटने का कारखाना था। इसे ही 'जीन' कहा जाता था।

३. यह किसी पौधे वा वृक्ष का स्थानीय नाम है।

और उन्नति करके द्रव्य (सोना) लाकर अपने बड़ों को अर्पण करते थे। अब कोई नहीं जाते। उसके उपलक्ष्य में केवल ग्राम की सीमा उल्लघन कर आना और उक्त पत्ते लाकर बड़ों को भेंट करना, यही कर्तव्य शेष रह गया।'

मेरी माताजी का कन्यापाठशाला में अध्यापन –पिताजी ने २२ अप्रेल १९१४ की डायरी में लिखा है—

'श्रीमान् हेडमास्टर ने आज्ञा पत्र नं०—युधिष्ठिर की माता को काम ता० १-५-१९१४ से २ मास २० दिन तक २० रुपये मासिक पर मिस्ट्रेस नर्मदाबाई के एवज [में] कन्या पाठशाला महेश्वर का काम करने के लिये श्रीमान् हेड इन्स्पैक्टर सा० की आज्ञा नं० २५६१। १८।४।१४ व मे० डायरेक्टर साहिब की आज्ञा नं० ११०५। १४।४।१४ के आधार से दिया।'

१ मई १९१४ की डायरी में लिखा है—'आज कन्या पाठशाला का चार्ज युधिष्ठिर की माता ने लिया। २ मास २० दिन के लिये। रिपोर्ट की गई।'

वर्णमाला-बोध और बारह खड़ी-बोध की रचना—पिताजी ने बालकों के लिये नये ढंग पर 'वर्णमाला-बोध' और 'बारह-खड़ी-बोध' नाम की दो पुस्तकें लिखी थीं। उन्हें छपवाने के लिये पिताजी ने बहुत प्रयत्न किया, परन्तु वे इसमें सफल नहीं हुए।

कोहनी का उतरना— ३० जुलाई १९१४ की डायरी में लिखा है—'युधिष्ठिर का (दाहिना) हाथ कोहनी से खुल गया। चलते-चलते गिर गया। पूनमचन्द ने बिठा दिया ता० २६ को। अब सूजन है शनैः-शनैः मिट रही है।'

कोहनी उतरने का मुझे स्मरण है। जाफरी से भीतर के कमरे में दौड़कर जाते समय दरवाजे की चौखट से ठोकर खाकर गिरा था। मेरी नाक के अगले भाग में दाहिनी ओर कुछ टेढ़ापन है। सम्भव है इसी समय नाक में भी चोट लगी होगी और उससे टेढ़ी हो गई होगी।

नाक में भुना चना फसना—मुझे भली प्रकार स्मरण है कि एक दिन भूंगड़े (भुने चने) खाते हुए एक चना किसी तरह नाक के एक छेद में चला गया था। नाक में जाकर नमी पाकर फूलने पर दर्द आरम्भ हुआ। उसे निकलवाने को अस्पताल ले गये। वहां किसी कारणवश न निकलने पर एक सुनार की दुकान पर ले गये। उसने एक तार का अगला भाग टेढ़ा करके चना निकाल दिया। इस सुनार की दुकान प्रमुख बाजार से पश्चिम की ओर मंगलवार पेठ में आने वाले मार्ग पर प्रथम

चौराहे पर थी। यहीं एक सर्राफ की दुकान भी थी। उसका पुत्र मेरे साथ पढ़ता था। उसका नाम स्मरण नहीं रहा।

नाक में चना फसने की घटना कोहनी उतरने से पूर्व हुई थी या पश्चात्, यह स्मरण नहीं है।

अजमेर में डाक्टर को मेरे पैर दिखाना - पिताजी मुझे और मेरी माताजी को गांव छोड़ने के लिये ५ सितम्बर १९१४ की रात को महेश्वर से रवाना हुए। ७-९-१९१४ को पिताजी ने डाक्टर नन्दलालजी को मुझे दिखाया। डाक्टर ने कहा कि विना आपरेशन के पैर सीधे नहीं हो सकते।

बहिन का जन्म—१३-१०-१९१४ की डायरी में लिखा है—

'आज घर से पण्डित रामचन्द्रजी का पत्र आया। कन्या का जन्म ता० ८ को हुआ, लिखा और कुशलता है। ईश्वर को धन्यवाद युधिष्ठिर आनन्द में है।'

मेरी इस बहन का नाम 'सीता' था। जिसका जन्म देशी तिथि के अनुसार कार्तिक कृष्ण ४ गुरुवार सं० १९७१ कृत्तिका नक्षत्र में हुआ था।

बिरकच्यावास से वापिस आना—पिताजी माताजी को व हम दोनों भाई बहनों को महेश्वर लाने के लिये २७ फरवरी १९१५ को महेश्वर से चलकर बिरकच्यावास पहुंचे। ३ मार्च १९१५ को नया नगर (ब्यावर) गये। नरसिंहपुर (ब्यावर के समीप) में मामाजी और भाई से मिले। नया नगर में 'नकली बादशाह का उत्सव' मनाया जाता है उसके सम्बन्ध में ४ मार्च की डायरी में लिखा है—

"प्रतिवर्षानुसार 'नकली बादशाह का उत्सव' बड़े ठाट-बाट से निकला। मनुष्य के कन्धों पर बादशाह और दीवान थे। गुलाल फेंकते थे। सामने बीरबल नाच रहे थे। स्थान-स्थान पर पृथक्-पृथक् मण्डली गाती बजाती और गहर नाच रही थी। गुलाल की भरमार थी। लोगों में बड़ा उत्साह आनन्द छा रहा था। ऊपर बाजार के दोनों ओर अटारियों पर नारियां गा रहीं थी। ४ बजे से निकलकर बादशाह की सवारी असिस्टेण्ट कमिश्नर साहब की कचहरी पहुंची। वहां आनन्द मनाकर लौट आई। उत्सव दर्शनीय था।

परन्तु अजमेर आदि नगरों से दर्शक बहुत अल्प संख्यक आये थे। कारण कि उनको पहले का आनन्द नहीं मिलने लगा ? मुझे तो इतनी भीड़-भाड़ न होते हुए भी २० वर्ष पहले से बढ़ कर आनन्द मिला। इस नया नगर की सुधारक मण्डली के प्रभाव से जो नियम लोगों ने किया, वह सराहनीय है। स्त्रियों की ओर गुलाब

फेंकना अथवा लज्जास्पद शब्द बोलना सर्वथा बन्द था। इतना दृढ़ प्रबन्ध देखकर मैं चकित हुआ। एक सज्जन ने इसी राग की भजन पुस्तकें दी हैं।'

स्थानान्तरण—पिताजी की १७ सितम्बर १९१५ की डायरी में लिखा है—

'आज आज्ञा श्रीमान् हेड इन्स्पैक्टर साहिब की आई—मेरी बदली मण्डलेश्वर पाठशाला में ३५)रु० पर हुई।[1] आज यहां का चार्ज श्रीमान् हेडमास्टर साहिब को अर्पण किया।'

इस प्रकार पिताजी महेश्वर में ३ साल ५ महीने २ दिन रहे।

मण्डलेश्वर (१८-९-१५ से ००-९-१७ तक)

पिताजी ने मण्डलेश्वर जाकर १८ सितम्बर १९१५ को पं० व्रजमोहनजी से शाला का चार्ज लिया। और उसी दिन शाम को वापिस महेश्वर लौट आये। १९, २० को भी प्रातः मण्डलेश्वर जाकर शाम को वापिस महेश्वर आते रहे। २१ से २४ तक छुट्टी पर रहे। २४ को दो गाड़ियों में सामान भरकर सब को साथ लेकर मण्डलेश्वर पहुंचे।[2]

वर्नाक्यूलर फाइनल (मिडिल) स्कूल के लिये मकान किराये पर लिया। गांव घुसते ही ५-७ मकान छोड़कर **मोहम्मद काले भाई का दो मञ्जिला घर ६ रुपये मासिक पर सरकार ने लिया।**[3] उसी के नीचे के एक भाग में अपने रहने की व्यवस्था की। ऊपर के भाग में व० फा० स्कूल के छात्रों का छात्रावास था। घर के आगे चबूतरा था।

मण्डलेश्वर की स्थिति—मण्डलेश्वर महेश्वर से लगभग ५ मील पूर्व में नर्मदा के किनारे स्थित है। यह एक साधारण कस्बा था। यहां पर सरकार का एक महल और छोटा सा किला है। कन्या पाठशाला और बालकों की पाठशाला गांव से लगभग १ फर्लाङ्ग दूर पश्चिम में नदी के किनारे पर थी।

खरगोन जाना—खरगोन से सूचना मिली थी कि स्वामी ब्रह्मानन्दजी खरगोन पधार रहे हैं और उनके उपदेश होंगें। इस सूचना के अनुसार पिताजी खरगोन गये। उसके सम्बन्ध में २३, २४ अक्टूबर १९१५ की डायरी में इस प्रकार लिखा है—

'रात्रि भर चलकर आज प्रातः खरगोन पहुंचे। कुन्दा नदी पर स्नानादि से

---

१. असली आदेश पत्र पिताजी के संग्रह में नहीं मिला।

२. यह १८ से २४ सितम्बर १९१५ की डायरी के आधार पर लिखा है।

३. काले अक्षरों में छपा अंश पिताजी की २४ सितम्बर १९१५ की डायरी में अङ्कित है।

निवृत्त हो श्री गोविन्दरामजी वैद्य के घर पहुंचा। इनके तथा श्रीस्वामी ब्रह्मानन्दजी महाराज के दर्शन किये। रात्रि को श्रीमत् स्वामीजी की प्रकृति ठीक न होने से व्याख्यान नहीं हुआ पर वार्तालाप से उपदेश प्राप्त किया। आज स० धर्म्म वालों ने ता० २२ को हुए शास्त्रार्थ का प्रतिपादन व्यर्थ किया। सभा गणपति धर्मशाला में हुई थी। चलो चैतन्य तो हुए। पश्चात् रात्रि को श्री स्वामीजी का व्याख्यान हुआ। शास्त्रार्थ के प्रश्नों का स्पष्टार्थ समझाया।'

चेचक का टीका लगवाना—२९ नवम्बर १९१५ की डायरी में लिखा है—'ऐरावतीबाई को चेचक का टीका लगवाया।' यह ऐरावतीबाई किसकी कन्या थी उसका मुझे ज्ञान नहीं। नाम से संभावना होती है कि तुलसी भुवाजी जयपुर वालों की कन्या रही हो? हम पूर्व पृष्ठ १६ पर लिख चुके हैं कि तुलसी भुवाजी की सात कन्याओं में से एक का नाम ज्ञात नहीं हो सका। ऐरावतीबाई जयपुर से किस के साथ और कब आई, यह भी सन् १९१५ की डायरी से पता नहीं चला।

२ दिसम्बर १९१५ को लिखा है—'सीता को टीका लगाया हुआ अभी उठा नहीं'। बहिन सीता को भी सम्भवतः २९ नवम्बर को ही टीका लगवाया होगा।

पिताजी की उपलब्ध डायरियां ३१ दिसम्बर १९१५ पर समाप्त हो जाती हैं। इसके पश्चात् पिताजी एक साल और ९ महीने मण्डलेश्वर रहे थे। इस काल की जो दो चार घटनायें (विना काल क्रम के) मुझे स्मरण है उन्हें नीचे दे रहा हूं।

१. पिताजी को मन्दाग्नि का रोग—मण्डलेश्वर आकर पिताजी को भयङ्कर मन्दाग्नि का रोग हुआ। उससे पिताजी का स्वास्थ्य बहुत गिर गया। किसी की सलाह से **'नमक सुलेमानी'** का प्रयोग आरम्भ किया। उससे कुछ लाभ हुआ, किन्तु लाभ तभी तक रहता था, जब तक नमक सुलेमानी का प्रयोग करते थे। नमक सुलेमानी की शीशी ४) रुपये की आती थी। बार-बार मंगवाने में डाक खर्च अधिक पड़ता था, इसलिये पिताजी ने ४ शीशियां एक साथ मंगवाईं। पैकिंग अच्छा न होने के कारण अथवा डाक कर्मचारियों की लापरवाही के कारण चारों शीशियां मार्ग में टूट गईं। एक सामान्य व्यक्ति के लिये डाकव्यय सहित लगभग १९-२० रुपये का नुकसान होना बहुत कष्टप्रद होता है। सम्भवतः टूटी हुई शीशियों का पार्सल प्राप्त होने के दो चार दिन में ही किसी दिन सायंकाल मकान के बाहर चबूतरे पर जब उदास बैठे हुये थे, उसी समय एक साधु उधर से निकला। उसने पिताजी को उदास देखकर उदासी का कारण पूछा। पिताजी ने रोग की और नमक सुलेमानी की शीशियां टूटने का वर्णन किया। साधु ने पिताजी से कहा, बेटा! कीमती दवाइयां क्यों खाते हो। मैं तुम्हें नुस्खा बता देता हूं उससे रोग शीघ्र शान्त हो जायेगा।

साधु ने त्रिफले के चूर्ण के साथ पांच नमक [सेंधा नमक, समुद्री नमक, सांभरी नमक, सौचर (काला) नमक, बिड़ (नौसादर) नमक] मिलाकर रात को सोते समय गुनगुने पानी से लेने का निर्देश किया। पिताजी ने उक्त प्रकार से त्रिफले का प्रयोग किया और शीघ्र ही अच्छे हो गये। पिताजी को यह यीग इतना लाभप्रद प्रतीत हुआ कि प्रायः आजन्म इसका प्रयोग करते रहे।

२. **बूरा समझकर कलई फांकना**—दिवाली से दो चार दिन पूर्व पिताजी एक गठरी में चावल और दूसरी गठरी में मकान पोतने के लिये कलई लेकर आये और बाहर के कमरे में रखकर अन्दर चले गये। मैंने दोनों पोटलियां टटोलीं। चावलों के साथ वाली पोटली, जिसमें कलई थी, बूरा समझकर मुट्ठी भर कर फांकली। मुंह में जाते ही मुंह जलने लगा। डर के मारे पिताजी को या माताजी को न कहकर बाहर चबूतरे पर थूकने लगा। इतने में ही महेश्वर के पड़ौसी श्री कृष्ण भैया पिताजी से मिलने आये। उन्होंने मेरी हालत पिताजी को बतलाई। कलई से सारे मुंह में और गले के कुछ भाग में छाले हो गये थे और उसके शमन के लिये मुझे कई दिन तक घी पिलाया।

३. **बहिन सीता का स्वर्गवास**—इन्हीं दिनों मेरी बहिन सीता बीमार हुई। बहुत चिकित्सा करने पर भी कुछ लाभ नहीं हुआ। अन्तिम समय में हाथ पैर ठण्डे होने पर **'कायफल'** का चूर्ण हाथों और पैरों पर मला, उससे शरीर में साधारण गर्मी आई, परन्तु अन्त में उसका निधन हो गया। बहिन सीता का मुझे पूरी तरह स्मरण है। वह माता के समान ही गौर वर्ण थी और मैं उससे बहुत प्यार करता था।

पाठशाला में मेरा प्रवेश – पिताजी ने मुझे लगभग सात वर्ष की अवस्था में पाठशाला में प्रविष्ट कराया। पिताजी की यह मान्यता थी कि सात वर्ष से कम आयु के बालक को पाठशाला में प्रविष्ट कराने से उसके बौद्धिक और शारीरिक विकास पर बुरा असर पड़ता है। प्राचीन शिक्षाविद् ऋषि-मुनियों का भी लगभग यही मत है—**'अष्टवर्षे ब्राह्मणमुपनयीत गर्भादष्टमे वा'** अर्थात् ब्राह्मण का उपनयन (=विद्यारम्भ) जन्म से अथवा गर्भ से आठवें वर्ष किया जाये।

४. **सरजूबाई को बिच्छु का काटना**—ऊपर के प्रसङ्गों में बिरकच्यावास के पिताजी के साथी श्री शिवचन्द ईनाणी का वर्णन किया जा चुका है। वे पिताजी के मण्डलेश्वर में रहते हुए शिक्षा विभाग की ओर से इन्स्पैक्टर होकर पाठशाला का निरीक्षण करने आये। उनके साथ उनकी धर्मपत्नी और लगभग दो ढाई वर्ष की

कन्या सरजूबाई भी आई थी। जब वे मण्डलेश्वर पहुंचे तब कुछ अंधेरा हो चुका था। पिताजी ने उन्हें कन्या पाठशाला में ठहराया। जैसे ही पाठशाला का द्वार खोला गया, तत्काल बालसुलभ चञ्चलता से सरजूबाई उसमें प्रविष्ट हुई और अन्दर जाते ही बिच्छु ने उसे डस लिया। सरजूबाई का विवाह डा० रत्नलाल शारदा के साथ हुआ था। वे आरम्भ से ही करोलबाग नई दिल्ली में रहते हैं।

मण्डलेश्वर से सितम्बर १९१७ की किसी तारीख को पिताजी की पुनः महेश्वर बदली हुई।

महेश्वर (००-९-१९१७ से २९-७-२६)

मण्डलेश्वर से पिताजी की ००-९-१९१७ को पुनः महेश्वर के लिये बदली हुई। महेश्वर में २९-७-१९२६ तक अर्थात् लगभग ९ साल रहे। इस अवधि में पारिवारिक और सामाजिक अनेक विशेष घटनायें घटित हुई। यहां पहले पारिवारिक घटनाओं का ही निर्देश करूंगा। यद्यपि सामाजिक कार्य पिताजी साधारण रूप में आरम्भ से ही करते रहे हैं, तथापि विशेष रूप से सामाजिक कार्य का आरम्भ उन्होंने १९२१ के अन्त में किया था और इन्हीं कार्यों के कारण उनका विविध स्थानों में स्थानान्तरण होता रहा। अन्त में शिक्षा विभाग ने तंग आकर अत्यन्त दूर दुर्गम एवं इन्दौर राज्य का कालापानी नाम से प्रसिद्ध प्रदेश के नन्दबाई ग्राम में किया। इन सब कष्टों को झेलते हुए भी पिताजी जीवन के अन्तिम क्षण तक सामाजिक कार्य करते रहे और उसी के फल स्वरूप उनका निधन हुआ।

प्लेग का प्रकोप—१९१७ के उत्तरार्ध में समस्त भारत में प्लेग का भयंकर प्रकोप हुआ था। इस महामारी में लाखों लोग काल कवलित हो गये थे। कहीं-कहीं तो ऐसी भयानक अवस्था हुई कि प्लेग के डर के मारे लोग प्लेग से मरे हुए अपने बन्धुओं को भी उठाने से कतराते थे। ऐसी स्थिति में कुछ सामाजिक कार्यकर्त्ताओं और सरकारी कर्मचारियों द्वारा अनेक शवों को एक साथ जलाया गया अथवा गाड़ा गया।

बिरकच्यावास में प्लेग का प्रकोप—हमारा गांव भी इस महारोग की छाया से अछूता नहीं रहा। गांव वाले घरों को बन्द करके गांव के बाहर जहां जिसको जगह मिली, झोपड़ियां बनाकर रहने लगे। इन दिनों वर्षा ऋतु के कारण झोपड़ियों में कीचड़ और सील रहने से इस रोग ने भयङ्कर रूप धारण कर लिया।

दादीजी का बीमार होना—रामप्रताप दादाजी के स्वर्गवास के पश्चात् दादीजी अकेली ही गांव में रहती थीं। उनके देवर रामनाथ दादाजी ही हमारी खेती बाड़ी

की देखभाल करते थे। गांव में प्लेग का प्रकोप होने पर हमारे निकटवर्ती परिवारों ने गांव से पश्चिम में फूळी नाड़ी नाम के स्थान में झोपड़ियां बनाकर शरण ली। (यही स्थान हमारे घर के निकट था)। दादीजी की बीमारी का सन्देश पिताजी को और छोटी भुवा ज्ञानीबाई को तार द्वारा दिया गया। पिता जी माता जी को और मुझे लेकर बिरकच्यावास पहुंचे। दक्षिण से बिरकच्यावास पहुंचने के लिये नसीराबाद स्टेशन पर उतरना पड़ता है। वहां से हमारा गांव पश्चिम में १२-१३ मील पर है। सब लोग नसीराबाद सायंकाल की गाड़ी से पहुंचकर १४ रुपये में तांगा करके ९-१० बजे वहां पहुंचे, जहां झोपड़ी में दादीजी बीमार थीं। उस रात वर्षा होने से झोपड़ी में १-२ हाथ स्थान भी ऐसा नहीं था, जो गीला न हुआ हो। कुछ दिनों के पश्चात् दक्षिण से छोटी भुवाजी और फूफाजी भी बिरकच्यावास पहुंच गये।

हमारे बिरकच्यावास पहुंचने से पूर्व ही दादीजी को बगल में प्लेग की गांठ उत्पन्न हो गई थी, परन्तु परमात्मा की असीम दया से वह गांठ कुछ दिनों में बिना पके ही अपने आप बैठ गई और दादीजी इस भयंकर रोग से मुक्त हो गईं। इसके पश्चात् छोटी भुवाजी बीमार हो गईं। इधर पिताजी की छुट्टियां भी समाप्त होने को आईं। अतः पिताजी दादीजी भुवाजी और फूफाजी को लेकर महेश्वर पहुंचे। भुवाजी लगभग एक मास विमार रहीं। उनके स्वस्थ होने पर फूफाजी भुवाजी को लेकर अपने गांव 'मुरमा' (जि० जालना, निजाम स्टेट) चले गये।

संभवतः यह घटना सितम्बर १९१७ की है। पिता जी की सर्विस बुक की जो नकल मुझे प्राप्त हुई है, उसमें मण्डलेश्वर में रहने का सितम्बर १९१७ का ही उल्लेख है (तारीख का निर्देश नहीं है)। इसी प्रकार महेश्वर में चार्ज लेने का जो समय लिखा है, उसमें सितम्बर मास का तो उल्लेख है, तारीख का नहीं है। अतः यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि पिता जी मण्डलेश्वर से बिरकच्यावास पहुंचे अथवा महेश्वर जाकर शाला का चार्ज लेकर विरकच्यावास गये। पर इतना स्मरण है कि पिता जी दादी जी आदि सब को लेकर महेश्वर ही पहुंचे थे।

महेश्वर का मकान—इस बार महेश्वर में पूर्व मकान के साथ श्री कृष्ण भैया का जो मकान था, उससे अगला अर्थात् पश्चिम का मकान किराये पर लिया था।

माता जी का बीमार होना—दादा जी एवं भुवा जी की निरन्तर सेवा और गृह के सभी कामों में लगे रहने से माता जी बीमार हो गईं। इस समय माता जी गर्भवती थीं। लगभग ३ मास पश्चात् माताजी ने पूर्णावस्था के मृतबालक को जन्म दिया (संभव है बीमारी की किसी औषधि का कुप्रभाव हुआ हो)। इस से माताजी

का स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन गिरता गया और उन्हें अपना मृत्युकाल निकट प्रतीत हुआ। इस लिये उन्होंने पिता जी से अनुरोध किया कि "मुझे विरकच्यावास ले चलो, अब मैं बचूंगी नहीं। अपने ससुराल में पारिवारिक जनों के मध्य शरीर त्यागूं, यह मेरी इच्छा है"। पिताजी ने सोचा संभव है गांव जाने पर जलवायु के परिवर्तन से स्वास्थ्य लाभ हो जावे। इस लिये पिता जी रुग्णावस्था में ही माताजी को बिरकच्यावास ले आये।

पिता जी की सर्विस बुक के अनुसार १-२-१९१८ से १०-५-१९१८ तक पिता जी ने ३ मास और १० दिन की छुट्टी ली थी। इससे प्रतीत होता है कि पिता जी माता जी को फरवरी १९१८ के प्रथम सप्ताह में बिरकच्यावास ले गये होंगे।

स्वमृत्युकाल का चार वर्ष पूर्व आभास—पिता जी ने मुझे कई बार बताया था कि तुम्हारी माता को चार वर्ष पूर्व ही अपने निधन काल का आभास हो गया था। वह बारंबार मुझे कहती रहती थी कि मुझे पीहर भेज दो। मैं अमुक संवत् और मास के पश्चात् जीवित नहीं रहूंगी। मैं चाहती हूं कि अपने जीवन काल में पीहर जाकर आपके लिये अच्छी लड़की देखकर उसके साथ आपका विवाह करवा दूं, जिससे मेरे पीछे आपको कोई कष्ट न हो।' मैं तुम्हारी माता के अनुरोध को हंस कर टाल देता था। उसे मैंने इस कार्य के लिये कभी पीहर जाने की अनुमति नहीं दी। उसने जो संवत् और मास अपने जीवन की अवधि का बताया था, उसमें कुछ समय ही शेष था। अत: उसने बिरकच्यावास ले जाने का अनुरोध किया था।

पिता जी माता जी को लेकर फरवरी १९१८ के प्रथम सप्ताह में विरकच्यावास पहुंचे थे। वहां माता जी १५-२० दिन ही जीवित रहीं। तदनन्तर वह काल आ गया जिसकी सूचना उन्होंने ४ साल पूर्व दी थी।

अन्त समय—माता जी के अन्तिम समय का दृश्य मुझे अभी तक पूर्णतया स्मरण है। मकान के नीचे की भीतरी शाल (=लम्बे कमरे) में बाहरी और भीतरी शाल के मध्यवर्ती दरवाजे के समीप दक्षिण की ओर पिता जी की गोद में उनका सिर था और उत्तर दिशा में उनके पैर थे (हमारे घर का द्वार पूर्व दिशा में है)। अन्त समय से पूर्व माता जी ने पिता जी से ३ बातें कहीं, जो इस प्रकार हैं—

१. 'लाल जी (=देवर गणेशीलाल जी) से दुपांत मत करना' अर्थात् भेद-भाव न रखना=सगे भाई के समान व्यवहार करना (राजस्थान में देवर के

लिए भाभीयां, 'लालजी' शब्द का व्यवहार करती हैं)।

२. 'अब आप अकेले रह जायेंगे। मोहवश युधिष्ठिर को गुरुकुल भेजना मत भूलना।'

३. 'अपना पुनर्विवाह कर लेना।'

अहो! मातेश्वरी तुम कितनी महान् थीं! सबसे पूर्व तुमने चचेरे देवर को स्मरण किया और उससे दुर्पात न करने कहा। दूसरा कथन भी कितना महत्त्वपूर्ण था। तुम ने अन्त समय में यह जानते हुए भी कि पिता जी अकेले रह जायेंगे, मुझे वेद पढ़ाने के संकल्प को पूर्ण करने के लिये गुरुकुल भेजने को कहा। यहां यह बताना आवश्यक है कि मेरे पिताजी और माताजी की यह कामना थी कि हम अपनी सन्तान को वेदपाठी ब्राह्मण बनावें। इसके लिये अप्रेल १९१८ में जब गुरुकुल कांगड़ी में नवीन ब्रह्मचारियों को प्रविष्ट किया जाता है, मुझे कांगड़ी गुरुकुल में भरती कराने ले जाने का निश्चय कर चुके थे। परन्तु दैव को यह स्वीकार नहीं था। गुरुकुल में प्रवेश की तिथि से पूर्व ही माताजी का स्वर्गवास हो गया।

दादीजी का स्वर्गवास—भरी जवानी अर्थात लगभग ३२ वर्ष की अवस्था में माताजी के स्वर्गवास के घोरतम आघात को वृद्धा दादीजी न सह सकीं और १ मास में ही उनका स्वर्गवास हो गया।

ये घटनायें सन् १९१८ के फरवरी और मार्च मास के अन्त की हैं। इस समय मेरी अवस्था लगभग साढ़े आठ वर्ष की और पिताजी की लगभग ४० वर्ष की थी (सर्विस बुक के अनुसार लगभग ३८ वर्ष की)।

माताजी के अन्तिम कथन के सम्बन्ध में—पिताजी ने मुझे कई बार कहा था कि मैंने तुम्हारी माता के पहले दोनों वचनों का पूर्णतया परिपालन किया। तीसरा वचन मेरे अपने जीवन से सम्बद्ध था। मैं तुम्हारी माताजी को भुला नहीं सकता था, अतः उसकी पवित्र स्मृति को हृदय में संजोये रखने के लिये पुनर्विवाह नहीं किया।

पिताजी की मानसिक अवस्था—माताजी के असामयिक निधन से पिताजी को अत्यन्त मानसिक आघात लगा। वे लगभग दो वर्ष तक मानसिक रूप से अस्वस्थ रहे। इस काल में कुछ मास कार्यरत रहते और मन उचाट होने पर अवकाश लेकर बिरकच्यावास तथा अपनी छोटी बहिन जानीबाई के पास चले जाते थे। सन् १९१९ के जलियान वाला बाग (अमृतसर) के नृशंस हत्याकाण्ड के समय पिताजी अपनी

छोटी बहिन जानीबाई के पास 'मुरमा' में रहते थे। 'मुरमा' छोटा गांव होने से देर से पहुंचे समाचार पत्र से वहीं इस हत्याकाण्ड का परिज्ञान हुआ था।

मकान बदलना—माताजी के और दादीजी के स्वर्गवास के पश्चात् जब पिताजी महेश्वर लौटकर आये तो पूर्वोक्त मकान (जिसमें माताजी बीमार रही थीं) में पिताजी का मन नहीं लगा। अतः उन्होंने दूसरा मकान किराये पर लिया। यह मकान उसी पंक्ति में तीन-चार मकान छोड़कर अन्तिम मकान था। (दोनों ओर के मकानों के बाद खाली स्थान था, तदनन्तर आगे दोनों के मकानों की पंक्ति आरम्भ होती थी)। मकान बहुत अच्छा और पर्याप्त बड़ा था। उस मकान के विषय में यह प्रसिद्ध था कि इसमें भूत रहते हैं। अतः प्रायः खाली पड़ा रहता था। इससे आसानी से यह मकान मामूली किराये पर मिल गया। परिचित लोगों ने पिताजी को इस मकान में जाने से मना भी किया, परन्तु भूत-प्रेत पर विश्वास न होने से वे इस मकान में रहने लगे। इस मकान के पीछे की ओर दालान में एक गूलर का पेड़ था। इसके पत्ते बहुत गिरते रहते थे। पूर्ववर्ती मकान में एक मुसलमान परिवार रहता था। उसने बकरियां पाल रखी थीं। उसके देखा-देखी पिताजी ने भी यह सोचकर कि गूलर के गिरे हुए पत्तों का सदुपयोग हो जायेगा, एक बकरी खरीद ली। किन्तु रात को वह बहुत 'में-में' चिल्लाती थी। उससे पिताजी की निद्रा में बाधा होती थी। इसलिये उन्होंने चार-पांच दिन पीछे ही उस बकरी को वापस कर दिया। इस मकान में कुछ ही महीने बिताये। लोगों ने जो भूत-प्रेत का डर बतलाया था, वह तो कुछ घटित नहीं हुआ, परन्तु बड़े मकान की सफाई आदि में कठिनाई होने और एकान्त में पड़ जाने के कारण दूसरे मकान में जाने की सोचते रहे।

कन्या पाठशाला के नीचे के कमरे किराये पर लेना—हम पूर्व लिख चुके हैं कि महेश्वर के प्रथम आगमन के समय इस मुहल्ले में जिस मकान में हम लोग आकर रहे थे, उसके सामने कन्या पाठशाला का बड़ा मकान था। ऊपर की मञ्जिल में कन्या पाठशाला लगती थी और ऊपर जाने के मुख्य द्वार के दोनों ओर दो दो कमरे थे। पश्चिम के दो कमरों में मास्टर रायसिंहजी और उनकी धर्मपत्नी नर्मदाबाई जो कन्या पाठशाला में अध्यापिका थीं, रहते थे। पूर्व दिशा के दो कमरे खाली होने पर पिताजी इसी मकान में आ गये और महेश्वर में अन्त तक इसी मकान में रहे। दोनों कमरों के आगे बहुत बड़ा बरामदा था। उसे अपनी सुविधा के लिये बांस की जाफरी लगाकर बन्द कर दिया। इसके आगे चबूतरा था।

पिताजी के पैर का आपरेशन—पिताजी के पैर भी टेढ़े थे यह पहले लिख

चुका हूं, इसलिये वे नंगे पैर चलने में बहुत सावधानीव र्तते थे। फिर भी अकस्मात् उनके एक पैर के नीचे कोई वस्तु आ गई, जिससे पैर के नीचे का भाग सूज कर पक गया। उसके लिये अस्पताल के डाक्टर को बुलाया गया, उसने कहा कि आपरेशन करना होगा और काफी समय लगेगा उसके लिये क्लोरोफार्म सुंघानी पड़ेगी, यह प्रबन्ध हस्पताल में ही हो सकता है। अत: आप हस्पताल आ जायें। पिताजी ने कहा मुझे क्लोरोफार्म सुंघाने की कोई आवश्यकता नहीं है, आप बेखटके घर पर ही मेरे पैर का आपरेशन करदें और प्रतिदिन पट्टी करने के लिये कम्पाउण्डर का इन्तजाम करदें। इस पर डाक्टर ने कहा कि आपरेशन में काफी समय लगेगा और जरा भी पैर हिल गया तो और अधिक हानि हो सकती है। इस पर पिताजी ने कहा डाक्टर साहब चिन्ता न करें, ऐसा कुछ नहीं होगा। आप निःसंकोच यहीं पर आपरेशन करने का कष्ट करें। डाक्टर ने अगले दिन आपरेशन करने को कहा। दूसरे दिन डाक्टर अपने कम्पाउण्डर के साथ आपरेशन करने के लिये घर पर आये तो पिताजी ने सीधे लेट कर डाक्टर को आपरेशन करने के लिये कहा। आपरेशन में लगभग ४० मिनट समय लगा। इस काल में पिताजी गीता का पाठ करते रहे। आपरेशन के बाद डाक्टर ने पिताजी के साहस की बहुत प्रशंसा की और कहा इस प्रकार का अवसर मुझे जीवन में प्रथम बार ही देखने को मिला है कि कोई व्यक्ति बिना क्लोरोफार्म सुंघाये इतने बड़े आपरेशन के लिये समर्थ हुआ हो।

घाव भरने में और पैर ठीक होने में लगभग एक मास का समय लगा और उसके पश्चात् वैशाखी के सहारे कई महीने तक स्कूल आते जाते रहे। पिताजी दोनों समय स्वयं भोजन बनाया करते थे। इन दिनों में भोजन बनाने के लिये एक विधवा ब्राह्मणी को रखा, जो लगभग ३-४ साल तक भोजन बनाती रही।

पुर्नविवाह की अफवाह—हमारे गांव में किसी ने अफवाह फैला दी कि गौरीलाल ने एक विधवा के साथ पुर्नविवाह कर लिया है। इस पर सच्चाई मालूम करने के लिये गांव से चाचा गणेशीलालजी महेश्वर पहुंचे और वस्तुस्थिति जानकर सन्तुष्ट होकर वापस गांव जाकर जाति के लोगों को वास्तविक बात बतलाई। यह घटना मेरे विरजानन्द आश्रम में प्रविष्ट कराने के पश्चात् की है।

उज्जैन कुम्भ के मेले में जाना—अप्रेल १९२० में पिताजी मुझे साथ लेकर उजैन के कुम्भ के मेले गये थे। मैंने अपने जीवन में केवल यही कुम्भ का मेला देखा है। उज्जैन में कुछ दिन मेले की रौनक देखकर जब वापिस महेश्वर आये तो मार्ग में महू स्टेशन के आगे जहां रेलवे मार्ग ढलान पर है और बहुत घुमावदार है, रेल के अचानक ब्रेक फेल हो जाने से गाड़ी को अत्यन्त तीव्रगति से दौड़ते देख कर

सभी रेल-यात्री घबरा उठे। और गाड़ी में त्राहि-त्राहि मच गई। मार्ग के अत्यन्त घुमावदार होने के कारण किसी भी क्षण गाड़ी के सैकड़ों फुट खड्डे में गिरने की प्रबल आशंका ने सबको उद्विग्न कर दिया था, परन्तु प्रभु की कृपा से गाड़ी इस भयानक संकट से सकुशल पार हो गई। यह दृश्य आज भी मुझे जब स्मरण आता है तो मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

मेरी गुरुकलीय शिक्षा के लिये प्रयत्न—लगभग दो वर्ष पश्चात् पिताजी का जब मन कुछ स्थिर हुआ तो उन्होंने मेरी गुरुकुलीय शिक्षा के लिये प्रयत्न आरम्भ किया। इसी समय अर्थात् १९२० में महात्मा गान्धीजी द्वारा प्रारब्ध असहयोग आन्दोलन चल रहा था। अमृतसर के जलियान वाला बाग में ओडियार द्वारा किया गया नरमेघ काण्ड हो चुका था। ऐसे समय में देशोद्धारक स्वराज्य के आदि प्रेरक स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुयायी कैसे चुप रह सकते थे। स्वामी दयानन्द के सभी अनुयायी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में इस स्वराज्य आन्दोलन में बढ़-चढ़कर भाग ले रहे थे[1]। महात्मा गांधी ने इस समय **'स्कूल कालिज छोड़ो'** आन्दोलन को भी जन्म दिया। इससे भी पिताजी के मन में मेरे शिक्षण की व्यवस्था करने के प्रयत्न में तीव्रता आई।

गुरुकुल होशङ्गाबाद—इसी उपक्रम में पिताजी प्रथम मुझे सन् १९२० में गुरुकुल होशङ्गाबाद (मध्यप्रदेश) के उत्सव पर ले गये। किन्हीं कारणों से वहां की व्यवस्था उन्हें सन्तोषजनक नहीं लगी। अत: उन्होंने मुझे उक्त गुरुकुल में प्रविष्ट तो नहीं कराया, परन्तु मेरा विधिवत् उपनयन संस्कार सम्पन्न कराया। संभवत: उस समय गुरुकुल के आचार्य श्री पं० रामचन्द्रजी थे।

गुरुकुल सान्ताक्रुज (बम्बई) भेजना—उस समय सान्ताक्रुज बम्बई के सुरम्य स्थान में एक अच्छा गुरुकुल चल रहा था। उसमें मुझे प्रविष्ट कराने के लिये 'कुंआ' (नीमाड़) के निवासी श्री देवदत्तजी (जो पिताजी के पास प्रथम महेश्वर निवास के समय पढ़ चुके थे और पिताजी के सत्सङ्ग से वैदिक धर्मानुयायी बन चुके थे) के साथ बम्बई भेजा। वार्षिक परीक्षा का अवसर होने से पिताजी को अवकाश नहीं मिल सका। श्री देवदत्तजी अपने और भाई के पुत्रों को गुरुकुल सान्ताक्रुझ में भरती कराने जा रहे थे।

इस समय मैं अपर प्राईमरी (चतुर्थ कक्षा) पास कर चुका था। मराठी और

१. कांग्रेस के इतिहास-लेखक श्रीपट्टाभी सीतारामैय्या ने लिखा है कि इस असहयोग आन्दोलन में ८० प्रतिशत आर्यसमाजी व्यक्ति थे।

गुजराती भाषा का भी मुझे कुछ परिज्ञान था। इस कारण उस समय प्रविष्ट होने वाले ३५ ब्रह्मचारियों में बौद्धिक परीक्षा में मैं सर्वप्रथम आया था, परन्तु यहां भी प्रवेश पाना विधाता को स्वीकार नहीं था। अतः जन्मजात पैरों की विकृति के कारण शारीरिक परीक्षा में डाक्टर ने अनुत्तीर्ण कर दिया। इस कारण मुझे इस गुरुकुल में प्रविष्ट नहीं किया।

श्री देवदत्तजी, जिनके साथ पिताजी ने मुझे भेजा था, बहुत आवेश में आ गये और उन्होंने डाक्टर से पूछा कि क्या इस बालक के पैर ठीक हो जायेंगे तो आप प्रवेश की अनुमति दे देंगे? डाक्टर के स्वीकार करने पर देवदत्तजी ने कहा मैं मौखिक आश्वासन नहीं चाहता, आप लिखित रूप में आश्वासन दें। बहुत कहने सुनने पर देवदत्तजी डाक्टर से लिखवाकर ही वहां से उठे। उसी दिन शहर में आकर लगभग ८-९ बजे रात को मुझे एक जर्मन सर्जन के पास ले गये और उसे सारी बात सुनाई। पहले तो डाक्टर ने भारतीयों को बहुत बुरा भला कहा और कहा कि क्या भारतीय डाक्टर इतना भी नहीं समझते कि पढ़ाई लिखाई का काम पैरों से किया जाता है या मस्तिष्क से? अन्त में देवदत्तजी ने डाक्टर से सर्जरी द्वारा मेरे पैर सीधे करने का अनुरोध किया तो डाक्टर ने कहा कि—'सर्जरी से पैर देखने में तो सीधे हो जायेंगे परन्तु इन पैरों में इतनी शक्ति नहीं रहेगी, जितनी परमात्मा ने इन टेड़े पांवों में दी है। इसलिये मेरा सुझाव है कि तुम पैर सीधे कराने के चक्कर में मत पड़ो।'

बम्बई से लौटकर देवदत्तजी ने सारी बात पिताजी को बताई और जर्मन सर्जन की सलाह भी बताई।

इस घोर अन्याय के विषय में पिताजी ने 'मन्त्रीजी, आर्य विद्यासभा, गुरुकुल सान्ताक्रुज, बम्बई को ४-४-२१ तथा २४-४-२१ को दो पत्र लिखे'[1], आर्य विद्या सभा के मन्त्रीजी का एक पत्र का अन्तिम हस्ताक्षर वाला अंश मिला है। गुरुकुल सान्ताक्रुझ के अधिष्ठाता का भी २७।४।१९२१ का कार्ड प्राप्त हुआ जिसमें पहले पत्र को मन्त्रीजी को भेजने की सूचना दी है तथा दूसरे पत्र को पुनः मन्त्री जी को भेजने की सूचना है।[2]

गुरुकुल कांगड़ी में प्रवेश के लिये प्रयत्न—इसी समय में पिताजी ने मेरे लिये गुरुकुल कांगड़ी के मुख्याधिष्ठाता को फाल्गुन कृष्णा ८, सं० १९७७ को पत्र लिखा।

---

१. ये पत्र तृतीय परिशिष्ट 'क' में संख्या १, २ पर देखें।
२. यह पत्र तृतीय परिशिष्ट 'क' में संख्या ३ पर देखें।

इसका उत्तर गुरुकुल कांगड़ी के मुख्याधिष्ठाता ने पत्रसंख्या ८६११ तिथि २५-११-१६७७ (=७ मार्च १६२१) द्वारा दिया 'इस वर्ष नये बालकों का चुनाव समाप्त हो गया है अब आप आगामी वर्ष पौष मास में प्रार्थना पत्र भेजें।'[1] दूसरे फाल्गुन कृष्ण १४-१६७७ के पिताजी के पत्र के उत्तर में २-१२-१६७७ के पत्र में गुरुकुल कांगड़ी के अधिष्ठाता ने लिखा कि 'ब्रह्मचारियों का चुनाव हो चुका है अब प्रविष्ट होना कठिन है यदि आप १७०० रुपये एक साथ देने का अभिवचन दें तो पत्र का उत्तर आने पर विचार हो सकेगा[2]।' इसके उत्तर में पिताजी ने ४-४-२१ को एक विस्तृत पत्र लिखा[3] जिसका उत्तर प्राप्त न होने पर पुनः स्मरणार्थ २५-४-२१ को अधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी को पत्र लिखा।[4] इसका भी कोई उत्तर गुरुकुल कांगड़ी से प्राप्त नहीं हुआ।

श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी से पत्र व्यवहार—उक्त स्थिति में गुरुकुल कांगड़ी में मुझे प्रविष्ट कराने के लिये स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज को दो पत्र मैंने भेजे[5]। उनके उत्तर श्री स्वामीजी महाराज ने क्रमशः १८-३-७८[6] तथा २ आषाढ सं० १६७८ को दिये।[7] पिताजी ने जो पत्र लिखे थे उनके उत्तर श्री स्वामीजी महाराज ने २४-३-७८ तथा ७ आश्विन १६७८ के पत्रों में दिया।[8]

सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा से पत्र व्यवहार—पिताजी ने गुरुकुल कांगड़ी में मेरा प्रवेश कराने के लिये ज्येष्ठ कृष्णा ३ स० १६७८ को श्री मन्त्री, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली से अपील की। इस विषय में जो पत्रव्यवहार हुआ वह तृतीय परिशिष्ट (घ) में संख्या १-६ पर दिया जा रहा है। पाठक महानुभावों से प्रार्थना है कि वे इस प्रकरण का संख्या नं० ६ का पिताजी द्वारा लिखा गया

---

१. यह पत्र तृतीय परिशिष्ट 'ख' में संख्या २ पर देखें।

२. यह पत्र तृतीय परिशिष्ट 'ख' में संख्या ४ पर देखें।

३. यह पत्र तृतीय परिशिष्ट 'ख' में संख्या ५ पर देखें।

४. यह पत्र तृतीय परिशिष्ट 'ख' में संख्या ६ पर देखें।

५. मेरे द्वारा लिखे गये पत्रों की प्रतिलिपियां नष्ट हो गईं। द्वितीय पत्र में मैंने गुरुकुल कांगड़ी में प्रवेश न मिलने पर 'सत्याग्रह' करने के विषय में लिखा था।

६. श्री स्वामीजी के पत्रों पर दी गई तिथि विक्रम संवत् के सौर मास(प्रविष्टे) की हैं।

७. ये पत्र तृतीय परिशिष्ट 'ग' में संख्या १, २ पर देखें।

८. ये पत्र तृतीय परिशिष्ट 'ग' में संख्या ३, ४ पर देखें।

पत्र विशेष रूप से पढ़ें।[1] इससे पाठकों को पता चल जायगा कि आर्यसमाज की संस्थाओं और इनके अधिकारियों के व्यवहार से पिताजी कितने दुःखी थे।

गुरुकुल वृन्दावन में प्रवेश का प्रयत्न—'गुरुकुल सान्ताक्रुज' (बम्बई) और 'गुरुकुल कांगड़ी' से निराश होने पर 'गुरुकुल वृन्दावन' के अधिष्ठाता को मेरे प्रवेश के लिये पत्र लिखा[2]। गुरुकुल वृन्दावन से भी यही उत्तर प्राप्त हुआ—'इस वर्ष के लिये नवीन बालक दिसम्बर में दाखिल हो चुके हैं। अब अगले वर्ष[3] नवम्बर सन् २१ में दाखिल किये जायेंगे।'[4] ऐसा ही एक पत्र गुरुकुल वृन्दावन के अधिष्ठाता का २०-१-७८ का पत्र मिला।[5] इस पत्र के प्रत्युत्तर में पिताजी ने ११-६-२१ को गुरुकुल वृन्दावन के अधिष्ठाता को जो पत्र लिखा उसमें उन्होंने अपने उद्‌गार इस प्रकार प्रकट किये हैं—

'मैं यथाशक्ति मेरे ब्रह्मचारी के लिये कि वह गुरुकुल में शिक्षण [के] पर्याप्त उपाय कर चुका। अब निश्चय हो गया कि आर्यसमाज एक बिहड़ बन है उसमें मेरा रुदन किसी ने नहीं सुना, उस बन में कोई दयापूर्ण त्यागी भी नहीं था। मैं अभी कह नहीं सकता कि मेरा पुरुषार्थ बालक के लिये दूसरे प्रयत्न में लग जावे।'[6]

इस पत्र से मेरी शिक्षा के सम्बन्ध में प्रत्येक स्थान में जो बाधायें आईं और उनसे पिताजी को जो अत्यधिक मानसिक कष्ट पहुंचा उसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

पत्र के अन्तिम वाक्य **'मैं अभी कह नहीं सकता कि मेरा पुरुषार्थ बालक के लिये दूसरे प्रयत्न में लग जावे'** के अनुसार आर्य समाज की संस्थाओं से निराश होकर पिताजी ने सनातन धर्म के **'भरत महाविद्यालय'** ऋषिकेश के व्यवस्थापक के

---

१. इसके साथ ही इसी परिशिष्ट 'ङ' में संख्या ३ पर छपा गुरुकुल वृन्दावन के अधिष्ठाता को पिताजी का ११-६-२१ को लिखा पत्र भी पढ़ें।

२. पिताजी के पत्र की प्रतिलिपि प्राप्त नहीं हुई। इसका निर्देश बिना तारीख के गुरुकुल वृन्दावन से प्राप्त पत्र में मिलता है। द्र०—तृ० परि० 'ङ' का पत्र संख्या १।

३. अगले वर्ष से अभिप्राय विक्रम संवत् १९७८ से है। पिताजी ने पत्र सम्भवतः संवत् १९७७ के अन्त में लिखा होगा।

४. यह पत्र तृतीय परिशिष्ट 'ङ' में संख्या १ पर देखें।

५. यह पत्र तृतीय परिशिष्ट 'ङ' में संख्या २ पर देखें।

६. पूरा पत्र तृतीय परिशिष्ट 'ङ' में संख्या ३ पर देखें।

नाम पत्र लिखा।[1] भरत महाविद्यालय के व्यवस्थापक ने भी १८-६ २१ के पत्र में लिखा कि 'युधिष्ठिर के प्रवेश के विषय में असमर्थ हैं।'[2] इसके उत्तर में पिताजी ने २४-६-२१ को जो पत्र लिखा, उसका कुछ अंश इस प्रकार है—

'मेरे बालक युधिष्ठिर के प्रवेश विषय में आप समर्थ क्यों नहीं हैं ? कारण स्पष्ट करना था। मुझे शंका है कि मेरे आर्य्यसमाजी होने से कदाचित् आपने अस्वीकार किया हो।

अस्वीकृति से मुझे रुष्टता नहीं है और न गुरुकुलों के प्रति मैं कृतघ्न हो सकता हूं इसलिये कि केवल मेरे एक बच्चे के उन्नत स्वार्थ में बाधा दी है। प्रसङ्ग आने से श्रीमान् की सेवा में (संक्षिप्त) निवेदन करने को मैं स्वतन्त्र हूं कि जब कि २ आर्य गुरुकुलों ने शुल्क देते भी कुछ नियमों के आश्रय से न्यायोचित स्वाधीनता को तिलांजलि देकर पांवों की थोड़ी व्यंगता और आयु की थोड़ी अधिकता बताकर एक अबोध वरन् मुख्यकर दयापात्र अपग भिक्षार्थी के लिये दया और शिक्षण पूरित हाथ नहीं बढ़ाया !!! मेरी बारम्बार प्रार्थना और अनथक उद्योग पर तनिक भी विचार नहीं किया। तो हे उदार महानुभाव ! मेरे चित्त के पश्चात्ताप का प्रमाण आप विचारिये, न मैं समाजसेवा योग्य हुआ और न मेरी संतान ही होवेगी ऐसी दशा में मेरा एकाएक बालक कोई भी तो धर्म्म को ग्रहण करे कि निराधर्म्मी ही रहे!!! अथवा कि जनसेवार्थ मुसलमानी एवम् क्रिश्चियन धर्म्म का शिक्षण पावे जो कि थोड़े विनय से ही मिल सकता है।

महाशय, मैं अवश्य ही आर्य्यसमाजी हूं परन्तु मुझे सनातन धर्म्मावलम्वी (जिससे मेरा कुटुम्ब पृथक् नहीं है) तो क्या मुसलमान ईसाई से भी द्वेष नहीं रहा हैं। जैसा कि हम शिक्षकों का कर्तव्य है और फिर आज राष्ट्रीय मेल के विपरीत मेरा सामर्थ्य नहीं। मेरा बच्चा सनातत धर्म्मी बनेगा तो उसके भविष्य जीवन के लिये वह स्वतन्त्र है; मत धारण में पिता पुत्र का सम्बन्ध बाधक नहीं हो सकता। उचित विचार करके आज्ञा दीजिये, अथवा शंका प्रश्न[3] करके निवर्तन करियेगा (यद्यपि मेरा प्रयत्न उधर से अभी हटा नहीं है)।[4]

प्रतीत होता है कि भरत महाविद्यालय में पिताजी का आर्यसमाजी होना बाधक बना। इससे ऊपर उद्धृत पत्रांश से पिताजी के उदार विचारों की झलकी पाठकों

---

१. यह पत्र तृतीय परिशिष्ट 'च' में संख्या १ पर देखें।
२. पूरा पत्र तृतीय परिशिष्ट 'च' में संख्या २ पर देखें। ३. 'शंका समाधान'।
४. पूरा पत्र तृतीय परिशिष्ट 'च' में संख्या ३ पर देखें।

को अवश्य मिलेगी। पिताजी कहा करते थे कि यदि परस्पर सौहार्द और प्रेम हो तो एक घर में सनातनी, आर्यसमाजी, जैन, बौद्ध, ईसाई, मुसलमान सभी सम्प्रदायों के व्यक्ति इकट्ठे रह सकते हैं और अपने-अपने मतों का पालन कर सकते हैं।

सनातन धर्म के भरत महाविद्यालय में भी प्रवेश न पाने पर पिताजी ने १६-८-२१ को मेरीशिक्षा के सम्बन्ध में 'वैदिक दीन बालाश्रम कासगंज' के प्रबन्धक के नाम पत्र लिखा।[1] प्रबन्धकर्त्ता ने २२-८-२१ में 'विद्यार्थियों की संख्या पूरी हो गई' लिखकर प्रविष्ट करने से निषेध कर दिया।[2]

पिताजी के मेरे शिक्षासम्बन्धी पत्रव्यवहार के संग्रह में एक पत्र 'कार्यालय आर्य प्रतिनिधि सभा नरसिंहपुर' के महामन्त्री का ५-४-२१ का प्राप्त हुआ है।[3] उससे विदित होता है कि पिताजी ने मार्च २१ में कोई पत्र लिखा था। इस पत्र की प्रतिलिपि संग्रह में मुझे प्राप्त नहीं हुई। मेरा अनुमान है कि पिताजी ने गुरुकुल होशङ्गाबाद में थोड़े समय के लिये मुझे गुरुकुल में रखने के लिये निवेदन किया होगा। नरसिंहपुर पुराने तथा वर्तमान मध्य प्रदेश में है। उसकी आर्यप्रतिनिधि सभा के अधीन ही गुरुकुल होशङ्गाबाद है।

आशा की एक किरण–मेरी शिक्षा के सम्बन्ध में अनेक बाधायें उपस्थित होने पर अन्त में एक आशा की किरण दिखाई दी। पिताजी ने ६-६-२१ को किसी व्यक्ति से सुना कि 'विरजानन्द साधु आश्रम' (काली नदी) हरदुआगंज (अलीगढ़) में एक विद्यालय खोला गया है। इस पर पिताजी ने श्री आचार्य विरजानन्द आश्रम (अलीगढ़) के नाम ६-६-२१ को मुझे प्रविष्ट कराने के लिये पत्र लिखा।[4] १५-१६ दिन तक उत्तर प्राप्त न होने पर पुनः २२-६-२१ को दूसरा पत्र लिखा।[5] इसका भी उत्तर प्राप्त न होने पर पिताजी ने २७-७-२१ को तीसरा पत्र लिखा[6] अन्त में प्रबन्धकर्त्ता विरजानन्द साधु आश्रम का २६-४-७८ (=१५ अगस्त १९२१) का पत्र प्राप्त हुआ, जिसमें लिखा था—

---

१. यह पत्र तृतीय परिशिष्ट 'छ' में संख्या १ पर देखें।

२. यह पत्र तृतीय परिशिष्ट 'छ' में संख्या २ पर देखें।

३. द्र०—महामन्त्री आ० प्र० नरसिंहपुर का पत्र तृतीय परिशिष्ट 'ज' में संख्या १ पर।

४. यह पत्र तृतीय परिशिष्ट 'झ' में संख्या १ पर देखें।

५. यह पत्र तृतीय परिशिष्ट 'झ' में संख्या २ पर देखें।

६. यह पत्र तृतीय परिशिष्ट 'झ' में संख्या ३ पर देखें।

"श्रीमान् महाशयजी,

नमस्ते। पत्र आपके प्राप्त हुए। यद्यपि आपके पुत्र के सम्वन्ध में सर्वसम्मति कठिन सी प्रतीत होती है। परन्तु तो भी परीक्षाणार्थ आप उसे ला सकते हैं जैसा कि नियमों में है ही। परीक्षण में उत्तीर्ण तथा सर्व सम्मति होने पर वह प्रविष्ट हो सकेगा। आश्विन मास के अन्त में आश्रम का उत्सव होगा सो आप बालक को परीक्षणार्थ शीघ्र ला सकते हैं जिससे उत्सव तक पर्याप्त परीक्षण हो जायेगा।"[1]

उक्त पत्र के उत्तर में पिताजी ने भाद्र कृष्णा ६ सं० १९७८ के पत्र में आभार प्रदर्शन करते हुए मुझे लेकर उपस्थित होने की सूचना दी।[2] और पिताजी मुझे साथ लेकर ३ सितम्बर १९२१ को विरजानन्द आश्रम हरदुआगंज में उपस्थित हुए और प्रवेश के लिये प्रार्थनापत्र लिखकर दिया[3]।

मार्ग में राजा महेन्द्रप्रतापसिंह द्वारा संचालित शिल्पमहाविद्यालय मथुरा भी गये। वहां पर शिल्प-शिक्षा की ही प्रधानता थी। मथुरा से देहली आये और स्वामी श्रद्धानन्दजी से मिले। अभी तक पिताजी की यही इच्छा थी कि मुझे किसी प्रकार गुरुकुल कांगड़ी में प्रवेश प्राप्त हो जाये। स्वामी श्रद्धानन्दजी ने गुरुकुल कांगड़ी में प्रविष्ट कराने में अपनी असमर्थता प्रकट की। और विरजानन्द आश्रम हरदुआगंज में प्रविष्ट कराने की सम्मति दी।

इसके अनन्तर का मेरा वृत्तान्त मेरे आत्म-परिचय में देखें। यहां इतना ही लिखना उचित प्रतीत होता है कि पांवों के टेड़ेपन के कारण और आयु कुछ अधिक होने के कारण पूर्वोक्त गुरुकुलों में मुझे प्रवेश नहीं मिला। इसका उन दिनों पिताजी को और मुझे खेद अवश्य रहा; परन्तु **'परमेश्वर जो करता है उसमें ही मानव की भलाई है'** इस उक्ति के अनुसार अन्य गुरुकुलों में प्रवेश न पाना मेरे जीवन के लिये सर्वाधिक उन्नति का कारण बना।

सामाजिक कार्य में प्रवृत्त होना

मुझे विरजानन्द आश्रम हरदुआगंज में पहुंचाकर पिताजी मेरी ओर से निश्चिन्त हो गये। अतः अब वे सामाजिक कार्यों में विशेष रूप से रुचि लेने गगे। पिताजी

---

१. पूरा पत्र तृतीय परिशिष्ट 'झ' में संख्या ४ पर देख।

२. यह पत्र तृतीय परिशिष्ट 'झ' में संख्या ५ पर देखें।

३. यह प्रार्थना पत्र तृतीय परिशिष्ट 'झ' में संख्या ६ पर देखें।

का सामाजिक कार्यक्षेत्र दो भागों में बंटा हुआ था। एक था ऋषिदयानन्द द्वारा पुन: प्रवर्तित वैदिक-धर्म का प्रचार, तथा दूसरा सामान्य हिन्दुसमाज में व्याप्त हीन-भावना अथवा मुसलमानों से दबे रहने के दब्बूपन को दूर करना। वैदिक-धर्म के प्रचारार्थ पिताजी ने क्या कार्य किया इसका वर्णन अन्त में किया जायेगा। यहां सामान्य हिन्दुसमाज की हीनभावना या दब्बूपन को दूर करने के लिये जो कार्य किये उन्हीं का वर्णन किया जाता हैं। इसका कारण यह है कि इन्हीं कार्यों के कारण पिताजी का निरन्तर स्थानान्तरण होता रहा एवं उनके निधन का कारण बना।

मानवता या बन्धुत्व की भावना—यद्यपि पिताजी अपने व्यक्तिगत रूप में ऋषि दयानन्द के मन्तव्यों के दृढ़ अनुयायी थे, तथापि उनका हृदय मानवता अर्थात् आत्मवत् सर्वभूतेषु की उत्कृष्ट भावना से ओत-प्रोत था। हिन्दुसमाज से तो आर्य-समाज का चोली-दामन का संम्बन्ध है ही, जैनियों ईसाइयों और मुसलमानों के प्रति भी वे मानवता अथवा बन्धुत्व की भावना रखते थे। वे प्राय: कहा करते थे कि **'यदि परस्पर निश्छल अथवा नैसर्गिक प्रेम हो तो विभिन्न मतों के अनुयायी आर्यसमाजी हिन्दु ईसाई और मुसलमान एक कुटुम्ब में रह सकते हैं, चाहे उनके मन्तव्यों में कितनी ही भिन्नता क्यों न होवे। विभिन्न मन्तव्य एक कुटुम्बत्व में बाधक नहीं हो सकते।"**

इतनी उदार भावना रखने पर भी पिताजी असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे (अन्त-रङ्ग=समीपवर्ती के कार्य के प्रति बहिरङ्ग=दूरवर्ती कार्य असिद्ध=न करने योग्य होता है) न्याय के अनुसार वे ईसाई मुसलमानों की अपेक्षा भारतीयता की दृष्टि से हिन्दुसमाज को अन्तरङ्ग, और ईसाई मुसलमानों के समाज को बहिरङ्ग मानते थे, क्योंकि ईसाई मुसलमानों के मतों का स्रोत विदेशों में है। इसलिये उनका प्रेम भारत की अपेक्षा प्राय: स्व-स्व मतों के उद्गमदेशों और उन देशों के स्वमतानुयायियों के प्रति अधिक है। सामान्य नियम के अपवादरूप में अनेक ईसाई और मुस्लिम भाई ऐसे थे और हैं, जिनको अपनी भारतमाता के प्रति असाधारण प्रेम था और है, उनके प्रति प्रत्येक आर्य सदा नतमस्तक रहा है, और रहेगा। अगले प्रसङ्गों को उन मुसलमान भाइयों, जिनकी विचार धारा को ब्रिटिश साम्राज्य ने तथा उनके मुल्ला मौलवीयों ने उकसाकर भारतीयता से दूर कर दिया था, की दृष्टि को ध्यान में रखकर पढ़ें।

---

१. इस सम्बन्ध में हम 'नन्दबाई' के काल में लिखे गये एक मुसलमान मास्टर का पत्र उद्धृत करेंगे, उससे पाठकों को भली प्रकार ज्ञात हो जायेगा कि पिताजी के मुस्लिम भाईयों के साथ कितने मधुर सम्बन्ध थे।

इस दृष्टि को ध्यान में रखने पर अगले प्रसङ्ग की सामयिकता का बोध सहज में हो जायेगा।

यह वह समय था जब महात्मा गांधी के सत्याग्रह आन्दोलन से उद्विग्न हो कर ब्रिटिश सरकार 'फूट डालो और राज्य करो' की भावना से अपने राज्य की सुरक्षा के लिये मुसलमानों के साथ विशेष अनुग्रह का व्यवहार करने लगी थी। उसने मुसलमानों को सिर पर चढ़ा कर सारे देश में हिन्दु-मुसलमानों में दंगे करवाये। मुसलमान कुछ तो अपनी पुरानी सल्तनत के मद में थे ही, उन्हें विदेशी शासन का और प्रश्रय प्राप्त हो गया। बहुसंख्यक हिन्दु, जो मुसलमानीं राज्य के काल से ही दबते चले आये थे, अत्यन्त हीन भावना से ग्रस्त थे। अतः किसी कस्बे वा नगर में हिन्दुओं का दो तिहाई बहुमत होने पर भी वे मुसलमानों से सदा दबे रहते थे और डरते थे। ऐसे समय में हिन्दुओं में आत्मविश्वास की भावना जागृत करना परमावश्यक था। इसी दृष्टि से पिताजी ने आर्यसमाज का कार्य करते हुए हिन्दुओं में जागृति उत्पन्न करने का भी भरसक प्रयत्न किया।

पिताजी ने १९-१२-१२ की डायरी में तत्कालीन हिन्दुओं के विषय में लिखा है—

'गांव में मुसलमानों की अपेक्षा हिन्दुओं ने अधिक तावूट (=ताजिये) बनाये। मुसलमानों के १५ होंगे तो हिन्दुओं के ५०।'

इन ताजियों को हिन्दु कहार लोग उठाया करते थे। अतः पिताजी ने कहारों में स्वात्माभिमान जागृत करने का प्रयत्न किया। इसके लिये कहारों के पंचों को समझाया, इस पर कहारों में कुछ जागृति आई। कहारों की पंचायत ने इस विषय में जो निर्णय लिया, वह इस प्रकार है—

कहार पञ्चायत का निर्णय

"आज ता० २३ जून १९२६ को समस्त पंच कहार मु० महेश्वर इकट्ठे होकर के पंचायत की कि अपनी हालत को देखते हुए अपन लोग अपने धर्म से व कर्म से गिरते जाते हैं, और दरिद्रता में रहते हैं इसके लिये बात-चीत होकर और जाति सुधार नियमावली की पुस्तक की मर्यादा का पालन करते हुए नीचे लिखे प्रस्ताव करते हैं—

१— अपने लोगों में शराब पीने की आदत बहुत पड़ गई है जिसके कारण बहुत नुकसान होता है। इसलिये शराब का पीना बंद किया जावे और जो किसी को अधिक रफत होवे वो १ साल तक में छोड़ देवें।

२—जाति सुधार की नियमावली की पुस्तक में जन्मजात बाहर करने के दंड लिखे हैं उनको हम हलका करते हैं वक्त पर पंचलोग सोच-विचार करके दंड देवेंगे. क्योंकि जन्मजात बाहर करने का दंड देने से स्त्री-पुरुष वेधर्मी बन जाते हैं. इससे जात को नुकसान पहुंचता है.

३—अपने गांव में जैनी लोग रहते हैं और उनके यहां अपने को काम-काज के लिये जाने का काम पड़ता है. ये लोग हत्या से परहेज करते हैं इसके लिये उनके यहां धार्मिक काम पर जब जावें तब उस दिनभर अपनी जात में हिंसा नहीं करना चाहिये.

४—ताजियों के दिनों में मुसलमान लोग अपने लोगों से ताजिये उठवाते हैं. मालूम हुआ कि ताजियों में वे लोग उनके पीरों की कबरों के नमूने रखते हैं और कितने ही मनों की तादाद में बोझा ताजियों का बना करके उसमें वो रखते हैं, ओर दो रातभर गांव भर में गश्त कराते हैं. यह काम करना मनुष्य की शक्ति से बाहर है. इसके सवाय गश्त करने के समय अपन लोगों पर मुसलमान लोग ढोरों सरीखा जोर जुलम करते हैं. अपनी जात में दूसरों की जात का मुर्दा उठाना मना है. इस हालत में अब अपने को जाहिर हो चुका है कि ये लोग ताजियों में अपने पीरों की कबरों के नमूने रखते और वो लोग दुःख मनाते हैं. और तीजा वगैरः नुगते सरीखे कार्य करते हैं. इसलिये वो कबरों के नमूने उठाना अपनी जात के रिवाज के बाहर है. इसलिये अब अपन लोगों ने ताजिये नहीं उठाना.

इस प्रमाणे ये ठहराव सब पंचों ने किये हैं कलम १ में १ साल की मुद्दत दी है. और कलम २, ३ और ४ का पूरा २ पालन अभी से किया जावे जो पालन नहीं करे उसको ११ दिन तक जात से बंद रखके ५१)रु० दंड किया जावे।"[1]

पञ्चायत के उक्त फैसले के अनुसार सन् १९२६ में कहारों ने मुसलमानों के ताजिये उठाने से मना कर दिया। कई दिन तक ताजिये जहां के तहां पड़े रहे। सरकारी तन्त्र भी इस अचानक उत्पन्न हुई स्थिति से तंग हो गया। उसने कहारों से यह जानने का बहुत प्रयत्न किया कि उन्हें इस काम के लिये किसने उकसाया है। कहारों का उत्तर होता था कि हमारे गुरुजी ने हमें यह शिक्षा दी है कि 'जब हम अपने सजातीय भाइयों के मुर्दे उठाकर भी स्नानादि करते हैं तो दूसरी जाति के मुर्दों का उठाना बहुत बुरी बात है, तुम्हें यह नहीं करना चाहिए। मुसलमान

---

१. पंचायत के उक्त निर्णय की जो प्रतिलिपि पिताजी के संग्रह में मुझे प्राप्त हुई, उसे यहां छापा है।

रामचन्द्र रामनारायण अ० मा० मण्डलेश्वर को गौरीलाल की जगह तुम्हारी स्कूल में बदला है उनको फौरन रिलिव्हर की बाट न देखते रिलिव्ह कर दो और रिपोर्ट करो।

सही (अंग्रेजी में)
हेड इन्स्पैक्टर आफ स्कूल्ज
होल्कर स्टेट, इन्दौर
२६-७-२६"

इसके नीचे हेडमास्टर ए० व्ही० स्कूल महेश्वर ने लिखा है—

'अंग्रेजी हुक्म का यह हिन्दी अनुवाद रा० रा० गौरीलाल आचार्य को सूचनार्थ दिया गया ता० २६-७-२६।

D. R. Maheshwarkar
Head Master
A. V. School
Maheshwar'[1]

हेड इन्स्पैक्टर शिक्षा विभाग इन्दौर का खरगोन तबदीली का आज्ञा पत्र प्राप्त होने पर पिताजी ने २९-७-२६ को हेडमास्टर ए० व्ही० स्कूल महेश्वर को जो पत्र लिखा, उसकी प्रतिलिपि इस प्रकार है—

'२९-७-२६

श्रीमान् हेडमास्टर साहब
ए० व्ही० महेश्वर,

सा० नमस्कार

मेरा तबादिला खरगोन किये जाने के बारे में जो आज्ञा नं० ७७९८/२६-७-२६ आई है उससे पता चलता है कि महेश्वर मजिस्ट्रेट साहब ने कहारों के बयान लेकर कोई कार्यवाही के साथ जनरल इन्स्पैक्टर जनरल साहब पुलिस की तरफ भेजे हैं।

महेश्वर मजिस्ट्रेट साहब ने मेरे खिलाफ कलम क्यों उठाई इसका खुलासा मुझे

१. इसके नीचे पिताजी के हाथ का लेख है—'७-८-२६ को खरगोन में ए० व्ही० स्कूल के हिन्दी प्रथमाध्यापक का चार्ज लिया।'

आपको देने का है और खुलासे वार जवाब देने के लिये महेश्वर मजिस्ट्रेट साहब ने जो कार्यवाही भेजी होवेगी उसकी नकलें मुझे मिलना जरूर है। इसलिये वो नकलें इन्स्पैक्टर जनरल साहब की तरफ से मंगवाई जाकर मुझे मिलें ताकि मैं अपना खुलासे वार जवाब सेवार्पण करूं मैं वेकसूर कलंकित किया गया हूं इसलिये नकलें मिलने पर कुल हाल रोशन करूंगा।

गौरीलाल आचार्य
ए० व्ही० स्कूल महेश्वर'

हेडमास्टर ए० व्ही० स्कूल महेश्वर ने पिताजी के इस पत्र को अपनी नीचे लिखी टिप्पणी के साथ नं० ३६३/२-८-२६ को हेडइन्स्पैक्टर शिक्षाविभाग इन्दौर को भेजा। टिप्पणी इस प्रकार है—

'मा० गौरीलाल ने यह जो रिपोर्ट दिया है वो दरअसल गौर करने के लायक है क्योंकि इनके खिलाफ जो कार्यवाही हुई होगी वो इनको नकलें मिलने पर मय-कैफियत के ये डिपार्टमैंट को सूचित कर सकेंगे।'

पत्र का एक मास तक उत्तर न आने पर पिताजी ने खरगोन जाकर वहां के हेडमास्टर के माध्यम से ७-९-२६ को जो पत्र भेजा, वह इस प्रकार है—

'सेवा में

श्रीमान् मान्यवर हेडमास्टर साहब
ए० व्ही० स्कूल—खरगोन

सा० नमस्कार

श्रीमान् हेडमास्टर साहब महेश्वर ने नं० ३६३/२-८-२६ द्वारा मेरी एक प्रार्थना मेरी बदली के कारण विषय की श्रीमान् महोदय हेडइन्स्पैक्टर साहब की सेवा में भेजी थी।

एक मास होने पर भी मुझे अभी तक नकलें नहीं मिली हैं। इसके लिये मैं स्मरणार्थ यह विनय अर्पण करता हूं।

माना कि कदाचित् मुझे श्रीमान् मजिस्ट्रेट साहब महेश्वर के आगे अपील करना पड़ेगी और उसके लिये कानूनन कोई अवधि न रहेगी तो ऐसी दशा में नकलें देरी से मिलने बावत कोई को जिम्मेदार होना होगा।

श्रीमान् मजिस्ट्रेट साहब महेश्वर से जो जजमेंट उन्होंने सर्व मामले के निर्णय

में लिखा होगा उसी की अक्षरशः नकल मंगा के कृपापूर्वक प्रदान करियेगा कि मुझे आगे कार्य चलाने का मार्ग सूझ पड़े संभव है कि इनकी तरफ की नकल तो शीघ्र मिलेगी।

गौरीलाल रघुनाथ आचार्य
असिस्टेंट मास्टर महेश्वर'

इस पत्र का भी दो मास तक उत्तर प्राप्त न होने पर पिताजी ने ७-११-२६ को पुनः हेडमास्टर ए० व्ही० स्कूल खरगोन के द्वारा दूसरा पत्र भेजा, जो इस प्रकार है—

'स्थान इन्दौर (छुट्टी में) ७-११-२६

सेवा में—

श्रीमान् मान्यवर हेडमास्टर साहिब
ए० व्ही० स्कूल खरगोन

सा० नमस्कार

विनय है कि महेश्वर के हेडमास्टर साहब ने नं० ३६३/२-८-२६ के द्वारा एक प्रार्थना और आपकी सेवा द्वारा रिमाइन्डर ता० २९-७-२६ मेरी बदली के कारण विषय की श्रीमान् महोदय हेड इन्स्पैक्टर साहब की सेवा में भेजी थी।

परन्तु इस सिलसिले को उठे हुए ३ मास से अधिक अवधि होने पर भी मुझको उत्तरस्वरूप एक आज्ञा भी नहीं प्रदान हुई—नकलें मिलना तो दूर रहा. ऐसी दशा में मेरी मांग कृपया पूर्ण की जाय ताकि बारंबार स्मरण दिला २ के श्रीमान् की सेवा में परिश्रम देने का अवसर न रहे। वि० विनय

गौरीलाल रघुनाथ आचार्य
असि० मास्टर खरगोन'

इस प्रकार पिताजी के द्वारा मजिस्ट्रेट साहब महेश्वर के कार्यवाही की नकल मंगवाने के लिये ३ बार शिक्षा विभाग इन्दौर को लिखने पर, जो अंग्रेजी में उत्तर प्राप्त हुआ,[1] उसका साथ में जो हिन्दी अनुवाद दिया गया, वह इस प्रकार है—

---

१. मूल अंग्रेजी में लिखा पत्र चतुर्थ परिशिष्ट में संख्या ३ पर देखें।

'रा० रा० गौरीलाल रघुनाथ आचार्य इन्होंने उनके विषय महेश्वर मजिस्ट्रेट साहब ने जो कार्यवाई की है उसकी नकल मांगने के वास्ते ता० २९-७-२६ को जो अर्ज किया था वह आपने हमारे यहां १०३६/१७-९-२६ भेजा है। उस पर से आपको लिखने में आता है की आप उनको यह कहला भेजो की '**मजिस्ट्रेट साहिब ने उनके उपर कोइ भी चार्ज (जुर्म) नहीं लगाया** और उनकी इस मामले में कोई भी कारवाइ और करना व्यर्थ होगी। उनकी बदली जो खरगोन को की गइ है **वह बतौर सजा के नहीं लेकिन विद्या खाते के सुभीत के लिये की गई है।**

इन्स्पैक्टर साहेब विद्या खाता इन्दौर
२५-९-१९२६'

'नं० ५६१/१३-१-२७

रा० हेडमास्टर सो० महेश्वर इन्होंने रा० गौरीलाल जी आचार्य इन्होंने जो अर्ज भेजा था उस पर रा० गौरीलालजी को सुचना देने के लिये रा० रा० हेडमास्टर सो० खरगोन इनकी तरफ यह नकल भेजी गई है।

(S. D. D. M. God stay
Inspector of School)
दक्षिण विभाग होल्कर स्टेट इन्दौर'

उक्त सारे प्रकरण का जिस सुखद रूप में अन्त हुआ, यह पूर्व उद्धृत पत्र से स्पष्ट है। परन्तु हेडइन्स्पैक्टर शिक्षा विभाग इन्दौर ने मजिस्ट्रेट महेश्वर की कार्यवाई के आधार पर पिताजी पर जो अनेक दोष लगाये थे, उसी शिक्षा विभाग के इन्स्पैक्टर के द्वारा यह लिखना कि 'मजिस्ट्रेट साहब ने उनके ऊपर चार्ज नहीं लगाया' यह एक दुमुहीं सी बात है। इसका कारण संभवतः यह प्रतीत होता है कि इन्दौर राज्य के अधिकारी मुसलमानों की भड़की हुई भावना को शान्त भी करना चाहते थे और मुसलमानों के व्यवहार से क्षुब्ध होने के कारण राज्य की हिन्दु प्रजा में नवचेतना का प्रयत्न करने वाले व्यक्ति को दण्डित भी नहीं करना चाहते थे।

'आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान व मालवा' अजमेर के मन्त्री श्री सुरजकरण शारदा का ७ मई १९२७ का एक पत्र पिताजी के संग्रह में मिला है।[2] उससे विदित

---

१. हमने महत्त्वपूर्ण अंश काले टाइप में छापा है।
२. यह पत्र चतुर्थ परिशिष्ट में संख्या ४ पर देखें।

होता है कि महेश्वर के काण्ड की और खरगोन बदली होने की सूचना पिताजी ने मन्त्री 'आ० प्र० सभा राजस्थान, मालवा' को दी थी।

खरगोन (७-८-२६ से ७-११-२८ तक)

पिताजी ने खरगोन बदली का आदेश[1] पाकर २९-७-२६ को महेश्वर की शाला का चार्ज दिया और ७-८-२६ को खरगोन में शाला का चार्ज संभाला।

खरगोन की स्थिति—खरगोन उस समय एक बड़ा कस्बा था। उसे एक छोटा नगर भी कह सकते हैं। यह 'कुन्दा' नाम्नी नदी के किनारे बसा हुआ है। मुसलमानों के राज्य में यह नीमाड़ जिले का मुख्यालय था और इन्दौर राज्य में भी यही नीमाड़ का मुख्यालय रहा। यहां मुसलमानों की आबादी हिन्दुओं से आधी है अर्थात् एक तिहाई मुसलमान और दो तिहाई हिन्दु हैं। यहां के मुसलमानों का अल्प संख्या में होते हुए भी हिन्दुओं पर बहुत दबदबा था। हिन्दु लोग उनसे डरते थे। कुन्दा नदी के पार निर्जन स्थान में ईदगाह बनी हुई है, जहां मुसलमान ईद की नमाज पढ़ने प्रति वर्ष जाया करते हैं। शहर में उनकी छोटी-बड़ी कई मस्जिदें हैं। कुन्दा नदी के किनारे दो-तीन छोटे बड़े मन्दिर और घाट भी हैं। शहर दो भागों में बंटा हुआ है, एक पुराने परकोटे के अन्दर है, और दूसरी नई आबादी परकोटे से बाहर है।

हिन्दुओं में भय व्याप्त हुआ—पिताजी की खरगोन बदली होने का समाचार तत्काल खरगोन पहुंच गया। उससे वहां के मुसलमानों में कुछ उत्तेजना बढ़ी और हिन्दु लोग डर गये। जब पिताजी खरगोन पहुंचे तो बहुत प्रयत्न करने पर भी डर के मारे किसी हिन्दु ने उन्हें किराये पर मकान नहीं दिया। लगभग १५-२० दिन तक ए० व्ही० स्कूल के एक कमरे में ही डेरा डाले रहे। इस बीच किसी अध्यापक ने कहा कि यहां कोई भी हिन्दु मुसलमानों के डर से आपको मकान किराये पर न देगा। आप बाहर की बस्ती में जिसमें रघुवंशी ठाकुर रहते हैं, उनसे मेल जोल करें और उनकी पीठ ठोकें, तो वहां आपको मकान आसानी से प्राप्त हो जायेगा। इस प्रकार एक रघुवंशी ठाकुर शिवराजसिंह ने अपना मकान किराये पर दिया और अन्त तक पिताजी इसी में रहे। पिताजी खरगोन के बहुसंख्यक हिन्दुओं के डरपोक स्वभाव से बहुत दुःखी हुए। इसीलिये उन्होंने सोचा कि यहां के हिन्दुओं में भी

---

१. मूल अंग्रेजी में लिखा आदेश पत्र चतुर्थ परिशिष्ट में संख्या १ तथा २ पर देखें। अंग्रेजी के आदेश पत्र का जो हिन्दी अनुवाद दिया गया था, उसे पूर्व पृष्ठ ६९-७० पर उद्धृत कर चुके हैं।

जागृति उत्पन्न करके हिन्दुओं को मुसलमानों के भय से मुक्त करना होगा। इसी दृष्टि से बाहर की आबादी के हिन्दुओं विशेषकर रघुवंशी ठाकुरों से मेल-जोल बढ़ाया। प्रचार के लिये 'आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान व मालवा' से उपदेशक भेजने को लिखा।

रघुवंशी ठाकुरों पर पिताजी के विचारों का बहुत प्रभाव पड़ा और अनेक नवयुवक उनके कहे अनुसार कार्य करने को तैयार हो गये।

मेरा खरगोन जाना—विरजानन्द आश्रम की संचालिका (सर्वहितकारिणी सभा अमृतसर) के सदस्यों में फूट पड़ जाने के कारण आश्रम की व्यवस्था बिगड़ गई थी। इस कारण पूज्य गुरुवर्य ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु १३-१४ विद्यार्थियों को लेकर काशी चले गये थे। साथ में पं० शङ्करदेवजी भी थे। पं० शङ्करदेवजी सन् १९२७ के पूर्वार्ध में बीमार हो गये। वे चिकित्सा के लिये श्री डाक्टर महावीरसिंहजी जो औरङ्गाबाद (हरदुआगंज) के ठाकुर खमानसिंह के पुत्र थे, के पास गुना (मध्यप्रदेश) जाना चाहते थे। उनके साथ गुरुजी ने मुझे गुना पहुंचाने के लिये भेजा।[1] मैं उन्हें गुना पहुंचाकर पिताजी से मिलने के लिये खरगोन चला गया। वहां कुछ दिन रहकर वापिस नरसिंहपुर में महेश्वर के पूर्व अध्यापक श्री रायसिंहजी और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती नर्मदादेवीजी जो कार्य से मुक्त हो चुके थे, से मिलकर वापस काशी पहुंचा। उस समय तक खरगोन में कोई घटना घटित नहीं हुई थी।

आगे लिखी जा रही घटनाओं की पृष्ठभूमि—आगे जिन विशेष घटनाओं का उल्लेख किया जायेगा उनकी पृष्ठभूमि पूज्य पिताजी के २५-१०-२८ को मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान व मालवा को लिखे पत्र से विदित होती है। इस पत्र[2] के ऊपर **'केवल स्मरणार्थ'** लिखकर जो अंश भेजा गया था, वह इस प्रकार है—

"इसके साथ में 'पुरा'[3] और नगर की वर्तमान परिस्थिति इस प्रकार है कि **उपाकर्म पर एक मन्दिर में हनुमान् की भी मूर्ति टूटी, न हिन्दु जनता नें वरन् मन्दिरपति सेठजी ने [न] कोई कार्यवाई की, न पुलिस ने अपेक्षा की।** इसके दूसरे दिन मालियों ने अपने हनुमान् मन्दिर में रामनाम सप्ताह बैठाया, आठवें दिन हनुमान् जलूस की कठिनाई से आज्ञा प्राप्त कर निकाला। जनता पर भय छाया था। ४० मनुष्यों से जलूस प्रारम्भ हुआ, किन्तु जब उसी सर्राफा बाजार की

---

१. सम्भवत: सन १९२७ का अप्रेल का महिना था।

२. यह पत्र पञ्चम प्ररिशिष्ट में संख्या २ पर देखें। अगला उद्धृत अंश इसी पत्र के साथ अलग से लिखा था।

३. नगर से बाहर की बस्ती।

मसजिद के सम्मुख, जहां वीर सूवा बलवंतसिंह पर अहिल्योत्सव में मुसलमानों का आक्रमण हुआ था। पौण घंटे तक सड़क पर झालर शंख बजाये ढोल पर अखाड़े के खेल हुए, सेवा समिति आर्यसमाज सभासद् (ओ३म् झंडे) साथ थे। परिणाम हुआ कि ब्राह्मण वैश्य मण्डल का भय साहस के रूप में परिणत हुआ, मूर्ति खण्डन के ३-४ [दिन] पश्चात् ईदगाह फूटी मिली। शंका से मुकदमा श्री प्रधानजी और प्रहलादसिंह पर चल रहा है। भाद्र बदि १२ को अहिल्योत्सव में उत्सवकमेटी के निमंत्रण से समाज भी पूरे ठाठ से पहुंचा। प्रचार अखाड़े और भजनों से किया। शुदि ११ को डोलग्यारस की उत्सव कमेटी के निमंत्रण से समाज ने अधिक विस्तार में प्रचार के कार्य किये। श्री छत्रसिंहजी को डि० सुपरिंटेंडेंट ने डी० आई० जी० को कहकर गिरफतार कराया इसके पूर्व बार-बार छेड़ा भी था। ये डि० सु० के प्रयत्न से श्रद्धानन्द उत्सव का नगर कीर्तन रोका गया था। इनके मन में तरक्की की लालसा का एक उपाय यह भी था कि बार-बार समाज को छेड़ कर बलवा करा देना। सरकारी कर्मचारी आफिसरों में डि० मजिस्ट्रेट क्रिश्चियन,तहसीलदार मुसलमान, पुलिस सब इन्स्पैक्टर (न्यायी थे) बदल के मुसलमान आनेवाले हैं। डि० सुपरिंटेंडेंट चौबे, मुसलमानवत् है। मेरी महेश्वर से बदली हुई थी। उस मुकद्दमे में वहां भी इनका हाथ था। परन्तु पश्चात्ताप मिला। समाज तो इनके विघ्नों से अधिक अग्रसर होता हुआ इनको आशीस दे रहा है। भादों शुदि १४ को डी० आई० जी० के प्रयत्न से मजिस्ट्रेट सा० की कचेरी में पेशी लगाई गई। व्यर्थ ५ बजे तक यहीं रुकवाया, जिसमें गणपति का जलूस हमारे विना शांति से निकल जावे, यह भ्रम हानिकारक उनके लिये था। पुरे के लोग सेवा समिति समाज अधिक महाजन अखाड़े उत्सव में न पहुंच सके, जलूस छोटा रहा। पुलिस की निन्दा होती रही। परस्पर के मौखिक घर्षण से विजय दशमी पर संगठन अधिक जोरों से कार्य रूप में दीख पड़ा। जनता समाज से इन दो मास में अति प्रसन्न हुई है। वैश्य जाति का साहस युवकों में बढ़ चला है। परसों मुसलमान मोटर ड्राइवर को क्षत्री बच्चे के पांव पर पहियां फेर देने पर वैश्यों ने उसे पकड़ा, मोटर रोकी, सर्जन पुलिस को बुलाया बच्चे को दुकान पर सेवा में लिया। मियां को अन्य मियांओं के देखते-देखते पीटा भी बताते हैं। यह अपूर्व दृश्य वैश्यों के लिये था। रेवाड़ी रख देने और हड़ताल करने विचारों को सा०[1]...... [वन्द कराया]।"

---

१. यहां से आगे कुछ पाठ कागज फटने से नष्ट हो गया है। [ ] कोष्ठक का पाठ हमने बढ़ाया है।

ऊपर उद्धृत पत्रांश में ईदगाह फूटी मिलने का वर्णन आया है। उसी का आगे वर्णन किया जाता है।

ईदगाह को साफ करना—पिताजी ने रघुवंशी क्षत्रिय नवयुवकों के सहयोग से कुछ विशेष कार्य करने का संकल्प किया। तदनुसार उसमें सबसे पहले नगर से बाहर 'कुन्दा' नदी के पार विद्यमान ईदगाह को साफ करने की योजना बनाई। यहां पर ईदगाह के नाम पर एक दिवार मात्र थी। अपनी पूरी योजना बनाकर पिताजी कुछ नवयुवकों को साथ लेकर किसी दिन चांदनी रात में ईदगाह पहुंच गये। रातों-रात ईदगाह को गिराकर उसके बड़े पत्थर और मलवे को कुन्दा नदी के जल में जहां नदी गहरी थी, फैंक दिया। सारा कार्य ऐसी योजनाबद्ध रीति से किया गया कि किसी को कानों कान खबर नहीं पड़ी और रातभर में सारा कार्य पूरा हो गया। अगले दिन मुसलमानों को ज्ञात हुआ कि हमारी ईदगाह गिरा दी गई है। उन्होंने उसके विरोध में मजिस्ट्रेट के यहां पर अर्जी दी मजिस्ट्रेट ने स्थान पर जाकर इन्क्वारी की। वहां ईदगाह होने का कोई निशान मजिस्ट्रेट को उपलब्ध नहीं हुआ, उल्टा मुसलमानों से पूछा यदि यहां तुम्हारी ईदगाह थी, तो उसका मलबा ईंट पत्थर आदि कुछ तो उपलब्ध होना चाहिये था। कुछ हिन्दुओं से भी मजिस्ट्रेट ने पूछताछ की। कुछ लोगों ने बयान दिया कि साहब हमने तो यहां ईदगाह कभी देखी ही नहीं और कुछ ने दबी जबान से ईदगाह की स्थिति स्वीकार करते हुए भी सबूत न मिलने के कारण अपना बयान इस प्रकार दिया कि जिससे उनके ऊपर कोई आपत्ति न आवे। इस घटना से हिन्दुओं में पर्याप्त जागृति और आत्मबल की भावन बढ़ी। इसके पश्चात् पिताजी नगर में जिधर भी जाते प्रायः हिन्दु दुकानदार हाथ जोड़कर पिताजी का अभिवादन करने लगे।

कबर का साफ करना—पिताजी नवयुवकों में बढ़े हुए आत्मबल से कोई ऐसा काम भी कराना चाहते थे, जिससे मुसलमान अत्यन्त मायूस हो जायें। इसलिये मुसलमानी मोहल्ले के अन्दर बनी हुई एक कबर को साफ करने की योजना बनाई। इसके लिए बहुत दिन पूर्व से उन्होंने तैयारी की। कबर के चबूतरे का जितना आकार था उसको ध्यान में रखते हुए लकड़ी के फट्टों पर मिट्टी डाल कर दूब तैयार की गई। जब जमने लायक दूब तैयार हो गई तो एक रात ५० ६० नवयुवकों को साथ लेकर मुस्लिम मुहल्ले में स्थित कबर को साफ किया गया। सावधानता के लिये कबर की ओर आने वालों रास्तों पर पिस्तौलधारी नवयुवकों को खड़ा कर दिया। रात के १२ बजे के बाद कबर को साफ कर मलवे को उठाकर चबूतरे पर पहले से तैयार की हुई दूब बिछा दी गई और एक पत्थर को सिन्दूर से

रंग कर स्थापित कर दिया। प्रातः काल उषाकाल में ही २-४ व्यक्तियों ने जाकर घण्टे घड़ियाल बजाकर पूजापाठ आरम्भ कर दिया।

घण्टे घड़ियाल की आवाज सुनकर मुसलमान चकित हुए और वहां आकर जब उन्होंने देखा कि वहां न कबर थी और न उसका नामो निशान। मुसलमानी मुहल्ले में इस कबर के होने से इसको साफ करने में इतनी सावधानी बरती गई कि कबर तोड़ने का शब्द भी न हो और मलबा भी वहां से पूरी तरह हटा दिया जाये। इस घटना से मुसलमानों में अत्यन्त रोष उत्पन्न हुआ। उससे पहले की ईदगाह तोड़ने की घटना का केस तो अभी चल ही रहा था कि उनके मुहल्ले में ही उक्त घटना घटित हो गई। मुसलमानों ने उसके विरुद्ध पुनः मजिस्ट्रेट के यहां अपील की और काफी मुसलमान जलूस बनाकर मजिस्ट्रेट की कचहरी में पहुंचे। मजिस्ट्रेट ने उन्हें स्थान पर आकर इन्क्वायरी करने का वचन देकर वापस लौटाया। अगले दिन मजिस्ट्रेट इन्क्वारी करने के लिये उक्त स्थान पर गये। वहां बहुत से मुसलमान और हिन्दु जमा हो गये थे। मजिस्ट्रेट ने मुसलमानों से पूछा कि यहां कबर कब तक देखी थी। मुसलमानों ने कहा 'कल शाम तक थी'। एक ने शाम को कबर पर दिया जलाने का भी उल्लेख किया। मजिस्ट्रेट ने पूछा क्या कबर के चबूतरे पर पहले से ही दूब लगी हुई थी। मुसलमानों ने कहा 'साहब चबूतरा पक्का था'। तब मजिस्ट्रेट ने मुसलमानों से पूछा कि यदि कल रात तक चबूतरा पक्का था और दूब नहीं थी, (जो कि कम से कम दो महीने की होगी) यहां कैसे लग गई। मुसलमानों के पास इसका कोई उत्तर नहीं था। हिन्दूओं से पूछा कि 'क्या तुमने कभी कबर देखी थी ?' हिन्दुओं ने उत्तर दिया हम इस मुहल्ले में आते जाते ही नहीं हैं, अतः यहां कबर थी या नहीं, यह हमें मालूम ही नहीं है। मजिस्ट्रेट ने अपनी इन्क्वारी रिपोर्ट तहकीकात के लिये आगे भेज दी।

इस प्रकार मुसलमानों को इस घटना में भी मुंह की खानी पड़ी और इसका बदला लेने के लिये अन्दर ही अन्दर तैयारी करने लगे। उक्त चबूतरे पर शाम सवेरे पूजा होती रही। इसमें मुसलमान बाधा न डालें इसलिये पुलिस के जवान तैनात कर दिये। तत्पश्चात् हिन्दु भी बड़ी मात्रा में शाम सवेरे आरती के समय पहुंचने लगे। यह घटना सन् १९२८ की संभवतः जनवरी मास की थी। इससे रात के लम्बे होने के कारण कार्यकर्त्ताओं को पर्याप्त समय मिल गया।

ताजिये का जलूस—उक्त घटना के कुछ मास अनन्तर ताजिये का त्यौहार आया। इस अवसर पर मुसलमानों ने बदला लेने की पूरी योजना बना ली थी। उधर हिन्दु भी इस बात से शकित थे कि इस अवसर पर मुसलमान कुछ न कुछ

उपद्रव अवश्य करेंगे यह सोचकर वे भी पूरी तरह से तैयार थे। ताजिये का जलूस सदा से ही पुराने शहर से निकलकर नई आबादी में होता हुआ कुन्दा नदी पर जाया करता था। इसी मार्ग पर पिताजी का मकान भी पड़ता था। मुसलमानों ने उपद्रव करने की दृष्टि से सदा से निर्धारित मार्ग से चलकर आगे मार्ग बदलने का प्रयत्न किया। उस समय रघुवंशी सशस्त्र नवयुवक विभिन्न स्थानों पर विद्यमान थे। जब मुसलमानों ने आगे चलकर मार्ग बदलना चाहा तो क्षत्रिय नवयुवकों ने उन्हें रोका और अपने पुराने मार्ग से ही ताजिये ले जाने के लिये कहा। परन्तु मुसलमान तो इस अवसर पर हिन्दुओं से बदला लेने के लिये उतारू थे। इसलिये उन्होंने हिन्दुओं की बात नहीं मानी और नये रास्ते से ताजिये ले जाने की जिद्द करने लगे। सुरक्षा की दृष्टि से इस जलूस के साथ कुछ पुलिस कर्मचारी भी साथ थे। उन्होंने भी उन्हें रोका। परन्तु मुसलमान अपनी जिद्द पर अड़े रहे। अन्त में जब मुसलमान नहीं माने तो ५ ७ क्षत्रिय नवयुवकों ने जलूस को रोकने के लिये सड़क की नाकाबन्दी कर दी और जब इस पर भी जलूस आगे बढ़ा तो उन्होंने पिस्तोलों और बन्दूकों से मुसलमानों पर गोली चलाना शुरू कर दिया। इस अप्रत्याशित आक्रमण से उपद्रव करने कीनियत से आये हुए मुसलमान भी हतप्रभ रह गये। उन्होंने भी गोलियां चलाईं। इस झगड़े में १५-२० मुसलमान मारे गये और अनेक घायल हुए। यह घटना पिताजी के निवास स्थान से कुछ आगे हुई थी। पिताजी स्थिति का जायजा लेने के लिये अकेले ही उस जलूस में चक्कर लगाते रहे, परन्तु किसी घोर विपत्ति को ध्यान में रखकर किसी मुसलमान ने उन पर आक्रमण नहीं किया। पिताजी प्रायः करके अपने साथ विष में बुझी कटार साथ रखते थे। उन्होंने भी यह निश्चय कर रखा था कि यदि किसी ने मुझ पर आक्रमण किया तो कम से कम २-३ मुसलमानों को मार कर ही मरूंगा (विष में बुझी कटार का साधारण घाव भी जान लेवा होता है) उन्हें यह आत्मविश्वास था।

इस महती घटना के कारण अनेक क्षत्रिय युवक पकड़े गये और उन पर मुकदमें चले। कइओं को १०-१२ वर्ष की सजायें भी हुईं।

मेरी दूसरी बार की खरगोन यात्रा—उक्त घटना के कुछ काल के पश्चात् ही सन् १९२८ के अगस्त के अन्त में या सितम्बर के आरम्भ में मैं पिताजी से मिलने खरगोन गया। उस समय पिताजी ने उक्त घटनायें मुझे सुनाईं थीं। मैं पिताजी के पास लगभग १५ दिन रहा। वहां से कसरावद[1] गया और आर० आर० व्यासजी

१. कसरावद दो हैं। छोटी कसरावद और बड़ी कसरावद। यहां बड़ी कसरावद अभिप्रेत है।

से मिला। वहां से महेश्वर आया और एक सुनार के घर, जो पिताजी का मित्र था, ठहरा। वहां श्री देवकृष्णजी हेडमास्टर तथा अन्य परिचितों एव अपने मित्रों से मिलकर वापिस अमृतसर अपने आश्रम में आ गया।

आर्यसमाज की स्थापना -खरगोन में किसी समय आर्यसमाज थी[1], परन्तु वह टूट चुकी थी। पिताजी ने प्रतिनिधि सभा से उपदेशकों एवं भजनीकों को बुलाकर आर्यसमाज की स्थापना की। साप्ताहिक अधिवेशन पिताजी के घर पर ही होते थे। जब मैं पिताजी के पास था, तब सभा की ओर से प्रचारार्थ पं० परमानन्दजी आये थे[2]। ये बहुत प्रभावशाली एवं मधुर वक्ता थे। उस समय खरगोन आर्यसमाज के प्रधान मूलचन्दजी थे।[3]

आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान मालवा की फाइल, जो मुझे देखने को मिली, उससे मुझे ज्ञात होता है कि खरगोन में १५-१२-१९४७ तक आर्यसमाज का कार्य यथावत् चलता रहा। इसके पश्चात् खरगोन में आर्यसमाज का कार्य कब बन्द हुआ, इसका मुझे ज्ञान नहीं। जब मैं सन् ७६ या ७७ में खरगोन गया था तब ज्ञात हुआ कि यहां न आर्यसमाज है और नहीं कोई आर्य व्यक्ति। मुझे यह जानकारी पोस्ट आफिस से मिली थी।

तीसरी बार खरगोन जाना—सन् १९५६ में पिताजी का चित्र प्राप्त करने के लिये मैंने महेश्वर और खरगान की यात्रा की। आशा थी कि स्कूल के उत्सव पर प्रतिवर्ष खींचे जाने वाले समुद्रित फोटो में कहीं से पिताजी का फोटो प्राप्त हो जायेगा। परन्तु फोटो कहीं से भी प्राप्त नहीं हुआ। यह यात्रा अत्यन्त संक्षिप्त थी। खरगोन में कुछ घण्टे ही ठहरा था इसलिये वहां की पुरानी क्रिया कलाप के सम्बन्ध

---

१. चतुर्थ परिशिष्ट में संख्या ४ पर छपे 'मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान व मालवा' के पत्र से ज्ञात होता है कि खरगोन में आर्यसमाज पहले से थी। हमारे विचार में वह टूट चुकी थी, केवल रजिस्टर में नाम दर्ज रहा होगा।

२. इसकी पुष्टि पिताजी के २५-१०-२८ के पत्र से, जो 'मन्त्री उपा० प्र० सभा' को लिखा था, से होती है। उसमें पण्डित परमानन्दजी के साथ दशांश भेजने का उल्लेख है।

३. यह २५-१०-२८ के मन्त्री आ० प्र० सभा को भेजे गये पत्र के साथ खरगोन समाज के सभासदों की सूची के अनुसार लिखा है। इस समय पुरुष और महिलाए मिलाकर ३२ सदस्य थे।

में जानने का कुछ भी प्रयत्न नहीं किया। महेश्वर में केवल उस माता से मिला, जो महेश्वर में पिताजी का भोजन बनाया करती थी।

चौथी बार खरगोन जाना—चौथी बार सन् ७७ या ७८ में मैंने अपनी पत्नी यशोदादेवी के साथ 'कुवां' के श्री देवदत्तजी (जिनके साथ पिताजी ने मुझे सान्ता-क्रुज गुरुकुल बम्बई भेजा था) से मिलने के उद्देश्य से नीमाड़ की यात्रा की। फरवरी के अन्त में प्रयाग में 'गंगाप्रसाद उपाध्याय पुरस्कार' प्राप्त कर सीधा खण्डवा पहुंचा। वहां से हम दोनों बस द्वारा खरगोन गये। खरगोन में 'जैन धर्मशाला' में दो दिन रहे। वहां पर आर्यसमाज का पता पूछने के लिये बहुत प्रयत्न किया, परन्तु सबने यही उत्तर दिया कि यहां आर्यसमाज नहीं है। अन्त में मैं पोस्टमास्टर साहब से मिला कि कृपया आप बतायें कि यहां आर्यसमाज या कोई आर्यसमाजी व्यक्ति है या नहीं? पोस्टमास्टर ने कहा 'आप कल दस बजे आवें, उस समय डाक बांटने वालों से इस सम्बन्ध में कुछ जानकारी हो सकेगी। मैं अगले दिन १० बजे पोस्ट आफिस गया। वहां एक पोस्टमैन ने बताया कि यहां आर्यसमाज नहीं है। पहले एक आर्यसमाजी व्यक्ति था, परन्तु वह भी यहां से ६-७ महीने हुए चला गया है। आप यदि आर्यसमाज के सम्बन्ध में कुछ जानकारी प्राप्त करना चाहते हो तो नदी के किनारे अमुक मन्दिर (मन्दिर का नाम स्मरण नहीं) में अमुक व्यक्ति (नाम स्मरण नहीं) रहता है, उससे मिलें। हम दोनों लगभग ३ बजे उस मन्दिर में पहुंचे और जिसका नाम बताया था, उस व्यक्ति से मिले। उनसे मैंने पिताजी के समय में घटित घटनाओं के बारे में जानकारी चाहते हुए पूछा कि क्या वह कबर, जिसको साफ करवा कर मूर्ति स्थापित कर दी थी, वह उसी रूप में है या वहां वापिस कबर बन गई है? उन्होंने बड़े खेद से कहा कि तुम्हारे पिताजी के खरगोन से जाने के पश्चात् हिन्दु समाज पूर्ववत् ही मुसलमानों के दबदबे में जी रहा है। जिन व्यक्तियों पर ताजिये के जलूस में हत्या के आरोप में मुकद्दमे चले थे, उनमें से भी अब कोई नहीं है। आपके पिताजी के कार्य का मूल्याङ्कन करने वाला और उनके साथ कार्य करने वाला मैं अकेला व्यक्ति रह गया हूं। यहां न कोई आर्यसमाज है न आर्यसमाजी हैं। मैं भी इस मन्दिर में सेवा करता हुआ जीवन यापन कर रहा हूं।

इस प्रकार पिताजी ने हिन्दुओं की मानसिक दासता को दूर करने के लिये खरगोन में जो कार्य किये थे, वे सब कुछ समय पश्चात् ही समाप्त हो गये। सारे खरगोन में पिताजी का परिचित एक ही व्यक्ति मुझे मिला। खरगोन की जानकारी से क्षुब्धचित्त होकर हम दूसरे दिन 'कुंआ' चले गये। वहां ५-७ दिन देवदत्तजी

के पास रहकर महेश्वर आये। और वहां मुख्य बाजार में नर्वदा की ओर जाने वाले मार्ग पर विद्यमान धर्मशाला में ३-४ दिन ठहरे। महेश्वर में भी कोई व्यक्ति ऐसा नहीं मिला जो पिताजी के सम्बन्ध में कुछ जानता हो। महेश्वर के प्रथम निवास काल में कन्यापाठशाला के सामने के जिस मकान में हम लोग रहते थे, उसे साथ वाले सर्राफ ने खरीद लिया था और उस स्थान पर नया मकान बनवा लिया था। उससे भेंट हुई, परन्तु उससे पिताजी के सम्बन्ध में कुछ विशेष जानकारी प्राप्त नहीं हुई। मेरे एक सहपाठी मुसलमान भाई का पता चला। मैं उनके घर गया। वहां जाने पर पता चला कि वे अहमदाबाद गये हुए हैं। इस प्रकार जिस कार्य से महेश्वर की यात्रा की थी उसमें सफलता नहीं मिली। पिताजी ने मुख्य बाजार से किले पर जाने वाले मार्ग पर आर्यसमाज के लिये जो स्थान ६००)रुपयों में खरीदा था उस पर सनातनी लोगों के बहकावे में आकर इन्दौर राज्य ने कब्जा कर लिया था।[1] उस समय वहां देश विभाजन के समय आये हुए किसी शरणार्थी का मकान खड़ा था। महेश्वर से इन्दौर और उज्जैन होते हुए हम दोनों वापस सोनीपत आ गये।

खरगोन की उक्त घटनाओं से भयभीत होकर[2] शिक्षा विभाग ने पिताजी की पीपलिया (परगना—जीरापुर)के लोअर प्राईमरी स्कूल में हेडमास्टर के स्थान पर बदली कर दी।[3] बदली के आदेश-पत्र (चतुर्थ परिशिष्ट संख्या ६) पर पिताजी ने स्व हस्त से लिखा है—'हाईस्कूल खरगोन का चार्ज दिया ७-११-२८; लो० प्रा० पीपलिया में चार्ज लिया २२-२१-२८)'।

पीपलिया स्कूल में बदली का आदेश मिलने पर पिताजी ने ७-११-२८ को 'डाइरेक्टर शिक्षा विभाग इन्दौर' को जो पत्र भेजा वह इस प्रकार है—

---

१. इस विषय में पिताजी के नन्दबाई वास के अनन्तर 'पिताजी द्वारा किये गये वैदिक धर्म के प्रचार कार्य' प्रकरण में विस्तार से लिखा जायेगा।

२. इसके परिज्ञान के लिये ५-११-१९२८ को 'मन्त्री, आर्यप्रतिनिधि सभा, राजस्थान व मालवा' के नाम लिखा गया पत्र (पञ्चम परिशिष्ट, संख्या ३) देखें।

३. पीपलिया बदली का सरकारी आदेश-पत्र संख्या ५५१६ ता० १-११-२८ का तथा हेडमास्टर खरगोन का ५-११-२८ का आदेश-पत्र चतुर्थ परिशिष्ट संख्या४,५,६ पर देखें।

ओ३म्

ता० ७-११-२८

सेवा में, श्रीमान् माननीय डाइरैक्टर साहब
शिक्षा विभाग—होल्कर (राज्य इन्दौर)
द्वारा, श्रीमान् हेडमास्टर साहब
श्री अहल्याबाई हाई स्कूल खरगोन

सादर नमस्ते

विनय है कि श्रीमान् की आर्डर नं० ७२/३१-११-२८ तथा पत्र नं० ५५१६/१-११-२८ परगने जीरापुर के पीपलिया स्कूल में मेरी बदली होने के विषय में मिली।

मेरी प्रार्थनाएं इन्दौर में बदली होने के लिये थीं। खेद के साथ विनय करना पड़ता है कि जिस शिक्षक ने एक सतत २० वर्ष नीमाड़ की अत्यधिक उष्णता और महर्घता में तप सहन करते विद्या-विभाग की सेवकाई करने में ही अपना सफल जीवन समझा हो उसके लिये इतना कड़ा प्रतिफल !!!

मुझे कभी ध्यान नहीं था कि स्वामी की ओर से सेवकों पर हृदय हीनता का भी व्यवहार किया जाता है। जिसके द्वारा एक अपंग सेवक कई दिनों और कई कोसों तक इतना सामान लेके जाने के लिये विवश किया गया है, अतः मुझे स्वाभाविकता से भ्रम हुआ है कि मेरे साथ न्याय नहीं किया जाता !!

पश्चात्ताप का स्थल होना चाहिए कि श्रीमान् का अद्भुत वात्सल्य एक कारण-वश निर्बुद्धि को अपने अपंग पांव को भी तोड़ देने की प्रेरणा कर रहा है कि "मैं ऐसी विकट आज्ञा के परिपालन करने में असमर्थ हूं।" कृपया एक बार पुनः विचार करने की आवश्यकता समझी जाय जैसा कि सबको सुभीत दिया जाता हुआ मैं देखता हूं !

सदा से आज्ञापालक—
गौरीलाल आचार्य
हिन्दी प्रथम सहायक शिक्षक
हाई स्कूल खरगोन

पिताजी के इस प्रार्थना पत्र पर कोई ध्यान नहीं दिया गया अतः विवश होकर उन्हें पीपलिया जाना पड़ा।

पीपलिया (२२-११-१९२८ से २१-५-३०)

पिताजी ने पीपलिया के लोग्रर प्राईमरी पाठशाला का चार्ज २२-११-१९२८ को लिया था।

पीपलिया की स्थिति—पीपलिया नाम के दो गांव हैं। एक अजमेर-खंडवा रेलवे लाइन पर 'भीलवाड़ा' और 'चित्तौड़गढ़' के मध्य 'पीपल्यारोड़' स्टेशन से कुछ दूर है (यह गांव भी उस समय इन्दौर राज्य में ही था) और दूसरा पीपलिया गांव, जिसमें पिताजी की बदली हुई थी, वह इन्दौर राज्य के जीरापुर परगने के अन्तर्गत था। पिताजी ने 'मन्त्री—आ० प्र० सभा राज० व मालवा' के नाम १७-११-२८ को 'इन्दौर छावनी' से जो पत्र लिखा था, उसमें पीपलिया की स्थिति का वर्णन इस प्रकार किया है—

"जीरापुर परगना एकला ही दूर है। उसमें ५-६ छोटी मोटी स्कूलें हैं। रतलाम से मथुरा जाते **'पचपहार'** स्टेशन (शामगढ़ और कोटा के मध्य) से दक्षिण २२ कोस गाड़ी (=बैल गाड़ी) का मार्ग है। इधर भूपाल रेल में सुजालपुर स्टेशन से ३०-३२ कोस मोटर और गाड़ी मिलके पीपलिया है।"[1]

पीपलिया का पोस्ट आफिस उस समय माचलपुर था।

पीपलिया में कब तक पिताजी कार्य करते रहे, इसका ज्ञान सर्विस बुक की पूर्व (पृष्ठ ३३-३४) छापी हुई प्रतिलिपि से नहीं होता है। क्योंकि वह सर्विस बुक की नकल पीपलिया में चार्ज लेने की तारीख पर समाप्त हो जाती है। पीपलिया से नन्दवाई बदलने का जो आदेश-पत्र पिताजी के संग्रह में मिला है, उस पर अन्त में पिताजी ने अपने हाथ से लिखा है—

चार्ज दिया पीपलिया स्कूल को २१-५-३०
चार्ज लिया नन्दबाई स्कूल का ४-६-३०

इससे ज्ञात होता है कि पीपलिया में पिताजी लगभग १ वर्ष ६ मास रहे थे।

विशेष—महेश्वर और खरगोन की घटनाओं से इन्दौर राज्य के शिक्षाधिकारी कितने परेशान हो गये थे इसका अन्दाजा इसी से लगाया जा सकता है कि जिस व्यक्ति ने कई वर्ष तक ए० व्ही० स्कूल और हाई स्कूल में हिन्दी प्रथम अध्यापक के रूप में कार्य किया हो और जिसे सरकार ५० रुपये मासिक वेतन देती हो, उसे सुदूर

---

१. पूरा पत्र पञ्चम परिशिष्ट में संख्या ४ पर देखें।

के अत्यन्त वीहड़ मार्ग वाले[1] पीपलिया के लोअर प्राइमरी (दूसरी कक्षा) के स्कूल में बदला गया, जिसमें कार्य करने वाले का वेतन उस समय २०-२५ रुपये मासिक था।

पिताजी ने मुझे सुनाया था कि मैंने शिक्षा विभाग को लिखा था कि 'जहां २०-२५ रुपये का अध्यापक कार्य कर सकता है वहां ५० रुपये पाने वाले को भेजने से राज्य की आर्थिक हानि ही होती है।' इसके उत्तर में शिक्षा विभाग से लिखा गया कि 'हमने शाला की उन्नति को ध्यान में रखकर आपकी बदली की है।' यह बात पिताजी संभवतः फरवरी १९३५ में नन्दबाई में जब मैं पिताजी के पास था, सुनाई थी। इसका सम्बन्ध 'पीपलिया' से था अथवा 'नन्दबाई' से मुझे स्मरण नहीं।

पीपलिया में रहते हुए भी पिताजी ने अपना सामाजिक कार्य जारी रखा। उस समय की पीपलिया की किसी घटनाविशेष का परिज्ञान तो नहीं हो सका, परन्तु पं० भागीरथ उपाध्याय का पीपलिया से ३०-६-१९३० को लिखा गया जो एक पत्र पिताजी के पत्रसंग्रह में मिला है, उससे जाना जाता है[2] कि सन् १९३० में मुहर्रम के समय मुसलमानों की ओर से झगड़ा किया गया, उसका बीज सन् १९२९ के मुहर्रम के समय वा उससे पूर्व बोया जा चुका था। उसमें पिताजी का हाथ अवश्य रहा होगा।

प्रतीत होता है कि पिताजी ने पीपलिया में भी हिन्दु समाज के मनोन्नयन के लिये कुछ प्रयत्न किया था। उसी के सम्बन्ध में शायद मुसलमानों की ओर से शिक्षा विभाग को लिखा गया होगा (मुसलमान खरगोन की घटनाओं से तो परिचित थे ही) अथवा शिक्षा विभाग को ही इसकी कोई भनक कान में पड़ गई होगी। कुछ भी कारण होवे, शिक्षा विभाग ने पिताजी की बदली पीपलिया से भी अधिक बीहड़ मार्ग वाले नन्दबाई ग्राम में कर दी।[3] यह इन्दौर राज्य का काला पानी था।

नन्दबाई (४-६-३० से २५-१२-३५)[4]

पिताजी ने पीपलिया से बदल कर नन्दबाई की शाला का चार्ज ४-६-३० को लिया था।[4]

---

१. द्र०—पूर्व पृष्ठ पर उद्धृत 'मन्त्री आ० प्र० सभा राज० मालवा' का १७-११-२८ को लिखे पत्र का छापा गया अंश।

२. यह पत्र पञ्चम परिशिष्ट में संख्या ५ पर देखें।

३. पीपलिया से नन्दबाई की बदली का आदेश-पत्र द्वितीय परिशिष्ट संख्या १ पर देखें।

४. नन्दबाई चार्ज लेने की तारीख द्वितीय परिशिष्ट में संख्या २ पर छपे

नन्दबाई की स्थिति—नन्दबाई के आस-पास के कुछ ग्राम ही इन्दौर राज्य के अन्तर्गत थे। यह भूभाग मेवाड़ के दक्षिण में स्थित है। वहां से जो समीपतम रेलवे स्टेशन गंगराड़ है, वह लगभग २८ मील है। चित्तौड़ स्टेशन लगभग ३५ मील पर है। यहां जाने के लिये किसी भी स्टेशन से उस समय तक कोई सड़क या कच्चा मार्ग नहीं था। मार्ग का अधिकांश भाग पर्वतीय है। इसलिये यहां जाने का और व्यापार का एक मात्र साधन ऊंट थे। यदि सवारी वाला विशेष ऊंट मिल जाता था तो गंगराड़ से नन्दबाई पहुंचने में ४-५ घण्टे और चित्तौड़ से नन्दबाई पहुंचने में ६-७ घण्टे लगते थे। यदि बोझा ढोने वाला ऊंट ही प्राप्त होता तो २-३ घण्टे अधिक लगते थे। पर्वतीय मार्ग में शेर आदि हिंसक प्राणी भी रहते थे। अत: यात्रा दिन में ही की जाती थी। मार्ग में डाकुओं का डर भी सदा बना रहता था। यह स्थान इन्दौर राज्य का काला पानी कहाता था।

नारू रोग का घर—नन्दबाई का जल अत्यन्त दूषित है। इस कारण इस इलाके में 'नारू' की भयंकर बीमारी बहुत होती है। नारू एक प्रकार का क्षुद्र जन्तु है, जो पीने के पानी के साथ मनुष्य या पशुओं के पेट में चला जाता है और वहां पर बढ़ता रहता है। रक्त के साथ यह शरीर में गति करता रहता है। किसी भी अंग में कहीं पर भी किसी कारण गति में अवरोध होने पर शरीर के उस भाग पर पहले फोड़ा उभरता है और उसके पकने के पश्चात् यह कीट अपना मुंह निकालता है। इसकी अधिक लम्बाई २ हाथ तक भी देखी गई है। मुंह निकालने पर इसके शरीर से बाहर निकले भाग को यत्नपूर्वक, किसी तिनके पर लपेटते रहते हैं। प्रतिदिन जितना-जितना भाग बाहर निकलता है, उसे लपेटते जाते हैं। यह जन्तु बारीक धागे जैसे आकार का होता है। यदि असावधानी से निकलते-निकलते टूट जाये तो यह आगे पीछे सरक कर किसी और स्थान पर अपने निकलने का मार्ग बनाता है। यह रोग बहुत ही दुःखदायक है। कभी-कभी तो इसको पूरा-पूरा निकलने में ३-४ महीने भी लग जाते हैं। नन्दबाई में तो इस रोग का इतना प्रकोप था कि जब मैं १९३४ के अन्त में नन्दबाई गया था, तब एक व्यक्ति के एक साथ ६ नारू देखे थे, एक उसकी जीभ में भी था।

इस रोग से बचने का एक मात्र उपाय है पानी को वस्त्र से छानकर पीना। जल के दोषों से बचने के लिये ही आद्य स्मृतिकार मनु ने लिखा है--'वस्त्रपूतं जलं पिबेत्'

'आदेश-पत्र' पत्र के अन्त में पिताजी ने स्वयं लिखा है। २५-१२-३५ को पिताजी का नन्दबाई में निधन हुआ था।

पिताजी इसी स्मृति वचन के अनुसार अपने नन्दवाई निवास काल में खद्दर के चार तह के कपड़े से जल को छानकर उपयोग में लेते थे। यदि किसी के घर जाना भी होता था तो वहां भी अपने वस्त्र से छानकर जल पिया करते थे। इस सावधानता के कारण लगभग साढ़े पांच वर्ष नन्दवाई में रहने पर भी उन पर नारू रोग का आक्रमण नहीं हुआ।

यह प्रदेश इन्दौर राज्य के अन्य प्रदेशों की तुलना में शिक्षा में अत्यन्त पिछड़ा हुआ था। इसलिये यह स्थान पिताजी को सामाजिक कार्यों की दृष्टि से अनुपयुक्त था। फिर भी यथासंभव पिताजी वैदिक-धर्म का प्रचार करते रहे। दो तीन सज्जन वैदिक-धर्म के अच्छे अनुयायी बन गये थे। उनमें सेठ नगजीरामजी प्रमुख थे। नगजीरामजी यावज्जीवन 'गुरुकुल चित्तौड़' की सहायता करते रहे। कुछ वर्ष पूर्व ही उनका स्वर्गवास हुआ है।

पिताजी के नन्दवाई के सुदीर्घ निवास काल में मैं केवल एक बार ही सन् १९३४ के अन्त में नन्दबाई गया था। इसका प्रधान कारण यह था कि मैं सन् १९३२ से १९३४ तक काशी में मीमांसादि शास्त्रों का अध्ययन कर रहा था।

नन्दबाई की यात्रा—निरन्तर ३ वर्ष काशी में रहने के कारण सन् १९३४ के उत्तरार्ध में मेरा स्वास्थ्य बहुत गिर गया और कुछ ज्वर भी रहने लगा। पूज्य गुरुवर्य आदि सन् १९३४ के अन्त में मीमांसादि शास्त्रों का अध्ययन करके लाहौर गये। मैं उनसे पूर्व ही संभवतः नवम्बर १९३४ के अन्त में अथवा दिसम्बर के आरम्भ में पिताजी के पास नन्दबाई चला गया था।

नन्दबाई उस इलाके का मुख्य स्थान था। इसलिये वहां हस्पताल और छोटी कचहरी भी थी। पिताजी ने मुझे वहां के डाक्टर को दिखलाया। डाक्टर ने कहा कि इन्हें टी॰ बी॰ (तपैदिक) हो गया है। चिकित्सा न करके डाक्टर ने सुझाव दिया कि इन्हें लाहौर भेज दें, क्योंकि वहां का जलवायु यहां की अपेक्षा उत्तम है। संभव है कि वहां के जलवायु से रोग शान्त हो जाये। मैं नन्दबाई लगभग ढाई तीन मास रहा।

मेरे विवाह की चिन्ता—यत: मेरा अध्ययन काल समाप्त होने वाला था अतः पिताजी मेरे विवाह-सम्बन्ध के लिये कुछ समय पूर्व से ही अपने मित्रों को योग्य कन्या के विषय में लिखते रहे (यह पिताजी के संग्रह में प्राप्त पत्रों से ज्ञात हुआ है) इसी प्रयत्न के सिलसिले में पिताजी सन् १९३५ में होली से पूर्व कुछ दिनों की छुट्टी लेकर मुझे साथ लेकर बिरकच्यावास आये। गंगराड़ स्टेशन से रात की गाड़ी

पकड़नी थी, अतः तीसरे पहर लगभग ४ बजे नन्दबाई से पिताजी और मैं ऊंट पर बैठकर कुछ रात गये गंगराड़ पहुंचे। गंगराड़ से ५-६ मील पहले कुछ दूरी पर समानान्तर चलते हुए दो ऊंट दिखाई दिये। पिताजी को आशङ्का हुई कि कोई डाकू हमारे साथ चल रहे हैं। चांदनी रात थी। मैदानी इलाका था। अतः दूर की वस्तु भी दिखाई पड़ती थी। पिताजी ने उन ऊंट सवारों को डाकू समझकर अपनी मोटी बेंत को, जिसके सहारे वे चलते थे, इस तरीके से अपने कन्धे पर रख ली, जिससे देखने वालों को बन्दूक की प्रतीति हो। अस्तु दोनों ऊंट सवार चाहे डाकू रहे हों या सामान्य जन, हम सकुशल गंगराड़ स्टेशन पर पहुंच गये। और वहां से रेल में बैठ कर अगले दिन गांव पहुंचे।

आकस्मिक संयोग[1]—जब पिताजी और मैं गांव में थे तब एक दिन दो व्यक्ति जिनमें एक ब्राह्मण था और दूसरा वैश्य, सायंकाल कुछ अंधेरा हो जाने पर गांव पहुंचे। उन्होंने गांव के बाहर किसी व्यक्ति से पूछा— यहां कोई ब्राह्मणों का घर है ? तो उस व्यक्ति ने हमारे घर की ओर संकेत करके कहा कि यह पहला ही घर ब्राह्मणों का है। आगन्तुक व्यक्ति हमारे घर पर पधारे। सामान्य परिचय के अनन्तर उन्हें भोजन आदि कराने के पीछे पिताजी ने पूछा कि आप लोगों का आना कैसे हुआ ? तो उन्होंने कहा कि हमारे एक लड़का है, उसके लिये हम कन्या देखने के लिये यात्रा कर रहे हैं। कई स्थानों पर हमारा जाना हुआ। हमें ज्ञात हुआ कि आपके घर में एक कन्या है, उसी के सम्बन्ध में बात-चीत करने आये हैं। पिताजी ने उत्तर दिया कि हमारी एक कन्या है, परन्तु वह छोटी है और हम १२ वर्ष की आयु से पूर्व उसका विवाह नहीं करेंगे (उस समय शारदा एक्ट के अनुसार कन्या के विवाह की न्यूनतम अवधि १३ वर्ष निश्चित की गई थी)। तत्पश्चात् पिताजी ने पूछा—आपलोग कहां-कहां पर गये ? उसका विवरण देने पर पिताजी ने पूछा—आपको अपनी जाति की १६-१७वर्ष की कन्या के विषय में कहीं कुछ ज्ञात हुआ है? आगन्तुक महोदय ने बताया कि हम शाहपुरा गये थे। वहां एक कन्या थी। उसकी माता के स्वर्गवास के पीछे पिता तीनों भाई बहनों को निराधार छोड़कर कहीं चला गया। शाहपुरा राजदरबार में एक आदमी काम करता था, उसने लड़की को अपने परिवार में रख लिया और उसके छोटे भाई को शाहपुरा के छात्रावास में भर्ती करा दिया। दो तीन साल हुए वह व्यक्ति कहीं अन्यत्र चला गया है। लड़की भी उन्हीं के साथ हैं।

---

१. पिताजी के विवाह के सम्बन्ध में आकस्मिक घटना घटी थी, उसका वर्णन हम पूर्व पृष्ठ २८-२९ पर कर चुके हैं।

पिताजी का आर्यसमाज के क्षेत्र में कार्य करने वाले सभी व्यक्तियों से परिचय था। इसलिये उन्होंने अनुमान लगाया कि शाहपुरा से पंण्डित भगवान् स्वरूपजी न्याय-भूषण अजमेर आये हैं (जो इस समय वैदिक यन्त्रालय के प्रबन्धकर्त्ता हैं)। अतः जब छुट्टियां समाप्त हुईं तो पिताजी मुझे साथ लेकर पं० भगवान् स्वरूपजी से वैदिक यन्त्रालय में मिले और मेरे सम्बन्ध में बात-चीत की। न्यायभूषणजी ने कहा —पण्डितजी आपने कभी पहले इस विषय में चर्चा नहीं की। खेद है कि मेरे पास जो कन्या है, उसका सम्बन्ध कोटा में निश्चित हो चुका है। पिताजी ने उत्तर दिया युधिष्ठिर अध्ययन समाप्त करके ३-४ मास हुए लौटा है और मुझे भी आपके द्वारा पालित कन्या का ५-७ दिन पूर्व ही पता चला है। अतः पहले बात करने का कोई अवसर ही नहीं था। अब आप युधिष्ठिर के विवाह के लिये किसी अन्य योग्य कन्या का ध्यान रखें और मुझे समय पर सूचित करें। इसके पश्चात् पिताजी रात की गाड़ी से नन्दबाई के लिये रवाना हो गये और मैं लाहौर के लिये चल दिया।

विवाह के सम्बन्ध में विशेष निर्देश—गांव में रहते हुए पिताजी ने मुझ से कहा कि तुम गुरुजी की कृपा से भली प्रकार पढ़ लिख गये हो, तुम्हें विवाह-सम्बन्ध के विषय में कुछ कहना विशेष महत्त्व नहीं रखता, फिर भी मैं अपने अनुभव और वर्तमान सामाजिक स्थिति को देखते हुए इस सम्बन्ध में कुछ बातें बताना चाहता हूं—

१—जिस कन्या से विवाह हो उसके घर की आर्थिक स्थिति अपनी अपेक्षा कुछ हीन होनी चाहिए, जिससे लड़की हमारे घर में आकर अपने पिता के घर की अपेक्षा अधिक सुख महसूस करे। अपने से अधिक आर्थिक परिवार की लड़की से विवाह करने पर वह लड़की हमारे घर आकर असन्तुष्ट रहेगी और वह असन्तोष कलह का कारण बनेगा।

२—विवाह अपनी बिरादरी में ही करना मैं ठीक समझता हूं। तुम्हें तो पढ़े लिखे होने के कारण बिरादरी से बाहर भी अच्छी लड़की मिल सकती है, परन्तु दैव-दुर्विपाक से आगे यदि सन्तति अच्छी न हुई तो उसका विवाह होना कठिन हो जायेगा। जाति एक महासमुद्र है। इसमें सभी प्रकार के लड़के लड़कियों के विवाह की गुंजाइश रहती है।

३—लड़की का उच्चशिक्षा प्राप्त होना भी कई बार गृहस्थ के सम्बन्ध में झंझटें पैदा कर देता है। इसलिये शिक्षा की अपेक्षा कुलीनता पर अधिक ध्यान देना चाहिए।

विवाह-सम्बन्धी प्रयत्न के लिये छुट्टी लेना—पिताजी ने मेरे विवाह के सम्बन्ध

में प्रयत्न करने के लिये १७ जनवरी ३६ से ३१ मार्च ३६ तक की छुट्टी के लिये ता० ३०-११-३५ को शिक्षा विभाग इन्दौर को प्रार्थना-पत्र[1] भेजा था।

पिताजी का पुनः अजमेर आना—पूज्य गुरुजी नवम्बर १९३५ में मुझे और भाई धर्मदेवजी को साथ लेकर ऋषि दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य का हस्तलेखों से मिलान करने के लिये अजमेर आये। वहां लगभग डेढ़ मास रहे। गुरुजी ने अपने और मेरे अजमेर आने की सूचना पिताजी को दी। पिताजी १५ या १६ दिसम्बर १९३५ को गुरुजी से मिलने अजमेर आये और तीन दिन ठहरे।

कोटा का सम्बन्ध विच्छेद—पं० भगवान्स्वरूपजी के द्वारा पालिता कन्या का कोटा में जो सम्बन्ध निश्चित हुआ था, वह किसी कारण से टूट गया। गुरुजी के साथ मेरे अजमेर पहुंचने पर पं० भगवान्स्वरूपजी ने मेरे साथ विवाह करने के लिये कन्या से पूछा। संभवतः उसने पैरों में विकार होने के कारण मना कर दिया और भाई धमदेव के साथ सम्बन्ध करने की इच्छा प्रकट की। पं० भगवान्स्वरूपजी ने कहा कि तुम्हारे पिता को मैं वचन दे चुका हूं कि तुम्हारा विवाह आपकी बिरादरी में ही करूंगा। धर्मदेव तुम्हारी बिरादरी का नहीं है। इस कारण उसके साथ मैं तुम्हारा विवाह नहीं कर सकता। कन्या के निषेध कर देने के कारण पिताजी के अजमेर से आने पर भी पं० भगवान् स्वरूपजी ने कोई बातचीत नहीं की।

नन्दबाई लौटना—पिताजी जिस समय अजमेर आये थे उस समय उनकी गर्दन पर कुछ फुंसियां थी, जिन्होंने ऊंट की सवारी में अङ्ग-प्रत्यङ्ग के हिलने से जोर पकड़ लिया था और हल्का ज्वर भी हो गया था। मैंने पिताजी से निवेदन किया कि आप यहीं ५-७ दिन रहकर चिकित्सा करा लें और छुट्टी के लिये डाक्टरी सर्टिफिकेट भेज दें। मैं आपके पास रुक जाऊंगा। पिताजी ने उत्तर दिया कि अब पेंशन होने में कुछ महीने ही शेष हैं।[2] मैंने एक बार को छोड़कर कभी बीमारी की छुट्टी नहीं ली। अब अन्तिम दिनों में लेकर क्या करना। नन्दबाई में जो डाक्टर है वह अच्छा होशियार है और अपने साथ मेल रखता है, उससे चिकित्सा करा लूंगा। केवल २४ घण्टे की ही तो बात है। इस प्रकार पिताजी मेरा अनुरोध स्वीकार न करके १८ तारीख की रात की गाड़ी से नन्दबाई के लिये प्रस्थान कर गये। भारतीय जन-मानस के अनुसार कहना होगा कि आसन्न मृत्यु उनको नन्दबाई बुला रही थी।

---

१. यह प्रार्थना पत्र चतुर्थ परिशिष्ट में संख्या १२ पर देखें।

२. ५-७-३६ को पचपन वर्ष की आयु पूरी होने पर पिताजी का कार्यकाल समाप्त होना था।

हमारा लाहौर लौटना—अगले दिन १९ तारीख को गुरुजी के साथ हम लोग लाहौर के लिये रवाना हो गये और २१ ता० को प्रातः लाहौर पहुंचे।

पिताजी की बीमारी का तार—२२ दिसम्बर को श्री पं० ठाकुरदासजी (अमृत-धारा) ने लाहौर के आर्य विद्वानों को भोजन के लिये निमन्त्रित किया था। मैं भी गुरुजी के साथ उसमें सम्मिलित हुआ था। वहीं पर मेरी बाईं आंख बार-बार फड़कने लगी और मेरे मन में किसी अनिष्ट की शंका उत्पन्न हुई।[1] भोजन से निवृत्त होकर हम लोग रामलाल कपूर पेपर मर्चेन्ट की अनारकली दुकान पर पहुंचे। वहां गुरुजी को एक आया हुआ तार दिया गया। तार में लिखा था'**युधिष्ठिर को तत्काल भेज दें। २५ ता० को प्रातः ४ बजे गंगराड़ स्टेशन पर ऊंट तैयार मिलेगा**'। मैं अगले दिन नन्दबाई के लिये रवाना हो गया। २५ के सवेरे साढ़े चार बजे गंगराड़ पहुंचा। दिसम्बर का महीना होने से इस समय भी काफी रात थी। गाड़ी से उतर कर स्टेशन के दूसरी ओर जाकर जहां सवारी वाले ऊंट ठहरा करते हैं, ऊंट-वाले को ढूंढा। वह पेड़ के नीचे गहरी नींद में सोया हुआ था। इसलिये मुझे ढूंढने में लगभग पौना घण्टा लग गया। उसके साथ ऊंट पर बैठकर मैं नन्दबाई के लिये रवाना हुआ। अभी भी पर्याप्त अंधेरा था। यद्यपि ऊंटवाला मार्ग से भली-भांति परिचित था, परन्तु दैवयोग से कुछ दूर जाकर वह रास्ते से भटक गया। कुछ प्रकाश होने पर उसे ज्ञात हुआ कि मैं दूसरे रास्ते पर जा रहा हूं। पुनः ठीक मार्ग पर आने में ही लगभग १ घण्टा व्यर्थ में बीत गया। इस कारण मैं नन्दबाई लगभग ११ बजे पहुंचा। उस समय तक पिताजी का दाह-कर्म संस्कार हो चुका था और उपस्थित लोग वापिस जाने की तैयारी में थे। चिता के पास पहुंचकर मैंने पिताजी को मन में ही प्रणाम किया और १-२ काष्ठ उनकी चिता में रखें। पास में बहने वाली नदी में उपस्थित लोगों के साथ स्नान कर उनके साथ ही ग्राम में गया। गांव के तहसीलदार मुझे अपने घर ले गये। उनके यहां मैं ३ दिन रहा। तीसरे दिन अस्थिचयन करके और उसे नदी में प्रवाहित करके मैं पिताजी के शेष वेतन, इन्दौर राज्य कर्मचारी कुटुम्ब सहायक समिति से सदस्य के मरणोपरान्त दी जाने वाली राशि और बीमें की राशि के सम्बन्ध में कार्यवाई करने इन्दौर रवाना हो गया।

पिताजी की मृत्यु कैसे हुई—नन्दबाई के तहसीलदार साहब ने बताया कि

---

१. संभव है कुछ आर्य व्यक्ति इस भावी अनिष्ट की निमित्त-सूचना को अज्ञान-जनित भ्रम कहेंगे। परन्तु मैं इनकी सत्यता जीवन में कई बार अनुभव कर चुका हूं। भावी घटना के सूचक अनेक निमित्तों का प्राचीन आर्षग्रन्थों में उल्लेख पाया जाता है।

तुम्हारे पिताजी को अन्त समय तक कोई विशेष कष्ट नहीं था। गले की फुंसियों के जोर पकड़ने और पकने के कारण जब वे अजमेर से लौटे तबसे ज्वर था। मृत्यु के दिन सवेरे डाक्टर ने एक इन्जेक्शन दिया और उसके कुछ मिनटों के अनन्तर ही उनका शरीर छूट गया। हमें मुसलमान डाक्टर के ऊपर सन्देह हैं कि उसने जान-बूझकर कोई मारक इन्जेक्शन लगाया था। पण्डितजी की उसके साथ प्रायः करके इस्लाम के सम्बन्ध में बातें हुआ करती थीं और वह अन्दर ही अन्दर पण्डितजी से वैर रखता था। मैंने तहसीलदार साहब से कहा कि यदि आपको डाक्टर के ऊपर सन्देह था तो आपने पोस्टमार्टम क्यों नहीं कराया ? तहसीलदार साहब ने कहा कि पोस्टमार्टम के लिये लाश को ऊंट पर लादकर चित्तौड़ भेजना पड़ता और क्षत-विक्षत लाश पुनः यहां आती, इसलिये पोस्टमार्टम नहीं कराया। इन्दौर रवाना होने से पूर्व डाक्टर के पास पिताजी की मृत्यु का'प्रमाण पत्र'लेने के लिये गया। उसने प्रमाण पत्र में पिताजी की आयु ६० वर्ष लिखी। मैंने डाक्टर से कहा कि ५५ वर्ष में तो सरकारी नौकरी से निवृत्ति हो जाती है अभी उनके निवृत्ति-काल में ६ महीने बाकी हैं अतः कृपया इसे ठीक कर दीजिये। डाक्टर ने कहा यदि मृत्यु-प्रमाण-पत्र लेना है तो मैं यही आयु लिखूंगा। उससे प्रमाण पत्र तो ले लिया, परन्तु उसके व्यवहार से मुझे भी उसकी नियत में कुछ शंका उत्पन्न हो गई। इसी डाक्टर के साथ आगे इन्दौर में घटने वाली घटना से मुझे निश्चय हो गया कि डाक्टर ने जानबूझकर उन्हें मारा था। जिस डाक्टर के ऊपर पिताजी इतना विश्वास करते थे कि अजमेर में चिकित्सा करना स्वीकार न करके नन्दबाई आए, उसी ने उनके साथ विश्वास-घात किया। जो व्यक्ति महेश्वर और खरगोन की महत्तम घटनाओं का संचालक होकर भी अपनी बुद्धिमत्ता से निर्दोष छूट गया अर्थात् सर्विस में थोड़ा भी कलंक न लगने दिया, वह मुसलमान डाक्टर के दिखावटी प्रेम के वशीभूत होकर उसके ही हाथ मारा गया। इसीलिए नीतिकारों ने कहा है कि—**'विश्वस्ते नातिविश्वसेत्।'**

इस प्रकार सम्पूर्ण घटना के परिप्रेक्ष्य में यही सिद्ध होता है कि **पिताजी का वैदिक-धर्म के प्रचारार्थ बलिदान हुआ।**

विशेष घटना—मैंने २५ दिसम्बर को ही पिताजी के स्वर्गवास की सूचना 'महादेवजी इनाणी' को पत्र द्वारा बिरकच्यावास दे दी थी। इसके कुछ दिन पीछे ही दिसम्बर की अन्तिम तिथियों में 'आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान वा मालवा' का वार्षिक अधिवेशन हुआ था। उसमें 'आर्यसमाज बिरकच्यावास' के प्रतिनिधि के रूप में महादेव इनाणी सम्मिलित हुए थे। उन्होंने 'आ० प्र० सभा' के मन्त्री पं० भगवान् स्वरूप न्यायभूषण को पिताजी के स्वर्गवास की सूचना दी और उस अधिवेशन में

पिताजी के निधन पर शोक प्रस्ताव पारित हुआ। विवाह के पश्चात् मेरी धर्मपत्नी ने बताया कि जिस समय शोकप्रस्ताव उपस्थित किया जा रहा था, तब मैं बहुत रोई और घर पर आकर मैंने स्वयं माताजी से कहा कि इनके साथ ही मेरा विवाह करदें। इन्होंने पिताजी (श्री न्यायभूषणजी) से कहा। पिताजी ने कहा जब १० दिन पहले इनके पिताजी यहां आये थे तो मैंने तुमसे दुबारा पूछा था, तुमने उस समय भी मना कर दिया था। यदि उस समय तुम हां कर देतीं तो पण्डितजी को शान्ति तो रहती कि मेरे पुत्र का सम्बन्ध हो गया है।

इसके अनन्तर जब मैं इन्दौर से लौटकर १५ दिन पश्चात् गांव पहुंचा तो ज्ञात हुआ कि पं० भगवान् स्वरूपजी एक आदमी के साथ साइकिल पर घर की आर्थिक स्थिति (खेती-बाड़ी) जानने के लिये आये थे[1]। इस पर मैं अजमेर जाकर प० भगवान् स्वरूपजी से मिला तो उन्होंने अपनी पालिता कन्या के साथ विवाह का प्रस्ताव रखा। मैंने उनसे कहा कि मेरे माता-पिता तो अब है नहीं, एक मात्र अब गुरुजी हैं। वे ही अब मेरे माता-पिता है। अतः आप उनसे ही पत्र-व्यवहार करें। इस प्रकार पिताजी जिस सम्बन्ध को चाहते थे और उनके जीवनकाल में निश्चय नहीं हुआ था, वह उनके निधन के पश्चात् अनायास ही सम्पन्न हो गया।

इस घटना पर यदि सूक्ष्मता से विचार किया जाय तो राजस्थान में प्रचलित कहावत '**जन्म मरण और परण (=विवाह) भगवान् के हाथ में और अपने निश्चित समय पर ही होते हैं**' सत्य प्रतीत होती है।

मैं अस्थिविसर्जन की क्रिया के अनन्तर इन्दौर गया। वहां मुझे तीन कार्य करने थे—

१—अन्तिम मास की पिताजी के वेतन सम्बन्धी कार्यवाई करना।

२—पिताजी की जो जीवनबीमा की पालिसी इन्दौर के ओरियन्टल इन्श्योरेन्स कम्पनी की थी, के सम्बन्ध में कार्यवाही करना।

३—पिताजी इन्दौर राज्य के सरकारी कर्मचारियों की '**कुटुम्ब सहायक द्रव्यनिधि इन्दौर**' के सदस्य थे। सदस्य के निधन के पश्चात् उससे प्राप्त होने वाली धनराशि के सम्बन्ध में कार्यवाई करना।

मैं पहले लिख चुका हूं कि पिताजी के साथी शिवचन्दजी इनाणी इन्दौर राज्य के शिक्षाविभाग में कार्यरत थे। वे बहुत वर्षों से इन्दौर में रहते थे। कार्य से निवृत होने पर वे इन्दौर से लगभग डेढ़ मील दूर 'पलशिया' गांव में भूमि खरीद कर

---

१. पं० भगवान्स्वरूपजी की इस यात्रा का वर्णन पृष्ठ ९५ पर देखें।

अपना मकान बनाकर रहते थे (मैं उन्हें 'काकाजी' कहा करता था। अतः आगे इसी संबोधन का प्रयोग किया जायेगा)। इसलिये उक्त कार्यों में सहायता के लिये मैं इन्दौर से काकाजी के पास पहुंचा और पिताजी के निधन आदि के समाचार दिये। नन्दबाई के डाक्टर द्वारा मृत्यु-प्रमाण-पत्र पर ६० वर्ष आयु लिखने की घटना भी बताई। काकाजी के द्वारा डाक्टर का नाम पूछने पर मैंने 'गजनफर अली' नाम बताया। इस पर काकाजी ने कहा कि वह तो मेरा शिष्य है, यहीं का रहने-वाला है। यदि वह घर पर आया होगा तो उससे मिलकर उचित प्रमाण पत्र बनवा लूंगा। एक दिन काकाजी मुझे लेकर डा० गजनफर अली के घर गये। डाक्टर घर पर मिल गया। काकाजी ने जब प्रमाण पत्र पर लिखी आयु ठीक करने को कहा तो वह उनके सामने भी जिद्द पर अड़ गया। इस पर काकाजी ने अपने स्वभाव के अनुसार उसे बहुत गालियां दी और कहा कि तेरे प्रमाण-पत्र के बिना भी मैं सब कार्य करा लूंगा। इसे भी तू अपने पास रख और वे उस मृत्यु-प्रमाणपत्र को उसकी मेज पर ही छोड़कर चले आये। काकाजी इन्दौर के एक सम्भ्रान्त व्यक्ति माने जाते थे और उनका सभी विभाग के प्रमुखों से अच्छा सम्बन्ध था। इसलिये १०-१२ दिनों में ही उन्होंने सब आवश्यक कार्यवाई सम्पन्न करा ली।

अखिल भारतवर्षीय ज्योतिषाचार्यों का महासम्मेलन—इन्दौर में उस समय पं० मदनमोहनजी मालवीय की अध्यक्षता में अखिल भारतवर्षीय ज्योतिर्विदों का एक सम्मेलन हो रहा था। इस सम्मेलन का उद्देश्य यह था कि हमारी सौरवर्ष गणना में स्पष्ट ग्रहस्थिति से जो २२ दिन का अन्तर आ गया है, उसे ठीक करके वास्तविक समय से सौरवर्ष की गणना को प्रचलित किया जाये। श्री मालवीयजी इसके लिये वर्षों से प्रयत्न कर रहे थे। उसी प्रयत्न के फलस्वरूप उक्त सभा आयोजित की गई थी। मालवीयजी के पक्ष को भारतवर्ष के अनेक ज्योतिर्विद् स्वीकार करते थे, परन्तु उनमें प्रमुख थे इन्दौर के राजज्योतिषी **'दीनानाथ शास्त्री चुलेट'**। मैं दो दिन इस सभा को देखने के लिये भी गया था। मालवीयजी के पक्ष को सत्य मानते हुए भी कुछ एक व्यक्तियों को छोड़कर सभी ज्योतिर्विद् पञ्चाङ्ग को शुद्ध करने के विरुद्ध थे। ज्योतिषियों का कहना था कि हम लोग जो फलादेश का कथन करते हैं, वह वर्तमान सारणियों के अनुसार ही है। यदि हम इसे बदल देंगे तो हमारा फलादेश सत्य नहीं होगा। उसके लिये हमें पचासों नई सारणियों का संकलन करना पड़ेगा जो कि बहुत कठिन काम है। इस प्रकार श्री पं० मालवीयजी का यह महत् प्रयत्न निष्फल हुआ।

वैदिक-ज्योतिर्विद् दीनानाथजी शास्त्री से भेंट—काकाजी के पास पं० दीनानाथ

चुलेट द्वारा लिखित 'वेदकाल-निर्णय' नाम की पुस्तक थी। उसे पढ़कर चुलेटजी से मिलने की इच्छा उत्पन्न हुई और मैं एक दिन प्रातः उनके घर पहुंचा। चुलेटजी वैदिक गणित के अपने समय के अद्भुत ज्ञाता थे और ज्योतिष शास्त्र के आधार पर वेद-मन्त्रों की व्याख्यायें किया करते थे। उन्होंने बातचीत में बताया कि कलकत्ता के 'पं० अयोध्याप्रसादजी' २-४ दिनों के लिये मेरे पास आये थे और मैंने उन्हें वैदिक गणित के २-३ 'गुर' बताये थे। यहां यह लिखना प्रासंगिक होगा कि पं० अयोध्या-प्रसादजी चुलेटजी द्वारा बताये गये वैदिक-गणित के गुरों के आधार पर जब 'वैदिक-गणित' विषय पर व्याख्यान देते थे तो जनता मन्त्रमुग्ध हो जाती थी। मैंने भी लाहौर में एक बार उनका व्याख्यान सुना था, जो सम्प्रति स्मरण नहीं है।

चुलेटजी के कमरे में उनके स्वनिर्मित ज्योतिष-सम्बन्धी पचासों चित्र टंगे हुए थे। कुछ ज्योतिष-सम्बन्धी यन्त्र भी थे। उन्होंने एक यन्त्र की ओर संकेत करके कहा कि पचास फिट लम्बी और २५ फिट ऊंची दीवार में कितनी ईंटे लगी है, उस की गणना इस यन्त्र द्वारा कुछ ही क्षणों में की जा सकती है। 'स्वस्ति न इन्द्रो वृद्ध-श्रवाः' मन्त्र से सम्बद्ध एक चित्र से मुझे उन्होंने इस मन्त्र की ज्योतिष विषयक व्याख्या बताई। जिसे मैं स्मरण नहीं रख सका। मैंने उनसे ज्योतिष शास्त्र पढ़ने की इच्छा व्यक्त की तो उन्होंने कहा ६ मास मेरे पास रह जाओ तो मैं तुम्हें वैदिक ज्योतिष में पारङ्गत कर दूंगा। मैं इन दिनों पिताजी के निधन के कारण कई प्रकार की उलझनों में उलझा हुआ था। अतः मैंने उनसे कहा कि कुछ समय पश्चात् मैं आपके चरणों में उपस्थित होऊंगा। यह कहकर मैंने उनसे विदा ली।

इन्दौर के कार्य निबटाकर मैं सीधा गांव पहुंचा। गांव में पिताजी का निधन का समाचार पाकर श्री काका गणेशीलालजी ने अपनी मान्यतानुसार उनकी सम्पूर्ण और्ध्वदेहिक क्रियायें सम्पन्न कर ली थीं और जब तक वे जीवित रहे, श्राद्ध पक्ष में पिताजी का श्राद्ध करते रहे।

गांव में सबसे मिला। पं० भगवान् स्वरूपजी के गांव में आने का समाचार जानकर मैं अजमेर गया और पण्डितजी से मिला। पण्डितजी ने गांव जाने की घटना सुनाई कि मैं नर्मदा (मेरी पत्नी का पीहर का नाम) के बड़े भाई मदन-लाल को साथ लेकर तुम्हारे गांव साइकिल पर ही गया था। उससे पहले दिन ही वर्षा हो चुकी थी। अतः सड़क छोड़ने के अनन्तर कच्चे रास्ते में कुछ कठिनाई हुई। गांव के पास पहुंच कर मैंने एक बालक से रास्ता पूछा। तो उसने रास्ता बताते हुए कहा 'आगे थांकी सकलवाय कादा में धस जासी'। पण्डितजी कहने लगे कि उसकी बात मेरी समझ में नहीं आई। हम जैसे तैसे गांव पहुंचे और तुम्हारे

काकाजी से और अन्य जनों से घर की और खेतीवाड़ी की जानकारी प्राप्त की। पण्डितजी ने कहा कि वैसे इस बात की जानकारी की कोई आवश्यकता नहीं थी, हम तुम्हारे पिताजी को और गुरुजी को अच्छी प्रकार जानते हैं। फिर भी लौकिकता के नाते तथा नर्मदा के भाई को भी सन्तुष्टि हो जाये, इसलिये गांव जाना आवश्यक समझा। पण्डितजी ने इतनी लम्बी (२० मील की) साइकिल की सवारी कभी की नहीं थी और वायु भी कुछ प्रतिकूल थी, इस कारण वे बहुत थक गये थे। वापिसी में मांगलियावास स्टेशन जाकर साइकिल बुक कराकर गाड़ी द्वारा अजमेर पहुंचे। मैं अजमेर से लाहौर के लिये रवाना हो गया।

शेष घटनाएं—पिताजी के जीवन की २-३ घटनाएं आगे मेरे शिक्षा-काल के प्रकरण में यथास्थान लिखी जायेंगी, क्योंकि उनका उसी काल और स्थान के साथ सम्बन्ध है।

उपर्युक्त विवरण पिताजी की सन् १९१० से लेकर १९१५ तक छः वर्ष की उपलब्ध डायरियों से तथा उनकी पत्रादि की उपलब्ध फाइलों और उन्होंने समय-समय पर जो घटनायें मुझे सुनाई थीं (जो मुझे अभी तक यथावत् स्मरण हैं) के आधार पर लिखा है। इसमें कहीं पर भी अतिशयोक्ति से काम नहीं लिया है। गिने चुने शब्दों में यथावत् उल्लेख करने का प्रयत्न किया है। फिर भी पिताजी से १४ वर्ष तक निरन्तर अध्ययनार्थ दूर रहने के कारण तथा सुनाई हुई घटनाओं के और उन्हें लिखने के काल में लगभग ५०-६० वर्ष का व्यवधान होने से, कहीं कुछ भूल-चूक की संभावना हो सकती है।

वैदिक-धर्म (=आर्यसमाज) के प्रचारार्थ किये गये कार्य

हम पूर्व लिख चुके हैं कि मुझे 'विरजानन्द आश्रम' में प्रविष्ट कराने के अनन्तर पिताजी निर्द्वन्द्व होकर वैदिक-धर्म के प्रचार (आर्यसमाज के प्रचार) और तत्कालीन हिन्दू समाज में व्याप्त हीन भावना को दूर करने के कार्य में जुट गये। महेश्वर (द्वितीयवार) और खरगोन में हिन्दुसमाज में व्याप्त हीन भावना को दूर करने के लिये तात्कालिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर पिताजी ने जो कार्य किये और जिनके कारण ही शिक्षा विभाग इन्दौर ने स्थान-स्थान पर उनकी बदलियां कीं, उन कार्यों का वर्णन हम पूर्व यथास्थान कर चुके हैं। वैदिक-धर्म के प्रचार के लिये पिताजी ने जो कार्य किये उनका वर्णन हम इस प्रकरण में कर रहे हैं।

पिताजी ने सन् १९२१ के अन्त से अपने निधन २५-१२-३५ तक जो वैदिक-धर्म के प्रचार कार्य किये, उन्हें हम तीन भागों में बांट कर वर्णन करेंगे—

प्रथम—व्यक्तिगत रूप से तथा 'श्रीमती आर्यप्रतिनिधिसभा, राजस्थान वा मालवा' के सहयोग से वैदिक मन्तव्यों का प्रचार, कुरीतियों का निराकरण और आर्यसमाज की स्थापना।

द्वितीय—आर्यसमाज के उपदेशकों तथा सामान्य स्थिति के आर्यसमाज के कार्यकर्त्ताओं का निधन होने पर उनके परिवार का आर्थिक सहयोग प्रदान करने के लिये आर्यकुटुम्बसहायक द्रव्यनिधि[1] की स्थापना का प्रयत्न करना।

तृतीय—महेश्वर में आर्यसमाज भवन का निर्माण, उसमें राज्य द्वारा डाली गई बाधा को दूर करने के लिये प्रयत्न करना।

वैदिक धर्म के प्रचार कार्य के प्रथम विभाग की पूर्ति के लिये पिताजी ने दो प्रकार से कार्य किया। प्रथम–शिक्षक के नाते पाठशालाओं की पाठ्यपुस्तकों में आर्यों का बाहर से आना, आर्य लोग गोमांस खाते थे आदि आर्य मन्तव्यों के विरुद्ध तथा भारतीय इतिहास के गौरव को नष्ट करने वाले जो अंश पढ़ाये जाते थे उनका खण्डन भी उसी समय करके छात्रों पर वास्तविक तथ्यों को प्रकट कर दिया करते थे। दूसरा—हिन्दु समाज में धर्म के नाम पर व्याप्त कुरीतियों का खण्डन और वैदिक मन्तव्यों का मण्डन करते रहते थे।

द्वितीय प्रकार के कार्य को पिताजी ने मुझे विरजानन्द आश्रम में ३-९-२१ को प्रविष्ट कराने के अनन्तर निर्द्वन्द्व होकर स्व निधन (२५-१२-३५) पर्यन्त विशेष रूप से किया। इस काल में २९-७-२६ तक महेश्वर में, ७-११-२८ तक खरगोन में, २१-५-३० तक पीपलिया (जीरापुर परगना) में और २५-१२-३५ तक नन्दबाई में रहे। महेश्वर और खरगोन बड़े कस्बे थे। अतः यहां कार्य करने की विशेष सुविधा होने से कार्य में अधिक सफल हुए। पीपलिया और नन्दबाई दोनों साधारण गांव थे। दोनों स्थानों पर पहुंचने का मार्ग भी अत्यन्त बीहड़ एवं कठिन था। अतः यहां प्रचार कार्य स्व बलबूते पर ही जितना अधिक से अधिक किया जा सकता था, किया। इस कार्य का संक्षिप्त वर्णन पिताजी के संग्रह में प्राप्त 'आर्यप्रतिनिधिसभा राजस्थान व मालवा' को भेजे गये पत्रों के आधार पर आगे कर रहे हैं—

महेश्वर—महेश्वर नीमाड़ प्रान्त का एक प्रमुख सांस्कृतिक केन्द्र एवं प्रसिद्ध तीर्थस्थान है। यहां प्रतिवर्ष अनेक मेले लगते हैं। पिताजी महेश्वर नगरी के इस गौरव को ध्यान में रखकर इसे वैदिक धर्म के प्रचार का भी प्रमुख केन्द्र बनाना

---

१. इसका निर्देश 'मन्त्री, आ० प्र० सभा राजस्थान व मालवा' को लिखे गये पत्रों में कहीं 'सहायक सभा' कहीं 'सहायक भण्डार' नामों से वर्णन मिलता है।

चाहते थे। महेश्वर में आर्यसमाज मन्दिर का निर्माण भी इसी दृष्टि से करना चाहते थे।[1] हमें खेद है कि इस सम्बन्ध में किये गये कार्यों से सम्बद्ध हमें केवल चार पत्र ही संग्रह में मिले हैं। उनमें से २१-१०-२५ के पत्र में नीमाड़ में एक स्थायी भजनोपदेशक रखने की आवश्यकता का निर्देश है और आर्यसमाज मन्दिर का कार्य आरम्भ होने की सूचना दी गई है।[2] १६-११-२५ के पत्र में 'आर्यप्रतिनिधि-सभा राजस्थान व मालवा' के उत्तरी सीमान्त प्रान्तों के समान दक्षिणी सीमान्त प्रान्त नीमाड़ को भी सुदृढ़ करने की आवश्यकता पर ध्यान देने की प्रार्थना की है तथा उसके लिये अपने विचार प्रकट किये हैं। पत्र के अन्त में 'नोट' में अनुभवार्थ छः मास के लिये एक भजनोपदेशक नीमाड़ प्रान्त के लिये देने का अनुरोध किया है।[3] इसी पत्र के साथ 'आर्यमार्तण्ड' के सम्पादक को नीमाड़ की आवश्यकता को ध्यान में रखकर एक **'निवेदन-पत्र'** 'आर्यमार्तण्ड' के आगामी प्रथम अंक में छापने को भेजा था। दो तीन अंकों में उसके प्रकाशित न होने पर सम्पादक महोदय को ५-१२-२८ को एक उलाहना भरा पत्र लिखा और उसके नीचे १७-११-२५ को भेजे गये **निवेदन-पत्र** की नकल भी भेजी। साथ में पूर्व 'निवेदन' को रद्द करके एक नया विस्तृत **निवेदन-पत्र** मार्गशीर्ष सोमवती [अमावस] सं० १९८२ को मार्तण्ड में छापने के लिये भेजा। इस 'निवेदन-पत्र' का सीधा सम्बन्ध महेश्वर में निर्माणाधीन आर्यसमाज मन्दिर के साथ है, अतः हम उसे षष्ठ परिशिष्ट के 'ग' संकेतित विभाग में छाप रहे हैं।

पं० सुखवासीलाल की प्रचारार्थ स्थायी नियुक्ति—पिताजी ने ता० २५ से ३१-७-२६ तक का प्रज्ञाचक्षु (=नेत्रान्ध) पं० सुखवासीलालजी का कार्य देखकर[4] नीमाड़ प्रान्त में नियमित रूप से प्रचार कार्य के लिये रख लिया और **आर्यसमाज** महेश्वर की ओर से उन्हें **प्रमाण-पत्र** दिया[5], जिससे वे जहां भी प्रचारार्थ जावें तो उन्हें सरलता होवे।

पं० सुखवासीलालजी के कार्य की देख-रेख और प्रचार कार्य की डायरी भेजने

---

१. आर्यसमाज मन्दिर के निर्माण में जो बाधाएं आईं और उन्हें दूर करने के लिये जो भरसक प्रयत्न किये, उनका उल्लेख स्वतन्त्र रूप में आगे किया जायेगा।

२. पूरा पत्र षष्ठ परिशिष्ट 'क' में संख्या १ पर देखें।

३. यह पत्र षष्ठ परिशिष्ट 'क' में संख्या २ पर देखें।

४. पं० सुखवासीलाल के २५ से ३१-७-२६ तक के कार्य का विवरण षष्ठ परिशिष्ट 'क' में संख्या ३ पर देखें।

५. यह प्रमाण-पत्र षष्ठ परिशिष्ट 'क' में संख्या ४ पर देखें।

का प्रबन्ध आर्यसमाज खरगोन की ओर से किया गया था। इस सम्बन्ध में श्री ओंकार सिंह जी मन्त्री आर्यसमाज खरगोन ने ८-८-२६ को एक पत्र 'मन्त्री आर्य-प्रतिनिधिसभा राजस्थान व मालवा' को लिखा था।[1]

पं० सुखवासीलाल को नीमाड़ में प्रचारार्थ नियत करने पर आ० प्र० सभा की प्रतिक्रिया—पिताजी चाहते थे कि पिछड़े हुए नीमाड़ प्रान्त में वैदिक-धर्म के सिद्धान्तों का यथेष्ट प्रचार होवे। इसके लिये वे समय-समय पर 'मन्त्री, आ० प्र० राजस्थान व मालवा' को वैदिक-धर्म के प्रचारार्थ उपदेशक और भजनोपदेशक भेजने के लिये बराबर लिखते रहे। परन्तु सभा की ओर से जो यदा-कदा उपदेशक वा भजनोपदेशक आते थे, उनसे पिताजी सन्तुष्ट नहीं थे। वे चाहते थे कि एक प्रचारक स्थानीयरूप से नीमाड़ में प्रचारार्थ रहे। अतः उन्होंने नीमाड़ की अन्य समाजों से सम्पर्क करके प्रज्ञाचक्षु सुखवासीलाल को प्रचारार्थ नियत कर दिया। इनके व्यय का बोझ भी सभा पर नहीं डाला जायेगा। यह बात पिताजी ने स्पष्ट रूप से मन्त्री आ० प्र० सभा को लिख दी इस पर आ० प्र० सभा के मन्त्रीजी प्रचार कार्य के अपने एकाधिकार पर चोट मानकर 'संगठन में बाधा' के बहाने २८-८-२६ को एक पत्र लिखा जो स प्रकार है—

आर्यप्रतिनिधिसभा राजस्थान व मालवा

संख्या २८२

अजमेर
२८-८-२६

श्रीमान् गौरीलालजी महेश्वर

पत्र तुम्हारा आया वृत्त ज्ञात हुआ। आपने सुखवासीलाल को भजनोपदेशक नियत करने को लिखा.........[2] लेकिन इस तरह समाजों का अपनी ओर से भजनीक नियत करना उचित नहीं। संगठन में बाधा प्रतीत होती है। प्रतिनिधिसभा के चार भजनोपदेशक पहले से ही कार्य कर रहे हैं और उनमें मैंने

---

१. यह पत्र षष्ठ परिशिष्ट 'क' में संख्या ५ पर देखें।
२. कागज फट जाने से पाठ टूटा।

एक भजनोपदेशक पं० छोगालालजी को नीमाड़ प्रान्त में छोड़ रखा है[1]। ऐसी अवस्था में ज्यादा खर्च करना कहां तक उचित होगा.........[2]। यह प्रार्थना है यहां योग्य सेवा लिखें।

भवदीय
(ह० अस्पष्ट)
सभामन्त्री

आर्यप्रतिनिधिसभा के मन्त्रीजी के उक्त पत्र को प्राप्त करके जो पत्र लिखा वह इस प्रकार है—

ओ३म्

सेवा में:—

श्रीमान् मंत्रीजी महोदय
श्रीमती आर्यप्रतिनिधिसभा राजस्थान
अजमेर

सादर नमस्ते,

श्रीमान् जी के पत्र नं० २८२ ता० २८-८-२६ के उत्तर में विनय (१) श्रीयुत पं० सुखवासीलालजी को भजनोपदेशक केवल नीमाड़ के लिये नियत किया है. परंतु इनका संबंध खरगोण आर्यसमाज द्वारा श्रीमती प्र० सभा से ही रखा जाय ता० १ अक्टोबर से उपदेशक संबंधी पत्र फार्म इनको देना है कृपा करके शीघ्र भेजियेगा. संगठन तोड़कर पाप का भागी कोई नहीं हो सक्ता. (२) आगे प्रचार स्वल्प होने से ही हमको प्रचार का लोभ लगा है. श्री पं० छोगालालजी भी पधारे हैं न जाने कब तक नीमाड़ में रहें तो भी वर्तमान में २ भजनोपदेशकों के फिरने को बहुत मौका है. (३) सभा से इनका वेतन नहीं लिया जावेगा. और आय में न्यूनता सभा को नहीं आवेगी. सभा की ओर से कोई भी भजनोपदेशक को कृपा कर साल भर रखके देख लीजियेगा. इस समय पं० छोगालालजी ने और इससे पहले योगराजसिंह जी ने (इस वर्ष में)नीमाड़ में प्रचार किया. सदा के अनुसार ही आय हुई है.

---

१. पं० छोगालालजी के प्रचार कार्य के सम्बन्ध में पिताजी ने जो असन्तोष व्यक्त किया उसे आप आगे उद्धृत पत्र में देखें।

२. कागज फटने से पाठ टूटा।

श्रीमान् पं० छोगालालजी सदा पहचान के गांवों में जाते हैं. इस समय ५।४ गांव नवीन लेवेंगे. पं० सुखवासीलालजी से १ मास में केवल महेश्वर परगना ही पूरा नहीं हुआ इनको सड़क से दूर और जहां पहले प्रचार नहीं हुआ था वहां भेज रहे हैं. डायरी आपकी सेवा में २५-७-२६ से ३१-८-२६ तक की अर्पण की जा चुकी है. इनका अविश्रान्त और ४।६ घंटों तक प्रचार करना, तथा उचित उपस्थिति, और क्रियात्मकपन आप को संतोषजनक होगा. दोषादि के विषय में नवीन सूचनाएं भेजकर आभारी बनाइयेगा.

यह भजनोपदेशक महेश्वर मंदिर के लिये द्रव्य-संग्रह में सहायता देने के लिये भी काम आवेंगे. इति.

भवदीय
गौरीलाल आचार्य

इस पत्र से श्री मन्त्रीजी के मन को शान्ति हुई वा नहीं यह तो वे ही जानें, परन्तु पं० सुखवासीलालजी कई मास तक प्रचार कार्य करते रहे और उनके प्रचार कार्य की दैनन्दिनी (डायरी) मन्त्री आर्यसमाज खरगोन बराबर आ० प्र० सभा को भेजते रहे।

तत्कालीन प्रचारकों की लगन का उदाहरण—पिताजी ने महेश्वर निवासकाल की एक घटना मुझे इस प्रकार सुनाई थी—

एक दिन प्रातः ही कोई साधारण प्रज्ञाचक्षु प्रचारक महेश्वर पहुंचा। उसने एक व्यक्ति से पूछा कि क्या यहां आर्यसमाज है ? उसने उत्तर दिया—आर्यसमाज तो नहीं है, हां एक मास्टर आर्यसमाजी जरूर है। प्रचारक ने आर्यसमाजी मास्टर के घर तक पहुंचाने की उस व्यक्ति से प्रार्थना की। उसने पिताजी के घर पहुंचा दिया। आवश्यक कार्य से निवृत्त होने पर पिताजी ने भोजन करने के लिये निवेदन किया। आगन्तुक प्रचारक ने कहा—मास्टर साहब जब तक मैं अपना प्रचार कार्य न कर लूंगा तब तक आपके भोजन का मैं अधिकारी नहीं हूं। पिताजी ने कहा—प्रचार की व्यवस्था तो शाम तक हो सकेगी। इस पर प्रचारक महोदय ने कहा—मेरे साथ कोई बालक भेज दो। वह मुझे बाजार में खड़ा कर देवे। आगे मैं स्वयं अपना कार्य कर लूंगा। पिताजी ने उनके साथ एक बालक को भेज दिया और उसे कहा बाजार में अमुक स्थान पर इन्हें खड़ा कर देना और वापस साथ ले आना। बालक ने उन्हें बाजार में खड़ा कर दिया। प्रचारक महोदय ने झोले से डुगडुगी निकाल कर बजाना आरम्भ कर दी. ८-१० मिनट में जब पादध्वनियों से प्रचारक महोदय को

ज्ञात हुआ कि कुछ आदमी इकट्ठे हो गये हैं तब उन्होंने अपना प्रचार आरम्भ किया। प्रचार कार्य समाप्त करके घर पर आकर पिताजी से कहा—मास्टर साहब अब मैं आपके भोजन का अधिकारी बन गया हूं। ऐसी लगन वाले प्रचारकों ने ही आर्यसमाज को उत्कर्ष पर पहुंचाया था। आजकल के प्रचारक तो अपनी सुख सुविधा का पहले ध्यान रखते हैं तत्पश्चात् प्रचार का।

खरगोन—खरगोन में आर्यसमाज की स्थापना पिताजी के खरगोन जाने से पूर्व हो गई थी। इसकी सूचना खरगोन समाज के मन्त्री ओंकारसिंह के २७-२-२४ के उस पत्र से होती है, जिस में समाज स्थापना की सूचना 'आर्यमार्तण्ड' में देने के लिये लिखा था।[1]

८-८-२६ के खरगोन से लिखे पत्र में पिताजी ने खरगोन में बदली होने के तथा महेश्वर समाज का कार्य यथाशक्ति चलते रहने का आश्वासन देने के अनन्तर महेश्वर में कहारों द्वारा ताजिये न उठाने के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी दी है तथा पुलिस और मजिस्ट्रेट द्वारा मुसलमानों का पक्ष लेने का आरोप लगाया है। पत्र इस प्रकार है—

खरगोन
८-८-२६

सेवा में:—

श्रीमान् मंत्रीजी महोदय, आर्यप्रतिनिधिसभा राजस्थान.

सा० नमस्ते; मेरी बदली महेश्वर से खरगोन होने से मैंने कल यहां पर चार्ज ले लिया है. आर्यसमाज महेश्वर कार्य येन केन प्रकारेण पिछली शक्ति के अनुसार चलेगा. ग्राम में जागृति अवश्य हो गई है. परिस्थिति के अनुसार कार्य बल बढ़ता रहेगा. मेरा संबंध रहेगा. मेरा नाम वहां के मेम्बरों में रखा गया है. मंदिर बनाने का प्रयत्न दिवाली से सुकाल होने पर होवेगा. तब ही चार वर्ष में स्थायी आर्य-समाज चल सकेगी. परमात्मा सर्वप्रकार अच्छा करते हैं. ध्यान में रहने के लिये विनय किया है.

गौरीलाल आचार्य
सेवक आर्यसमाज

१. यह पत्र षष्ठ परिशिष्ट 'क' में संख्या ६ पर देखें।

ता० २३-६-२६ को कहार ७५ की संख्या में एकत्र हुए थे. इनके २०० घर हैं. इन्होंने मेरी और मंत्री कस्तूरचन्दजी की सहायता से जाति सुधार का एक लेख किया था. इस पर पुलिस और मजिस्ट्रेट साहब ने व्यर्थ ही मुसलमानों का पक्ष लिया था. हम दोनों के बयान भी लिये थे. परंतु, मजिस्ट्रेट साहब को अपनी कार्य दक्षता प्रसिद्ध करने का और परमानेंट नौकरी करा लेने का अच्छा अवसर हाथ लग गया. बिचारे सब कहारों को ७।८ दिन तक बुला बुला के तंग किया धंधा तक न करने दिया और दवा दबा कर मेरा नाम उनसे कहलवाया, कि इन्होंने बहकाया. कहारों से करारनामा लिखवाया कि हम ताजिया १।।/रु० प्रति मनुष्य (दो रात के) ले ले करके उठावेंगे. आदि. और यह मुसलमानों की गुलामी बिचारों के गले सदा के लिये बांध दी गई. प्रति वर्ष अमीन कचेरी और पुलिस के सिपाही, तथा जिस मियां का मनचला लाठी लेकर कहारों को जा घेरते थे वे मारे त्रास के घर में घुसें ये ठोकर से बाहर लावें और कुछ मजदुरी देकर फंसा लेवें और निर्दयता का बर्ताव उनके साथ करें हिन्दु भाई देखें पुलिस आदि सरकारी आफिसर देखें परंतु इन गरीबों का दर्द किसी के हृदय पर असर न करे. इस गुलामी से पृथक् होने के लिये इन्होंने कुछ बल पकड़ा गत वर्ष १ रात नहीं उठाया, दूसरे दिन पुलिस प्रबंध से उठाया. इस समय लेख ही कर डाला, मजिस्ट्रेट सा० इनको आर्डर ही दे देते कि तुमको उठाना पड़ेगा परंतु ऐसा कर नहीं सक्ते हैं. इसलिये परिस्थिति सानुकूल रखने का भय दिखा दिखा करके करारनामा करवा लिया. इसके संबंध में इन महोदय की सभ्य हिंदु समाज में जितनी प्रशंसा होनी चाहिये थी हुई. ताजियों के ६दिनों में १८८ धारा बहाकर लाठी लेना शस्त्र रखना तीन से अधिक मनुष्यों का एकत्र न होना. ऐसे नियम व्यर्थ करके अपनी कार्य शूरता का परिचय दिया. पुलीस इन्स्पेक्टर जनरल की ओर कार्यवाही करके मेरी बदली करवा दी. कार्य मेरे सामने यहां भी बहुत हैं. परंतु यहां कार्यकर्त्ता महेश्वर में अभी बन रहे थे. काम क्रियात्मक अच्छा हो रहा था.................................[1] भी भरोसा तो है कि कार्य होगा. हिंदु मुसलमान सब जाग पड़े हैं कुछ हिंदु सोये भी हैं. ताजिये बांधने वाले हिंदु लोग मियांओं के पक्ष में हैं. मियां लोगों ने इन्हीं हिन्दुओं को कुल्हाड़ी का डांड बना रखा है. इनके द्वारा रात दिन हिंदुओं पर क्रियाएं किया करते हैं. कहार मजबूत नहीं रह सके. 'गुरुवर' जाति मजबूत रही. १।। वर्ष की दृढ़ता में मुसलमानों को कहना पड़ा कि उन्होंने कमेटी करके गुरुवों को मसजिदों के सामने बाजा बजाते

---

१. कागज फटने से दो तीन शब्द टूट गये हैं।

जाने के लिये निर्भय कर दिया तो इन्होंने भी मुसलमानों के यहां बाजा बजाने जाना फिर से आरंभ कर दिया।

लेख के पूरे-पूरे भाव[1] (कुछ शब्दों की बदली हुई होवेगी)—

आज ता० २३ जून १९२६ को समस्त पंच कहार मु० महेश्वर इकट्ठे होकर के पंचायत की अपनी हालत को देखते हुए अपन लोग अपने धर्म व कर्म से गिरते जाते हैं और दरिद्रता में रहते हैं इसके लिये बात-चीत होकर और जाति सुधार नियमावली की पुस्तक की मर्यादा का पालन करते हुए नीचे लिखे प्रस्ताव करते हैं—

(१) अपने लोगों में शराब पीने की आदत बहुत पड़ गई है जिसके कारण बहुत नुकसान होता है. इसलिये शराब का पीना बंद किया जावे. और जो किसी को अधिक रफ्त होवे वो १ साल तक में छोड़ देवें.

(२) जाति सुधार की नियमावली की पुस्तक में जन्म जात बाहर करने के दंड लिखे हैं. उनको हम हलका करते हैं वक्त पर पंच लोग सोच विचार करके दंड देवेंगे. क्योंकि जन्म जात बाहर करने का दंड देने से स्त्री पुरुष वेधर्मी बन जाते हैं. इससे जात को नुकसान पहुंचता है.

(३) अपने गांव में जैनी लोग रहते हैं और उनके यहां अपने को कामकाज के लिये जाने का काम पड़ता है. ये लोग हत्या से परहेज करते हैं. इसके लिये उनके यहां धार्मिक काम पर जब जावें तब उस दिन भर अपनी जात में हिंसा नहीं करना चाहिये.

(४) ताजियों के दिनों में मुसलमान लोग अपने लोगों से ताजिये उठाते हैं. मालूम हुआ कि ताजियों में वे लोग उनके पीरों की कबरों के नमूने रखते हैं और कितने ही मनों की तादाद में बोझा ताजियों का बना करके उसमें वो रखते हैं और दो रात भर गांव भर में गश्त कराते हैं यह काम करना मनुष्य की शक्ति से बाहर है इसके सिवाय गश्त करने के समय अपन लोगों पर मुसलमान लोग ढोरों सरीखे जोर जुल्म करते हैं. अपनी जात में दूसरी जात का मुर्दा उठाना मना है. इस हालत में अब अपने को जाहिर हो चुका है कि ये लोग ताजियों में अपने पीरों की कबरों के नमूने रखते हैं और वो लोग दुःख मनाते हैं और...नतीजा वगैरः नुगते सरीखे कार्य

---

१. कहारों की पञ्चायत के निर्णय की जो प्रतिलिपि पिताजी के संग्रह में मिली, उसे हम पूर्व ६६-६७ पृष्ठ पर यथावत् छाप चुके हैं।

करते हैं. इसलिये वो कबरों के नमूने उठाना अपनी जात के रिवाज के बाहर है इसलिये अब अपन लोगों ने ताजिये नहीं उठाना—......इस प्रमाणे ये ठहराव सब पंचों ने किये हैं. कालम १ में १ साल की मुद्दत दी है और कालम २, ३ और ४ का पूरा-पूरा पालन अभी से किया जाये. जो पालन नहीं करे उसको ११ दिन तक जात से बंद रखके ५१) रु० दंड किया जावे.

हस्ताक्षर और अंगूठे.

—————————
—————————
—————————
—————————
—————————

(मेरे सामने ७५ के लगभग हो चुके थे पीछे से भी हुए होवेंगे)

ता० २६-३-२७ को 'मन्त्री, आ० प्र० सभा, राजस्थान व मालवा' का जा पत्र लिखा उसमें 'महेश्वर से खरगोन बदली करने' के आज्ञापत्र तथा अब 'पुनः कार्यवाही करने पर जो उत्तर मिला' उसकी नकलें भेजने का उल्लेख है।[1]

विवाहोत्सव पर विशेष प्रचार—खरगोन में सेठ बालकृष्ण गणपति एक मान्य व्यक्ति थे। इनके लघु भ्राता के विवाहोत्सव मार्गशीर्ष शुक्ल ८ सं० १९८४ को होना था। पिताजी के प्रयत्न से इस अवसर पर परम्परागत वेश्यानृत्य के स्थान में विद्वन्मण्डल द्वारा धर्मप्रचार की योजना बनाई गई। इसी निमित्त पिताजी ने ५-११-२७ को एक विस्तृत पत्र मन्त्री आ० प्र० सभा को लिखा और इस अवसर पर प्रचारार्थ श्री स्वामी लक्ष्मणानन्दजी, श्री पं० परमानन्दजी, श्री पं० प्रकाशचन्द्रजी को मार्गशीर्ष शुक्ला १ सं० १९८४ तक खरगोन भेजने को लिखा। इसके उत्तर में आर्यप्रतिनिधि सभा से १२-११-२७ तथा १८-११-२७ के पत्र प्राप्त हुए। इसी सम्बन्ध में पिताजी ने मन्त्री आ० प्र० सभा को १८-११-२७ को पुनः विस्तृत पत्र लिखा जिसका सभा की ओर से उत्तर प्राप्त हुआ कि प्रकाशचन्द्रजी को रवाना कर

---

१. यह पत्र हम परिशिष्ट में नहीं दे रहे हैं। इस पत्र के साथ पहली आज्ञा नं० ७७९८/२६-७-२६ की तथा डाइरेक्टर साहब की आज्ञा नं० २८७३।२२-९-२६ की और नं० ५६१/१३-१-२७ की जो नकलें भेजी गई थीं उन्हें हम पूर्व पृष्ठ ६९ तथा ७३ पर छाप चुके हैं।

दिया है ।[1] श्री पं० प्रकाशचन्द्रजी ने विवाहोत्सव के समय जो अनथक वैदिक-धर्म का प्रचार कार्य किया, उसकी सूचना पिताजी ने ७-१२-२७ के पत्र द्वारा दी ।[2]

नवग्रह मेले में प्रचार—खरगोन में प्रतिवर्ष एक मास के लिये नवग्रह का मेला भरता है । पिताजी ने उसमें २४-१२-२७ से १० दिन के लिये प्रचारार्थ पं० परमानन्दजी तथा पं० प्रकाशचन्द्रजी को भेजने के लिये मन्त्री आ० प्र० सभा को १४-१२-२७ को एक पत्र लिखा ।[3] परन्तु आर्यप्रतिनिधिसभा ने इस अवसर पर कोई प्रचारक नहीं भेजा । इससे प्रचार कार्य नहीं हो सका । यह सूचना पिताजी के ३-११-२८ के पत्र से मिलती है ।[4]

शुद्धि तथा उपनयन—ता० ५-१-२८ को सम्पादक 'आर्यमार्तण्ड' को आर्यसमाज खरगोन द्वारा की गई शुद्धि और उपनयन संस्कार की सूचना छापने के लिये भेजी गई थी ।[5]

ऋषि बोधोत्सव के अवसर पर प्रचारार्थ श्री प्रकाशचन्द्रजी को भेजने के लिये ३-२-२८ को एक पत्र भेजा गया । इसमें 'कुटुम्ब सहायक भण्डार' के निर्णय के लिये भी लिखा था तथा मई के अन्त में अथवा जून में खरगोन में आ० प्र० सभा का वार्षिकोत्सव आर्यसमाज खरगोन के उत्सव के साथ करने का उल्लेख किया गया है ।

आर्यरक्षा-समिति—ता० २८-१-२८ के पत्र में मन्त्री आ० प्र० सभा को आर्य-रक्षा-समिति के लिये ४ आर्यवीरों के प्रतिज्ञापत्र और २० रु० रक्षानिधि के लिये देहली भेजने का निर्देश मिलता है ।

डोलग्यारस पर प्रचार तथा प्रचारक को गिरफ्तार करना—पिताजी ने मन्त्री आ० प्र० सभा को ३०-६-२८ को एक पत्र भेजा था जिसमें लिखा था कि डोल-ग्यारस के उत्सव में आर्यसमाज खरगोन को प्रचार के लिये बुलाया । आर्यसमाज के शान्तिपूर्वक प्रचार करते हुए भी आर्यवीर छत्रसिंहजी को प्रचार करते हुए डी० आई० जी० ने गिरफ्तार करके धारा १०७ और १८६ में मुकद्दमे चलाये हैं । इस

---

१. ये सब पत्र षष्ठ परिशिष्ट 'क' में संख्या ७-८-९-१०-११ पर देखें ।

२. यह पत्र षष्ठ परिशिष्ट 'क' में संख्या १२ पर देखें ।

३. यह पत्र षष्ठ परिशिष्ट 'क' में संख्या १३ पर देखें ।

४. यह पत्र षष्ठ परिशिष्ट 'क' में संख्या १८ पर देखें ।

५. यह सूचना षष्ठ परिशिष्ट 'क' में संख्या १४ पर देखें ।

सम्बन्ध में आर्यसमाज खरगोन द्वारा पास किये गये प्रस्ताव की एक प्रति आर्य-मार्तण्ड में छापने के लिये भेजी थी।[1]

नवग्रह मेले में प्रचार—सन् १९२७ में नवग्रह मेले पर प्रचार करने की योजना बनाई थी और मन्त्री आ० प्र० सभा को दो उपदेशक भेजने को लिखा था।[2] परन्तु उपदेशकों के न पहुंचने से प्रचार कार्य नहीं हो सका। अतः इस बार (सन् १९२८ में) नवग्रह मेले पर प्रचार के लिये पिताजी ने ३-११-२८ को मन्त्री आ० प्र० सभा को विशेष पत्र लिखा।[2]

पीपलिया—खरगोन से पीपलिया बदली होने पर पीपलिया से लिखे गये हमें तीन पत्र ही उपलब्ध हुए हैं। उनमें से ता० २१-७-२९ का तथा बिना तारीख के एक छोटे से कागज पर लिखे पत्रों में झालरा पाटन आगर आदि स्थानों की ओर प्रचारार्थ पहुंचनेवाले भजनोपदेशक को पीपलिया जीरापुर और माचलपुर आदि भेजने की प्रार्थना की है।[3]

विशेष पत्र—पं० परमानन्दजी उपदेशक 'आ० प्र० सभा राजस्थान व मालवा' ने ८ मई १९३० के आर्यमार्तण्ड में **'नीमाड़ में सभा का कार्य'** शीर्षक से एक लेख छपवाया था। पिताजी ने इस लेख की आलोचना में 'मन्त्री आ० प्र० सभा राजस्थान व मालवा' को १७-५-३० को 'पीपलिया' से एक पत्र लिखा था। इसमें लेख की आलोचना करते हुए **नीमाड़ प्रान्त में वैदिक-धर्म** के मूक प्रचारक आर्यवीरों के कार्यों पर विशद प्रकाश डाला है। यद्यपि पिताजी ने इस पत्र के कोने पर **'सभा का नहीं घरू पत्र'** लिखा है, तथापि हम इसे यहां प्रकाशित इसलिये कर रहे हैं कि नीमाड़ प्रान्त में वैदिक-धर्म के मूक प्रचारक आर्यवीरों की स्मृति बनी रहे।

---

१. पत्र द्र०—षष्ठ परिशिष्ट 'क' में संख्या १५ पर, प्रस्ताव की प्रतिलिपि संख्या १६ पर तथा साथ में एक कागज पर मन्त्री आ० प्र० सभा को लिखा पत्र संख्या १७ पर।

२. यह पत्र षष्ठ परिशिष्ट 'क' में संख्या १८ पर देखें।

३. ये पत्र षष्ठ परिशिष्ट 'क' में संख्या १९-२० पर देखें।

ओ३म्

पीपलिया
ता० १७-५-३०

सेवा में.—

श्रीमान् माननीय मंत्रीजी महोदय
आर्यप्रतिनिधिसभा राजस्थान मालवा

सादर नमस्ते

विनय है कि आर्यमार्तण्ड ता० ८ मई ३० में "नीमाड़ में सभा का कार्य" शीर्षक लेख श्रीमान् पं० परमानन्दजी महाराज उपदेशकजी ने प्रकाशित किया। विशेष करके इसके लिये मैं आप से सूचना अर्पण करता हूं कि मैं मानता हूं श्रीमान् पंडितजी का सुयोग स्वर्गीय श्रद्धास्पद सूर्यकरणजी मं० के साथ राजस्थान मालवा में हो करके इन्होंने रा० मा० में आर्य्यसमाजों की संख्या सिद्धांत प्रचार में एक भारी उन्नति की है और हम सब पंडितजी के आभारी हैं। इस लेख में अनजाने वा जान-बूझ करके, नीमाड़ में जिन्होंने आर्यसमाज की नीवें जमाने में, क्रियात्मक रूप से अपने-अपने क्षेत्र में अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार कार्य किये हैं उन सबकी सेवाओं को ठुकरा दिया गया है। मैं तो समझता हूं कि उन आर्यपुरुषों ने सेवाएं कीं मानों सभा ने की। किन्तु हमारे पंडितजी सभा का कार्य सन् १९२८ के मध्य से जब कि आप नीमाड़ में प्रथम पधार कर उसे उपदेशामृत से एक जीवनी दान दी तब से प्रारंभ करते हैं। यद्यपि हमारे पुरातन और अंधे श्रीमान् पं० छोगालालजी २० वर्षों से नीमाड़ के पहाड़ों में टक्करें खा रहे थे। कुआं के हीराजी भाई सरीखे वीर प्राय: गांव भर को आर्यसमाज सरीखा बना चुके थे। दयानंद पाठशाला चलाई थी। अपने एक ब्रह्मचारी और २ ब्रह्मचारिणी को गुरुकुलों में भेज के नीमाड़ के भावी अभ्युदय में योग दे रहे थे। सिहस्त[1] पर बच्चों के विवाह न करके और अछूतोद्धार आदि कार्यों पर जाति से पृथक होते रहे थे। कोई इकल्ले ही मेलों में अनुचित दूकानों पर पिकेटिंग करके पुलिस के शत्रु बनते थे। कोई श्री मोदीजी सुन्द्रेल ३०००) रु० के ब्याज से २।३ ब्रह्मचारियों को गुरुकुलों में पढ़ाके समाज का अंग पुष्ट कर रहे थे। श्रीमान् पूज्य नारारायणानंदजी ने यू० पी० निवासी ८ वर्ष से कसरावद के व्यासजी प्रार्थना पर नीमाड़ को अपना रखा था और नीमाड़

---

१. सिहस्त=सिंह राशि में स्थित।

के हित कामना से २ वर्ष के लिये महाविद्यालय ज्वालापुर में संगति प्राप्त करने गये थे। खरगोन के दानी वीरों ने उन्नति दिखाई इनका दबदबा भी मानने योग्य कार्य कर रहा था। जिन्होंने खरगोन के बदमाश गुंडों की छाती पर शैल खड़ा कर रखा है बिलकुल मुर्दा बनियों और ब्राह्मणों को गुंडों से निर्भय कर साहस प्रदान किया है। यहां २० वर्ष से कोई न कोई नामी सज्जन पधारते रहे थे जिनकी युक्तियों से बोया बीज हरा-भरा है जिन्होंने नीमाड़ के दिग्गज पंडितों से शास्त्रार्थ करा-करा के आर्यसमाज का गौरव रखा था नहीं तो क्या दशा होती! कसरावद का व्यास परिवार कार्य २० वर्ष से कर रहा था उनके संगी आज ढीले हो गये उठाने की आवश्यकता है। महेश्वर होलकर स्टेट की पुरानी राजधानी में महारानी अहिल्या देवी के दान से ढकोसला पंथ का बड़ा अड्डा है। गुंडों का जोर रहा था वह नर्मदा किनारे तीर्थ होने से आर्यसमाज के लिये ऊसर जमीन था किंतु वहां भी आप के चरणदास ने सेवा की डेढ़ वर्ष में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। मुकद्दमा चलाकर बलवा हो जाना हुक्म लिखा जाकर बदली खरगोन हुई। भाई हीराजी ने १०००) दान नीमाड़ ही के लिये पहले ही निकाला था जिनसे ब्याज १०) रु० की प्रतिज्ञा भी .. ..[1] ले ही लिखाई जो वेद प्रचारार्थ व्यय होता है। आस-पास के ग्रामों में जहां तहां आर्यवीरों ने जो कुछ ठीक संख्या में थे फिरते-फिराते आर्यसमाज का डंका बजा ही दिया। होल्कर स्टेट से बाहर भी नीमाड़ में खलघाट के शंकरलाल जी ने २० ईसाइयों को शुद्ध करके धार स्टेट के कोप भाजन बने थे मुचलके में बंधे पड़े हैं। बड़वानी के श्रीमान् खुशाली रामजी के एक सतत १० वर्ष के प्रयत्न से राजपुरा जुलवानिया आदि गांवों में आर्यसमाज की धरती बन गई थी होलकर स्टेट के विचित्र राज नियम और राज कोप में पड़कर पहले से अब तक कुछ आर्य अपने अस्तित्व से गिराये हुए पड़े हैं और काम करने को हाथ पांव उछालते हैं कई वीर हाथों में अपनी जान लिये फिर रहे हैं परस्पर की फूट हुई तो उसे भी मिटाते हैं प्रचारार्थ द्रव्य भी एकत्र करते हैं। जितनी जिसकी शक्ति है अपने-अपने अस्तित्व के बड़े-बड़े टोल डाल-डाल कर आर्यसमाज की नींव तो भरदी थी। हां उसके ऊपर सुंदर भवन निर्माण करने के लिये आवश्यकता थी। श्रीमान् पंडितजी सरीखे विद्वानों की! सो मैं मानता हूं कि पंडितजी नीमाड़ पर ठीक समय पर (उसे समाल के) अपनी दया दिखा दी। यह अवसर अवश्य मेरी भावना से सुवर्णमय हुआ। राजस्थान के क्या कोई भी प्रान्त में वहां के निवासियों और सुयोग्य उपदेशकों के प्रयत्नों से सन्तोषदायक कार्य हुआ है, और होगा।

---

१. कागज फट जाने से पाठ टूटा।

उंगली के स्थान में उंगली काम करेगी और सिर के स्थान में सिर करेगा ।

श्रीमान् पं० दीनदयालजी मेरे मित्र हैं और बड़े ओहदे पर हैं और कसरावद वाले जिन्होंने कुछ कर दिखाया भी है । "यथेष्ट धन न ला सके और स्कीम को नहीं बढ़ा सके" ! पंडितजी ! गृहस्थियों को कई विघ्न मिलते हैं । और भी खिल्ली उड़ाते हैं कि "श्री सुखवासीलालजी भजनोपदेशक को बड़वानी समाज ने अपने यहां नियत किया परंतु यह ढंग भी अधिक देर तक न चल सका" । महाराजजी इसको ढंग बताते हैं तो क्या यह ढंग सभा से विपरीत था ? बात बड़वानी की नहीं है । श्रीमान् नारायणानंदजी महाराज की प्रेरणा से उस काल में जब कि सभा से उपदेशक पहुंच नहीं सकते थे और पहुंचे तो तुरंत वापस बुलाने का योग आता था नाम की आर्यसमाजों में भी सभा के प्रति विश्वास उड़ रहा था, मैंने पं० सुखवासीलालजी को बुलाया था और उस नेत्रहीन वीर समाजी ने वर्षा के दिनों में कीचड़ों में भी जहां सड़कें नहीं मेरे प्रोग्राम पर ग्रामों में भी १ वर्ष तक प्रचार करके हम पर एक अहसान कर गया। श्रीमान् सभा के स्वर्गीय मंत्रीजी ने मुझे खरगोन में लिखा कि आप प्रचार के प्रबंध को सभा के आश्रित नहीं रहने देना चाहते । मैंने निवेदन किया कि यदि मैं सभा से फूट करूं तो मेरा सरीखा पापी नहीं किंतु प्रचार करा लेने में दोष मानते हो तो इनका नाम सभा के भजनोपदेशकों में लिखिये और वेतन नहीं दीजिये यह प्रचार सभा की छत्र छाया में है। कसरावद सुन्द्रेल खरगोन समाजों सी० पी० (मध्यप्रदेश) में प्रतिनिधि भेजती थीं । मैंने एक ओर रहने की प्रार्थना की थी पं० सुखवासीलालजी के होशंगाबाद गुरुकुल जाने का कारण कुछ और है उनका भतीजा ब्रह्मचारी, गुरुकुल में इनकी नौकरी के कारण आधी शुल्क में पढ़ता है । सुखवासीलालजी ने कोई समाज को पैसे के लिये नहीं सताया किंतु नीमाड़ में प्रचार के लिये कितनी आय हो सक्ती है ? यह परिणाम गांवों में प्राप्ति कर-करके निकाला था और भी कि समाज का प्रचार लोगों में कितना प्रिय हो सक्ता है ? पंडितजी महाराज के प्रयत्न बिना अनेक आर्य पुरुष कहां से आ गये जो "उनसे मिले" ? आप ने ही योजना रखी कि "धनसंग्रह पहले करना" । महाराजजी समय उपस्थित किया गया था नहीं तो धनपात्र वैश्य मुंह फेर जाते थे व्याख्यानों में लाठी उठाते थे श्री पं० रामसहायजी भी महेश्वर में २ बार भोग चुके हैं ।

मैं प्रतिवाद रूप से मार्तण्ड आदि में छपा के एक विरोधाग्नि नहीं भड़काता किंतु सचेताई के लिये विनम्र प्रार्थी हूं कि किसी की बड़ाई चाहे न करिये पर उनकी सेवाओं पर अन्याय से चौका न लगाइये अन्य प्रांत की मैं क्या जानूं परंतु नीमाड़ के लोग ऐसे लेख पर ध्यान कर बैठेंगे तो कदाचित् व्यर्थ ही रुष्ट हो बैठेंगे

और सभा कार्य में भाग लेने से हाथ खींच लेवेंगे, गिने इने लोग हैं उत्साह से कार्य करते ही रहेंगे।...... ..[1]आप चाहे इस पत्र को मेरे माननीय पंडितजी महाराज को अवलोकन करा सक्ते हैं परंतु इसके अनंतर फाड़ फेंकियेगा शीघ्रता में लिखा है। श्रीमान् पंडितजी बुद्धि सागर हैं। मेरी इस वृन्द तुल्य प्रार्थना पर कुछ भी रुष्टता न लाके मुझे अपने दासों की श्रेणी में ही जानेंगे।"

आर्य कुटुम्ब सहायक भंडार.........[1] समय त्याग होना चाहिये। श्रीमान् प० जयदेवजी से मेरी विनय कहियेगा सभासदों का हित होगा.. ...[1] कहा था से उपकार का वृक्ष यह शीघ्र खड़ा हो जाय [1].........थक विनय मेरी—बदली चित्तौड़ पास नन्दबाई में हाने का आर्डर आये १ मास हुआ है वहां से चार्ज लेने वाले अभी आये नहीं हैं प्रतिदिन प्रतीक्षा सी हो रही है कदाचित् दूसरा आर्डर आवे।

नम्र गौरीलाल आचार्य
पीपलिया
पो० माचलपुर
होलकर राज्य

नन्दवाई—वैदिक-धर्म के प्रचारकार्य के दण्डस्वरूप शिक्षाविभाग द्वारा खरगोन से गमनागमन के मीलों तक साधनों के अभाव वाले पीपलिया और वहां से 'काला पानी' रूप अत्यन्त बीहड़ 'नन्दवाई' में बदली करने के कारण पिताजी का उत्साह कुछ न्यून हो गया था। वैसे भी इस समय उनकी आयु पचास वर्ष की हो चुकी थी। उससे भी उत्साह में कमी आना स्वाभाविक था। अत: नन्दबाई के निवास काल में दो तीन बार पं० रामसहायजी को तथा अन्य उपदेशक को बुला के यथा संभव प्रचार कार्य किया। नन्दबाई निवास के ५ वर्षों के काल में प्रचारार्थ आ० प्र० सभा के मन्त्री को लिखे गये किसी पत्र की प्रतिलिपि मुझे उपलब्ध नहीं हुई। सम्भव है कार्याधिक्य से पूर्ववत् प्रतिलिपियां नहीं रखी गई हों। नन्दबाई में अधिकतर प्रचार कार्य पिताजी ने स्वयं किया। इसके फलस्वरूप अनेक स्थानीय व्यक्ति वैदिक-धर्म के प्रति निष्ठावान् बने। उनमें सेठ नगजीरामजी प्रमुख थे। सेठ नगजीरामजी आजन्म गुरुकुल चित्तौड़ की आर्थिक सहायता करते रहे।

इस प्रसङ्ग को समाप्त करने से पूर्व हम ता० ७-११-२८ को पिताजी की खरगोन से पीपलिया के लिये बदली हो जाने के पश्चात् के आर्यसमाज खरगोन द्वारा **मन्त्री आ० प्र० सभा अजमेर** को लिखे गये कुछ पत्र उपलब्ध हुए हैं, उनका भी यहां संक्षेप से निर्देश करना आवश्यक समझते हैं। इसका कारण यह है कि पिताजी

१. कागज के फटने से एक दो शब्द टूट गये हैं।

ने खरगोन के निवास काल में जो विशेष कार्य किये थे उनके साथ ही इन पत्रों का सम्बन्ध है।

१—श्री छत्रसिंह दांगी, मन्त्री आर्यसमाज खरगोन ने २६-११-२८ को मन्त्री आ० प्र० सभा राजस्थान व मालवा को जो पत्र लिखा था उसमें पिताजी को पीपलिया बदलने की सूचना के साथ खरगोन में उनके द्वारा किये गये कार्य की प्रशंसा और खरगोन की जनता और विद्यार्थी वर्ग के दुःखी होने का भी उल्लेख किया गया है। इसी पत्र में अपने ऊपर बीती घटनाओं का भी संकेत किया है। इस पत्र को षष्ठ परिशिष्ट 'क' में संख्या २१ पर देखें।

२—ता० २६-११-२८ के दूसरे पत्र में श्री छत्रसिंहजी ने मन्त्री आ० प्र० सभा को खरगोन में **श्रीमद्दयानन्द अनाथ वनिताश्रम** के स्थापना की सूचना दी है। पत्र के लेख से प्रतीत होता है कि अनाथ वनिताश्रम की स्थापना इसी वर्ष ऋषि-निर्माण-दिवस अर्थात् दीपावली को हुई थी।

३—ता० २७-११-२८ को मन्त्री आ० प्र० सभा को लिखे गये पत्र में श्री छत्रसिंहजी ने लिखा है कि इन्दौर राज्य के प्राईम मिनिष्टर वापना साहब ने मुझे डोलग्यारस के झगड़े के हालात पूछ कर हिदायत दी कि 'तुम सरकारी कर्मचारी हो तुमने सार्वजनिक कार्यों में भाग नहीं लेना चाहिये? तुम सस्पेण्ड (= नौकरी से हटाये गये) हो और तुम पर दो-तीन पुलिस ने मुकद्दमे दायर किये हुए हैं' इत्यादि।[1]

४—ता० १२-१२-२८ के पत्र में श्री छत्रसिंहजी ने लिखा है—'२६-१२-२८ से २५-१-२९ तक खरगोन के प्रसिद्ध नवग्रह मेले में १५-१-२८ से एक सप्ताह तक आर्यसमाज की ओर से प्रचार करना निश्चित किया है। इसके लिये सुयोग्य भजनोपदेशक और एक उपदेशक भेजिये। जिस से प्रचार कार्य सुचारु रूप से सम्भव हो सके।[2]'

५—ता० २२-१० २९ के पत्र में महाशय कालूराम आर्य ने मन्त्री आ० प्र० सभा को लिखाहै—

'इस साल के वार्षिक वृत्तान्त का चित्र व दशांश व निश्चित कोटि का धन अभी तक प्रतिनिधि सभा को नहीं भेजा गया उसके कारण नीचे लिखे जाते हैं—

---

१. पूरा पत्र षष्ठ परिशिष्ट 'क' में संख्या २२ पर देखें।

२. पूरा पत्र षष्ठ परिशिष्ट 'क' में संख्या २३ पर देखें।

क. यहां के पूर्व मन्त्री गौरीलालजी आचार्य [के] खरगोन से चले जाने से इस साल के कार्यों की व्यवस्था सन्तोषजनक नहीं है।

ख. यहां के प्रधान मूलचन्दजी ने आर्यसमाज में द्वेष उत्पन्न करके गड़गड़ मचा दी……।

ग. वर्तमान मन्त्री छत्रसिंहजी को फिलहाल फुरसत कम होने से उन्होंने आपके पास मेरे दो पत्र भेज दिये हैं। दफ्तर का इन्तजाम ठीक न होने से मैं भी वार्षिक वृत्तान्त चित्र नहीं भर सकता हूं ………।

इस पत्र से ज्ञात होता है कि पिताजी की खरगोन से बदली हो जाने के पश्चात् लगभग १ वर्ष में ही खरगोन आर्यसमाज में राग द्वेष आदि के कारण अव्यवस्था उत्पन्न हो गई थी।

६—ता० २९-८-३० के मन्त्री आ० प्र० सभा को लिखे गये पत्र में श्री छत्रसिंहजी ने लिखा है—'राज्य ने आर्डिनेंस जारी करके सरकारी कर्मचारियों को किसी भी सभा में भाग लेने की मुनादी कर दी है। स्थानीय पुलिस अधिकारी भी आर्यसमाज के कार्य पर प्रतिबन्ध लगा रहे हैं।……आपसे प्रार्थना है कि होलकर नरेश को इस सम्बन्ध में लिखिये जिससे वैदिक-धर्म के प्रचार में राज्य के उच्च कर्मचारियों द्वारा जो कठिनाइयां उत्पन्न की जा रही हैं उनका निराकरण हो सके ………।[1]

७—इसी तारीख (२९-८-३०) के दूसरे पत्र में श्री छत्रसिंहजी ने अहिल्योत्सव के समय पूर्व वर्षों के समान ही मातेश्वरी के प्रति श्रद्धाञ्जलि समर्पित करने के उद्देश्य से जो उत्सव की तैयारी की थी उसके लिये स्थानीय अधिकारियों ने अनुचित एवं अप्रासङ्गिक आज्ञायें देकर हम लोगों को मर्माहत किया है।

स्थानीय अधिकारियों ने आर्यसमाज को बदनाम करने का विलक्षण तरीका निकाला है—गांव में किसी भी सम्प्रदाय की कोई चहल-पहल हो तो बस वह आर्यसमाज ही करता है।………।[2]

८. उक्त पत्रों के साथ २२-८-३० का श्री छत्रसिंहजी मन्त्री आर्यसमाज खरगोन का श्री सब इंस्पे० साहब पोलिस के नाम लिखा हुआ पत्र और उस पर डी० एस० पी० खरगोन द्वारा लिखी गई आज्ञा की नकल मिली है। और साथ में स्थानिक आर्यसमाज के प्रधान और मन्त्री व दीगर मेम्बर्स को आगाह करने के लिखित आदेश की नकल भी उपलब्ध हुई है। इन दोनों को हम आगे दे रहे हैं—

१. पूरा पत्र षष्ठ परिशिष्ट 'क' में संख्या २४ पर देखें।
२. पूरा पत्र षष्ठ परिशिष्ट 'क' में संख्या २५ पर देखें।

ओ३म्

ता०
२२-८-३०

सेवा में:—

श्रीमान् सब इंस्पे० साहेब पोलिस खरगोन
सादर नमस्ते ।

सविनय प्रार्थना है कि श्रीमती देवी अहिल्या मां साहेबा के पुण्य तिथि के उपलक्ष में खरगोन आर्यसमाज उत्सव मनायेगा यह उत्सव गांधी चौक से तीन बजे निकलकर बलवन्त बोर्डिंग होता हुआ सड़क-सड़क नदी पर जावेगा साथ में अखाड़ा छड़ी पटा व लाठी तलवार आदि कार्य होंगे राष्ट्रीयगान देशभक्तियुक्त गायन कविता आदि होंगे अतः इतलान गुजारिश है । विनंती ।

छत्रसिंह दांगी
आर्यसमाज खरगोन

किसी किस्म का हथियार साथ में ना रखा जाये सीवाये तलवार के दीगर सभों को काम में लाकर खेल खेले जा सकते हैं ।

सही० नकल
छत्रसिंह दांगी
मंत्री आर्यसमाज

सही० अंग्रेजी २२-८-३०
डी० सुप० खरगोन

श्री

खरगोन कस्बे के स्थानिक आर्यसमाज के प्रधान तथा मंत्री व दीगर मेंबर्स के जरिये ताजा आगाह किया जाता है, के,आज ता० २२-८-३० को श्री देवी अहिल्या मां साहेबा के जलसे निमित्त प्रोसेशन जी आप लोग आज निकालना चाहते हैं वो बमुजिब हुक्म जनाब जि० मेजिस्ट्रेट साहेब सिर्फ इसी शर्त पर मंजूर किया जाता है कि प्रोसेशन में जो खेल पटा लकड़ी वो लाठी वगैरा खेलें जावेंगे उसमें तलवार आदि शस्त्रों का उपयोग हरगिज न किया जावे न साथ रखे जावें इस बारे में रूबरू में भी समझा दिया गया है. व जो नकल मंत्री छत्रसिंह को दी गयी है उसमें का मतलब भी यही है ता० २२-८-३०

सही
डी० एस० पी०
खरगोन

सही नकल
छत्रसिंह दांगी
मंत्री

उपर्युक्त पत्रादि से यह तो विदित हो जाता है कि पिताजी की पीपलिया बदली के पश्चात् मध्य का कुछ समय छोड़कर सन् १९३० तक आर्यसमाज खरगोन अपने प्रचार कार्य में अनेक विघ्न बाधाओं के उपस्थित होने पर भी सक्रिय रहा। परन्तु कब तक सक्रिय रहा इसका हमें कुछ ज्ञान नहीं हो सका।

इसके पश्चात् सन् १९४५-४७ तक खरगोन आर्यसमाज पुनः सक्रिय रहा। सन् १९४७ में १-५ अप्रेल तक खरगोन में यजुर्वेद पारायण महायज्ञ हुआ था। उसमें गुरुकुल महेश्वर के आचार्य श्री पं० लक्ष्मीनारायणजी शास्त्री विद्याभास्कर[1] भी पधारे थे। तत्पश्चात् पुनः खरगोन की आर्यसमाज शान्त हो गई। मैं पूर्व पृष्ठ ८१ पर लिख चुका हूं कि जब मैं सन् १९७७ या ७८ में खरगोन गया था तब न वहां आर्यसमाज था और न कोई आर्य व्यक्ति ही मिला।

महेश्वर में गुरुकुल की स्थापना—पिताजी महेश्वर में आर्यसमाज मन्दिर के निर्माण के साथ गुरुकुल की स्थापना करना चाहते थे। मुझे गुरुकुलीय शिक्षा दिलाने के लिये उन्हें कितने कष्ट उठाने पड़े यह पूर्व पृष्ठ ५८ से ६४ तक लिखा जा चुका है और विभिन्न संस्थाओं से जो पत्र व्यवहार किया, वह भी तृतीय परिशिष्ट में दिया गया है। नीमाड़ के बालकों को वैदिक-शिक्षा से वञ्चित न होना पड़े, इसके लिये उन्होंने महेश्वर में गुरुकुल की स्थापना को भी अपना लक्ष्य बनाया था। परन्तु पिताजी के वैदिक-धर्मक प्रचार कार्य से रुष्ट शिक्षा विभाग के अधिकारियों द्वारा विभिन्न स्थानों में स्थानान्तर के कारण जैसे आर्यसमाज के लिये खरीदी गई भूमि पर भी वे राजकीय अधिकारियों द्वारा भूमि पर जबरन कब्जा कर लेने के कारण मन्दिर का निर्माण नहीं करा सके[2], उसी प्रकार गुरुकुल की स्थापना का स्वप्न भी उनके जीवन काल में साकार न हो सका।

पिताजी के मित्र एवं विश्वसनीय सहयोगी कसरावद निवासी श्री पं० आर० एल० व्यासजी का २२-६-१९३९ का एक पत्र मुझे लाहौर में मिला था। उसमें महेश्वर में गुरुकुल खोलने के सम्बन्ध में की जा रही व्यवस्था का वर्णन किया है। पत्र इस प्रकार है—

---

१. श्री पं० लक्ष्मीनारायणजी शास्त्री ने सन् १९७५ में श्री स्वामी ब्रह्ममुनिजी से संन्यास दीक्षा ली और श्री नारायण मुनि चतुर्वेद के नाम से प्रसिद्ध हुए।

२. इसका विस्तार से वर्णन आगे किया जायेगा।

ओ३म्

कसरावद
२२-६-१९३९

श्रीयुत प्रिय पं० युधिष्ठिर मीमांसक लाहौर.

नमस्ते—अत्र कुशलम् तत्रास्तु. आपका पत्र बहोत दिनों से नहीं आया सो अवश्य भेजियेगा.

आपको मालूम है सही कि पिताजी की जीवित अवस्था में एक बार निमाड़ में गुरुकुल खोलने की धून यहां वालों को सूझी थी परंतु उसके समाचार प्रकाशित होते ही चारों तरफ से गुरुकुल ज्ञाता लोगों के पत्र आने लगे उसमें उन्होंने साफ-साफ लिखा कि संस्थाएं चलती नहीं है बड़ी मुशिबत का सामना करना पड़ता है अत एव आप निमाड़ में गरुकुल न खोलें अस्तु. हमने उस कार्य को स्थगित कर दिया.

१५-१६ साल में निमाड़ के लड़के और लड़कियां २०-२५ के करीब बाहेर गुरुकुल में पढ़ने को गये हैं. और हर साल किसी न किसी कुल के उत्सव में निमाड़ के लोग जाते हैं इससे फिर एक लहर उठ खड़ी हुई है कि—निमाड़ में गुरुकुल चाहे छोटे से छोटे स्थिति का खड़ा किया जावे ताकि निमाड़ में गुरुकुल की शिक्षा का अधिक प्रचार होवे.

गत संक्रांति पर्व पर कुवां गांव में साप्ताहिक यज्ञ निमाड़ जिल्ले भर का हुआ था उस वक्त से फिर निमाड़ में कुल खोलने के लिये घोर परिश्रम हो रहा है. एक मुकाति ने ४-६ हजार रुपै देने का कहकर एक विशाल भवन (महेश्वर में किल्ले के अंदर जो सरकारी स्कूल की इमारत थी उसको) लीलाम में ले लिया है. और यह इच्छा है कि सिर्फ ५ श्रेणी तक की पढ़ाई का प्रबंध गुरुकुल विधि के अनुसार यहां किया जावे बाद ऊंची शिक्षा के लिए जिस विद्यार्थियों में शक्ति और सामर्थ होगा उनको चित्तोड़ या होशंगाबाद भेजकर स्नातक परिक्षा करवा दी जावेगी. इतना ही काम करने के लिये कमसे कम क्रमशः २ पंडित और दो तीन छोटे बड़े नोकर या अवैतनिक खत्री के मनुष्य मिलाकर कार्यारंभ करना. सोभि (१०-१५ विद्यार्थी मील जाने पर और १०-१५ हजार रुपै प्राप्त हो जाने पर सोलापुर सत्याग्रह से स्वामि नारायणनंदजी याज्ञीक-मत वालों के आने पर सोच-विचार कर कार्यारंभ करना) अन्यान्य अनुभवी पंडितों की सर्वप्रथम सलाह लेने पर उसमें सर्वप्रथम आप भी एक अनुभवी गुरुकुल प्रणाली के ज्ञाता हैं ऐसा समझकर आपका नाम मंडली को बताया करता हूं. आप यह लिखें कि—

ऐसा गुरुकुल चल सकेगा क्या? अगर आपको ही सर्वप्रथम पढ़ाई के वास्ते यहां आना पड़े तो आप आ सकेंगे क्या ?

यदि आपके सिवाय आपके निचे या आप के ऊपर सर्वकाम संभालने वाले विद्वान् और अनुभवी दूसरा पंडित अवैतनिक (निर्बाह खर्च लेकर) या वैतनिक मिल सकेगा क्या ? आपके पास नहीं तो अन्यत्र गुरुकुलों में आपके परिचित मित्र पंडित निस्वार्थ सेवकों (ऐसे कार्य में पूर्ण योग देकर काम को जमाने की इच्छा रखने वाले) से जानकारी हो या अब तपास करने से मिले तो लिखियेगा. सर्वप्रथम आपको यह पत्र लिखा है. बाद होशंगाबाद लिखा जावेगा. उपरोक्त सब बातों का मनन करके पत्र व्यवहार करियेगा. यदि सब योग मिल जावे तो पिता श्री का अधूरा कार्य हम पूरा कर सकें. महेश्वर की बीलडिंग जो लीलाम में ली है किसेके अंदर४-८ हजार की लागत की है. गुरुकुल के निमित्य ८५०) रु० में लेकर कुछ टुट-फूट दुरूस्ती करना आरंभ कर दिया है. गुरुकुल नहीं बना तो पुन्हः १-२ साल में सामान बेचना भाग पड़ेगा. किसी प्रकार का भी आदर्श स्कूल बनाना है हमारी स्कीम कायम रखने की योजना जमे तो जमाने की शक्ति भर कोशीश करियेगा. यदि कोई दूसरी स्कीम आप अपनी राय से या आपके मित्रों की राय से निमाड़ में वैदिक-शिक्षा प्रचार की बतावें तो उस पर विचार किया जावेगा. आपके आस-पास बहुत से विद्यालय और साधू आश्रम हैं आपका उधर निवास होने से परिचय आप का उधर जादे है वास्ते तकलिफ दी है सबकी सबको नमस्ते कहिये—

आर० एल० व्यास

इस पत्र के अनुसार महेश्वर में गुरुकुल खोलने की योजना कार्यरूप में जून १ से पूर्व ही परिणत होनी प्रारम्भ हो गई थी। पत्र में ८५० रुपये में जिस बिल्डिग को खरीदने का निर्देश है उसमें राजकीय ए० व्ही० स्कूल चलता था। यह दो मञ्जिली विशाल बिल्डिग थी। स्थान एवं वातावरण की दृष्टि से भी यह बिल्डिग गुरुकुल के लिये उपयोगी थी।

वास्तविक रूप में महेश्वर में गुरुकुल की स्थापना कब हुई और कब से कब तक गुरुकुल चला, यह सब अज्ञात है। उस समय के सभी व्यक्ति कालकवलित हो चुके हैं। अतः इस विषय में यथार्थ जानकारी नहीं प्राप्त कर सके। हम ऊपर लिख चुके हैं कि सन् १९४७ में १-५ अप्रेल तक खरगोन में जो 'यजुर्वेद पारायण' महायज्ञ हुआ था, उसमें महेश्वर गुरुकुल के आचार्य श्री पं० लक्ष्मीनारायणजी शास्त्री

विद्याभास्कर उपस्थित थे। इससे इतना ही स्पष्ट होता है कि सन् १९४७ तक महेश्वर में गुरुकुल चल रहा था।

अब पिताजी के दूसरे महत्त्वपूर्ण कार्य आर्यकुटुम्ब सहायक द्रव्यनिधि[1] के सम्बन्ध में लिखा जाता है—

आर्यकुटुम्ब सहायक द्रव्यनिधि—इसकी स्थापना की प्रेरणा पिताजी को इन्दौर राज्य में उस समय कार्यरत सरकारी नौकरों की कुटुम्ब सहायक द्रव्यनिधि नाम्नी संस्था से मिली। पिताजी इस संस्था के सदस्य थे। इस कारण इसकी सरल कार्य-पद्धति तथा इसके स्वर्गत हुए सदस्य के परिवार को इस संस्था द्वारा एक साथ प्राप्त होने वाली सभा से जो राहत मिलती थी, उससे वे भलीभांति परिचित थे। इस द्रव्यनिधि के प्रमुख नियम इस प्रकार थे—

१—सदस्यता की अर्जी के साथ १ रुपया सदस्यता शुल्क भेजा जाये।

२—अर्जी की तारीख के २ मास के अन्दर ५ रुपया अमानत का भेजा जाये।

३—सदस्य की मृत्यु होने पर मन्त्री प्रत्येक सभासद से एक मास के भीतर एक एक रुपया भेजने की विनंती करे। ऐसी मांग होने पर प्रत्येक सभासद को १ रुपया निश्चित समय तक भेजना होगा।

४. इस प्रकार एकत्रित हुए धन का दशांश कार्यालय के खर्च के लिये रखकर शेष रुपया मृत सभासद के परिवार को दे दिया जायेगा।

आर्यसमाज में आजीवन निर्वाहमात्र वृत्ति लेकर वैदिक-धर्म का प्रचार करने वाले व्यक्ति के निधन के पश्चात् उसके परिवार को किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, इस तथ्य से भी वे अच्छी प्रकार परिचित थे। हमारी शिरोमणि संस्थाएं ऐसे प्रचारक महानुभावों के परिवार की सुध लेना अपना कर्तव्य ही नहीं समझती हैं। अतः पिताजी के मन में इन्दौर राज्य के सरकारी कर्मचारियों की कुटुम्ब सहायक द्रव्यनिधि के समान ही सरल और उदार नियमों पर आश्रित आर्य-कुटुम्ब सहायक द्रव्यनिधि नाम की समिति बनाने का विचार उत्पन्न हुआ। इसे कार्यरूप में परिणत करने के लिये पिताजी ने स्वयं आर्यकुटुम्ब सहायक द्रव्यनिधि

---

१. इसके सम्बन्ध में पिताजी ने मन्त्री आ० प्र० सभा अजमेर को जो पत्र लिखे, उनमें 'द्रव्यनिधि' के स्थान में कहीं 'सभा' कहीं 'भण्डार' आदि विविध शब्दों का प्रयोग मिलता है।

नियमावली और रसीद बुकें छपवा ली थीं।[1] यह छपी हुई नियमावली और रसीद बुकें मैंने सन् १६२५ की मथुरा जन्म शताब्दी के अवसर पर देखी थीं।

पिताजी इस महत्तम कार्य का श्रेय 'आर्यप्रतिनिधिसभा राजस्थान व मालवा' को देना चाहते थे। अतः उन्होंने जन्म शताब्दी के पश्चात् छपवाई गई नियमावली और रसीदें सभा को देकर[2] उसे सभा में पारित करवा कर कार्य आरम्भ करने की योजना बनाने की प्रार्थना की, तथा इस कार्य के लिये अपनी सेवायें भी अर्पित करने का निश्चय बताया।

सभाओं का सामान्य नियम है कि जिस कार्य को वह नहीं करना चाहती उसके लिये एक 'उपसमिति' बना देती हैं। यही कार्य आ० प्र० सभा राजस्थान व मालवा ने भी किया। उसने भी इस कार्य की उपयोगिता के निर्णयार्थ एक उपसमिति बना दी। पिताजी का इस सम्बन्ध में जो अन्तिम पत्र मुझे उपलब्ध हुआ है वह २७-११-२६ का है[3]। इतने सुदीर्घ काल में भी पिताजी द्वारा बीसियों पत्र लिखने पर भी आ० प्र० सभा न उपसमिति की रिपोर्ट प्राप्त कर सकी और न उसने इस पर कोई कार्यवाई ही की।

जहां तक हम समझते हैं कि 'आर्यकुटुम्ब सहायक द्रव्यनिधि' का मामला सिरे पर न चढ़ने या चढ़ाने का प्रमुख कारण था—आर्यप्रतिनिधिसभा के अधिकारियों का सम्पन्न होना। सम्पन्न व्यक्ति साधारण जन की द्रव्याभाव से होने वाली व्यथा को समझने में जहां असमर्थ होता है, वहां इस प्रकार की द्रव्यनिधि से प्राप्त होने वाली धनराशि भी उसके लिये नगण्य होती है। अत एव आ० प्र० सभा के अधिकारियों ने इस विषय में कोई रुचि नहीं ली।

---

१. पिताजी ने ११-६-२६ को मन्त्री आ० प्र० सभा अजमेर को जो पत्र भेजा था उसमें लिखा है—मैं भी उन सम्मतियों पर अपना नया भाव प्रकट करूंगा क्योंकि पूर्व नियमावली रचने में मेरा हाथ है। पूरा पत्र षष्ठ परिशिष्ट 'ख' में संख्या १ पर देखें।

२. द्र०—षष्ठ परिशिष्ट 'ग' में ३-१-२६ का पत्र—'३—आर्यकुटुम्ब सहायक स० सं० के और प्रचार के मेरे कागजात श्रीमान् मन्त्रीजी महाराज आर्यसमाज के दफ्तर में पड़े हैं। मैंने उनसे बैरंग ही मांगे थे……।' तथा षष्ठ परिशिष्ट 'ख' में संख्या २ पर छपा पत्र भी देखें।

३. द्र०—षष्ठ परिशिष्ट 'ग' में महेश्वर आर्यसमाज मन्दिर के सम्बन्ध में २७-११-२६ का पत्र।

स्वयं पर बीती घटना—मेरे पिताजी अपने निधन के समय केवल ५०० रुपया पोस्ट आफिस के सेविंग बैंक में जमा छोड़ गये थे (नकद मुझे कुछ नहीं मिला)। मैं उनके निधन के पश्चात् असहाय सा हो गया था[1]। ऐसे समय में 'राज्य कर्मचारी कुटुम्ब सहायक द्रव्यनिधि इन्दौर' से मुझे एक हजार से कुछ ऊपर जो द्रव्यराशि प्राप्त हुई, उसने मुझे कितना सहारा दिया, यह मैं ही जानता हूं।

आर्यसमाज की विभिन्न संस्थाओं के सम्पन्न व्यक्ति बुरा न मानकर आत्मालोचन करें। ईसामसीह का कथन है—**'सूई के छिद्र में से ऊंट गुजर सकता है, पर स्वर्ग के द्वार से धनी नहीं गुजर सकता'**। यह वचन क्या इसी तथ्य की ओर संकेत करता है?

ईसामसीह का वचन उन धनिकों के लिये हैं जो अपने धन के मद में अपने आश्रितों एवं निरीह जनता के दुःख दर्द की कुछ भी परवाह नहीं करते हैं। जो सम्पन्न व्यक्ति सुपथ से उपार्जित द्रव्य को देश, जाति, समाज और दरिद्रनारायण की सेवा के लिये भगवान् की देन मानकर प्रयुक्त करते हैं ऐसे भामाशाह एवं रहीम सदृश व्यक्तियों के लिये ईसा का कथन नहीं है। इसीलिये वेद में कहीं भी लक्ष्मी की प्राप्ति की कामना नहीं की गई है।[2] वेद में सबसे अधिक कामना उपलब्ध होती है—रयि की। यथा—**स्याम पतयो रयीणाम्**। रयि वह धन है जो दान (रा दाने)

---

१. गांव में सेठ रामप्रसादजी ईनाणी सबसे धनी व्यक्ति थे। पिताजी का लेन-देन इन्हीं के साथ था। पिताजी का पत्र पाकर श्री काका गणेशीलालजी को जब चाहे हजारों रुपया उधार दे देते थे। पिताजी के स्वर्गवास के पश्चात् मैं काकाजी को साथ लेकर इनसे आवश्यक खर्च के लिये केवल ५०० रु० मांगने गया। तो इन सेठजी ने उधार देने से साफ मना कर दिया। काकाजी ने कहा मेरे नाम पर उधार दे देवें, परन्तु सेठजी टस से मस नहीं हुए। तभी मुझे ईसामसीह का आगे लिखा वचन स्मरण आया।

२. 'लक्ष्मी' शब्द का अर्थ है लक्ष्म=चिह्न लगाने वाली। अर्थात् जिस सम्पत्ति को प्राप्त कर मनुष्य केवल लखपति करोड़पति कहलाने मात्र का अधिकारी होता है। ऐसी लक्ष्मी को प्राप्त व्यक्ति उसका न स्वयं उपभोग करता है और न किसी को करने देता है। नाग के समान उसकी रक्षामात्र करता है। धन प्राप्ति की कामना वेद में स्वल्प स्थानों पर उपलब्ध होती है। 'धन' उस सम्पत्ति को कहते हैं जिसका उपभोग प्राप्तिकर्त्ता अपने परिवार एवं मित्र बान्धवों के लाभ के लिये करता है। यह धन 'लक्ष्मी' की अपेक्षा कुछ अच्छा है। परन्तु रयि की महिमा सर्वोपरि है।

के लिये ही प्राप्त किया जाता है न कि स्व उपभोग के लिये (स्व-जीवन-निर्वाह तो उससे स्वयं सम्पन्न हो जाता है)।

यद्यपि पिताजी द्वारा तैयार की गई **आर्यकुटुम्ब सहायक द्रव्यनिधि** की नियमावली प्राप्त नहीं हुई, तथापि आर्यसमाज खरगोन के पत्रों की फाइल में **श्री मेघराज आर्य, प्रधान [1]आर्यसमाज खरगोन** के हस्ताक्षर युक्त **समस्त आर्यभ्राताओं से निवेदन** शीर्षक पत्र के साथ **आर्यसमाज के सभासदों** का आर्य **परिवार सहायक द्रव्यनिधि, आर्यप्रतिनिधिसभा राजस्थान व मालवा** के नियमों की एक प्रतिलिपि प्राप्त हुई है (इसे षष्ठ परिशिष्ट 'ख' में संख्या ३ पर देखें)। यद्यपि इस पर कोई तिथि वा तारीख नहीं है तथापि हम समझते हैं यह सन् १९२४ से १९२६ के मध्य तैयार की गई होगी[2]। इन नियमों के अवलोकन से पाठकों को भली प्रकार ज्ञात हो जायेगा कि यह योजना कितनी उपयोगिनी थी। 'निवेदन' से इस द्रव्यनिधि की स्थापना का प्रयोजन अच्छी प्रकार स्पष्ट हो जाता है। अतः इसे हम नीचे दे रहे हैं—

ओ३म्

समस्त आर्य्यभ्राताओं से निवेदन

महाशयगण। आर्य्यसमाज के सभासदों में से कुछ थोड़े से धनवानों को छोड़-

---

१. आर्यसमाज खरगोन की स्थापना फाल्गुन बदी ४ सं० १९९८० में हुई थी। इसकी सूचना आर्यमार्तण्ड में छापने के लिये मन्त्री ओंकारसिंहजी ने २७-२-२४ को एक पत्र लिखा था (द्र० —षष्ठ परिशिष्ट 'क' में संख्या ६ का पत्र)। इसी के साथ 'आर्यप्रतिनिधिसभा राजस्थान व मालवा' को स्वीकृति के लिये जो आवेदन किया था उसमें स्थापना की मिति फा० बदी ४ सं० १९८० (फर्वरी १९२४), सभासदों की संख्या ११, प्रधानादि के नामों का उल्लेख करते हुए प्रधान मेघराज आर्य मन्त्री ओंकारसिंह आर्य ने हस्ताक्षर किये हैं। यह आवेदन पत्र भूल से मुद्रित होने से रह गया।

१. अधिक सम्भावना है कि यह नियमावली सन् १९२४ में तैयार की गई हो। पिताजी ने भी आर्यकुटुम्ब सहायक द्रव्यनिधि की नियमावली इसी सन् में तैयार की थी और फर्वरी सन् १९२५ में मथुरा में होनेवाली जन्म शताब्दी के समय छपवा कर ले गये हों। मेघराजजी आर्य द्वारा निर्मित नियमावली में भी पिताजी का हाथ रहा होगा।

कर शेष सदस्यों की आर्थिक अवस्था नितान्त गिरी हुई है. यदपि साधारण स्थिती का आर्य्यपुरुष अपने जीवन काल में अपने परिवार का पालन उत्तम रीति से कर संकता है परंतु उसके मृत्यु के पश्चात् उसके असहाय परिवार की जो दैन्यावस्था होती है वह अत्यंत करुणाजनक है. जबकि हिन्दू समाज से दिन प्रतिदिन परस्पर सहायता करने के भाव स्वयं ही लोप होते जा रहे हैं एक असहाय आर्य्य परिवार को उसके पौराणिक रिस्तेदारों की ओर से सहायता मिलना दुराशा मात्र है। मुझे कई बार देखने और सुनने में आया है कि, इस प्रकार के असहाय आर्य्य परिवारों को अपने पौराणिक रिस्तेदारों से अपर्याप्त सहायता प्राप्त करने में भी आर्य्यत्व से पतित होना पड़ा है. अतः आर्यसमाज के सभासद की मृत्यु पश्चात् उसके परिवार को श्रीमती आर्यप्रतिनिधिसभा से द्रव्य की सहायता दी जाने के लिये **'परस्पर सहायक द्रव्यनिधि"** खोली जावे जिसके नियम विचारार्थ आप महानुभावों के पास भेजकर प्रार्थना करता हूं कि, इन नियमों का अवलोकन कर यदि कुछ न्यूनाधिक करना आवश्यक समझा जाय या कोई शंका उपस्थित हो मंत्री आर्य्यसमाज खरगोन जिल्हा नेमाड़ रिआसत इन्दोर इस पते से पत्र व्यवहार करें.

मेरे विचार में यह आर्य्य परिवारिक सहायक द्रव्यनिधि आर्य्यसमाज के स्थाई सभासदो में वृद्धि करने के अतिरिक्त मृत आर्य्यपुरुष के परिवार को आर्य्यत्व पर दृढ रहने में सहायक होगी. और उन महान् कार्यों में से एक महान कार्य होगा जो कि ऋषि शताब्दि उत्सव के उपलक्ष में किये जाने के हैं.

इस सहायक द्रव्यनिधि के सभासदों के सहुलियत के लिये इस संस्था के सभासदों की संख्या दो हजार से ज्यादे बढने पर दो २ हजार सभासदों का एक एक डिव्हीजन बना दिया जायगा जिससे प्रत्येक सभासद केवल अपने ही डिव्हीजन के सभासद की मृत्यु पर प्रति मृत्यु एक रुपया सहायता देने का जिम्मेवार होगा और मृत सभासद का परिवार कुल रुपये २००० में से १/१० निकालकर रुपये १८०० एक हजार आठसो की सहायता का हक्कदार होगा।

भवदीय
मेघराज आर्य्य
प्रधान आर्य्यसमाज
जिल्हे नेमाड़

महेश्वर में आर्यसमाजभवन-निर्माण

महेश्वर में 'आर्यसमाज भवन' के निर्माण का प्रयास—महेश्वर पुण्य सलिला नर्मदा नदी के उत्तरी तट पर बसा हुआ मध्य भारत का एक प्रमुख तीर्थस्थान है।

यहां वर्ष में कई अवसरों पर मेले भरते हैं। देश के कोने कोने से श्रद्धालु यात्री यहां आते रहते हैं। इस प्रकार यह मध्य भारत का एक न केवल तीर्थस्थान है अपितु सांस्कृतिक स्थान भी है। प्रातः स्मरणीया दानशीला श्रीमती अहिल्याबाई के समय यह नगर होलकर राज्य की राजधानी भी रहा है। ऐसे प्रमुख नगर में वैदिक धर्म के प्रचार के कार्य को चिरकाल तक व्यवस्थित करने की दृष्टि से पिताजी ने इस नगर में आर्यसमाज भवन के निर्माण की योजना बनाकर उसे कार्य रूप में परिणत करने का प्रयास किया।

हम यहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक समझते हैं कि यद्यपि पिताजी ने 'आर्यप्रतिनिधिसभा राजस्थान व मालवा' के मन्त्रीजी के साथ जो पत्र-व्यवहार किया है, उसमें 'मन्दिर' शब्द का ही व्यवहार मिलता है परन्तु उन्होंने इसका नाम आर्यसमाज भवन क्यों रखा इसका कारण मन्त्री आ० प्र० सभा को (कागज जीर्ण होने से तारीख नष्ट हो गई) लिखे गये पत्र में पिताजी ने इस प्रकार लिखा है—

'आप [प्रायम मिनिस्टर बापना साहब को] पत्र लिखें [तो] उसमें मन्दिर शब्द का प्रयोग न करें और बदले में भवन वा मकान आदि का उपयोग करें। कारण, मन्दिर मस्जिद बनाने वालों को मंजूरी लेनी पड़ती है और कई शर्तें हैं। मन्दिर शब्द का उपयोग अपने लिये वैसा अर्थ नहीं रखता है।'[1]

आर्यसमाज भवन के लिये भूमि का क्रय—आर्यसमाज भवन के निर्माण की योजना कब बनी, यह तो ज्ञात नहीं, परन्तु भवन निर्माण कार्य को म्यूनिसिपल महेश्वर द्वारा रोक देने के विरुद्ध 'सूबे साहब जिला नीमाड़ के कोर्ट, खरगोन' में १२-९-२७ को पिताजी ने जो अपील की, उसमें लिखा है—

'यह भूमि अपीलांट ने स्वतः सन् १९२४ में भूतपूर्व स्वामी एक बोहरा और एक ब्राह्मण से,जिनके कि कुछ काल पहले मकान आबाद थे, क्रमशः ७५) और २५) रुपये में मोल लिया है।'[2]

इससे स्पष्ट है कि आर्यसमाज भवन के लिये सन् १९२४ में भूमि खरीदी गई थी।

भवन निर्माण कार्य का आरम्भ—'(म्यूनिसिपल) कमेटी ने............अर्जदार को मकान बनवाने की परवानगी का ठा० नं० ६७।५-२-२५ दिया।'[3] मकान बन-

---

१. पूरा पत्र षष्ठ परिशिष्ट 'ग' में संख्या ९ पर देखें।

२. यह पत्र षष्ठ परिशिष्ट 'ग' में संख्या १७ पर देखें।

३. द्र०—षष्ठ परिशिष्ट 'ग' में संख्या २२ पर छपी अर्जी।

वाने की परवानगी प्राप्त होने पर ता० २०-१०-२५ को पिताजी ने मकान बांधने का कार्य आरम्भ कर दिया था।[१]

भवन निर्माण के लिये प्राप्त दान—भवन निर्माण कार्य के लिये सहायतार्थ पिताजी ने मार्गशीर्ष सोमवती [अमावस] सं० १९८२ (=सन् १९२६) एक निवेदन पत्र आर्यमार्तण्ड (अजमेर) में छापने के लिये भेजा था[२], उसके अन्त में उस समय तक जिन दानदाताओं ने दान दिया था, उनका ब्योरा इस प्रकार दिया है—

(१) कसरावद के पांच दाताओं ने भूमि ५३ × ३०½ फीट मोल लेकर अर्पण की	मूल्य १०५॥)
(२) एक महानुभाव का निर्माण कार्यारम्भ दान	॥।≡।)
(३) श्रीमान् छीतरजीभाई साटकूर	१००)
(४) श्रीमान् कुशलजी भाई सुन्दरेल	५०)
(५) श्रीमान् गोपालदेवचन्द्रजी पटेल समसपुरा	५०)
(६) श्रीमान् गोपाल महादेवजी तिवारी महेश्वर	१००)
योग	४०६।≡।)

इस द्रव्य से भवन के लिये भूमि की खरीद व उसकी कुर्सी और पेड़ियों का निर्माण हो गया था।

पिताजी की इच्छा थी कि आर्यप्रतिनिधिसभा राजस्थान व मालवा के अधिकारीगण इस कार्य में विशेष रुचि लें। इसलिए उन्होंने २२-१२-२५ को मन्त्री आ० प्र० सभा को लिखे पत्र में लिखा था—

'भगवन् ! इस गिरे प्रदेश में यह एक आर्यसमाज मन्दिर बन जावे और सं० १०२ की शिवरात्रि पर वार्षिक मेला द्वारा आर्य संगठन के बीजारोपण हो जावें तथा श्रीमती प्रतिनिधिसभा को आप अर्पण करें तो नीमाड़ में जागृति का सूर्योदय होवे। आप के सहित मार्तण्ड का आश्रय हमें चाहिये।'[३]

१. द्र० – षष्ठ परिशिष्ट 'ग' में संख्या ७ पर 'वाहटदार के द्वारा दिये गये नोटिस' का उत्तर।

२. 'निवेदन-पत्र' षष्ठ परिशिष्ट 'ग' में संख्या २ पर देखें।

३. द्र०—षष्ठ परिशिष्ट 'ग' में संख्या ३ पर छपा पत्र। इस उद्धृत अंश में सं० १०२ लिखा है, यह दयानन्दाब्द है।

भवन में स्त्रीमण्डल की बैठक—पिताजी ने ३-१-२६ के पत्र में लिखा है—

'१—मन्दिर में स्त्रीमण्डली की बैठक निर्माण की योजना यहां के श्री इंजिनियर सा० और ओव्हरसियर सा० सोचेंगे और यहां की परिस्थिति अनुसारतः उचित रहेगी।'[1]

भवन निर्माण बन्द करने का सरकारी नोटिस—भवन निर्माण का कार्य आरम्भ हो जाने के लगभग ८ मास पश्चात् व्हैवटदार सा० हुजूर खासगी संस्थान महेश्वर ने जावक नं० ७५६ ता० १४-६-२६ को एक नोटिस दिया जिसमें 'किले की पुश्त में इमारत बांधने के लिये जो किले की पुश्त की मिट्टी खोदी है उसे ८ दिन के अन्दर जैसी की तैसी डलवादी जाय और इधर इत्तल्ला करें ...।'[2]

इसके पश्चात् आर्यसमाज भवन के निर्माण का कार्य रुक गया। सरकारी नोटिस का उत्तर पिताजी ने १४-६-२६ को दिया।[3]

सरकार आर्यसमाज-भवन के निर्माण में नई-नई अड़चनें उत्पन्न करती रही, उनके निवारण के लिये पिताजी भी निरन्तर प्रयत्नशील रहे। सरकार ने महेश्वर से पिताजी की बदली खरगोन और खरगोन से पीपलिया कर दी। पीपलिया आने जाने का मार्ग अत्यन्त कठिन था, फिर भी पिताजी इस कार्य के लिये खरगोन वा पीपलिया से बार-बार इन्दौर जाते आते रहे। इसके लिये सारा व्यय भी स्वयं किया। कई बार आशा की किरण दिखाई भी पड़ी, परन्तु कार्य सिद्ध न हुआ। अन्त में निराश होकर पिताजी ने १५-३-२८ को मन्त्री आ० प्र० सभा को लिखे गये पत्र में लिखा था—

'होता वही है जो आफिसरों ने ठान रखी है। कोई गृहस्थी का घर होता, समाज का न होता तो कोई रुकावट आती ही नहीं। पर सत्यतायुक्त मर्दानगी के कामों में सबकों चकाचौंधी आती है'।[4]

इसी पत्र में सरकारी आदेशों से निवटने के लिये एक बैरिस्टर करने का विचार भी प्रस्तुत किया है।

अन्त में जमीन और उसपर किये गये खर्च की वसूली के लिये पिताजी ने सरकार पर मुकद्दमा दायर करने के लिये ६ दिसम्बर १९२८ को इन्दौर में हरकिशनलाल

---

१. पूरा पत्र षष्ठ परिशिष्ट 'ग' में संख्या ४ पर देखें।
२. पूरा नोटिस षष्ठ परिशिष्ट 'ग' में संख्या ५ पर देखें।
३. यह उत्तर षष्ठ परिशिष्ट 'ग' में संख्या ७ पर देखें।
४. पूरा पत्र षष्ठ परिशिष्ट 'ग' में संख्यां २४ पर देखें।

बैरिस्टर को मुख्तार पत्र दिया। ये बैरिस्टर साहब विना सूचना दिये इन्दौर छोड़ गये और पेशगी पर उपस्थित न होने से मुकद्दमा खारिज हो गया।[1]

इसके पश्चात् पिताजी ने बैरिस्टर साहब को यह कार्य सौंपा। पिताजी ने २७-११-२६ के पत्र में मन्त्री आ० प्र० सभा को लिखा है—'महेश्वर समाज भवन का मुकद्दमा केबिनेट में चालू है।'[2]

इसके पश्चात् आर्यसमाजभवन निर्माण से सम्बद्ध २६-१-३० का एक ही पत्र पिताजी का मिला है। उसमें नारायणगढ़ इन्दौर महेश्वर कसरावद खरगोन पुन: इन्दौर होकर पीपलिया पहुंचने का कार्यक्रम लिखा है। और अन्त में 'आगे की कार्यवाई यथासमय अर्पण करता रहूंगा।[3]

महेश्वर आर्यसमाज भवन के सम्बन्ध में हमें ३० पत्रादि मिले हैं। उनका संक्षिप्त सारांश ऊपर दे दिया है, परन्तु इस कार्य के लिये पिताजी को कितना घोर परिश्रम भागदौड़ और धन व्यय करना पड़ा, इस सबकी यथोचित जानकारी के लिये हम षष्ठ परिशिष्ट के 'ग' भाग में समस्त पत्र आदि छाप रहे हैं।

आर्यसमाज का कार्य करना अत्यन्त कठिन कार्य है। इसके लिये कार्यकर्त्ता को न केवल सब प्रकार के कष्ट झेलने पड़ते हैं,अपितु आत्मोत्सर्ग भी करना पड़ता है।

पिताजी के द्वारा मन्त्री आर्यप्रतिनिधिसभा राजस्थान और मालवा को लिखे गये पत्रों से स्पष्ट है कि वे वैदिक-धर्म के प्रचार, आर्यकुटुम्ब सहायक द्रव्यनिधि और महेश्वर में आर्यसमाज भवन के निर्माण स्वरूप तीनों कार्यों में सभा से प्रत्यक्ष सहयोग चाहते थे,परन्तु वह उन्हें न मिल सका। वे स्व० वाञ्छित किसी कार्य की पूर्ति अपने जीवन में न देख सके और २५-१२-३५ का वह दिन उपस्थित हो गया, जिसमें अपने विश्वासपात्र कट्टर मतान्ध डाक्टर गजनफर अली ने जानबूझकर मारक इञ्जेक्शन देकर, उन्हें सदा के लिये इन कार्यों की चिन्ता से मुक्त कर दिया [इसके सम्बन्ध में पूर्व पृष्ठ ६१-६२ पर लिख चुके हैं।]

आर० एल० व्यास (कसरावद)—महेश्वर के आर्यसमाज भवन की भूमि श्री आर० एल० व्यास कसरावद के नाम से की गई थी। ये महानुभाव पिताजी के अनन्य मित्र और सहायक थे। पिताजी के स्वर्गवास के पश्चात् आर्यसमाज भवन सम्बन्धी सभी पत्र और मुकद्दमे सम्बन्धी पत्र पिताजी के संग्रह में मुझे प्राप्त हुए थे। बहुत दिनों तक मैं सोचता रहा। एक दिन अचानक मुझे श्री आर० एल०

---

१. यह पत्र षष्ठ परिशिष्ट 'ग' में संख्या २७ पर देखें।
२. यह पत्र षष्ठ परिशिष्ट 'ग' में संख्या २८ पर देखें।
३. यह पत्र षष्ठ परिशिष्ट 'ग' में संख्या २६ पर देखें।

व्यास कसरावद वालों का ध्यान आया । मैंने नवम्बर १९३७ के उत्तरार्ध में व्यासजी को पत्र लिखा जो उन्हें २६-११-३७ को मिला । उस पत्र के उत्तर में श्री व्यासजी ने जो विस्तृत पत्र लिखा उसे मैं यहां नीचे दे रहा हूं—

ओ३म्

कसरावद
२६-११-३७

श्री प्रिय युधिष्ठिर । नमस्ते

अभी कार्ड का जबाव लिखने मात्र से दिल को संतोष नहीं हुआ. क्योंकि तुम्हारा तो हमको पता भी मालूम नहीं है. दिल के विचार आप पर प्रकट नहीं किये जावें तो दिल में उदाशीनता बनी ही रहं जावे इस वास्ते आज ही यह पत्र लिखा जाता है. इस पर विचार करते निमाड़ भूमि को और हम लोगों को भूल नहीं जाना. पिताजी के और हमारे विचारों में कुछ भी अंतर नहीं था. बहोत दिनों तक नंदबाई पत्र लिखा फिर ज्ञात हुआ कि उनको पेंशन हो गई. वे बिड़गचावास चले गये वहां पता मालूम नहीं होने से पोस्ट मेन के मार्फत पत्र उनके नाम लिखे गये थे. परंतु पत्रोत्तर नहीं आने से निराशा हो गइ—तुम लाहोर में हो ऐसा आपके एक सहपाठी ने मुझे कहा था. जो होशंगाबाद गुरुकुल से यहां प्रचारार्थ आये थें किसी कागदी की दूकान का उनोने नाम लिखा था. वहां भी अंदाज से पत्र लिखा था. जिसे सालभर से जादे समय हुआ. पत्रोत्तर नहीं आया न पत्र लौटकर मिला. निराश बैठे थें.

महेश्वर में दरजी भगतजी एक सोनीजी और अनोपचंद डाक्टर आदि सज्जनों से उस जमीन के फरोक्तनामें आदि लेखों बाबद तपास की परंतु वहां पता नहीं लगा । आज अनुयास आपका पत्र सवेर में मिला. मेरे शुद्ध आत्मीय बंधु की मरण कथा सुनकर मेरा और ओंकार भाई आदि मंडली जो सदेव भाईचारा निभाने वाले हैं,महान शोक हुआ. और खूब विचार हुआ कि प्रिय युधिष्ठिर की क्या व्यवस्था हुई होगी. क्या धंधा करता होगा ? पढ़ाई समाप्त हो गई या नहीं ? निमाड़ में प्रचार करूंगा जब मुझे पेंशन मिल जावेगी तब ऐसा वे मृत बंधु कहते थे. अब निमाड़ में प्रचार कैसे होगा ?

उनके बलपर उनके विचार से ही महेश्वर में भूमि ली थी. उनका विचार था निमाड़ भर में सिर्फ एक ही जगे (महेश्वर में) समाज का स्थान बना देना इसी के नाम साधू आश्रम इसी के नाम विद्यालय इसी के नाम यज्ञ मंदिर इसी के नाम

निमाड़ की समाजों का प्रचार सेंटर होगा. निमाड़ के तमाम लोग महेश्वर में बिना बुलाये.वृत तिर्थ करने पर्व नहाने व्यापर सौदा लेने आया करते हैं. ये लोग भी इस गांव में जाते हैं बस यही सोचकर प्रयत्न के साथ जमीन लीगई. काम शुरू करने का दाखला भी हांशील किया गया. बहिवटदार के बाबद में पिताजी ने कुछ नोट छपवा दिया जो (ताजे उठाने और राजनाथ सवारी के आगे मुसलमान रंडियां नाचने के विचय में था) उससे नाराज होकर बहिवटदार ने बदली पिताजी की करवाई और समाज के मकान का काम बंद करवा दिया नुक्स यह लगाया के (पुराने सरकुलर में एक सरकुलर किले के पास मकान बनाने नींव खोदने से कीले के नुक-सान का डर है वास्ते पास किले के मकान बनाना रोक दिया) साथ ही—बलवंत सिंहजी सूवा के मुसलमानों से इदौर में दंगा हो जाने से सरकार ने मंदर मसजीद बनाने की मनाही के हुक्म जारी कर दिये. और यह मकान का काम आर्यसमाज मंदीर के नाम से चलता था. पुरीं आडचन आगई.

मकान बनाने का दाखला रद्द करने का हुकुम म्यु० पा० महेश्वर ने दिया उसकी आपील सुभायत में की वहां से यह लिखकर इंकारी हो गई के मकान नहीं बनाना यह हुक्म दरबार का है वास्ते यहां कुछ सुनवाई नहीं होती.

मैं अपनी दुकानदारी छोड़कर पेशीयों पर भटक नहीं सकता था. जमीन म्यु० पा० में मेरे नाम पर है. और काम बनवाने की परवानगी भी मेरे नाम से ली हुई थी. अत एव पिताजी को मेरे तरफ से मुखत्यारनामा लिखकर रजिस्टर करवा दिया, वे इंदोर के समाज सेवियों से कई बार जाकर मिले काम कुछ हुआ नहीं शारदाजी से पत्र लिखवाकर बापना साहेब इंदोर के कार भारी के नाम का लाऊंगा ऐसा उनका प्रयत्न जारी था अजमेर सभा के वार्षिक अधिवेशन में भि वे १-२ वक्त गये थे, परंतु मुझे मालूम है कि– न तो प्रतिनिधि ने इतनी दूर का झगड़ा हाथ में लिया न बापना साहेब के नाम की चिठ्ठी शारदाजी ने लिखकर दी–ये कथा पिताजी के जीवन काल की है–मगर इस जमीन पर आप या मैं या कोई भी वैदिक-धर्मी कुछ काम बना लेवे तो मैं तो उसे पिताजी की स्मृति का ही चिह्न समझूंगा।

इस वक्त आप विद्याध्ययन करते हैं? या किसी जगे नौकर हैं? यह बात मुझे मालूम नहीं है। नहीं तो मैं तो आपको सलाह देता कि आप निमाड़ में चलें आवें. और साथ में १-२ निस्वार्थी साधू या आपके स्नेही ब्रह्मचारी जो वैदिक सिद्धान्त प्रचार में जिवन विताना चाहते हों उनको भी निमाड़ में ले आवें। महेश्वर की जमीन में चबुत्रा बना तैंयार है. आजूबाजू तार का कंयोड करके बीच में साधू मडैंयां बनाकर कुछ विद्यार्थी मिल जावें—उनका पढ़ाने लग जाना और यहीं इसी स्थान

से सारे नीमाड़ में प्रचारार्थ भ्रमण करके वैदिक-धर्म का मनमाना प्रचार करें। और पिताजी की स्मृति चिह्न को किसी रूप में भि चिर स्थाई कर देवें। आप किस हालत में हैं आपके पूर्ण समाचार लिखना. पिछे बिचार करेंगे।

आपने जमीन के कागज प्रतिनिधि सभा को देने को लिखा. जो जमीन समाज को अर्पण हो चुकि वह किसकी है? प्रतिनिधिसभा की तो है सही, परंतु ऐसे छोटे कामों पर प्र० सभा खराब होना ही नहीं चाहती. एक दूसरी बात—सभा को यह स्थान दूर पड़ता है. एक तीसरी बात—प्र० सभा सिधी कमाई विना प्रयत्न की होवे तो ले सक्ति है. खैर कुछ भी हो आपने सोचा है की प्रतिनिधि इस स्थान का उपयोग लेगी सो गलती है. लेती तो इतने दिन में कुछ तो भि हल-चल करती परंतु सभा ने कुछ नाम तक इस काम का न लिया आगे और आशा करना भूमि को खो देना है। मुझे पक्का विश्वास है इस वास्ते—आप शांति से काम लेवें।

सभा को कागज बताकर राय लेना। वे लड़ना कबूल करे तो—करार मदार से वह मिसल सिर्फ दी जावे। उस मिसल में—म्यु० पा० महेश्वर से लिले हुए काम चलु करने के दाखले की नकल नंबर और फरोक्त नामें नग २ और कुल कागद मेरे पास भेज देना. पिछे आपसे दो चार पत्र व्यवहार होने पर उस जमीन की व्यवस्था हो जावेगी.

प्र० सभा खूब विश्वास दिलावे तो मिसल भी देना—नहीं तो कुछ भी देना नहीं और

कुल कागज मेरे पास किसी तरह जाप्ते से सब वापस भेज देना।

महू और इंदोर के समाज वालों को मिलकर उनको किसी को मुखत्यार नामा मेरे तरफ से देकर लड़ाई पूर्ण करके फिर अपने को पिताजी की जो स्मृति बनाना होगी, बनावेंगे।

आपने अभि तक सोचा होवे उसको और इस मेरे पत्र के विचारों का मिलान करना और अपना पूर्ण विचार नहीं हो जावे तब तक कुछ भी कागज किसी को देना नहीं. कृपा करके मुझे सब कागज इकट्ठे करके मुझे खुद को मिल जावे ऐसी व्यवस्था करना. खरगोन सामान किसके पास है मुझे लिखना आपका मुख्य पता लिखना. अजमेर में इस बाबद प्र० सभा वालों की क्या राय मिली? यह खुलासा अजमेर से ही लिखना. पिताजी के ही समान इस काम की कालजी करना। इति

इस पत्र से अनेक महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। यथा—

१. पिताजी की अन्तिम इच्छा थी कि पेंशन मिल जाने पर नीमाड़ में वैदिक-धर्म का प्रचार करूंगा (पृष्ठ १२७ पं० २४-२५) ।

२. महेश्वर में आर्यसमाज भवन के निर्माण में पिताजी की अन्तर्निहित इच्छा (पृष्ठ १२७ पं० २७-२८) ।

(३) महेश्वर के बहिवटदार के बावत पिताजी ने कुछ नोट छपवा दिया था, जो ताजे उठाने और राजनाथ सवारी के आगे मुसलमान रण्डियों को नचाने के विषय में था। उसी से नाराज होकर बहिवटदार ने पिताजी की बदली करवाई और समाज के मकान का कार्य बन्द करवा दिया (पृष्ठ १२८ पं० ४-७) । [यह तथ्य इसी पत्र से उद्घाटित हुआ है ।]

४. शारदाजी (श्री सूरजकरणजी शारदा, मन्त्री आ० प्र० सभा राजस्थान व मालवा) से पत्र लिखवाकर बापना साहेब इन्दौर के कारभारी के नाम का लाऊंगा ऐसा उनका प्रयत्न जारी था[1] । अजमेर सभा के वार्षिक अधिवेशन में भी वे १-२ वक्त गये थे परन्तु मुझे मालूम है कि—न तो प्रतिनिधि ने इतनी दूर का झगड़ा हाथ में लिया न बापना साहब के नाम की चिट्ठी शारदाजी ने लिखकर दी (पृष्ठ १२८ पं० २०-२३) ।

५. जो जमीन ·········· ·····प्रतिनिधि सभा की तो है सही, परन्तु ऐसे छोटे कामों पर प्र० सभा खराब होना ही नहीं चाहती। एक दूसरी बात—सभा को यह स्थान दूर पड़ता है । एक तीसरी बात— प्र० सभा सीधी कमाई विना प्रयत्न की होवे तो ले सकती है।·········परन्तु सभा ने कुछ नाम तक इस काम का न लिया ·········। (पृष्ठ १२९ पं० ४-१०) ।

अन्त में श्री व्यासजी ने लिखा था— **कुल कागजाद मेरे पास किसी तरह जाप्ते से सब वापस भेज देना ।**

इस आदेश के अनुसार मैंने आर्यसमाज भवन सम्बन्धी और मुकद्दमे सम्बन्धी सब कागज व्यासजी को भेज दिये थे ।

पिताजी के स्वर्गवास के पश्चात् मेरे लिये माता-पिता गुरु आदि सब कुछ पूज्य गुरुवर पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु ही थे । अत: मैं इन दिनों में पूज्य गुरुवर की आज्ञानुसार उनके समीप ही विरजानन्द आश्रम लाहौर में अध्यापनादि कार्य में व्याप्त था । अत: मैं स्वयं महेश्वर और कसरावद नहीं जा सका । निर्वाह मात्र वृत्ति पर कार्य करने के कारण आर्थिक असुविधा भी इसमें एक प्रमुख कारण रही ।

१. द्र०—षष्ठ परिशिष्ट 'ग' में छपे पत्र ।

इन्दौर राज्य के अधिकारियों के व्यवहार में परिवर्तन का कारण

इन्दौर राज के प्रत्येक विभाग के अधिकारियों का अपने अधीनस्थ कार्यकर्त्ताओं के प्रति बड़ी सहृदयता का रुख रहता था।[1] परन्तु सन् १९२७ में अचानक उनके व्यवहार में बदलाव आया। इसी के फलस्वरूप न केवल पिताजी की ही दुर्गम स्थानों में बदलियां की गईं, अपितु खरगान के श्री छत्रसिंहजी दांगी आदि अनेक आर्यवीरों को जेलों की यातनाए भी भुगतनी पड़ीं। और आर्यसमाज महेश्वर का भवन नहीं बन सका।

इसका कारण इन्दौर राज्य की तात्कालिक परिस्थितियों में छिपा हुआ है। राष्ट्रिय कांग्रेस द्वारा चलाये जा रहे स्वतन्त्रता आन्दोलन से भयभीत होकर अंग्रेज शासकों ने फूट डालो और राज्य करो सिद्धान्त के अनुसार उन्होंने स्वतन्त्रता आन्दोलन को निस्तेज करने के लिये भारतीय मुसलमानों को हिन्दुओं से पृथक् करने का षड्यन्त्र रचा और उनकी उचित अनुचित मांगों को मानकर उन्होंने मुसलमानों को बढ़ावा दिया। इसके फलस्वरूप सारे देश में हिन्दू मुसलमानों के मध्य दंगे फसाद हुए। रियासतों के मुसलमानों पर भी इसका प्रभाव पड़ा। मालवा और नीमाड़ के बड़े भूभाग पर माण्डू के नबाबों का शक्तिशाली शासन रह चुका था। अतः इन्दौर राज्य के मुसलमानों पर इसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। सन् १९२५ से इन्दौर राज्य में भी मुसलमान सिर उठाने लगे। इन्दौर के तत्कालीन महाराज तुकोजीराव होल्कर (तृतीय) जहां शान्तिप्रिय एवं न्यायकारी शासक थे वहां वे अत्यन्त दबंग प्रकृति के व्यक्ति भी थे। उनके शासनाधिकारियों के वीर शिरोमणि बलवन्तसिंह सूबेदार महाराजा के अत्यन्त विश्वास पात्र व्यक्ति थे। बलवन्तसिंह ने मुसलमानों द्वारा किये गये दंगों को सख्ती से कुचला। इससे इन्दौर के खार खाये मुसलमानों ने बलवन्तसिंह को मारने का एक बहुत बड़ा षड्यन्त्र रचा। निगूढ़रूप से उन पर आक्रमण की योजना बनाई। बलवन्तसिंह पहले से ही चौकने थे। गुप्तचरों से उन्हें इस योजना का दिन और समय का पता चल गया था।

नियत दिन में महाराजा ने बलवन्तसिंह को फोन पर आवश्यक विचार के लिये बुलाया। बलवन्तसिंह ने घर पर किये जाने वाले भावी आक्रमण की सूचना दी। महाराजा ने कहा इस समय आवश्यक विचार विमर्श के लिये तुम्हारा उपस्थित होना आवश्यक है। घर की रक्षा के लिये पुलिस का प्रबन्ध करके शीघ्र उपस्थित होवो।

मुसलमानों को भी बलवन्तसिंह के घर पर उपस्थित न होने का समाचार मिल

---

१. द्र०—पूर्व पृष्ठ ४३।

गया। उन्होंने एक भारी भीड़ के रूप में बलवन्तसिंह के घर पर हमला किया। बंगले की चार दीवारी ऊंची थी फाटक लोहे का अत्यन्त मजबूत था। अतः मुसलमान अनायास भीतर पहुंचने में असमर्थ रहे। बलवन्तसिंह की पत्नी भी वीर क्षत्राणी थी उसने मुसलमानों के हमले की फोन द्वारा सूचना दी। बलवन्तसिंह ने कहा मैं अभी पहुंचता हूं। मेरे आने तक भीड़ को भीतर आने से रोको। बलवन्त सिंह की पत्नी सधी हुई निशाने बाज थी। जैसे ही कोई व्यक्ति दीवार पर चढ़ने का यत्न करता उसे गोली मारकर ठण्डा कर दिया। इस प्रयत्न में अनेक मुसलमान मरे और घायल हुए, परन्तु वीर क्षत्राणी ने किसी व्यक्ति को अन्दर नहीं घुसने दिया।

बलवन्तसिंह सूचना पाते ही घर की ओर चल पड़े। हमलावरों की भारी भीड़ के कारण घर तक पहुंचना कठिन देखकर बलवन्तसिंह ने ड्राइवर को पूरे वेग से गाड़ी चलाने और अंगरक्षकों को अनवरत गोली चलाने की आज्ञा दी। इस काण्ड में पचासों व्यक्ति मारे गये, सकड़ों घायल हुए। इसकी राज्य से बाहर के मुसलमानों में भारी प्रतिक्रिया हुई। अंग्रेज शासक तो महाराज को किसी बहाने राज्य से च्युत करना ही चाहते थे। सौभाग्य से उन्हें यह अनायास मौका मिल गया। महाराजा ने स्थिति संभालने के लिये बलवन्तसिंह को प्रत्यक्ष में पदच्युत करके (परोक्ष में भारी द्रव्य राशि देकर) घर भेज दिया।

अंग्रेज शासन ने तथाकथित वेश्या-संबन्ध घोषित करके महाराजा को पदच्युत कर दिया। उनके पुत्र यशवन्तराव होल्कर को अध्ययन के बहाने इंगलैण्ड भेज दिया और राज्य शासन के लिये एक अंग्रेज को नियत कर दिया। इससे मुसलमानों के हौसले बढ़ गये। राज्य के अधिकारियों को भी अपना व्यवहार बदलने पर बाधित होना पड़ा। अंग्रेज सरकार ने बलवन्तसिंह और महाराजा पर मुकद्दमे चलाये। इस परिप्रेक्ष्य में पूर्व निर्दिष्ट घटनाओं को देखने से उस समय वैदिक-धर्म के प्रचार आदि में सरकार द्वारा डाली गईं बाधाओं को देखने से उनकी असफलता का रहस्य समझ में आ सकता है।

लेखन-कार्य

पिताजी ने कोई विशेष लेखन कार्य नहीं किया। इसका प्रधान कारण था वैदिक-धर्म के प्रचार कार्य में व्यस्त रहना। फिर भी उनके संग्रह में उनके द्वारा लिखित कुछ सामग्री प्राप्त हुई है। उसके सम्बन्ध में संक्षेप से नीचे लिखा जाता है—

१—**बीकानेर राज्य का भूगोल**—इस रचना के विषय में हम पूर्व पृष्ठ ३२ पर

लिख चुके हैं। यह बीकानेर राज्य का प्रथम भूगोल था। इस कारण पिताजी को इसकी रचना में पर्याप्त भ्रमण और श्रम करना पड़ा। यह २०×२६ अठपेजी आकार के लगभग १२५ पृष्ठों में लिखा हुआ है। यत: पिताजी ने बीकानेर राज्य में केवल १ वर्ष ५ महिने ४ दिन ही कार्य किया अत: वे इस भूगोल की संशोधित प्रति भी तैयार नहीं कर पाये, छपने की बात तो दूर की है।

२—वर्णमाला बोध, ३—बारहखड़ी बोध—पिताजी ने इन दोनों पुस्तिकाओं की रचना छोटे बालकों को सुगमता से वर्णमाला और बारहखड़ी का बोध कराने के लिये की थी। इनको मुद्रित कराने के लिये पिताजी ने बहुत प्रयास किया परन्तु छपवाने में सफल नहीं हो पाये। द्रव्याभाव से स्वयं छपवा नहीं सकते थे। राज्य सरकार से इनको छपवाने के लिये १००० रु० अनुदान मांगा, परंतु वह नहीं मिला। अन्य कोई प्रकाशक इन्हें छापने को तैयार नहीं हुआ।

४—तुलसी रामायण का शब्दकोश—पिताजी के संग्रह में तुलसीदास कृत रामायण का उनके हाथ का लिखा एक शब्दकोश भी उपलब्ध हुआ है।

५—धर्म की अधर्म पर विजय—यह लघु एकाङ्की नाटक प्रात: स्मरणीया महारानी अहल्याबाई के राज्य काल की एक घटना पर आधृत है। इसे महेश्वर के ए० व्ही० स्कूल के छात्रों ने सन् १९२१ में 'पुरस्कार वितरण समारोह' के अवसर पर अभिनीत किया था। इसकी पिताजी के हाथ की लिखी प्रति मुझे उनके संग्रह में मिली थी। इसे मैंने वेदवाणी के वर्ष २९ के १०वें (सं० २०२४ श्रावण के) अङ्क में छपवाया था। इसे हम सप्तम परिशिष्ट में छाप रहे हैं।

६—आर्य पत्रों में लेख——पिताजी आर्यमार्तण्ड और आर्यमित्र में यदा-कदा लेख लिखते रहते थे। मुझे उनके किसी लेख की प्रतिलिपि नहीं मिली। डा० श्री भवानीलालजी भारतीय ने १७-९-८६ के अपने पत्र के साथ 'आर्यमार्तण्ड सं० १९८० वि० के दीपावली अङ्क में छपे **आर्यसमाज का आत्मसुधार** शीर्षक लेख की फोटोस्टेट कापी भेजी थी, इसे सप्तम परिशिष्ट में दे रहे हैं। षष्ठ परिशिष्ट में कुछ पत्र और एक निवेदन छापे गये हैं जो उनकी लेखन शक्ति के द्योतक हैं।

———

स्व-परिचय

विरजानन्द आश्रम में अध्ययन

पूर्व लिख चुका हूं कि मेरा जन्म सं० १९६६ भाद्र शुक्ला अष्टमी तदनुसार २२ सितम्बर १९०९ को इन्दौर राज्य के नीमाड़ जिला के महम्मदपुर नाम के गांव में हुआ था। उस समय से लेकर ३ सितम्बर १९२१ को 'विरजानन्द आश्रम' में पहुंचने से पूर्व का वृत्तान्त पिताजी के प्रकरण में लिखा जा चुका है। यहां उससे आगे का वृत्त लिखा जाता है—

विरजानन्द आश्रम की स्थापना

हरदुआगंज (अलीगढ़) काली नदी के पुल के समीप श्री पूज्य स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज का साधु आश्रम था। यहां पर आने-जाने वाले साधु संन्यासियों के ठहरने की व्यवस्था के अतिरिक्ति संस्कृत की एक पाठशाला भी चलती थी। इसमें 'सिद्धान्त कौमुदी' के माध्यम से पाणिनीय व्याकरण का अध्ययन-अध्यापन होता था और 'संस्कृत कालिज बनारस' वर्तमान में (सम्पूर्णानन्द सस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी) की परीक्षायें दिलाई जाती थीं।

सन् १९२० के आरम्भ में पूज्य गुरुवर्य पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु 'अरणिया' जि० अलीगढ़ से साधु आश्रम पहुंचे। वहां पूज्य स्वामीजी महाराज भी विद्यमान थे। पूज्य गुरुवर्य ने अष्टाध्यायी-महाभाष्य के क्रम से व्याकरण पढ़ाने पर बल दिया और सिद्धान्त-कौमुदी के माध्यम से कराये जा रहे पाणिनि-व्याकरण के पठन-पाठन को ऋषि दयानन्द के मन्तव्य के विपरीत बताया। कई दिनों के ऊहा पोह के पश्चात् पूज्य स्वाजी महाराज ने कहा —'तुम्हीं अष्टाध्यायी-महाभाष्य के क्रम से पठन-पाठन की जिम्मेवारी लो। मैं पुराने छात्रों की छुट्टी कर देता हूं।' इस पर पूज्य गुरुवर ने कहा कि इस काम के लिये अन्य सहायक विद्वान् की भी अपेक्षा होगी। और उन्होंने पं० शङ्करदेवजी को बुलाने का प्रस्ताव किया। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि जैसा तुम ठीक समझते हो करो। इस पर पूज्य गुरुवर पं० शङ्करदेवजी को लिवाने के लिये काशी गये। पण्डित शङ्करदेवजी विद्यारसिक अधिक थे। अतः पहले तो उन्होंने काशी छोड़ने के लिये मना कर दिया। अन्त में बहुत कहने सुनने पं० शङ्करदेवजी साथ चलने के लिये तैयार हो गये, परन्तु उन्होंने कहा कि मेरे

साथी 'धार' निवासी श्री पं० बुद्धदेवजी साथ चलेंगे तो मैं चलूंगा। पं० बुद्धदेवजी दर्शनों के अच्छे ज्ञाता थे और कुशल चिकित्सक भी थे। अन्त में पूज्य गुरुवर पं० शङ्करदेवजी और पं० बुद्धदेवजी को साथ लेकर साधु आश्रम पहुंचे।

सन् १९२० के मध्य में **विरजानन्द आश्रम** के नाम से संस्था का आरम्भ हुआ और ४-५ नये विद्यार्थियों से अध्ययन-अध्यापन प्रारंभ किया। मैं ३ सितम्बर १९२१ में जब साधु आश्रम पहुंचा था, तब जो विद्यार्थी थे, उनके नाम थे—

शिवदत्तजी, किशोरीलालजी (इन्द्रदेव), वाचस्पतिजी (प० शङ्करदेवजी के छोटे भाई) और अश्विनीकुमारजी।

किशारीलाल को स्वामीजी महाराज प्रायः आधे नाम **'किशोरी'** से पुकारा करते थे। किशोरी शब्द लड़की का वाचक होने से 'किशोरी' नाम से पुकारना अच्छा प्रतीत नहीं होता था। इसीलिये किशोरीलाल के स्थान पर इन्द्रदेव नाम रख दिया।

मेरे साधु आश्रम में पहुंचने के कुछ काल पश्चात् भद्रसेनजी आश्रम पर पहुंचे। भद्रसेनजी पंजाब के **'लायलपुर'** जिले (वर्तमान पाकिस्तान में) के रहने वाले थे। संस्कृत पढ़ने में विशेष रुचि थी। कई स्थान पर भटक चुके थे। साधु आश्रम में आने पर उनसे कहा गया कि आश्रम की ओर से भोजनादि की कोई व्यवस्था नहीं हो सकती। भिक्षा लाकर यदि निर्वाह कर सको तो अध्ययन की व्यवस्था हो जायेगी। इसे भद्रसेनजी ने स्वीकार कर लिया और जबतक साधु आश्रम में रहे,तब तक वे भिक्षा से निर्वाह करते रहे।

काली नदी आश्रम के समीप ही बहती थी। यद्यपि प्रवाह की दृष्टि से जल अधिक नहीं था, परन्तु वह बारह मासी नदी थी। उसमें मगर अत्यधिक थे। गरमियों में शाम सबेरे और सर्दियों में धूप के समय मगर नदी के बाहर रेत में लेटे हुए देखे जा सकते थे।

मेरा बीमार होना—साधु आश्रम पहुंचने के लगभग १ मास पश्चात् ही मुझे मोतीझरा (=म्यादी बुखार=टाइफाइड) हो गया। पूज्य गुरुजी ने पिताजी को सूचना दी। उत्तर में पिताजी ने लिखा कि मैं आकर क्या कर सकता हूं। मैंने आपके सुपुर्द कर दिया है, अब आप ही युधिष्ठिर के माता पिता गुरु आदि सब कुछ हैं। यह ज्वर मुझे २८ दिन तक रहा, परन्तु गुरुकुल में पढ़ने की उत्कट अभिलाषा होने के कारण ज्वर का कष्ट मैंने सुगमता से सह लिया।

साधु आश्रम का उत्सव—संभवतः नवम्बर के आरम्भ में साधु आश्रम का वार्षिक उत्सव हुआ। मैं बीमार होने के कारण उसे नहीं देख सका। इस अवसर

पर अलीगढ़ के ऋषिभक्त वैदिक धर्मानुयायी पं० दुर्गादत्तजी पाठक अपने सात वर्षीय बच्चे को, जिसका नाम **याज्ञवल्क्य** था, प्रविष्ट कराने के लिये लेकर आये थे। इस अवस्था में ही याज्ञवल्क्य कांग्रेस की सभाओं में भाषण भी दिया करता था। उसके पिताजी ने उसे सारी अष्टाध्यायी कण्ठस्थ करा रखी थी। यह अद्भुत स्मरण शक्ति वाला था, किन्तु चञ्चल भी बहुत था। एक दिन वह झण्डे के बांस के ऊपर चढ़ गया। अचानक स्वामीजी महाराज की उस पर नजर पड़ी और उन्होंने कहा— 'यदि यह गिर पड़ता तो इसकी मृत्यु हो जाती। इसलिये इसे अभी वापस भेज दो। ऐसे चंचल बालक को नहीं रखना।'

अमृतसर में विरजानन्द आश्रम——स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज के अमृतसर में बहुत भक्त थे। उन्होंने स्वामीजी से कहा कि हम यहां एक गुरुकुल खोलना चाहते हैं, आप इस विषय में सहयोग दें। स्वामीजी ने इसे स्वीकार कर लिया और आर्यसमाज के लोगों ने अमृतसर से लगभग ४ मील दूर **'मजीठा रोड़'** पर **'गंडासिंहवाला'** गांव के स्वामी **श्री अमरसिंहजी** से गुरुकुल के लिये भूमि देने को कहा। श्री अमरसिंहजी भी आर्यविचारों के थे। उन्होंने गांव के समीप ही अपनी कई बीघा भूमि आश्रम के लिये दे दी। व्यवस्थापकों ने वहां पर आवास के लिये मकान बनवा दिये और चारों ओर ऊंची दिवार खिचवा दी। आवासीय मकान पश्चिम दिशा में पूर्वाभिमुख थे, आगे विस्तृत मैदान था। आवासीय मकानों के मध्य में एक बड़ा कमरा था, दोनों ओर लगभग २०-२० विद्यार्थियों के रहने लायक बरामदे सहित लम्बे-लम्बे दो कमरे थे। दोनों ओर अन्त में कार्यकर्ताओं के लिये १-१ छोटा कमरा था। उसके साथ ही उत्तर दिशा में दक्षिणाभिमुख भोजनालय आदि के लिये कमरे बने हुए थे। इनके पीछे के भाग में कुवां और गोशाला थी।

स्वामीजी महाराज ने अमृतसर से लौटकर अमृतसर के आर्य व्यक्तियों के संकल्प की चर्चा की। पञ्जाब में आर्यसमाज के दो विभाग थे—कालिज पार्टी और गुरुकुल पार्टी। पूज्य गुरुजी किसी एक पार्टी से जुड़कर काम करना नहीं चाहते थे। इसलिये आश्रम के संचालकों ने दोनों पार्टियों के कुछ व्यक्तियों को लेकर **'सर्वहित-कारिणी सभा'** के नाम से एक स्वतन्त्र समिति बनाई और उसी की देखरेख में कार्य चलाने की योजना निश्चित की गई।

आश्रम का अमृतसर से स्थानान्तरण

अमृतसर में सब व्यवस्था ठीक हो जाने पर साधु आश्रम के उत्सव के अनन्तर संभवतः दिसम्बर १९२१ में 'विरजानन्द आश्रम' का अमृतसर में स्थानान्तरण हुआ।

मुझे इस समय म्यादी बुखार के कारण अत्यधिक निर्बलता थी। इसलिये गुरुजी ने मुझे १५ दिन के लिये समीपवर्ती **औरङ्गाबाद** के **ठाकुर श्री खमानसिंहजी,** जो साधु आश्रम के प्रमुख सञ्चालकों में थे, के यहां भेज दिया और साथ में नवयुवक संन्यासी (सम्प्रति नाम स्मरण नहीं है) को नियत कर दिया जिसने मुझे १५-२० दिन पश्चात् अमृतसर पहुंचा दिया। इस समय भी मैं बहुत निर्बल था। अतः अम्बाला में गाड़ी बदलने के लिये उक्त संन्यासी महोदय मुझे पीठ पर उठाकर दूसरे प्लेट फार्म पर ले गये।

ठाकुर श्री खमानसिंहजी दृढ़ आर्य व्यक्ति थे। औरङ्गाबाद गांव उनके जमींदारी में ही था। उनके ५-६ पुत्र थे जिनमें से एक **श्री महावीरसिंहजी** डाक्टर थे। अन्य भाई जमींदारी का और कृषि का ही कार्य करते थे। श्री ठा० खमानसिंहजी ने अपने सबसे छोटे पुत्र **यशपाल** को पढ़ाने के लिये कुछ समय पीछे पूज्य गुरुजी के पास अमृतसर भेज दिया था।

नवीन विद्यार्थियों का प्रवेश—साधु आश्रम हरदुआगंज से तो पूर्व लिखे मेरे सहित ६ विद्यार्थी ही गंडासिंहवाला पहुंचे थे। याज्ञवल्क्य को संभवतः आते समय अलीगढ़ से साथ लिया था। यहां आकर सन् १९२२ में कुछ नये छात्र प्रविष्ट किये गये। उनमें मेरे साथ पढ़ने वाले औरङ्गाबाद के **यशपाल,** डेरागाजी के **भगवद्दत्त,** मुरादाबाद जिले के **महेन्द्र** और **सत्यव्रत** थे। मेरे से नीचे की श्रेणी में अमृतसर के **सत्यदेव** और **धर्मदेव** तथा बटाला के सगे भाई **शम्भुदत्त** और **गुरुदत्त** थे। इनके साथ २-३ छात्र और भी थे, जिनका नाम सम्प्रति स्मरण नहीं है। शनैः-शनैः छात्रों की संख्या सन् २३ तक लगभग ३५ हो गई थी।

आश्रम की व्यवस्था—किसी भी छात्र से किसी प्रकार का कोई शुल्क नहीं लिया जाता था। दूध के लिये अपनी गोशाला थी। आश्रम की सारी भूमि बञ्जर थी, इसलिये कूप और समीप में 'सूआ' (=नहर के पानी की छोटी धारा) होने पर भी कुछ नहीं बोया जाता था। भोजनादि की व्यवस्था बहुत उत्तम थी। कुछ महीने पश्चात् समिति के अधिकारियों के अनुरोध पर प्रति अमावस्या को नगर से स्त्री पुरुषों के आगमन की स्वीकृति दे दी गई। उससे आश्रम की आय में कुछ वृद्धि हुई। दिनचर्या जो बनाई गई थी उसके अनुसार प्रत्येक ऋतु में छात्र को प्रातः ४-४।। बजे उठकर स्नानादि करके सन्ध्यादि अग्निहोत्र में उपस्थित होना आवश्यक था। शौच के लिये बाहर जंगल में जाना होता था। नैत्यिक कर्म से निबटने के पश्चात् प्रातराश दिया जाता था। उसके पश्चात् ११।। तक अध्ययन अध्यापन का कार्यक्रम होता था। तदनन्तर भोजन और विश्राम करके २ बजे से पुनः अध्ययन अध्यापन

प्रारम्भ हो जाता था। सर्दियों में ४ बजे के पश्चात् और गर्मियों में ६ बजे के पश्चात् पुनः शौच से निवृत्त होकर सन्ध्या अग्निहोत्रादि होता था। तत्पश्चात् भोजन होता था। खेल-कूद वा अन्य व्यायाम कुश्ती आदि का कभी नियमित कार्यक्रम नहीं रहा। कभी कार्यक्रम बनता था तो वह कुछ समय पश्चात् बन्द हो जाता था। उसका प्रधान कारण यह था कि तीनों गुरुजनों में से किसी को भी इसमें विशेष रुचि नहीं थी। गोशाला के प्रबन्ध के लिये अलग से व्यवस्था थी।

असह्य कष्ट सहन—छात्रगण और गुरुजन खड़ाऊं का प्रयोग करते थे। मेरे पैर टेढ़े होने के कारण मैं खड़ाऊं का प्रयोग नहीं कर सकता था। साधु आश्रम में प्रवेश के समय मैं जूते पहन कर आया था, उनका वहीं त्याग करना पड़ा। आस-पास की सारी भूमि, जहां शौच के लिये जाना पड़ता था, बञ्जर थी। उसमें केवल डाभ थी। मुझे नंगे पैर चलते समय बायें पैर (जो अधिक टेढ़ा था) को कंकड़ादि से बचाकर भूमि पर रखना पड़ता था। अधेरे में विशेषकर शीत काल में सबके साथ शौच के लिये जाने पर डाभ के अङ्कुर, जो काटों के समान तीक्ष्ण होते हैं, पैरों में चुभ जाते थे, उससे बहुत कष्ट होता था। परन्तु सन् २५ तक मैं इस भयंकर कष्ट को सहन करता रहा। इसका एकमात्र कारण यही था कि मेरे अध्यापनार्थ पिताजी के अत्यधिक प्रयास करने पर इस आश्रम में ही मुझे प्रवेश मिला था।

पिताजी का आश्रम में आना—पिताजी अक्टूबर सन् १९२२ में आश्रम के उत्सव पर मुझ से मिलने आये थे।[1]

धूम्रपान का परित्याग—पिताजी आरम्भ काल से ही घर पर दोनों समय हुक्का पिया करते थे और यात्रा में चिलम पीते थे। आश्रम पर आकर पिताजी एक दिन छिप कर चिलम पीने के लिये गोशाला में, जो एकान्त में थी, चले गये। दैव योग से आश्रम में ठहरे हुए एक नौजवान संन्यासी ने उन्हें चिलम पीते हुए देख लिया। इस पर संन्यासी ने उन्हें बहुत भला-बुरा कहा और आचार्यजी से शिकायत करने का भी उल्लेख किया। पिताजी ने विनीत भाव से संन्यासी को कहा—'आपका बुरा-भला कहना सब उचित है। मैं चिरकाल से हुक्का या चिलम पीता हूं, फिर भी मैं आपके सम्मुख इसका परित्याग करता हूं और आगे कभी न पीने की प्रतिज्ञा भी करता हूं। इस बात को यहीं तक रहने दें।' इस दिन के पीछे पिताजी ने तम्बाकू पीने का सर्वथा परित्याग कर दिया। पिताजी कहते थे कि मैं प्रतिज्ञा कर चुका था और उसका परिपालन भी करना था, यद्यपि मन में सन्देह रहता था कि चिरकाल तक तम्बाकू पीने वाले को एक दम छोड़ने पर नाना प्रकार के कष्ट

---

१. द्र० तृतीय परिशिष्ट 'झ' में संख्या ७ पर छपा अंश।

होते हैं, तथापि प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहने के साहस से मुझे कोई विशेष कष्ट नहीं हुआ।

अमृतसर आते हुए लालगढ़ जाना—पिताजी मुझे और मेरी माता को साथ लेकर सन् १९१२ में लालगढ़ (अपने ससुराल) गये थे (द्र०—पूर्व पृष्ठ ४३-४४)। उसके पीछे मेरी माताजी के निधन के पश्चात् पत्राचार भी बन्द हो गया था। इस लिये उन्होंने लालगढ़ होकर अमृतसर पहुंचने का कार्यक्रम बनाया था। लालगढ़ में पिताजी को सास और श्वसुर दोनों या दोनों में से कोई एक मिला या नहीं, यह पिताजी ने मुझे बताया अवश्य था, परन्तु मुझे कुछ सम्प्रति स्मरण नहीं।

भटिण्डा स्टेशन की घटना—लालगढ़ होकर आने के कारण पिताजी को छोटी लाइन की गाड़ी छोड़ कर बड़ी लाइन की गाड़ी में बैठना था। गाड़ी में ३-४ घण्टे का अन्तर था। स्टेशन के प्लेट फार्म पर एक ओर ५-७ साधु चिलम पी रहे थे। स्वयं भी चिलम पीने के अभ्यासी होने के कारण पिताजी उस मण्डली में शामिल हो गये। साधु मण्डली सुल्फा पी रही थी। पिताजी अपनी चिलम भरकर पीते रहे। साधुओं की मण्डली में प्राय: करके अनेक प्रकार की बातचीत होती रहती है। पिताजी की आर्यसमाजी होने के कारण इस प्रकार के साधु के प्रति आदर बुद्धि भी नहीं थी। बातचीत में मण्डली के मुखिया ने हावभाव से अनादर का भाव जान लिया। इस पर मुखिया ने कहा—बच्चे! तुम हम साधुओं की महिमा को नहीं समझ सकते। सब साधु एक जैसे भी नहीं होते। तुम्हारी इच्छा हो तो तुम्हें साधुओं का कोई करिश्मा बतायें। पिताजी के मौन रहने पर साधु ने कहा—तुम्हारे पास तांबे का पैसा है? होवे तो दो। हम अभी तुम्हारे बैठे बैठे उसे सोने में बदल कर दिखला देंगे। पिताजी ने शुद्ध तांबे का पैसा, जो उस समय इन्दौर राज्य में चलता था, साधु को दिया। साधु ने चिलम साफ करके उसमें कुछ चूर्ण भरा उस पर पैसा रखा और उस पर फिर वही चूर्ण रखकर और ऊपर सुल्फा रखकर पीना आरंभ किया। अन्त में चिलम झाड़ कर और पैसा निकाल कर जो सोने के रूप में बदल चुका था, पिताजी को दिया और कहा कि जहां कहीं तुम्हारी मरजी हो इसकी परीक्षा करवा लेना। पिताजी ने पैसा लेकर संभाल कर रख लिया और महेश्वर जाकर सुनार से तपवा कर और कटवा कर कई प्रकार से परीक्षा कराई। परन्तु वह खरा सोना ही निकला। पिताजी ने यह घटना मुझे सन् १९२८ में, जब मैं उनके पास खरगोन मिलने गया था, तब मुझे सुनाई थी। सोने का कुछ अंश जो उनके पास उस समय भी था, वह मुझे दिखाया था, इससे पिताजी को प्राचीन ग्रन्थों में लिखी गई चांदी वा तांबे को सोने में बदलने की विधि की सचाई में विश्वास हो गया।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में जिन चार प्रकार के सुवर्णों का वर्णन उपलब्ध होता है उसमें एक कृत्रिम भेद भी है। सुना जाता है कि अमृतसर के सुवर्ण मन्दिर में लगा हुआ सोना भी अधिकतर कृत्रिम ही है।

हरिद्वार जाना—माताजी की मृत्यु के समय उनके फूल दीवार के एक छोटे से स्थान में बन्द करके रख दिये थे। यद्यपि पिताजी को फूलों को गङ्गा में प्रवाहित करने के माहात्म्य पर कोई आस्था नहीं थी, फिर भी आते समय उन्हें वे साथ ले आये थे और अमृतसर से लौटते समय हरिद्वार में गंगा की धारा में उन्हें प्रवाहित कर दिया।

स्व वंशावली के ज्ञानार्थ प्रयत्न—हरिद्वार जैसे प्रमुख तीर्थ स्थानों में जहां हर जाति के लोग, भिन्न-भिन्न स्थानों से स्नानादि के निमित्त आते रहते हैं, वे प्रायः पण्डों के पास ही ठहरते हैं। पण्डे भी प्रत्येक जाति और स्थान विशेष के भिन्न-भिन्न नियत होते हैं। पिताजी को यह विश्वास था कि हमारे पूर्वज भी तीर्थ यात्रा या फूलों को बहाने के लिये हरिद्वार आते रहते थे। पण्डे लोग प्रत्येक यात्री की कुल परम्परा का वर्णन अपनी बहियों में लिखते जाते थे। अतः पिताजी ने अपने पण्डे से अपने कुल परम्परा की जानकारी चाही। इस कार्य के लिये उचित दक्षिणा देने पर पण्डे ने बिरकच्यावास में पहुंचने वाले हमारे वंश के प्रथम पुरुष दामाजी से लेकर वर्तमान काल तक की जो वंशावली उनकी बहियों में लिखी मिली, वह लिखवा दी। हरिद्वार से आकर पिताजी ने अपने जातीय ब्रह्म भटट की लिखित बहियों से मिलान और शोध करके जो वंशावली तैयार की थी, उसे आरम्भ में दे चुके हैं।[1]

शुद्धि आन्दोलन में भाग लेना–सन् १९२२ के अन्त में पं० मदन मोहन मालवीय जैसे सनातन धर्मी नेताओं और महात्मा हंसराज तथा स्वामी श्रद्धानन्दजी जैसे आर्यसमाज के नेताओं और शाहपुरा (मेवाड़) के श्री नाहरसिंह सदृश राजाओं के सत्प्रयत्न से आगरा मथुरादि मण्डलों में मलकाना नाम से प्रसिद्ध लगभग तीन लाख मुसलमानों की शुद्धि का आन्दोलन आरम्भ हुआ। मलकाने राजपूत बिरादरी से मुसलमान हुए थे, परन्तु इनके नाम रीतिरिवाज प्रायः सभी हिन्दुओं जैसे थे। विवाह भी पण्डित से कराकर मौलवी से निकाह भी पढ़वाते थे। केवल एक यही कार्य मुसलमानों के मत के अनुसार इनके यहां होता था। इस शुद्धि आन्दोलन की विशेषता यह थी कि शुद्ध किये हुए मलकानों को उनकी अपनी बिरादरी में पूर्णतया सम्मिलित करा दिया गया। रोटी बेटी व्यवहार उसी समय परस्पर होने लगे।

---

१. द्र० —'मायली ग्वाड़ी वालों का वंश, पृष्ठ ४-७ तक।

इस महान् कार्य में आर्यसमाज ने भी महात्मा हंसराज और स्वामी श्रद्धानन्दजी के नेतृत्व में बढ़-चढ़कर भाग लिया। इसी शुद्धि आन्दोलन में गुरुवर्य पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु और पं० बुद्धदेवजी (धार वाले) अपने विरजानन्द आश्रम के ५ बड़े विद्यार्थियों के साथ कार्य करने आगरा पहुंच गये। शुद्धि सभा का मुख्य कार्यालय आगरा में ही था। उसके निर्देश के अनुसार सभी लोग विभिन्न क्षेत्रों में कार्य के लिये भेज दिये गये। पूज्य गुरुजी आदि ने लगभग डेढ़ वर्ष शुद्धि का कार्य किया। पीछे से विरजानन्द आश्रम की व्यवस्था और पठन-पाठन का कार्य प० शङ्करदेवजी चलाते रहे।

मुसलमानों ने भी इस आन्दोलन के विरुद्ध तेज अभियान छेड़ा हुआ था। वे शुद्ध होने वाले मलकानों को विविध प्रकार भड़काने का प्रयत्न करते रहते थे। इस काल की कई घटनायें पूज्य गुरुजी ने सुनाई थीं। उनमें से एक प्रमुख घटना नीचे दी जाती है—

'पूज्य गुरुजी के जिम्मे छाता, पलवल आदि का क्षेत्र था। एक बार गुरुजी के प्रयत्न से आस-पास के लगभग दस बारह हजार मलकाने के लिए तैयार हो गये। शुद्धि की नियत तारीख और स्थान (ग्राम का नाम स्मरण नहीं) की सूचना 'शुद्धि सभा आगरा' के कार्यालय को भेजी गई और वहां से कुछ व्यक्तियों को भेजने के लिये लिखा गया। मुसलमानों ने मलकानों में यह अफवाह फैला दी कि ये शुद्ध करते वाले राधास्वामी मत के हैं, अपना झूटा खिलाते हैं। इनकी पहचान है कि शुरू में ये 'विश्वानि देव' बोलते हैं।

नियत दिन और नियत स्थान पर आस-पास के दस बारह हजार मलकाने,शुद्धि के लिये इकट्ठे हो गये। गुरुजी उस समय किसी समस्या को हल करने के लिये सभा स्थान से दूर विचार विमर्श कर रहे थे। इतने में आगरा से स्वामी श्रद्धानन्दजी कुछ व्यक्तियों को लेकर उपस्थित हो गये। उन्होंने स्थानीय कार्यकर्त्ता गुरुजी से विना मिले ही शुद्धि के लिये यज्ञ आरम्भ कर दिया। जब पहला मन्त्र 'विश्वानी देव' बोला गया तो शुद्धि के लिये आये मलकाने एकदम बिदक गये। और उन्होंने नारे लगाये—'राधा स्वामी चले जाओ हम तुमसे शुद्धि नहीं करायेंगे। हम तुम्हें नहीं जानते। हमारा चट्टीवाला ठिगना पण्डित आयेगा तो उससे शुद्ध होवेंगे।' इसकी सूचना एक कार्यकर्त्ता ने गुरुजी को दी। गुरुजी शीघ्र ही सभास्थल पर पहुंचे और स्वामीजी को गुस्से में आकर बोले—'आपने अचानक आकर विना स्थानीय कार्यकर्ता से, जिसे यहां की सारी स्थिति का ज्ञान है,विना बात किये ही कार्य

आरम्भ कर दिया। इससे सारा माहौल ही बिगड़ गया। कृपया आप यहां से तत्काल चले जायें।'

गुरुजी ने सारी परिस्थिति पर प्रमुख जनों से विचार विमर्श करके शुद्धि का कार्य आरम्भ कराया। एक आर्यसमाजी कार्यकर्ता ने कहा कि विश्वानि देव से ही सब मलकाने चौंक गये हैं, हवन कैसे शुरू करायें? गुरुजी ने उत्तर दिया—तुम में से कोई भी आगे होकर कोई मन्त्र न बोले। मैं जैसे मन्त्र बोलूं, उसके अनुसार मन्त्रपाठ करें। यतः मुसलमानों ने राधास्वामी की पहचान विश्वानि देव पहला मन्त्र बतलाया था। इसलिये गुरुजी ने 'अग्ने नय सुपथा' से उलटे क्रम से मन्त्र पाठ करके विश्वानि देव पर मन्त्रपाठ समाप्त किया। इस प्रकार अपनी बुद्धिमत्ता से गुरुजी ने १०-१२ हजार मलकानों के शुद्धि का कार्य सम्पन्न किया। हवन के पीछे शुद्ध होने वाले सभी व्यक्तियों पर गङ्गाजल छिड़का गया और यज्ञशेष बांटा गया।

इसी मण्डली की एक दूसरी घटना भी, जो कि पूर्व घटना से बिल्कुल भिन्न थी, विशेष महत्त्व की है। जिससे भी यह भली भांति सिद्ध हो जाता है कि कोई भी प्रतिपन्न बुद्धिवाला व्यक्ति भयंकर घटनाओं को किस प्रकार बचा सकता है—

यह घटना एक विवाह के समय की है जिसमें एक पक्ष के व्यक्ति कट्टर आर्य-समाजी थे और दूसरे पक्ष के सनातनधर्मी। वरपक्ष वाले गुरुजी को भी साथ में ले गये थे। जब विवाह का अवसर उपस्थित हुआ तो आर्यसमाजी पक्ष ने संस्कार-विधि के अनुसार विवाह करने का जोर दिया। दूसरे पक्ष के लोग इसके लिये तैयार नहीं हुए। वे सनातन धर्म की विधि से विवाह कराना चाहते थे। अन्त में दोनों पक्ष के लोग झगड़े पर उतारू हो गये। लाठियां लेकर लड़ने के लिये तैयार हो गये। ऐसे अवसर पर गुरुजी ने दोनों के मध्य में जाकर आर्यसमाजियों से पूछा कि क्या विवाह के शुभ अवसर पर संस्कार-विधि में लाठियों से लड़ने का विधान है? इसी प्रकार दूसरे पक्ष वालों से भी पूछा। इस से दोनों पक्ष के लोग लज्जित हो गये। और दोनों पक्ष वालों ने गुरुजी से कहा कि अब आप ही जैसे ठीक समझें यह शुभ कार्य सम्पन्न करायें। इस पर गुरुजी ने कहा कि यह विवाह न आर्यसमाजी पद्धति से होगा और न सनातन धर्म की पद्धति से। दोनों पक्ष वालों को मान्य जो पारस्कर गृह्यसूत्र है, उसके अनुसार मैं यह विवाह कराऊंगा। इस पर दोनों राजी हो गये। गांव के पण्डित के पास पारस्कर गृह्यसूत्र की पुस्तक थी, उसे मगवाकर उसी के आधार पर विवाह कार्य सम्पन्न कराया। दोनों ही पक्ष इससे प्रसन्न हुए।

खारे जल से संग्रहणी का रोग दूर हुआ—मथुरा जनपद में कुओं का जल प्रायः खारा है। गुरुजी को बहुत वर्षों से संग्रहणी थी, जो किसी उपचार से ठीक नहीं हुई

थी। इन दिनों प्राय: कार्यकर्त्ता कार्य के आधिक्य के कारण अपने झोले में चने आदि डाल कर साथ साथ रखते थे। भोजन की व्यवस्था न होने पर उन्हें ही खाकर काम चलाते थे और पीने को प्राय: खारा जल ही मिलता था। पूज्य गुरुजी ने इस क्षेत्र में लगभग डेढ़ वर्ष तक कार्य किया। वहां से लौटने तक पूज्य गुरुवर्य का संग्रहणी रोग, जो किसी दवा से ठीक नहीं हुआ थी, यहां के खारे जल के सेवन से ठीक हो गया।

इस प्रकार सन् १९२३-२४ में डेढ़ वर्ष शुद्धि का कार्य करके पूज्य गुरुजी, पं० बुद्धदेवजी तथा साथ मे गये छात्र वापस अमृतसर लौटे। इसके पश्चात् विरजानन्द आश्रम में कुछ ऐसी घटनाएं घटीं, जिनके कारण पं० बुद्धदेवजी को आश्रम से अलग होना पड़ा।

रामलाल कपूर कागजी से परिचय—विरजानन्द आश्रम का समस्त बाह्य वा आन्तरिक प्रबन्ध गुरुवर पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु ही संभालते थे। इस कारण उनका अमृतसर के अनेक प्रमुख वैदिक धर्मपरायण आर्यजनों से मेल हो गया था। उन्हीं में से एक **श्री लाला रामलालजी कपूर कागजी** भी थे। आश्रम में जितने भी कागज वा कापियों आदि की आवश्यकता होती थी, ये महानुभाव ही उसे पूरा करते थे। इस कारण गुरुवर्य का आप की दुकान पर जाना होता ही रहता था। इसी प्रसङ्ग में श्री ला० रामलालजी कपूर के बड़े पुत्र **श्री लाला रूपलालजी** कपूर से भी गुरुजी का अच्छा परिचय हो गया था। कालान्तर में विरजानन्द आश्रम के अमृतसर से काशी-गमन के समय अमृतसर के परिचित ऋषि-भक्त वैदिक-धर्म-प्रेमी सज्जनों ने छात्रवृत्ति के रूप में स्वसामर्थ्यानुसार सहयोग किया था।

प्रथम वार बिरकच्यावास जाना—सन् १९२५ में शिवरात्रि के अवसर पर मथुरा में मनाए जाने वाले जन्मशताब्दी महोत्सव से पूर्व पिताजी ने पूज्य गुरुवर को एक पत्र लिखा था कि जन्मशताब्दी महोत्सव से पूर्व ५-७ दिन के लिये युधिष्ठिर को बिरकच्यावास भेज देवें। परिवार के सभी बन्धुओं की उसे देखने की इच्छा है। मैं शताब्दी महोत्सव के समय साथ लेता आऊंगा इस पत्र को पाकर पूज्य गुरुवर्य ने औरङ्गाबाद (हरदुआगंज) के ठा० खमानसिंहजी के पुत्र यशपाल के साथ मुझे औरङ्गाबाद भेजा। वहां २-३ दिन रहकर अलीगढ़ से वाया हाथरस मथुरा पहुंचा। हाथरस में ही मुझे ज्वर हो गया। अत: मथुरा में जन्मशताब्दी समारोह के स्थान पर पूज्य स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज के संन्यासी-मण्डल में पहुंचा। ३-४ दिन वहां रहा और स्वस्थ होने पर मथुरा से अजमेर के लिये रवाना हो गया। ५-६ दिन गांव रहा और पिताजी के साथ मथुरा आया। अजमेर से मथुरा के लिये

स्पेशल गाड़ी चली थी। सायं की सम्मिलित सन्ध्या सभी आर्यजनों ने फुलेरा स्टेशन के प्लेटफार्म पर की। यह अनुपम दृश्य था। नर-नारियों का उत्साह अविस्मरणीय था।

दयानन्द जन्म-शताब्दी पर मथुरा जाना—सन् १९२५ में शिवरात्रि के अवसर पर श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज के नेतृत्व में और श्री नारायण स्वामीजी महाराज के प्रबन्ध में दयायन्द-जन्म-शताब्दी मनाई गई थी।[1]

जन्म-शताब्दी अवसर पर प्रान्तवार आर्य नर-नारियों के ठहरने का प्रबन्ध था। पानी और विद्युत् का अच्छा प्रबन्ध था। यात्रियों के सामान की सुरक्षा के लिये स्वयं सेवकों की व्यवस्था अत्यन्त सराहनीय थी। जनता जब पण्डालों में व्याख्यानादि सुनने चली जाती थी और रात्रि में सोती थी, तो उस समय प्रत्येक कैम्प पर स्वयं सेवक निरन्तर निगरानी रखते थे। इससे इतने भारी समारोह में चोरी की कोई भी घटना नहीं हुई।

पूज्य गुरुवर्य समस्त छात्रों को लेकर जन्म-शताब्दी महोत्सव में सम्मिलित होने मथुरा पहुंचे। आश्रम के सब व्यक्तियों के ठहरने और भोजन आदि की व्यवस्था पूज्य स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज द्वारा संचालित संन्यासी मण्डल के शिविर में हुई थी। इस मण्डल के भोजन की व्यवस्था बहुत उत्तम थी। प्रतिदिन सायं प्रातः कुछ न कुछ विशेष भोजन बनता था। भोजनालय की व्यवस्था श्री स्वामीजी महाराज के शिष्य स्वामी भजनानन्द जी ने, जिन्हें स्वामीजी भोजनानन्द कहते थे, बहुत उत्तम की थी। साधुओं की काली रोटी धोली दाल (=मालपुवे और खीर) खाने का जो स्वाद यहां आया वह फिर कभी नहीं प्राप्त हुआ।

मेरी उस समय अवस्था छोटी थी अतः पण्डालों में हुए कार्यक्रमों का तो कुछ स्मरण नहीं, परन्तु इस समय की दो घटनाएं अभी तक स्मरण हैं—

१—इस अवसर पर मथुरा नगर में अभ्यागत आर्यों का जो जलूस निकला वह अपने आप में अभूतपूर्व था। प्रत्येक नर-नारी के हृदय में ऋषि दयानन्द के प्रति

---

१. ऋषि दयानन्द की वास्तविक जन्म-तिथि का ज्ञान न होने से शिवरात्रि के पर्व के समय ही ऋषि दयानन्द को मूर्ति पूजा के मिथ्यात्व का बोध होने से इस बोध-रात्रि को ही जन्म-दिवस के रूप में मनाने की प्रथा प्रचलित थी। अब ऋषि-दयानन्द की वास्तविक जन्मतिथि ज्ञात हो गई है। वह है—भाद्रशुक्ला नवमी, सं० १८८१ (गुजराती पञ्चांग के अनुसार सं० १९८०) तदनुसार गुरुवार २ सितम्बर १८२४ ई०।

जो श्रद्धा और उल्लास इस अवसर पर दिखाई पड़ा, वह अन्य किसी शताब्दी समारोह में देखने को नहीं मिला। पञ्जाबी नर-नारियां **वेदांवलियां ऋषियां तेरे आवन दी लोड़** और अन्य प्रान्त के लोग **वेदों का डंका आलम में बजवा दिया ऋषि दयानन्द ने**[1] आर्यभजनों को जिस उत्साह और श्रद्धा से झूमते हुए गाते थे। वह दृश्य देखने योग्य ही था।

२—जलूस के समय मथुरा के कतिपय कलहप्रिय चौबों ने हुड़दंग मचाने का प्रयत्न किया। जब श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज को यह बात पता चली तो उन्होंने विद्युत् गति से जलूस के आगे पहुंचकर हुड़दंग मचाने पर आमद मथुरा निवासियों को संबोधन करके कहा--यदि तुमने जलूस के साथ कुछ भी छेड़-छाड़ की तो ये जलूस के लोग जो शान्त भाव से चल रहे हैं,तुम्हारी मथुरा को घण्टे भर में फूंक कर रख देंगे। स्वामीजी महाराज की इस सिंहगर्जना से हुड़दंग मचाने वालों के प्रयत्न पर तुषारापात हो गया और मार्ग के अवरोध को दूर करके अपने घरों को खिसक गये।

लौटते समय देहली दिखाना—मथुरा से लौटते समय पूज्य गुरुवर्य छात्रों को देहली दिखाने के लिये देहली रुके। दिल्ली के सभी प्रमुख स्थान दिखाये। वर्तमान संसदभवन, जो उस समय निर्माणाधीन था वह भी दिखाया। जहां तक मुझे स्मरण पड़ता है देहली में फतहपुरी के पासवाली मारवाड़ी धर्मशाला में सब लोग ठहरे थे।

सर्वहितकारिणी सभा में फूट—विरजानन्द आश्रम का संचालन जिस सर्वहितकारिणी सभा के द्वारा होता था, उसमें आर्यसमाज की गुरुकुल पार्टी और कालेज पार्टी दोनों के व्यक्ति सम्मिलित थे। अत: लगभग ३ वर्ष तक तो सभी ने मिलजुलकर कार्यसंचालन किया, परन्तु अन्त में उनमें फूट पड़ जाने से आश्रम की व्यवस्था डगमगा गई। प्रयत्न करने पर भी जब आपसी फूट दूर न हुई तो पूज्य गुरुजी ने स्वयं सारी व्यवस्था संभाली। अमृतसर में तथा अन्यत्र उनके जो भक्त थे उनके साहाय्य से लगभग ६ मास तक सारी व्यवस्था की। इस समय छात्रों सहित लगभग ४० व्यक्ति थे।

सर्वहितकारिणीसभा के दोनों गुटों का विचार था कि आश्रम की व्यवस्था न चलने पर गुरुजन किसी एक पार्टी के साथ सम्बद्ध हो जायेंगे। परन्तु जब ६ मास तक गुरुजनों द्वारा की जा रही आश्रम की व्यवस्था को देखा तो उन्हें लगा कि ये

---

१. यह भजन कविवर प्रकाशचन्द्रजी द्वारा निर्मित है। इसी की तर्ज पर स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय गाया जाने वाला 'खादी का डंका आलम में बजवा दिया गान्धी बाबा ने' रचा गया था।

तो हमारे साहाय्य के विना भी आश्रम चलाने में सक्षम हैं तो एक बार उन्होंने पुनः मिलकर आश्रम की व्यवस्था का संचालन अपने हाथ में लिया। परन्तु यह ऐक्य अधिक देर तक स्थिर नहीं रहा, ५-६ मास में ही आपसी फूट के कारण पुनः व्यवस्था बिगड़ गई। दोनों बार आश्रम की व्यवस्था भङ्ग होने से छात्रों के पठन-पाठन में बहुत बाधा हुई। गुरुजनों को भी इससे मानसिक क्लेश हुआ।

'गण्डासिंहवाला' छोड़ने का निश्चय--यद्यपि पूज्य गुरुवर ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु पूर्ववत् स्वयं आश्रम की व्यवस्था सुचारु रूप से चला सकते थे, परन्तु पूर्व की घटनाओं से उन्हें यह प्रतीति हुई कि यहां के लोग न स्वयं आश्रम की व्यवस्था चलायेंगे और ना ही हमें चलाने देंगे अतः उन्होंने गण्डासिंहवाला (अमृतसर) का स्थान छोड़ने का निश्चय किया और कुछ विद्यार्थियों के साथ काशी जाने का निश्चय किया। इसलिये उन्होंने सभी छात्रों के माता-पिता एवं अभिभावकों को अपने काशीगमन की सूचना दी और उन्हें लिखा कि यदि आप मेरे विश्वास पर अपने पुत्र को काशी भेजना न चाहें तो आकर उसे ले जाइये। इस सूचना को पाकर अधिकतर छात्रों के माता-पिता अपने पुत्रों को अपने घर ले गये। जिन छात्रों के अभिभावकों ने पूज्य गुरुजी पर विश्वास करके अपने पुत्र को अपने साथ रखने के लिये लिखा उन्हें अपने साथ रखने का निश्चय किया।

अमृतसर के ४ वर्ष के निवासकाल में अध्ययन—सन् १९२२ के आरम्भ में आश्रम के अमृतसर में स्थानान्तरण होने पर २-३ मास तो लगभग नवीन व्यवस्था करने में ही लग गये। तत्पश्चात् हमारा अध्ययन प्रारम्भ हुआ।

निर्बल स्मरण-शक्ति—आरम्भ में मुख्य रूप से अष्टाध्यायी मूल कण्ठस्थ करना था। मेरे साथ के छात्रों ने ८-१० मास में ही अष्टाध्यायी स्मरण कर ली थी, परन्तु मेरी स्मरण-शक्ति निर्बल थी। स्मरण किये हुए सूत्र दूसरे दिन विस्मृत हो जाते थे। इस कारण मुझे अष्टाध्यायी मूल के स्मरण करने में १५-१६ मास लग गये।

अष्टाध्यायी मूल के स्मरण के साथ-साथ शब्दरूप और धातुरूपों के स्मरण तथा पाणिनीय शिक्षा (वर्णोच्चारण शिक्षा) और धर्मशिक्षा का पाठ भी चलता था।

सब के अष्टाध्यायी स्मरण कर लेने पर अष्टाध्यायी की प्रथमावृत्ति का पाठ आरम्भ हुआ। प्रथमाध्याय के प्रथम पाद के आरम्भ के कुछ सूत्रों की प्रथमावृत्ति पढ़ाने के अनन्तर पूज्य गुरुजी ज्येष्ठ छात्रों को साथ लेकर मलकानों की शुद्धि के कार्य के लिये आगरा चले गये।

श्री पूज्य शंकरदेवजी द्वारा अध्यापन—पूज्य गुरुजी के शुद्धिकार्यार्थ चले जाने

पर हमारी अष्टाध्यायी की प्रथमावृत्ति के आगे का पाठ पूज्य गुरुवर शंकरदेवजी ने संभाला। वे व्याकरण शास्त्र में परम निष्णात थे, यह हम पूर्व लिख चुके हैं। परन्तु वे प्राय: अस्वस्थ रहते थे। अत: डेढ़ वर्ष में केवल प्रथमाध्याय के अन्त तक (साढ़े तीन पादों का) ही हमारा पाठ हुआ। इनकी, अध्यापनशैली अति उत्कृष्ट थी। इन्होंने जो कुछ भी पढ़ाया उससे हमारी व्याकरण शास्त्र के अध्यापन की पृष्ठ भूमि अति सुदृढ़ हो गई।

शुद्धि के कार्य से लौटकर अ० २ से अ० ५ तक की प्रथमावृत्ति पूज्य गुरुजी ने पढ़ाई।

इस प्रकार अनेक विघ्न-बाधाओं के कारण काशी जाने से पूर्व चार वर्ष में अष्टाध्यायी की प्रथमावृत्ति के केवल पांच अध्याय ही पूर्ण हुए।

काशी जाने का कारण—गण्डासिंहवाला छोड़ कर सुदूर काशी जाने का निश्चय गुरुजी ने इसलिये किया था कि काशी विद्या का केन्द्र है, वहां जाने से छात्रों का अध्ययन अध्यापन तो होता ही रहेगा साथ में स्वयं अपने ज्ञान में वृद्धि का मार्ग भी प्रशस्त होगा।

व्यय की व्यवस्था—काशी जाने का निश्चय कर लेने पर पूज्य गुरुजी ने अमृतसर लाहौर आदि के अपने परिचित व्यक्तियों और छात्रों के समर्थ अभिभावकों को दो वर्ष के लिये छात्रवृत्ति के रूप में सहायता देने के लिये कहा और लिखा। इस पर अमृतसर और लाहौर के जिन सज्जनों ने इस समय आर्थिक सहायता की उनमें से कुछ व्यक्तियों के नाम इस प्रकार हैं—

श्री पं० ठाकुरदत्त (अमृतधारा), श्री लाला रामलाल कपूर, श्री लाला राधाकृष्ण (शाहजानन्द), श्री लाला बिल्लूमल सन्तराम, श्री लाला देवीदित्तामल (सुजानपुर), श्री मालवानन्द (पठानकोट), काशी के श्री लाला मुन्नीलाल; श्री लाला दयारामजी आदि।[1]

जो छात्र गुरुजी के साथ काशी जा रहे थे, उनमें से केवल दो के ही अभिभावक इस स्थिति में थे, जो नियमित सहायता कर सकते थे। उनमें एक थे मेरे पिताजी और दूसरे यशपाल के पिता ठा० खमानसिंहजी तथा उनके पुत्र डाक्टर महावीरसिंहजी। मेरे पिताजी ने १५ रु० मासिक भेजना आरम्भ किया था और

---

१. इनके लिये देखें अष्टम परिशिष्ट में संख्या ५ का मेरे समावर्तन संस्कार का विवरण।

निरन्तर विना व्यवधान के भेजते रहे। परन्तु यशपाल के बड़े भाई डाक्टर महावीर सिंहजी समर्थ होते हुए भी इसमें अतिशिथिल रहे।

काशी के लिये प्रस्थान—यथासम्भव काशी के व्यय की कुछ व्यवस्था करके पूज्य गुरुजी १०-११ छात्रों को साथ लेकर जनवरी १६२६ में काशी पहुंच गये। साथ में गुरुवर पं० शङ्करदेवजी भी थे। काशी जाकर जब तक किराये के मकान की व्यवस्था न हुई तब तक 'आर्यसमाज बुलानाला' में रहे। आर्यसमाज बुलानाला के पास ही **सप्तसागर** मोहल्ले में **काशी देवी के मठ** के साथ वाले मकान का ऊपर का भाग किराये पर लिया (नीचे के भाग में एक प्रेस चलता था)। इसमें दूसरी मञ्जिल पर छोटे बड़े चार कमरे थे और तीसरे मञ्जिल पर दोनों सिरों पर लोहे की चादरों वाले दो कमरे थे।

काशी जाने वाले छात्रों के नाम थे—

भद्रसेनजी, इन्द्रदेवजी, वाचस्पतिजी, युधिष्ठिर, भगवद्दत्त, यशपाल, याज्ञवल्क्य, सत्यदेव और धर्मदेव। श्री गुरुवर पं० शङ्करदेवजी भी साथ में थे।

भोजनादि की व्यवस्था—काशी जाने से पूर्व जो आर्थिक प्रवन्ध किया था, वह अपर्याप्त था। इसलिये अन्नक्षेत्रों में भी भोजन करने की व्यवस्था करनी पड़ी।

काशी में अन्नक्षेत्रों की व्यवस्था—प्राचीन काल से ही काशी सम्पूर्ण भारत में संस्कृत के विभिन्न विषयों के अध्ययन का प्रमुख केन्द्र रहा है। उन दिनों काशी में लगभग १५-२० हजार छात्र विभिन्न शास्त्रों के अध्ययन में संलग्न थे। छात्रों के भोजन की व्यवस्था के लिये उस समय काशी में छोटे बड़े लगभग दो अन्नक्षेत्र (सदावर्त) विद्यमान थे। इनमें से कुछ में दोनों समय के भोजन की व्यवस्था थी कुछ में सायंकाल भुने चने और गुड़ देने की। अधिकतर अन्नक्षेत्रों में मध्याह्न का ही भोजन प्राप्त होता था। कुछ ऐसे अन्नक्षेत्र भी थे, जिसमें सीधा (=आटा दाल चावल तथा दो चार पैसे) ही दिया जाता था। इन्हीं अन्नक्षेत्रों के आश्रय पर ही भारी संख्या में छात्र शास्त्राध्ययन में संलग्न थे।

काशी में छात्रों के अध्ययन की व्यवस्था—अध्ययन के लिये अनेक विद्यालय और महाविद्यालय उस समय काशी में विद्यमान थे। उनमें राजकीय संस्कृत कालेज (क्वींस कालेज का एक विभाग) सब से प्राचीन और प्रमुख था। इसमें अनेक विषयों के श्रेष्ठतम विद्वान् अध्यापक थे। पचासों विद्यालय और महाविद्यालयों के होने पर भी छात्रों की भारी संख्या को देखते हुए वे अपर्याप्त थे।

काशीस्थ गुरुजनों की अध्यापन में निष्ठा—विविध शास्त्रों में निष्णात विद्वान्

जो अन्यत्र किसी विद्यालय में अध्यापन करते थे, वे विद्यालय के काल के अतिरिक्त समय में किसी संगत मठ अथवा स्वगृह पर भी छात्रों को पढ़ाते थे। वस्तुतः अनेक विद्वान् इतने विद्यारसिक थे कि वे अस्वस्थ होते हुए भी पढ़ने के लिये आये छात्र को विना पढ़ाये नहीं लौटाते थे।

प्रत्यक्ष दृष्ट घटना—सन् १९३२ में जब हम लोग पूज्य गुरुजी के साथ पुनः मीमांसादि शास्त्रों के अध्ययन के लिये गये थे, तब की एक घटना नीचे दे रहा हूं—

नित्यं वृद्धोपसेविनः (मनु० २।१२१) इस मनु वचन के अनुसार मेरी आरंभ से ही ज्ञानवृद्ध तथा वयोवृद्ध विद्वानों के सत्संग में रुचि रही है। सन् १९३२-३३-३४ के काशी वास के काल में यदा-कदा काशी के महाविद्वान् एवं वयोवृद्ध श्री पं० काशीनाथजी महाराज (ये गुरुकुल कांगड़ी, महाविद्यालय ज्वालापुर में भी पढ़ाते रहे हैं) के दर्शनार्थ जाता रहता था। एक दिन जब मैं उनके दर्शनार्थ गया तब वे नंगे तख्त पर उलटे लेटे हुए पीठ दर्द के कारण कराह रहे थे। मैंने निवेदन किया —गुरुजी पीठ दबा दूं। उन्होंने मना कर दिया। १५-२० मिनट के पश्चात् पांच-छः अध्ययनार्थी छात्र अध्यनार्थ उपस्थित हुए। गुरुजी (पं० काशीनाथजी) उन्हें दूर से आता देखकर तख्त पर आसन लगाकर बैठ गये। मैंने अन्य छात्रों के समीप बैठे हुए कहा – गुरुजी! आज आपकी कटि में अत्यधिक पीड़ा है, आज का अनध्याय कर दीजिये। गुरुजी ने एक हाथ पीठ पर और एक मुंह पर रखकर भोजपुरी में कहा—(भोजपुरी में कहे गये वचन का भाव) यह अपना काम करेगा यह अपना। अर्थात् पीड़ा पीठ में है, मुंह में तो नहीं है, अतः यह बोलता रहेगा। धन्य हैं ऐसे अध्यापन कार्य के प्रति निष्ठावान् और छात्रों के प्रति कृपालु गुरुजन। इन्हीं अकिञ्चन ब्राह्मणों के कारण ही मुसलमानों के राज्यकाल में सर्वथा विपरीत परिस्थितियों में भी संस्कृत वाङ्मय की विविध शाखाओं का अध्ययन अध्यापन प्रवृत्त रहा।

दूसरी घटना—द्वितीय वार के काशी निवास काल में न्यायादि दर्शनों के निष्णात गुरुवर्य श्री पं० ढुण्ढीराजजी ने सम्भवतः १९६४ में कहा था—जब तुम लोग पढ़ने आते थे, तो सबेरे से रात के ९-१० बजे तक पढ़ाने से अवकाश नहीं मिलता था, परन्तु अब पढ़ने वाले ही नहीं रहे, दिन बीतता ही नहीं है। केवल विजयपाल आदि दो-तीन विद्यार्थी पढ़ने के लिये आते हैं।

यहां यह ध्यान देने योग्य बात है कि भारत के स्वतन्त्र होने के पश्चात् संस्कृत भाषा का पठन-पाठन उत्तरोत्तर क्षीण-क्षीणतर और क्षीणतम होता जा रहा है। जिस

देववाणी में भारत के ऋषि-मुनियों का अगाध ज्ञान-विज्ञान एवं भारतीय संस्कृति निहित है, उसकी अपने ही शासन में घोर उपेक्षा हो रही है ।

आश्रम के छात्रों की भोजन व्यवस्था—काशी पहुंचने पर मासिक आय की न्यूनता देखकर पूज्य गुरुजनों (श्री पं० ब्रह्मदत्तजी और पं० शङ्करदेवजी) ने विचार किया कि एक समय का भोजन अन्नक्षेत्र में किया जाये । अन्नक्षेत्र में केवल जन्मना ब्राह्मण छात्र को ही भोजन मिलता था । गुरुजनों को यह ज्ञात ही नहीं था कि कौन छात्र जन्मना किस जाति का है (प्रवेश काल में प्रवेश फार्म में जाति का खाना था ही नहीं) । अतः सब से पूछ कर और यथावत् जानकर जो छात्र जन्मना ब्राह्मण वर्ण के थे उनकी अन्नक्षेत्रों में दोपहर के भोजन की व्यवस्था की । दोनों गुरुजन भी साथ के 'काशी देवी के मठ' के अन्नक्षेत्र में भोजन करते रहे । दूसरे समय बारी-बारी से दो-दो छात्र मिलकर भोजन बनाया करते थे । 'काशी देवी मठ' के अध्यक्ष श्री स्वामी रामानन्दजी विद्वान् एवं उदारचेता व्यक्ति थे ।

पठन-पाठन की व्यवस्था—इस समय छात्रों की तीन श्रेणियां थीं—बड़ी श्रेणि में भद्रसेनजी, इन्द्रदेवजी और वाचस्पतिजी थे । मध्यम श्रेणि में मैं, याज्ञवल्क्य, भगवद्दत्त और यशपाल थे । निम्न श्रेणि में सत्यदेव और धर्मदेव थे ।

बड़ी श्रेणि के सभी छात्र पूज्य गुरुजी के साथ संस्कृत महाविद्यालय वैयाकरण मूर्धन्य पं० देवनारायणजी तिवारी से महाभाष्य पढ़ते थे। शेष दोनों श्रेणियों के छात्रों को गुरुजी पढ़ाते थे ।

गुरुजी का महाभाष्य का अध्ययन—पूज्य गुरुवर्य ने जब विरजानन्द आश्रम का आरम्भ किया था, उस समय तक उन्होंने पातञ्जल महाभाष्य का नियमित अध्ययन नहीं किया था । श्री पं० शङ्करदेवजी पाणिनीय व्याकरण की नवीन और प्राचीन दोनों शैलियों के प्रगाढ़ पण्डित थे । दोनों ने इस काशी वास का महाभाष्य तथा दर्शन शास्त्रों के अध्ययन में सदुपयोग किया ।

श्री पं० देवनारायणजी तिवारी—उस समय काशी में श्री पूज्य देवनारायणजी तिवारी, जो **'तिवारीजी'** के नाम से प्रसिद्ध थे, पाणिनीय व्याकरण के सर्वश्रेष्ठ विद्वान् थे । उन्हें प्रायः सभी ग्रन्थ कण्ठस्थ थे । वे कभी भी पुस्तक हाथ में लेकर नहीं पढ़ाते थे । वे प्रातः काल संस्कृत कालेज में पढ़ाते थे और मध्याह्नोत्तर उदासी सम्प्रदाय की संगत में, जो 'कचोड़ी गली' के समीप था, पढ़ाते थे । दोनों गुरुजनों ने तथा बड़े विद्यार्थियों ने श्री तिवारीजी से महाभाष्य पढ़ा ।

परम उदार चेता—इस समय काशी में जो विद्वान् महानुभाव थे, वे प्रायः

'अत्यन्त संकुचित विचार के थे ।' इस कारण आर्यसमाजी छात्रों को प्रायः प्रच्छन्न रूप में पढ़ना पड़ता था । परन्तु इसके विपरीत श्री पूज्य तिवारीजी आरम्भ काल से ही परम उदारचेता थे । उनके मन में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं था । कोई भी व्यक्ति चाहे किसी मत सम्प्रदाय वा वर्ण का क्यों न हो, सबको अत्यन्त प्रेम से पढ़ाते थे ।

दर्शन शास्त्रों का अध्ययन श्री पं० गिरीशजी शर्मा और श्री पं० ढुण्डीराजजी शास्त्री आदि से किया । ये भी उदारचरित व्यक्ति थे ।

विशेष घटना एक दिन संस्कृत कालेज में जब गुरुजी आदि को श्री पूज्य तिवारीजी पढ़ा रहे थे तो एक वाचाल छात्र ने पूज्य गुरुवर्य से कहा—आप इन नास्तिकों को पढ़ाते हैं । इस पर पूज्य तिवारी को बहुत गुस्सा आया और उन्होंने उस छात्र से कहा—'तू नास्तिक, तेरी सात पीढ़ी नास्तिक । तू सच बता क्या तू सवेरे सन्ध्या और विश्वनाथजी पर जल चढ़ा कर आया है ? जिनको तू नास्तिक कहता है ये नित्य सन्ध्या अग्निहोत्र करके पढ़ने आते हैं । ये नास्तिक हैं या तू ?'

पूज्य तिवारीजी बहुत शान्त प्रकृति वाले व्यक्ति थे । उनको उस दिन कुपित देखकर साथ के सभी अध्यापक और छात्र इकट्ठे होकर देखने लगे । अनन्तर पूज्य तिवारीजी पुराणों के विषय में बोलने लगे—विष्णु पुराण में शिव की निन्दा की है और शिवपुराण में विष्णु की । सभी पुराण एक-दूसरे देवता को गालियां देते हैं । कौनसा ऐसा देवता है, जिसकी पुराणों में निन्दा न की गई हो । ये लोग निराकार ब्रह्म के उपासक हैं । हम जिन महादेवादि को पूजते हैं, उनका चरित्र क्या पुराणों के अनुसार भ्रष्ट नहीं है ?

स्वामी श्रद्धानन्दजी का बलिदान—इसी बीच २४ दिसम्बर १९२६ के दिन स्वामी श्रद्धानन्दजी की एक आततायी मुसलमान ने गोली मारकर हत्या कर दी । इस घटना से गुरुजी को बहुत दुःख हुआ और वे १०-१२ दिन तक अध्ययन के लिये पूज्य तिवारी के पास नहीं गये । अन्त में जब अध्ययन के लिये पूज्य तिवारीजी के पास उदासी साधुओं की सङ्गत में पहुंचे तो पूज्य तिवारीजी ने पूछा कि तुम लोग कैसे आये हो ? गुरुजी ने कहा—महाराज पढ़ने के लिये आये हैं । इस पर पूज्य तिवारीजी हाथ जोड़कर बोले कि यह पढ़ने का समय है ? हमारे स्वामी श्रद्धानन्द जी को मुसलमान ने मार दिया और तुम पढ़ने आये हो ? जाओ शुद्धि का काम करो । जिसके लिये स्वामीजी का बलिदान हुआ है । एक संस्कृत के पण्डित, जिसे यह

भी ज्ञात नहीं था कि 'लाहौर काशी से पश्चिम में है वा पूर्व में [1]' से शुद्धि की बात सुनकर गुरुजी को बहुत आश्चर्य हुआ।

शुद्धि के सम्बन्ध में तिवारीजी का योगदान – इस पर गुरुजी ने कहा—महाराज काशी में शुद्धि की व्यवस्था कौन देगा। इस पर पूज्य तिवारीजी ने कहा—मैं दूंगा। इस पर गुरुजी ने फिर कहा—महाराज! शुद्धि के कार्य में तो बहुत रुपया खर्च होगा। इसकी व्यवस्था कैसे होगी? हम लोग तो कुछ कर नहीं सकते। पूज्य तिवारीजी ने कहा—कि मैं एक पत्र मालवीयजी[2] को लिख देता हूं, उसे लेजा कर उनसे मिलो। वे सब खर्चे की व्यवस्था कर देंगे। इस पर गुरुजी ने कहा कि महाराज हमारे साथ छोटे विद्यार्थी हैं, जिन्हें हम पढ़ाते हैं उनकी पढ़ाई में हानि होगी। इस पर पूज्य तिवारीजी ने कहा—मैं उन्हें पढ़ाऊंगा।

उस समय जितने छात्र वहां उपस्थित थे,पूज्य तिवारीजी की बातों से चकित थे। विशेष कर छोटे विद्यार्थियों को पढ़ाने की बात पर। क्योंकि पूज्य तिवारी जी के पास अध्ययनार्थी व्याकरण के विशिष्ट ग्रन्थों के अध्ययन के लिये ही आते थे, जो बड़ी आयु के होते थे।

शुद्धि की व्यवस्था—अगले दिन गुरुजी पूज्य तिवारीजी के पास गये और शुद्धि की व्यवस्था और मालवीयजी के नाम पत्र लिखने के लिये कहा। पूज्य तिवारी जी ने अध्यापन रोककर तत्काल दोनों कार्य कर दिये।

मालवीयजी का चकित होना—जब गुरुजी पूज्य तिवारीजी द्वारा लिखित शुद्धि की व्यवस्था और मालवीयजी के नाम लिखा पत्र मालवीयजी के पास लेकर पहुंचे तो मालवीयजी बहुत चकित हुए और बोले कि तिवारीजी को अपने हिन्दु विश्व-विद्यालय में लाने के लिये मैंने बहुत प्रयत्न किया, परन्तु वे तैयार नहीं हुए। तुम आर्यसमाजियों ने पता नहीं क्या उन पर जादू चलाया है कि शुद्धि जैसे कार्य के लिये व्यवस्था देने को तैयार हो गये। इस पर मालवीयजी ने कहा कि एक शुद्धि सभा बनाकर और कार्यक्रम तैयार करके आनुमानिक व्यय की योजना मुझे दो, मैं इस कार्य के लिये आर्थिक व्यवस्था कर दूंगा।

इस प्रकार गुरुजी और तीनों बड़े विद्यार्थी शुद्धि के कार्य में लग गये।

---

१. प्रसंगवश एक दिन पूज्य तिवारीजी ने गुरुजी से यह पूछा था कि लाहौर पश्चिम में है या पूर्व में?

२. अर्थात् श्री पं० मदनमोहन मालवीयजी।

लगभग ६ महीने तक शुद्धि कार्य का सञ्चालन करके और उसकी स्थायी व्यवस्था करके गुरुजी आदि पुन: पठन-पाठन में प्रवृत्त हो गये। यह कार्य वाराणसी से वापस अमृतसर लौट जाने के पश्चात् भी कई वर्षों तक यथावत् चलता रहा।

काशी-निवास-काल के अन्य कार्य

काशीस्थ विद्वानों में वैदिक साहित्य पहुंचाना—पूज्य गुरुजी ने काशी के प्रसिद्ध एवं उदारचरित विद्वानों तक ऋषि दयानन्द की वैदिक विचारधारा पहुंचाने के लिये **ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका** आदि कतिपय ग्रन्थ भेंट किये।

इसी प्रकार का कार्य सन् १९२८ में लाहौर में सम्पन्न हुए 'आल इण्डिया ओरियण्टल कान्फ्रेंस' के अधिवेशन के समय भी देश-विदेश के विद्वानों को वैदिक-साहित्य भेंट करके किया था।[1]

काशीस्थ उदारचेता विद्वानों का संगठन—काशी में 'सुप्रभातम्' नामक संस्कृत पत्र के सम्पादक श्री पं० केदारनाथजी सारस्वत उच्चकोटि के विद्वान् एवं परमोदार वृत्ति के थे। इनके साथ संयोग होने से गुरुजी ने काशी में कुछ और कार्य भी किये। जिनमें प्रमुख था **उदारचेता काशीस्थ विद्वानों का नया संगठन बनाना।** इस संगठन का कार्य था श्री पं० मदनमोहन मालवीयजी द्वारा सञ्चालित अछूतोद्धार, मुसलमानों की शुद्धि, अछूतों का मन्दिर प्रवेश आदि अनेक कार्यों की पुष्टि करना और शास्त्रीय व्यवस्था देना।

काशीस्थ पण्डितों में दो दल—इस प्रकार काशीस्थ पण्डित दो दलों में विभक्त हो गये। उदार वृत्ति वाले पण्डितों के प्रमुख नेता थे पं० केदारनाथजी सारस्वत। परम्परा के आग्रह से ग्रस्त दूसरे पण्डित दल के नेता थे साङ्गवेद विद्यालय को स्थापित करने वाले पं० लक्ष्मण शास्त्री द्रविड़। इन विरोधी दलों की सभाओं में प्राय: एक दूसरे पर शास्त्र-विरुद्ध और धर्म-विरुद्ध निर्णय देने के लिये आरोप प्रत्यारोप लगाये जाते थे।

विशिष्ट सभा का आयोजन—पं० लक्ष्मण शास्त्री द्रविड़ और उनके सुपुत्र

---

१. पूज्य गुरुवर्य के चरणों पर चलते हुए मैंने भी शोलापुर, नांदेड़ और बीड़ (महाराष्ट्र) में सम्पन्न सोमयाग एवं अग्निचयन यागों के समय तथा पूना (सन् १९७८) और अहमदाबाद (सन् १९८५) में सम्पन्न हुई आल इण्डिया ओरियण्टल कान्फ्रेंस के समय तथा अन्यत्र विद्वानों को लगभग २०-२५ सहस्र रुपयों का वैदिक-साहित्य भेंट किया है।

राजेश्वर शास्त्री द्रविड़ ने शुद्धि, विधवा-विवाह, अछूतोद्धार आदि के सम्बन्ध में व्यवस्था देने के लिये 'साङ्गवेद विद्यालय' में एक विशिष्ट सभा का आयोजन किया। इस सभा में दोनों ही दलों के विद्वान् एकत्रित हुए। 'काशीस्थ पण्डितों की व्यवस्था' के नाम पर विपक्षी कोई सर्वसम्मत निर्णय न ले सकें अथवा दूसरे शब्दों में उक्त सभा को विफल करने के विचार से उदार दल के पण्डित भी सभा में उपस्थित हुए थे। इनमें प्रमुख विद्वान् थे—पं० केदारनाथजी सारस्वत, पं० महादेव जी नैयायिक, पं० गोपाल शास्त्रीजी दर्शनकेशरी और पं० देवीप्रसाद कवि चक्रवर्ती आदि। इनके साथ पूज्य गुरुवर्य भी सभा में गये थे। दर्शक के रूप में हमारे आश्रम के कुछ छात्र भी सम्मिलित हुए। उनमें मैं भी था।

सत्य सनातन-धर्म-सभा की स्थापना का उद्घोष—उक्त सभा साङ्गवेद विद्यालय में हुई थी। वहां पर अनुदार दल के पण्डितों के बाहुल्य से उदार दल के पण्डितों को यह भय भी था कि यहां से विना मार खाये वापस लौटना कठिन है। फिर भी उक्त सभा को विफल करने के उद्देश्य से 'जानबूझकर मौत के मुंह में गिरने' की कहावत के अनुसार उदारदल के पण्डित भी उपस्थित हुए थे।

सभा की कार्यवाही—मङ्गलाचरण के पश्चात् सभा की कार्यवाही आरम्भ हुई। उसमें जो प्रस्ताव रखा गया उसका भाव था—'**जो व्यक्ति अछूतोद्धार, विधवा विवाह और मुसलमानों की शुद्धि आदि कार्य करने में संलग्न हैं उनकी यह सभा निन्दा करती है और उनका बहिष्कार करने की घोषणा करती है।**' इस प्रस्ताव के उपस्थित होने पर उदार दल के पण्डितों में कुछ हलचल हुई, परन्तु कोई भी प्रत्यक्ष रूप से विरोध में खड़े होने को उद्यत न हुआ। सबने गुरुजी को कहा कि आप ही इसके विरोध में बोलें, हम सब आपका साथ देंगे। इस पर गुरुजी ने खड़े होकर कहा कि जो प्रस्ताव उपस्थित किया गया है इसमें '**शास्त्र-विपरीत**' शब्द का सन्निवेश और होना चाहिये। अर्थात् जो व्यक्ति शास्त्र-विपरीत अछूतोद्धार, विधवा-विवाह और शुद्धि का कार्य करते हैं, उनका बहिष्कार किया जाये। इसके साथ ही यह भी कहा कि उक्त तीनों विषयों का वेद से लेकर पुराणों तक में समर्थन उपलब्ध होता है।

गुरुजी के उक्त वक्तव्य के पश्चात् दोनों दलों के पण्डितों में तू तू मैं मैं और गाली-गलौच आदि आरम्भ हो गया। इस प्रकार जिस प्रयोजन से सभा आयोजित की गई थी, वह विफल हो गई। इस बीच उदार दल के पण्डितों ने सभा के मध्य 'सत्य सनातन धर्म पण्डित सभा' की स्थापना की घोषणा की और आयोजित सभा इसी गड़बड़ी में विना निर्णय लिये समाप्त हो गई।

काशी के पण्डितों का अहंकार—प्राय: करके (कुछ व्यक्तियों को छोड़कर) काशी के किसी भी पण्डित के पास किसी भी शास्त्र का अध्ययन करने जाने पर वे उसे पढ़ाने को तैयार हो जाते थे, चाहे उस शास्त्र का अध्ययन करना तो दूर रहा, दर्शन भी न किया हो। गुरुजी भी श्री पं० देवीप्रसादजी कवि चक्रवर्ती के अगाध पाण्डित्य की प्रशसा सुनकर उनके पास मीमांसा के अध्ययनार्थ गये। उन्होंने मीमांसा पढ़ाना स्वीकार कर लिया, परन्तु कुछ दिनों के पश्चात् ही यह ज्ञात हो गया कि शास्त्रीजी की मीमांसा शास्त्र में गति नहीं है। तब उनके यहां जाना छोड़ दिया।

मीमांसा के अध्ययन में अन्य बाधा— काशी में मीमांसा शास्त्र के एक मात्र ज्ञाता श्री म० म० **वैंकट सुब्रह्मण्य शास्त्रीजी** जो श्री **चिन्नस्वामी शास्त्री** के नाम से प्रसिद्ध थे, से मीमांसा का अध्ययन करने का विचार किया। पूज्य चिन्नस्वामीजी शास्त्री उस समय 'गोयनका विद्यालय' में पढ़ाते थे। इसके प्राचार्य पं० चण्डीप्रसाद शुक्ल थे। जब गुरुवर्य ब्रह्मदत्त जिज्ञासु और पं० शंकरदेवजी अपने ज्येष्ठ छात्रों के साथ मीमांसा का अध्ययन करने के लिये गोयनका महाविद्यालय में श्री चिन्नस्वामी शास्त्रीजी के पास गये तो उन्होंने प्राचार्य महोदय से अनुज्ञा प्राप्त करने के लिये कहा। पूज्य गुरुजी श्री शुक्लजी के पास गये तो उन्होंने आर्यसमाजी होने के कारण विद्यालय में अध्ययन करने से निषेध कर दिया और कहा कि इस विद्यालय में अध्ययन वही कर सकता है, जो दोनों समय विश्वनाथ की मूर्ति पर जल चढ़ाता हो। अस्तु, इस प्रकार मीमांसा शास्त्र के अध्ययन का संकल्प इस काशीवास के समय में पूरा नहीं हुआ। श्री पूज्य चिन्नस्वामीजी ने भेंट के रूप में दिये गये फलादि भी लौटा दिये। पूज्य गुरुजी ने उन्हें शास्त्रीजी के घर पहुंचा दिया।

क्रान्तिकारियों के नेता पं० अखिलानन्दजी—पं० अखिलानन्दजी गुरुजी के गुरु-भाई थे। ये इन दिनों काशी में निवास करते थे। काशी में 'नैपाली खपरा' मोहल्ले में आर्यसमाज का छात्रावास था। और 'दीनानाथ का गोला' मोहल्ले में भी एक मकान था। इन दोनों स्थानों में छात्रों के साथ-साथ कुछ क्रान्तिकारी युवक भी रहते थे। पं० अखिलानन्दजी इनके नेता थे। अखिलानन्दजी के सम्पर्क के कारण पूज्य गुरुजी का भी कतिपय क्रान्तिकारियों से न केवल परिचय हुआ अपितु गुरुजी की विचारधारा भी उनके अनुकूल हो गई थी। इसी सम्पर्क के कारण काशी से अमृतसर जाने पर भी आश्रम में यदा-कदा छद्म वेश में २-३ महीने तक क्रान्तिकारी शरण पाते रहे।

काशीवास के समय हमारा अध्ययन— पूर्व लिखा जा चुका है कि गण्डासिंह-

वाला (अमृतसर) का स्थान छोड़ने तक अष्टाध्यायी की प्रथमावृत्ति का ५वें अध्याय तक पाठ हो चुका था। काशी आकर ६ठे अध्याय से हमारा पाठ आरम्भ हुआ। काशीवास के लगभग २ वर्ष ४ मास के काल में हमारी पढ़ाई इस प्रकार हुई—

अष्टाध्यायी प्रथमावृत्ति अ० ६-७-८, धातुप्रक्रिया-प्रतिधातु सभी प्रक्रिया सहित (वैदिक लेट् लकार भी), उणादिकोश, अष्टाध्यायी द्वितीयावृत्ति।

जब परमगुरु पूज्य तिवारीजी के कहने पर गुरुजी शुद्धि कार्य में प्रवृत्त हुए तब हमारा धातुप्रक्रिया का पाठ चल रहा था। गुरुजी के शुद्धि कार्य में लगने पर हमें श्री पूज्य तिवारीजी ने धातुप्रक्रिया पढ़ाई।

विनोदप्रिय तिवारीजी—पूज्य तिवारीजी जहां श्रेष्ठ विद्वान् और गम्भीर प्रकृति के थे वहां वे विनोदप्रिय भी थे। हमारे साथी भाई याज्ञवल्क्यजी जहां आयु में हम सबसे छोटे थे, वहां कुछ ठिगने भी थे। जब कभी मार्ग में पूज्य तिवारीजी से भेंट हो जाती थी तो वे विनोद में याज्ञवल्क्यजी के पैर छूने को झुककर कहते—कहो गुरु क्या हाल है ?।

इसी प्रकार जब गुरुजी और हम से बड़े छात्र पूज्य तिवारीजी से महाभाष्य पढ़ते थे, तब एक दिन महाभाष्य ३।३।१५ के पाठ में एक वचन आया—**इयं नु कदा गन्ता यैवं पादौ निदधाति**। इस पर श्री वाचस्पतिजी ने पूछ लिया कि इसका क्या अभिप्राय है ? पूज्य तिवारीजी ने विनोद में कहा—'इन्द्रदेव से पूछ लेना'। श्री इन्द्रदेवजी का विवाह हो चुका था, अतः पूज्य तिवारीजी ने विनोद में उक्त बात कही थी।

सस्वर वेद-पाठ सिखाने का प्रयत्न-पूज्य गुरुजी चाहते थे कि जो विद्या परम्परा से सनातनी विद्वानों के पास है उसे अधिक से अधिक स्वायत्त कर लेना चाहिये। इसी प्रकार का वेदों का सस्वर पाठ भी एक ऐसी विद्या है जो सनातनधर्मी पण्डितों में वर्तमान है। ऋषि दयानन्द ने भी अपनी पाठ विधि में सस्वर वेद-पाठ का विधान किया है। संस्कार-विधि में प्रत्येक संस्कार के अनन्तर **महावामदेव गान** गाने का निर्देश दिया है। अतः गुरुजी की इच्छा हुई कि अपने विद्यार्थियों को सामवेद का सस्वर पाठ सिखाया जाये।

कट्टरपन्थी पण्डितों से किसी विद्या का ग्रहण करना उन दिनों अत्यधिक कठिन कार्य था। झूठ बोलकर किसी से अध्ययन करना कराना भी गुरुजी उचित नहीं समझते थे, परन्तु साथ ही **'आ बैल मुझे मार'** कहावत के अनुसार अध्ययन में विघ्न की दृष्टि से स्वयं 'आर्यसमाजी' प्रकट करना भी युक्ति-संगत नहीं मानते थे।

दशाश्वमेध घाट पर एक मन्दिर में एक सामवेदी विद्वान् सामवेद पढ़ाते हैं, यह जानने पर 'सनातन-धर्मियों के मतानुसार वेद का अधिकारी जन्म से ब्राह्मण होता है' यह मानकर मुझे, याज्ञवल्क्य और सत्यदेव को सामवेद पढ़ने के लिये भेजा। सामवेद की रुद्री से पाठ आरम्भ हुआ।

दैवयोग से पाठ में विघ्न—अभी पाठ आरम्भ हुए ६-७ दिन ही हुए थे कि सत्यदेवजी के बड़े भाई काशी आये। वे गंगास्नान के लिये इधर से दशाश्वमेध घाट पहुंचे, उधर से हमलोग पढ़कर निकले। सीढ़ियों पर भेंट हुई। उसमें सत्यदेवजी के भाई ने **नमस्ते** शब्द का उच्चारण किया। हमारे साथ २-४ अन्य विद्यार्थी भी थे। उन्होंने गुरुजी (सामवेदीजी) को कह दिया कि ये लोग आर्यसमाजी हैं। बस, हमारा पाठ बन्द हो गया। और मैं सस्वर वेदपाठ नहीं सीख सका।[1] सत्यदेवजी ने दरभङ्गा वेद विद्यालय के एक गुजराती सामवेदी उदारचेता विद्वान् ....से सम्पूर्ण सामवेद और उसके गान का सस्वर पाठ सीख लिया, परन्तु मैं सस्वर पाठ से वञ्चित रह गया।

भावी जीवन की प्रक्रिया का अनपेक्ष आरम्भ—अध्ययन के पश्चात् श्री पं० भगवद्दत्तजी के सम्पर्क के कारण मैं जिस शोध कार्य में प्रवृत्त हुआ, उसकी पृष्ठ-भूमि काशी में रहते हुए ही अनायास सम्पन्न हो गई। इस संबन्ध में निम्न घटनाएं आगे चलकर महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुईं—

---

१. सन् १९६४ के नवम्बर मास की ११-१८ तारीखों में अमृतसर में श्री स्वामी करपात्रीजी द्वारा संचालित **सर्ववेदशाखा सम्मेलन** हुआ था। उसमें मुझे न चाहते हुए भी ऋषिदयानन्द के वेदार्थ की प्रामाणिकता स्थापित करने के लिये सनातन धर्मी पण्डितों से शास्त्रार्थ करना पड़ा। मैं अपने पक्ष में वेद के स्वरों पर विशेष बल देता था। इस सप्ताहपर्यन्त चलने वाली सभा के अध्यक्ष पुरी के शंकराचार्य पीठाधीश श्री निरञ्जनदेवजी तीर्थ थे। उन्होंने मेरे सस्वर शास्त्र पर बार-बार बल देने पर झुंझलाकर कहा—पण्डितजी बार-बार स्वर-स्वर का ढिंढोरा पीटते हैं, एक मन्त्र तो सस्वर उच्चारण करके सुना देवें। इस पर मैंने उत्तर दिया —'महाराज! मैंने जहां अनेक शास्त्र गुरुजनों से पढ़े हैं, वहां मैं सामवेद का सस्वर पाठ सीखने भी गया था, परन्तु जन्मना ब्राह्मण होने से वेदपाठ का अधिकारी होने पर भी आपके मतानुयायी सामवेदी पण्डित ने दयानन्द का अनुयायी होने के नाते मुझे सामवेद नहीं पढ़ाया। इसलिये यदि सम्प्रति किसी वेदमन्त्र का सस्वर पाठ नहीं कर सकता तो इसका दोष आपके कट्टरपन्थी मतानुयायियों का है, मेरा नहीं।'

१—ग्रन्थ-पारायण का आरम्भ—काशी-निवास काल में कभी-कभी पूज्य गुरुजी किसी सद्धान्तिक विषय को लेकर आपस में वाद-विवाद आयोजित करते थे। मेरे एक बड़े भ्राता (जिनका नाम नहीं दे रहा हूं) के पास सैद्धान्तिक विषयों पर पक्ष-प्रतिपक्ष के प्रमाणों का अच्छा संग्रह था। एक बार किसी विषय पर वाद-विवाद आयोजित होने पर उनसे मैंने उनके प्रमाण संग्रह की कापी मांगी। उन्होंने देने से मना कर दिया (दो-तीन बार पूर्व दे चुके थे)। इस पर मुझे आवेश आ गया और मैंने कह दिया कि मैं स्वयं अपेक्षित प्रमाण संगृहीत कर लूंगा। आर्यसमाज के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में प्रमाण एकत्रित करने के लिये मैंने सब से प्रथम आनन्दाश्रम पूना से छपे **स्मृति समुच्चय** का पारायण किया। उसमें अनेक विषयों पर अच्छे प्रमाण उपलब्ध हो गये। उससे ग्रन्थ समझ में आवे या न आवे, ग्रन्थ पारायण करने का चस्का लग गया। वेद में कहा भी है—

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाऽऽप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥ यजुः १९।३०॥

इस समय सम्भवतः उणादिवृत्ति का पाठ चल रहा था। अतः संस्कृत भाषा का साधारण ज्ञान ही था। वैदिक-ग्रन्थ तो समझ से परे ही थे फिर भी यह **ग्रन्थ-पारायण** का तब से आरम्भ हुआ क्रम उत्तरकाल में न केवल चलता रहा अपितु उत्तरोत्तर बढ़ता गया। इससे मीमांसा शास्त्र के अध्ययन-काल में तथा शोधकार्य में मुझे अप्रत्याशित लाभ हुआ।

उणादिपाठ के अध्ययन काल की जो दिनचर्या उणादिकोष में लिखी थी (जो आजतक सुरक्षित है) उसमें रात में ९-१० बजे के काल के आगे लिखा हुआ है—**अण्ड बण्ड सण्ड**। इसका अभिप्राय पाठ्यक्रम के अतिरिक्त किसी भी ग्रन्थ का पाठ करना। इस समय की दिनचर्या के अनुसार **प्रतिदिन हमारे पूरे बारह घण्टे अध्ययन में व्यतीत होते थे।**

२—दशपादी उणादि-वृत्ति की उपलब्धि—पाणिनीय सम्प्रदाय में उणादिसूत्रों का पञ्चपादी पाठ अधिक उपयुक्त हुआ है। ऋषि दयानन्द ने इसी पञ्चपादी पाठ पर अपनी व्याख्या लिखी है। यद्यपि कतिपय पाणिनीय वैयाकरणों ने दशपादी पाठ भी अपनाया है, परन्तु मुझे इसका उस समय तक ज्ञान नहीं था। मैं केवल पञ्च-पादी पाठ से ही परिचित था।

काशी में एक गुदड़ी बाजार है। उस समय वहां कभी-कभी संस्कृत के प्राचीन छपे अथवा हस्तलिखित ग्रन्थ बिकने को आ जाते थे। मेरे ज्येष्ठ भ्राता इन्द्रदेवजी

संभवत: सन् १९२७ में इसी गुदड़ी बाजार से पाषाण मुद्रणालय से छपे दशपादी उणादि-वृत्ति की एक पुस्तक खरीद कर लाये। उन्होंने मुझे दिखाई। उसमें दश पाद और सूत्रों का भिन्न क्रम देखकर मेरे मन में कुतूहल उत्पन्न हुआ और कुछ दिनों के पश्चात् मुझे भी इस पुस्तक की एक प्रति उपलब्ध हो गई। कुतूहलवश दोनों पाठों की तुलना करने के लिये मैंने दशणादी पाठ की पुस्तक में सूत्रों पर पञ्चपादी पाठ की पाद और सूत्र संख्या लिखी और पञ्चपादी पाठ की पुस्तक के हाशिये पर दशपादी पाठ की पृष्ठ संख्या डाल दी। इससे दोनों पाठों की तुलना का मार्ग प्रशस्त हो गया।

दशपादीपाठ की महत्ता का परिज्ञान – दशपादी उणादि-वृत्ति के उपलब्ध हो जाने पर भी सन् १९३० तक पुस्तक पड़ी रही। सन् १९३० में निरुक्त शास्त्र के अध्ययन काल में निघण्टु की देवराज यज्वा की टीका भी देखी। उसमें दो स्थानों पर उणादिवृत्ति का ऐसा पाठ उपलब्ध हुआ जो पञ्चपादी उणादिपाठ की मुद्रित तथा हस्तलिखित वृत्तियों में नहीं मिला। दशपादी उणादिवृत्ति में दोनों पाठ यथावत् मिल गये। इससे दशपादीवृत्ति की प्रामाणिकता और प्राचीनता का बोध अनायास हो गया। यह बात मैंने श्री पं० भगवद्दत्तजी को बताई तो वे बहुत प्रसन्न हुए और मुझे वृत्ति के सम्पादन के लिये प्रेरित किया।[1]

दलदल में फंसना—तैरने का शिक्षण मैं महेश्वर में ही ले चुका था। काशी-वास के दिनों में तैरने का अभ्यास घण्टा-दो घण्टे तक बढ़ाया। इतना अभ्यास हो जाने पर दो-तीन बार तैरकर गंगा पार की (काशी में गंगा का पाट काफी चौड़ा है)। कुछ समय पश्चात् एक बार तैरकर गङ्गा पार करके तैरकर ही लौट आया। इससे साहस में वृद्धि हुई। तैरकर गङ्गा पार करते समय परले किनारे के उस स्थान का ज्ञान होना आवश्यक था जहां पर दलदल न हो। इसका मुझे कुछ ज्ञान नहीं था। प्रथम बार तो दैवयोग से दलदल रहित किनारे पर पहुंच गया, परन्तु दूसरी बार किनारे तक पहुंचने से पूर्व ही दलदल में फंस गया। इस समय इतना ज्ञान अवश्य था कि दलदल में खड़ा नहीं होना चाहिये। खड़ा होने पर तैरने वाला दलदल में धंस जाता है। अत: दलदल में फंसने पर किसी तरह लेटे लेटे ही हाथ पैर मारकर दलदल से पार हुआ और नावों के ठहरने के स्थान पर जाकर तैरकर वापस घाट पर आया।

---

१. इस वृत्ति का प्रथम संस्करण संस्कृत कालेज, बनारस (सम्प्रति—सं० सं० वि० विद्यालय) से सन् १९४३ में छपा था। उसका नया संस्करण गत वर्ष १९८७ में छपा है।

काशी से वापस अमृतसर लौटना—काशी में अर्थाभाव के कारण और श्री पं० शङ्करदेवजी के साथ छोड़ देने के कारण छात्रों के साथ गुरुजी का काशी में निवास करना कठिन हो गया। अर्थाभाव का प्रधान कारण था—गुरुजी ने काशी आने से पूर्व विभिन्न व्यक्तियों से जो आर्थिक सहायता प्राप्त की थी वह दो वर्ष के लिये ही थी। दो वर्ष पूरे होने पर कई व्यक्तियों ने आगे आर्थिक सहायता देना बन्द कर दिया था।[1] पूज्य गुरुजी भावी योजना के सम्बन्ध में चिन्तित थे ही कि एक आकस्मिक दैवी घटना घटित हो गई, जिसके कारण काशी से वापस अमृतसर लौटना पड़ा। इससे जहां पूज्य गुरुजी सदा के लिये आर्थिक कठिनाई से मुक्त हो गये। वहां कार्यक्षेत्र भी बढ़ गया।

रामलाल कपूर ट्रस्ट की स्थापना—श्री लाला रामलालजी कपूर आश्रम के साथ प्रारम्भ से ही किसी न किसी प्रकार जुड़े हुए थे। काशीवास के समय भी सहायता देने वालों में ये अन्यतम थे। आपका जनवरी १९२८ को निधन हो गया। आप के पुत्रों सर्व श्री रूपलालजी कपूर, हंसराजजी कपूर, ज्ञानचन्दजी कपूर तथा प्यारेलालजी कपूर ने अपने पिताजी की स्मृति में एक ट्रस्ट बनाने का विचार किया। यद्यपि यह परिवार साक्षात् आर्यसमाज से सम्बद्ध नहीं था अर्थात् आर्यसमाज का सदस्य नहीं था, पुनरपि परिवार के सभी व्यक्तियों के हृदय में ऋषि दयानन्द और वैदिक-धर्म के प्रति अत्यधिक श्रद्धा थी। अतः ये चाहते थे कि ट्रस्ट से कोई ऐसा कार्य होवे जिससे ऋषि दयानन्द का कोई लक्ष्य पूर्ण हो सके। पूज्य गुरुजी के साथ इनका परिचय तो हो ही चुका था। अतः पूज्य गुरुजी को काशी से बुलाकर अपने हृद्गत भाव कहे और उसमें सहयोग मांगा।

पूज्य गुरुजी को भी कपूर परिवार का यह विचार अच्छा लगा। अतः श्री महात्मा हंसराजजी तथा श्री पं० भगवद्दत्तजी से विचार विनिमय करके २६ फर्वरी १९२८ को ट्रस्ट की विधिपूर्वक स्थापना हुई। इसके प्रारम्भिक प्रधान श्री महात्मा हंसराजजी तथा मन्त्री श्री बाबू रूपलालजी कपूर नियत हुए। इस ट्रस्ट के निम्न उद्देश्य हैं—

'प्राचीन वैदिक-साहित्य का अन्वेषण, रक्षा तथा प्रचार तथा भारतीय संस्कृति, भारतीय शिक्षा, भारतीय विज्ञान और चिकित्सा द्वारा जनता की सेवा।'

ट्रस्ट की स्थापना के साथ ही श्री बाबू रूपलालजी कपूर ने पूज्य गुरुजी से कहा कि हमारे यहां बहुत वर्षों से किसी न किसी विद्वान् के रहने की परम्परा चली आ

१. द्र०—अष्टम परिशिष्ट में संख्या १ पर छपा पूज्य गुरुजी का विस्तृत पत्र।

रही है। श्री स्वा० सियारामजी के निधन के पश्चात् हमें कोई उचित व्यक्ति नहीं मिला, इसलिये आपसे निवेदन है कि आप अपने छात्रों के साथ हमारे यहां ही आ जायें। खर्चे की सब उचित व्यवस्था हो जायेगी।

अमृतसर लौटना—उक्त निर्णय के अनुसार पूज्य गुरुवर्य सब छात्रों को साथ लेकर अप्रेल सन् १९२८ के पूर्वार्ध में अमृतसर पहुंच गये। अमृतसर जाते हुए सब छात्रों को गुरुकुल कांगड़ी (पुराना स्थान) और गुरुकुल ज्वालापुर आदि भी दिखाया।

पं० भद्रसेनजी कुछ मास पूर्व ही योग की शिक्षा के लिये 'लोनावाला' (पुणें) चले गये थे। पण्डित इन्द्रदेवजी शेष अध्ययन के लिये काशी रह गये। श्री पं० वाचस्पतिजी अपने भाई पूज्य पं० शङ्करदेवजी के साथ अपने गांव नोनेर (मैनपुरी) चले गये। इस कारण छोटे विद्यार्थी ही गुरुजी के साथ अमृतसर लौटे। इनमें काशी से 'अमृतलाल' नाम का विद्यार्थी (जो आगे चलकर 'स्वामी अमृतानन्द' नाम से प्रसिद्ध हुआ) साथ हो गया था।

मैं डूबने से बचा—हरिद्वार में गङ्गा की नहर में मैं तैरने के लिये उतर गया। तैरने का अच्छा अभ्यास तो था ही, तैरकर नहर पार की। वापस स्थल मार्ग को जो पुल दूर होने के कारण लम्बा था, तैरकर ही लौटने का विचार किया। अप्रेल मास होने पर भी नहर का जल बहुत ठंडा था, आधी दूर आने पर हाथ पैर ठण्ड के मारे निश्चेष्ट होने लगे, नहर पार करना अति कठिन प्रतीत हुआ। अन्य कोई उपाय भी नहीं था। अतः हिम्मत करके किसी प्रकार हाथ पैर मारते हुए किनारे पर पहुंचा। किनारे पर खड़े हुए गुरुजी ने हाथ पकड़कर बाहर निकाला। उस दिन के पश्चात् तैरने में अति साहस करना छोड़ दिया।

अमृतसर आकर रामलाल कपूर कागजी के 'गुरु बाजार' स्थित दुकान के ऊपर के भाग में हमें ठहराया गया। यहां लगभग ८-९ महीने रहे। इस के पश्चात् दुर्ग्याना के समीप नव निर्मित 'राम भवन' नामक स्थान में आश्रम स्थानान्तरित हुआ। यहां दिसम्बर सन् १९३१ तक रहे।

मासिक व्यय के सम्बन्ध में विचार—अमृतसर पहुंचते ही पूज्य गुरुजी ने श्री बा० रूपलालजी कपूर को बुलाकर पूछा—आप कितना मासिक खर्च कर सकते हैं? यह स्पष्ट बता दीजिये। उससे जो अधिक व्यय होगा, उसकी हम कोई और व्यवस्था कर लेवें। इस पर श्री बा० रूपलालजी कपूर ने कहा कि आश्रम पर जो भी व्यय होगा हम पूरा खर्च कर सकेंगे, इस विषय में आप चिन्ता न करें। गुरुजी प्रतिमास

हुए व्यय का ब्यौरा एक कागज पर लिख देते थे और मैं दुकान पर ले जाकर प्रति-मास ले आता था। ३-४ मास के अनन्तर जब मैं मासिक व्यय लेने के लिये दुकान पर पहुंचा तो दुकान के मुंशी श्री लालचन्दजी ने व्यय का रुपया तो दे दिया, परन्तु कहा कि व्यय कुछ अधिक हो रहा है। मैंने यह बात गुरुजी को बता दी। गुरुजी ने श्री बा० रूपलालजी कपूर को बुलाकर कहा कि बाबूजी मैंने तो आपसे पहले ही पूछा था कि आप कितना व्यय कर सकते हैं ? इस पर श्री रूपलालजी ने कहा कि क्या कोई बात हो गई है ? गुरुजी ने कहा कि आज मासिक व्यय लेने युधिष्ठिर दुकान पर गया था। रुपये तो मुंशीजी ने दे दिये पर साथ ही कहा कि व्यय कुछ अधिक हो रहा है। इस पर श्री रूपलालजी कपूर ने कहा— वैसे तो मुंशीजी दुकान पर हमारे नौकर हैं, परन्तु हम लोग इनके हाथों में ही पलकर बड़े हुए हैं और व्यापार के विषय में इनसे ही ज्ञान प्राप्त किया है। इसलिये हम इनका अपने पिताजी के समान ही आदर करते हैं। किसी भी विषय में हम इनसे न पूछताछ करते हैं और ना ही कुछ कहते हैं। फिर भी मैं उन्हें कह दूंगा। इसके पश्चात् जब तक अमृत-सर में रहना हुआ कभी भी व्यय के सम्बन्ध में कोई बात नहीं उठी।

इस घटना से पाठक सहज में ही अनुमान लगा सकते हैं कि यह कपूर परिवार कितना आदर्श संस्कारों से सुसंस्कृत था।

कुटिल व्यक्ति से छुटकारा—आरम्भिक दिनों में ही एक विशेष घटना घटित हो गई। काशी से लौटते समय अमृतलाल नाम का जो व्यक्ति साथ आया था, वह रहन-सहन में आवश्यकता से अधिक सादगी वर्तता था। धोती के स्थान पर घुटने तक अंगोछे का ही प्रयोग करता था परन्तु स्वभाव से वह बहुत कुटिल था। उसने २-३ महीने में ही पुराने विद्यार्थियों को एक दूसरे के विरुद्ध कहकर आपस में लड़ा दिया था। उसकी कई बार शिकायत करने पर भी गुरुजी ने उसकी सादगी से प्रभावित होने के कारण हम लोगों की सुनवाई कुछ नहीं की। अन्त में उसके दुर्व्यवहार से तंग आकर मैंने कहा कि घुटने तक अंगोछा बांधने में ही कोई सादगी और माहात्म्य है, तो मैं भी ऐसा कर सकता हूं। मैंने भी अमृतलाल के समान रहना आरम्भ कर दिया। अमृतसर आने के पश्चात् यह भी नियम बनाया गया था कि प्रतिदिन मध्याह्न में १-२ विद्यार्थी श्री बाबू रूपलालजी के घर जाकर भिक्षा लाया करें। मैं घुटने तक अंगोछा बांधे हुए ही उनके घर जाता रहा। कुछ समय पीछे अमृतलाल की धूर्तता बढ़ जाने और उसका भण्डाफोड़ हो जाने पर मैंने गुरुजी से कहा कि आप कई वर्षों से आपके साथ रहने वाले विद्यार्थियों पर तो विश्वास नहीं करते और नये व्यक्ति पर इतना विश्वास करते हैं कि हम लोगों की सुनवाई ही आप

नहीं करते। या तो अमृतलाल ही आपके पास रहेगा या हमलोग ही रहेंगे। इतना स्पष्ट कहने पर आखिरकार अमृतलाल को गुरुजी ने चले जाने को कहा।

महाभाष्य का अध्ययन—अमृतसर आकर हम लोगों का (मेरे साथियों का) महाभाष्य का पाठ प्रारम्भ हुआ जो सन् १९३० में समाप्त हुआ।

याज्ञवल्क्य का कम्युनिज्म की ओर झुकाव—मैं पहले लिख चुका हूं कि काशी में पं० अखिलानन्दजी, जिन्हें सब 'ब्रह्मचारीजी' कहा करते थे, के कारण गुरुजी का क्रान्तिकारियों के साथ सम्पर्क हो गया था। 'राम भवन' में निवास काल में अनेक क्रान्तिकारी छद्मवेष में आकर कई-कई मास रहते थे। उस समय के क्रान्तिकारी रूस के कम्युनिज्म से अधिक प्रभावित थे। उनकी सङ्गति मे आकर याज्ञवल्क्य का कम्युनिज्म की ओर झुकाव हो गया और वह उत्तरोत्तर बढ़ता गया। वे पढ़ने के पश्चात् जीवन पर्यन्त कम्युनिस्ट पार्टी का ही काम करते रहे।

श्री पं० भगवद्दत्तजी से सम्पर्क—राम भवन में आने के कुछ समय पश्चात् गुरुजी कभी-कभी पं० भगवद्दत्तजी से मिलने लाहौर जाया करते थे। पं० भगवद्दत्त जी गुरुजी के पूर्व परिचित थे। पं० भगवद्दत्तजी उन दिनों 'भाटी दरवाजा' के बाहर रामबाग के साथ वाली सड़क पर किराये के मकान में रहते थे। इसके पास ही गुरुकुल विभाग का प्रसिद्ध 'गुरुदत्त भवन' था। पं० भगवद्दत्तजी डी० ए० वी० कालेज के लालचन्द पुस्तकालय के अध्यक्ष थे। जब कभी गुरुजी उनसे मिलने जाते थे तो अनेक विषयों पर शास्त्रीय चर्चा हुआ करती थी, जिसमें अनुसन्धान कार्य की प्रधानता रहती थी। कुछ काल पश्चात् गुरुजी ने मुझे भी अपने साथ लाहौर ले जाना आरम्भ किया। दोनों की शास्त्र चर्चा से मुझे बहुत लाभ हुआ और उसी समय की पं० भगवद्दत्तजी की सङ्गति से मेरे भीतर शोध प्रवृत्ति जागृत हुई और उत्तरोत्तर बढ़ती गई।

सन् १९३० की विशेष घटनाएं

१. लाहौर में कांग्रेस अधिवेशन—सन् १९३० के जनवरी मास के अन्त में कांग्रेस का वह महत्त्वपूर्ण अधिवेशन हुआ जिसमें पं० जवाहलाल नेहरु की अध्यक्षता में २६ जनवरी को पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव पास किया गया था। यह अधिवेशन रावी के किनारे विशाल मैदान में हुआ। देश के कोने-कोने से लाखों स्वतन्त्रता-प्रेमीजन इसमें आकर सम्मिलित हुए। पूज्य गुरुजी भी सब छात्रों को कांग्रेस का अधिवेशन दिखलाने के लिये लाहौर ले गये थे। इस अधिवेशन के बाजार में रामलाल कपूर एण्ड संस की दुकान होने से उन्हें चार फ्री पास प्राप्त हुए थे। जिनकी

सहायता से सभी छात्र बारी-बारी से अधिवेशन देखने में समर्थ हो सके।

पिताजी का आगमन—इस अधिवेशन के अवसर पर पिताजी भी अमृतसर पहुंचे थे, और हम लोगों के साथ ही लाहौर गये थे। सब व्यक्तियों के ठहरने का प्रबन्ध रामलाल परिवार की ओर से अनारकली के पीछे 'पैसा अखबार' मुहल्ले के अपने मकान के ऊपरी भाग में किया था।

भर्तृहरि विरचित महाभाष्यदीपिका की उपलब्धि—ओरियण्टल कालेज लाहौर के अध्यक्ष डा० लक्ष्मणस्वरूप पं० भगवद्दत्तजी के मित्र थे, इसलिये गुरुजी का डा० लक्ष्मणस्वरूप से इन्हीं दिनों सम्पर्क हो गया। और यदा-कदा नवीन पुस्तकें देखने के लिये पञ्जाब विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में जाने लगे। सन् १९३० में पञ्जाब विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में किसी की प्रेरणा से बर्लिन विश्वविद्यालय से भर्तृहरिकृत महाभाष्यदीपिका की फोटो कापी मंगवाई गई थी। पुस्तकालय के अध्यक्ष ने वह पुस्तक गुरुजी को दिखाई। और कहा कि इसे यहां के पण्डित देख चुके हैं उनकी समझ में और पढ़ने में यह पूरी तरह नहीं आती। गुरुजी ने डा० लक्ष्मणस्वरूपजी के माध्यम से १५ दिन के लिये उक्त हस्तलेख प्राप्त किया और अमृतसर आकर अपने निरीक्षण में कई विद्यार्थियों को लगाकर उस हस्तलेख की प्रतिलिपि करा ली। और प्रतिलिपि के पाठ का मूल कापी से गुरुजी ने स्वयं मिलान किया। महाभाष्यदीपिका का पाठ कई लेखकों के हाथ का लिखा हुआ और अत्यन्त अशुद्ध था। कुछ भाग में पृष्ठमात्राओं का भी प्रयोग था। इससे पढ़ने वाले को पढ़ने में बहुत कठिनाई होती थी। प्रतिलिपि करके १५ दिन के नियत समय के अन्दर ही पुस्तक लौटा दी। जब पञ्जाब विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के अध्यक्ष को पूरे ग्रन्थ की प्रतिलिपि कर लेने की बात बताई तो वह बहुत चकित हुआ।

प्रतिलिपि कराते समय इस बात का ध्यान रखा गया कि प्रति पृष्ठ हस्तलेख का उतना ही पाठ लिखा जाय जितना मूल कापी में है। यह सावधानता इसलिये बर्ती गई कि आवश्यकता पड़ने पर किन्हीं पाठों के उद्धरण के समय मूल हस्तलेख की पृष्ठ संख्या अंकित की जा सके। जिससे शोध कार्य करने वालों को उद्धृत पाठ मूल हस्तलेख में ढूंढने में कठिनाई न हो। इस समय तक भारतवर्ष में महाभाष्य दीपिका की फोटो कापी केवल लाहौर में ही उपलब्ध थी। कालान्तर में पूना, बड़ौदा आदि अन्य पुस्तकालयों में भी इसकी फोटो कापी मंगवाई गई।

इस प्रकार व्यक्तिगत रूप में महाभाष्यदीपिका का हस्तलेख सर्वप्रथम हमारे पास ही उपलब्धि में आया।

३. लाहौर में 'आल इण्डिया ओरियण्टल' कान्फ्रेंस—दिसम्बर सन् १६३० में 'आ० इ० ओरियन्टल कान्फ्रेंस' का लाहौर में अधिवेशन हुआ। इन दिनों यह कान्फ्रेंस बहुत महत्त्वपूर्ण मानी जाती थी। इसमें देश विदेश के शोधकार्य में प्रवीण व्यक्ति अपने शोधप्रबन्ध पढ़ते थे। लगभग २० वर्ष से इस कान्फ्रेंस का स्तर बहुत गिर गया क्योंकि कालिज में अध्यापक होने के लिये शोधपत्र लिखना और पी० एच० डी० की उपाधि प्राप्त करना आवश्यक बना दिया गया है। इसलिये अब इसमें शोधकार्य में अप्रवीण छात्र भी शोधप्रबन्ध पढ़ने के लिये उपस्थित हो जाते हैं। इसी प्रकार पी० एच० डी० का भी स्तर बहुत गिर गया है।

विदेशी विद्वानों को पुस्तकें भेंट करना—यद्यपि गुरुजी ने इस कान्फ्रेंस में प्रत्यक्ष रूप से कोई भाग नहीं लिया था, परन्तु देश-विदेश के वैदिक-विद्वानों से सम्पर्क करने के लिये द्रष्टा के रूप में उक्त कान्फ्रेंस में सम्मिलित हुए थे। कुछ विद्वानों से मिलने पर गुरुजी की इच्छा हुई कि देश विदेश के वैदिक विद्वानों को ऋषिदयानन्द कृत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका भेंट की जाय। लाहौर के वैदिक पुस्तकालयों से अजमेर की छपी हुई ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका और पं० घासीराम के द्वारा किये गये अंग्रेजी अनुवाद की कुल मिलाकर ८-१० प्रतियां ही उपलब्ध हुईं, जिन्हें गुरुजी ने विदेशी विद्वानों को भेंट किया। प्रत्येक विदेशी विद्वान् से गुरुजी पूछते थे कि आपको मूल संस्कृत ग्रन्थ चाहिये या अंग्रेजी अनुवाद। दो विद्वानों ने विशेष रूप से मूल ग्रन्थ लेने का आग्रह किया। उनका कहना था कि जो बात मूल ग्रन्थ में होती है वह अनुवाद से ठीक प्रकार से व्यक्त नहीं होती।

पूज्य चिन्नस्वामीजी से भेंट—उक्त कान्फ्रेंस की पण्डित परिषद में उच्चकोटि के संस्कृत के विद्वानों को निमन्त्रित किया जाता है। इस परिषद में प्रायः पण्डितगण विभिन्न शास्त्रीय विषयों पर शास्त्रचर्चा करते थे। इस परिषद् में पूज्य पं० चिन्न-स्वामीजी भी निमन्त्रित होकर लाहौर पहुंचे। अतः यहां गुरुजी की पूज्य पं० चिन्न-स्वामीजी से भी भेंट हुई। स्वयं पूज्य शास्त्रीजी ने कहा कि आप लोग गोयंका विद्यालय में नियमानुसार पढ़ने के लिये आये थे, वहां मैं पराधीन होने के कारण आप लोगों को मीमांसा नहीं पढ़ा सका। मैं इससे पूर्व स्वामी वेदानन्दजी को और ईश्वरचन्द्रजी को पढ़ा चुका हूं। यदि कभी काशी आना हो तो मैं आपलोगों को मीमांसा पढ़ाऊंगा। इसके अनन्तर पूज्य शास्त्रीजी ने कहा कि सुना है अमृतसर में गर्म कपड़े सस्ते मिलते हैं, मुझे कुछ वस्त्र लेने हैं। इस पर गुरुजी उन्हें अमृतसर साथ ले आये और श्री बा० रूपलालजी कपूर से कहकर जो वस्त्र लेने थे, दिलवा दिये। पूज्य शास्त्रीजी उनका मूल्य देना चाहते थे, परन्तु श्री बा० रूपलालजी ने नहीं लिया।

आर्यसमाज के दिग्गज विद्वानों का परस्पर शास्त्रार्थ—आर्यसमाज के कालेज विभाग के दल में पं० राजाराम शास्त्री, पं० विश्वबन्धुजी शास्त्री आदि कई विद्वान् ऐसे थे, जो वेद में इतिहास मानते थे। पं० भगवद्दत्तजी आदि इसके विरुद्ध मत रखते थे। आर्यसमाज के मन्तव्य के अनुसार 'वेद ईश्वरीय ज्ञान' स्वीकार किया गया है। तदनुसार वेद में लौकिक इतिहास मानना आर्यसमाज के मन्तव्य के विपरीत है। कुछ समय से वेद में इतिहास मानने वाले व्यक्ति खुले रूप में वेद में इतिहास का प्रतिपादन कर रहे थे। अतः आर्य प्रादेशिक सभा के प्रधान महात्मा हंसराज जी के लिये यह आवश्यक हो गया कि दोनों पक्षों के विद्वानों का परस्पर शास्त्रार्थ कराया जाये। अतः उन्होंने दोनों पक्षों के विद्वानों से विचार करके **'निरुक्तकार यास्क वेद में इतिहास मानते थे या नहीं'** विषय पर शास्त्रार्थ कराने का निर्णय लिया। तदनुसार यह शास्त्रार्थ १८ मई से २२ मई तक १९३१ में लाहौर में प्रिंसिपल साईंदासजी की कोठी में हुआ। इसकी अध्यक्षता श्री महात्मा हंसराजजी ने स्वयं की थी। यह शास्त्रार्थ व्यक्तिगत रूप में हुआ था। अतः इसमें बाहर के कोई दर्शक सम्मिलित नहीं हुए। केवल नारायण स्वामीजी महाराज और स्वामी सर्वदानन्दजी इसमें विशेषरूप से निमन्त्रित थे। इतिहास मानने वाले वक्ताओं के नाम थे—पं० विश्वबन्धुजी शास्त्री, पं० राजारामजी शास्त्री और पं० चारुदेवजी। दूसरे पक्ष के विद्वान् थे—पं० भगवद्दत्तजी, पं० बुद्धदेवजी (मीरपुरी), पं० रामगोपालजी, महता रामचन्द्रजी, पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु, पं० आर्यमुनिजी, पं० शङ्करदेवजी, पं० प्रियरत्न जी, पं० गुरुदत्तजी, स्वामी अच्युतानन्दजी और ठाकुर अमरसिंहजी।

यह शास्त्रार्थ १८, १९ और २१ मई को सायं प्रातः दोनों समय, २० और २२ मई को केवल प्रातः काल हुआ था। इस शास्त्रार्थ को शास्त्रार्थ के समय ही नियमित रूप से लिखा जाता था। लेखकों के नाम थे—लाला खुशहालचन्दजी (आनन्दस्वामी) ब्र० याज्ञवल्क्य, ब्र० यशपाल, पं० रघुनन्दन शर्मा और पं० वाचस्पतिजी एम० ए०। प्रत्येक अधिवेशन की कार्यवाही ३-४ लेखकों के द्वारा लिखी जाती थी। शास्त्रार्थ के अन्त में सब लेखकों के द्वारा अलग-अलग लिखे गये लेखों के आधार पर आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधिसभा के साहित्य विभाग के अध्यक्ष पं० वाचस्पतिजी एम० ए० ने इसकी दो प्रामाणिक प्रतिकापियां तैयार कीं। एक कापी आर्य प्रादेशिक सभा के कार्यालय में सुरक्षित रखी गई और दूसरी कापी पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु को दी गई।

यतः यह शास्त्रार्थ सार्वजनिक नहीं था, अतः इसे उस समय प्रकाशित नहीं किया गया। पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु शास्त्रार्थ की कापी पाकिस्तान बनने पर लाहौर

से अपने साथ ले आये थे। उक्त शास्त्रार्थ में प्रमुख रूप से भाग लेने वाले प्रायः सभी विद्वानों के दिवंगत हो जाने पर मैंने फरवरी १९७५ में उपलब्ध शास्त्रार्थ की कार्यवाही को यथावत् रूप में प्रकाशित कर दिया। जिससे यह महत्त्वपूर्ण शास्त्र-चर्चा भावी पीढ़ी के लिये सुरक्षित हो सके।

ऋ० द० के वेदभाष्य का हस्तलेखों से मिलान—पूज्य गुरुजी ने सन् १९२९ में ऋषिदयानन्द के यजुर्वेद-भाष्य का सम्पादन और उस पर विवरण लिखने का कार्य प्रारम्भ किया था। इस कार्य में उन्हें अजमेर से मुद्रित यजुर्वेद-भाष्य के अनेक पाठों के शुद्धाशुद्धि विषय में सन्देह उत्पन्न हुआ। अतः सन्देह की निवृत्ति के लिये पूज्य गुरुजी सन् १९३१ के उत्तरार्ध में ऋषि दयानन्द के हस्तलेखों से पाठ मिलाने के लिये अजमेर गये। साथ में सहायता के लिये मुझे भी ले गये। अनेक व्यक्तियों के कहने पर मन्त्री हरविलासजी शारदा ने ऋषिदयानन्द के हस्तलेख देखने की अनुमति दी। जब यजुर्वेद-भाष्य के हस्तलेख निकाले गये, तो वे बहुत ही अव्यवस्थित रूप में मिले। यहां तक कि प्रेस कापी में रफ कापी के पत्रे और रफ कापी में प्रेस कापी के पत्रे यत्र तत्र सम्मिलित दिखाई दिये। हस्तलेखों की ऐसी अव्यवस्थित स्थिति होने के कारण मिलान का कार्य नहीं हो सकता था। अतः पहले यजुर्वेद-भाष्य के हस्तलेखों को व्यवस्थित किया। इसमें लगभग १० दिन लग गये। तत्पश्चात् २-३ दिन में कतिपय सन्दिग्ध पाठों का मिलान किया। यजुर्वेद-भाष्य के हस्तलेखों की अव्यवस्थित स्थिति देख कर गुरुजी को अनुभव हुआ कि ऋषिदयानन्द के अन्य हस्तलेखों की भी यही स्थिति होगी।

पिताजी के अजमेर आने का आकस्मिक ज्ञान—गुरुजी ने अपने और मेरे अजमेर आने की सूचना पिताजी को दे दी थी। परन्तु कहां ठहरे हैं इसका उल्लेख नहीं किया था। एक दिन जब मैं प्रातः ५ बजे जागा तो अचानक विचार उत्पन्न हुआ कि पिताजी सवेरे की गाड़ी से आ रहे हैं। मैंने गुरुजी से स्टेशन पर जाने की अनुज्ञा मांगी। गुरुजी ने पूछा कि क्या तुम्हें पिताजी के आज आने की कोई सूचना मिली है? मैंने उत्तर दिया कि मुझे कोई सूचना नहीं, परन्तु जागने के साथ ही यह विचार मन में आया है कि पिताजी ६ बजे की गाड़ी से आ रहे हैं। मैं गाड़ी पहुंचने से ५-७ मिनट पूर्व ही स्टेशन पर पहुंच गया। जहां मैं प्लेटफार्म पर खड़ा था, उसके पास रुके डिब्बे से पिताजी उतरते दिखाई दिये। मिलने पर पिताजी ने पूछा विना सूचना के गाड़ी पर कैसे पहुंच गये। मैंने जो बात गुरुजी को कही थी, वही पिताजी को भी बताई। पिताजी कहने लगे कि कुछ समय पहले मेरे मन में यह विचार आ रहा था कि गुरुजी न जाने कहां ठहरे होंगे, उनसे मिलने के लिये

वैदिक-यन्त्रालय के खुलने तक प्रतीक्षा करनी पड़ती। मैं पिताजी को साथ लेकर निवास स्थान पर आ गया। गुरुजी भी पिताजी को विना सूचना दिये अचानक आया हुआ देखकर अचम्भित हुए। पिताजी गुरुजी से मिलकर अगले दिन गांव चले गये। यहां यह स्मरण रहे कि पिताजी उन दिनों में नन्दबाई में थे। वहीं से गुरु जी से तथा मुझसे मिलने के लिये अजमेर आये थे।

गुरुजी का अमृतसर लौटना—यजुर्वेद-भाष्य के कुछ स्थलों का हस्तलेखों के पाठों से मिलान करके गुरुजी अमृतसर चले गये। और मैं गांव चला गया।

श्री पं० मधुसूदन ओझा के पास अध्ययनार्थ जाना—गांव में कुछ दिन रहने के पश्चात् मैं जयपुर के राजगुरु श्री पं० मधुसूदन ओझा के पास अध्ययनार्थ जयपुर चला गया। मधुसूदन ओझा उन दिनों भारतवर्ष में वैदिक वाङ्मय के प्रकाण्ड पण्डित माने जाते थे। गुरुजी के एक गुरु भाई, जिनका नाम भूल गया हूं, मधुसूधन ओझा के पास पढ़ते थे, वे अमृतसर आये थे और उनकी प्रेरणा ने ही मुझे जयपुर जाने के लिये प्रेरित किया।

मधुसूदन ओझा का पण्डित्य—मैं जिस समय श्री ओझाजी के पास अध्ययनार्थ गया। उस समय शतपथ ब्राह्मण के तीसरे काण्ड के प्रारम्भिक भाग का पाठ चल रहा था। मैं भी इसी पाठ को सुनने लगा। इस समय ४-५ विद्यार्थी और पढ़ते थे। इनमें पं० मोतीलाल प्रमुख थे। दूसरे गुरुजी के गुरुभाई थे। दो-तीन अन्य विद्यार्थी थे।

जिस समय ओझाजी पढ़ाते थे, कोई भी छात्र किसी प्रकार की शंका नहीं करता था। मैं यदा-कदा प्रसङ्गवश पूछ लिया करता था कि इस विषय में अन्य ग्रन्थ में यह बात कही है। इस पर ओझाजी उस प्रसङ्ग का समाधान करने से पूर्व उस ग्रन्थ के एक दो पृष्ठ का पाठ सुना कर पीछे उस विषय को समझाने का प्रयत्न करते थे। मैं लगभग एक मास उनके पास रहा। अनेक ग्रन्थों के विभिन्न विषयों पर शङ्का करने पर अपनी शैली के अनुसार प्रत्येक ग्रन्थ के १-२ पृष्ठ सुनाकर अपना अभिप्राय बताते थे।

लाहौर में भी सन् १९३० में आल इण्डिया ओरियण्टल कान्फ्रेंस के अधिवेशन के समय मैंने उनका एक व्याख्यान सुना था, जो उन्होंने लाहौर के विशिष्ट विद्वानों की उपस्थिति में दिया था। व्याख्यान के अनन्तर शंका करने वाले की शंका का समाधान करने से पूर्व उनकी यही शैली वहां भी देखी।

श्री ओझाजी के पाण्डित्य की वास्तविकता यह थी कि वे किसी भी व्यक्ति के शङ्का करने पर जब वे उस प्रकरण के आगे पीछे के १-२ पृष्ठों का पाठ मुखतः

सुना देते थे, तो शङ्का करने वाला उनकी इस स्मरण शक्ति से ही अभिभूत हो जाता था और शङ्का का जो समाधान किया वह उसके पल्ले पड़ा हो या न पड़ा हो, चुप हो जाता था।

ओझाजी वैदिक-ग्रन्थों की जो भी व्याख्या करते थे वह एक 'प्राण-तत्त्व' के व्याज से प्राय: काल्पनिक ही होती थी। पढ़ने वाले के ऊपर उनकी अद्भुत स्मरण शक्ति का इतना बोझ पड़ जाता था कि वह कुछ भी नहीं सोच सकता था।

अध्ययन छोड़ने का कारण—एक दिन पढ़ाते हुए किसी छात्र ने पूछा कि गुरुजी लघुशङ्का और शौच के समय यज्ञोपवीत को कान पर क्यों लपेटते हैं। ओझाजी ने उत्तर दिया कि उक्त समय पर कान की एक नस से 'ब्रह्म-प्राण' बाहर निकलता है, उसे रोकने के लिये कान पर यज्ञोपवीत लपेटा जाता है। इस उत्तर को सुनकर प्रश्नकर्त्ता तथा अन्य छात्र तो चुप रहे। परन्तु इस ऊटपटांग उत्तर को सुनकर मैं चुप न रह सका। मैंने पूछा कि स्त्री और शूद्रों का यज्ञोपवीत न होने से उनका ब्रह्म-प्राण तो निकलता रहता होगा। इसका ओझाजी ने उत्तर दिया—स्त्री और शूद्रों में ब्रह्म-प्राण होता ही नहीं है। इस पर मैंने पूछा कि गुरुजी जब संन्यासी यज्ञोपवीत छोड़ देता है, तो उसका ब्रह्म-प्राण उस समय निकलता ही होगा। इस पर ओझाजी ने उत्तर दिया कि संन्यास के साथ ही ब्रह्म-प्राण समाप्त हो जाता है। इस पर मैंने पुनः पूछा, गुरुजी उपनयन से पहले तो 'ब्रह्म-प्राण' निकलता रहता होगा। उन्होंने उत्तर दिया कि यज्ञोपवीत संस्कार के समय ही 'ब्रह्म-प्राण' उत्पन्न होता है। पहले ब्रह्म-प्राण नहीं रहता।

ब्रह्म-प्राण के इस तथाकथित माहात्म्य को सुनकर मैंने ओझाजी के पास अध्ययन करना छोड़ दिया। शतपथ के पाठ के समय भी उनके इस प्रकार तथाकथित प्राण-तत्त्व की मीमांसा सुनते-सुनते मैं ऊब चुका था। उक्त घटना ने तो मुझे निश्चय करा दिया कि ओझाजी प्राणतत्त्व की आड़ में अपनी अद्भुत स्मरण शक्ति के कारण सब पर अपने पाण्डित्य की धाक जमाये हुए हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनका शास्त्रीय स्वाध्याय अति विशाल था। वैदिक-वाङ्मय के अनेक ग्रन्थ उनको कण्ठाग्र थे। उनकी इस अद्भुत स्मरण शक्ति को देखकर पं० भगवद्दत्तजी उन्हें **'चलता फिरता पुस्तकालय'** कहा करते थे।

ओझाजी के अभिमान की पराकाष्ठा—आगे वर्णित काशी निवासकाल में ओझा जी एक बार काशी आये थे। गुरुजी उनसे मिलने गये थे। प्रसङ्गवश गुरुजी के 'निरुक्तकार ऐसा मानता है' कहने पर ओझाजी ने कहा—यास्क को कुछ नहीं आता था। इसी प्रकार वे प्रायः सभी शास्त्रप्रणेताओं को मूर्ख कहा करते थे।

ओझाजी ने जो भी ग्रन्थ लिखे हैं, वे सब प्रायः अपने काल्पनिक मन्तव्यों की छाया में लिखे गये होने से अत्यन्त दुरूह हैं। पं० भगवद्दत्तजी तो कहा करते थे कि 'ओझाजी भी अपने लिखे ग्रन्थों को समझते है या नहीं' यह भी विचारणीय है।

यतः ओझाजी को अपने पाण्डित्य का अहंकार था, इसलिये वे किसी भी वैदिक या पौराणिक परम्परा को स्वीकार नहीं करते थे। परन्तु ओझाजी के नाम की प्रसिद्धि के कारण उनके शिष्य मोतीलालजी उनके पीछे बहुत प्रतिष्ठा को प्राप्त हुए। उन्होंने शतपथ ब्राह्मण की व्याख्या में अपने गुरुजी की काल्पनिक व्याख्या शैली को अपना कर पौराणिक विचारधारा को वैज्ञानिक सिद्ध करने की भरपूर चेष्टा की है।

अमृतसर लौटना—ओझाजी के पास १ महीना रहकर और उनके अध्यापन से असन्तुष्ट होकर मैं अमृतसर लौट गया।

गुरुजी के मीमांसा के अध्ययन का संकल्प—निरुक्त का अध्यापन कराते हुए तथा ब्राह्मणग्रन्थों के स्वाध्याय से गुरुजी को यह अनुभव हुआ कि वेद की ब्राह्मण-ग्रन्थोक्त याज्ञिक प्रक्रिया को समझने के लिये मीमांसा दर्शन का अध्ययन नितान्त आवश्यक है। प्रथम बार काशी जाने पर मीमांसा का अध्ययन न कर सके थे, यह लिख चुके हैं (पूर्व पृष्ठ १५५)। अतः उन्होंने इस बार संकल्प किया कि काशी जाकर अथवा काशी में मीमांसा के अध्ययन की व्यवस्था न बनने पर पूना जाकर मीमांसा अध्ययन करके ही वापस अमृतसर लौटेंगे।

काशी जाना—उक्त संकल्प के अनुसार सन् १९३२ के जनवरी मास की पहली या दूसरी तारीख को ही गुरुजी सब विद्यार्थियों को साथ लेकर काशी पहुंच गये। काशी में शीतला घाट के पास पं० गिरजाशङ्कर का मकान किराये पर लिया। काशी पहुंचकर भी गुरुजी ने यह विचार किया कि पूज्य पं० चिन्नस्वामीजी से स्वयं मीमांसा अध्ययन के लिये नहीं कहेंगे (आल इण्डिया ओरियण्टल कान्फ्रेंस लाहौर के अधिवेशन के समय पूज्य श्री पं० चिन्नस्वामीजी ने उस समय मीमांसा न पढ़ा सकने के कारण पर खेद प्रकट किया था)। गुरुजी काशी जाकर पूज्य पं० चिन्नस्वामीजी से मिलते रहे। इस अवधि में कई ऐसी घटनाएं घटीं, जिन्होंने पूज्य चिन्नस्वामीजी पर विशेष प्रभाव डाला।

१. ताण्ड्यब्राह्मण के हस्तलेख मंगाकर देना—एक बार पूज्य चिन्नस्वामीजी ने गुरुजी से कहा कि मैं ताण्ड्यब्राह्मण का सम्पादन कर रहा हूं। लाहौर के डी० ए० वी० कालेज एवं पञ्जाब विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों में ताण्ड्यब्राह्मण के सायण-

भाष्य के कुछ हस्तलेख हैं। मैंने उन्हें मंगाने के लिये हिन्दु विश्वविद्यालय के प्राचार्य के द्वारा पत्र लिखवाया था, परन्तु कई महीने बीत गये कोई उत्तर नहीं आया। गुरुजी ने कहा कि यह कोई कठिन बात नहीं है। मैं मंगवा देता हूं। गुरुजी ने पं० भगवद्दत्तजी को पत्र लिखा और उक्त दोनों पुस्तकालयों में ताण्ड्यब्राह्मण सायण-भाष्य के जितने हस्तलेख थे, वे पूज्य चिन्नस्वामीजी के पास १५ दिन में पहुंच गये। इससे पूज्य चिन्नस्वामीजी को गुरुजी के प्रभाव का प्रथम आभास हुआ।

२. **हस्तलेख मिलाने के लिये विद्यार्थियों की मांग**—विविध हस्तलेखों के पाठों को अल्प समय में मिलान करने की दृष्टि से पूज्य चिन्नस्वामीजी ने गुरुजी से कहा कि हस्तलेखों के मिलान के लिये अपने २-३ विद्यार्थियों को कुछ दिनों के लिये भेज दिया करें, जिससे मिलान का कार्य शीघ्र हो सके। गुरुजी ने चार विद्यार्थियों को इस कार्य के लिये नियत कर दिया। हम लोगों के हाथ में हस्तलिखित पुस्तकें होती थीं और गुरुजी किसी एक विद्यार्थी को लिखित पाठ पढ़ने के लिये कह देते थे। कुछ हस्तलेख पुरानी देवनागरी में लिखे हुए थे, (जिनका पढ़ना साधारणतया पण्डितों के लिये भी कठिन होता है) उनको विना रुके पढ़ते हुए देखकर पूज्य चिन्नस्वामीजी को आश्चर्य हुआ कि इनके शिष्य भी पुराने हस्तलेखों को पढ़ने में बहुत प्रवीण हैं।

३. **मीमांसा-भाष्य-विवरण के हस्तलेख की प्रतिलिपि कराना**—पूज्य चिन्नस्वामीजी ने मद्रास राजकीय पुस्तकालय से गोविंदामृत मुनि के शाबरभाष्य विवरण के एक हस्तलेख की प्रतिलिपि हिंदुविश्वविद्यालय के पुस्तकालय के लिये मंगवाई थी। उन्होंने उसकी एक कापी अपने पास रखने के लिये मद्रास से प्राप्त भाष्य-विवरण की प्रति गुरुजी को देकर उसकी प्रतिलिपि कराने के लिये कहा। यतः मेरा हस्तलेख अच्छा था, इसलिये प्रतिलिपि कराने के लिये उक्त ग्रन्थ मुझे दिया। मैंने यथावत् प्रतिलिपि करते हुए जहां कोई पाठ मुझे अशुद्ध प्रतीत हुआ तो उसके ऊपर कोष्ठक में शुद्ध पाठ लिख दिया। मेरे द्वारा प्रतिलिपि में दिये गये शुद्ध पाठों को देखकर पूज्य चिन्नस्वामीजी बहुत चकित हुए। क्योंकि उस समय तक मीमांसा का अध्ययन आरम्भ भी नहीं हुआ था।

मीमांसा के पाठ का आरम्भ—इस प्रकार लगभग ६ महीने की प्रतीक्षा के अनन्तर पूज्य चिन्नस्वामीजी ने स्वयं ही मीमांसा पढ़ाने के लिये गुरुजी से कहा। उन दिनों पूज्य चिन्नस्वामीजी अपना मकान हनुमान घाट पर बनवा रहे थे (दाक्षिणात्यों का आवास अधिकतर इसी भाग में था)। इसलिये सूर्य छिपने के अनन्तर लालटेन के प्रकाश में मीमांसा का पाठ प्रारम्भ किया। उससे पूर्व पूज्य चिन्नस्वामी,

जी ने गुरुजी से कहा कि आप लोगों को 'मीमांसा न्याय-प्रकाश' (आपो देवी) आदि न पढ़ाकर सीधा शाबर-भाष्य पढ़ायेंगे। गुरुजी भी यही चाहते थे कि कहीं प्रारम्भिक ग्रन्थों में उलझाकर समय व्यतीत न कर दें। इस प्रकार मीमांसा शाबर भाष्य का पाठ आरम्भ हुआ।

अत्युत्कृष्ट अध्यापन—मीमांसा शास्त्र का वैदिक-कर्म काण्ड के साथ सम्बन्ध है। समस्त वैदिक वाङ्मय, अर्थात् वेद, उसकी शाखाएं, ब्राह्मण, आरण्यक, श्रौत गृह्यसूत्र आदि वैदिक-कर्मकाण्ड का प्रतिपादन करते हैं। इन्हीं विविध ग्रन्थों के विवादास्पद वचनों की सङ्गति लगाने के लिये मीमांसा शास्त्र का प्रवचन हुआ है। इसलिये यह आवश्यक माना जाता है कि मीमांसा के अध्ययन से पूर्व एक वेद एक ब्राह्मण और एक श्रौतसूत्र का अध्ययन आवश्यक है। साथ ही यज्ञीय क्रियाओं का बोध भी अत्यावश्यक है। जिनको उक्त ग्रन्थों का तथा याज्ञिक क्रियाओं का परिज्ञान नहीं होता है, उनके लिये मीमांसा का अध्ययन अत्यन्त दुष्कर है। वर्तमान में इस परम्परा का उच्छेद हो जाने से मीमांसा-शास्त्र बहुत दुरूह बन गया है।

पूज्य चिन्नस्वामीजी मीमांसा-शास्त्र के जहां शास्त्रीय दृष्टि से परम विद्वान् थे, वहां कर्मकाण्ड के भी विशिष्ट ज्ञाता थे। अतः मीमांसा-शास्त्र में जिस किसी भी वचन की विवेचना का प्रसङ्ग आता था, तो वे उक्त वचन किस शाखा वा किस ब्राह्मण वा किस श्रौत का है, तथा किस प्रकरण का है, यह सब बता कर तद्विषयक भाष्य का अध्यापन कराते थे। यद्यपि मैंने नियमतः वेदादि आवश्यक ग्रन्थों का अध्ययन तो नहीं किया था, तथापि स्वाध्याय की प्रवृत्ति के कारण उपलब्ध सभी शाखाओं और ब्राह्मणों का मैं पारायण कर चुका था। इस कारण पूज्य गुरुवर्य[1] पढ़ाते समय जब किसी वैदिक-वचन के सम्बन्ध में उसका स्थान निर्देश करते थे वा पूर्वापर प्रसङ्ग बताते थे, तो पारायणजन्य संस्कार उद्बुद्ध हो जाते थे। उससे मुझे प्रसङ्ग को समझने में बहुत सहायता मिलती थी। अध्ययन के पश्चात् लगभग ४२ वर्ष मीमांसा-शास्त्र से असम्पृक्त रहने पर भी जब मैंने शाबर-भाष्य की हिन्दी व्याख्या लिखनी आरंभ की तो अध्ययन काल का पदार्थ स्मृतिपटल पर उपस्थित हो जाता था। इसमें प्रमुख कारण पूज्य गुरुवर्य का विशिष्ट अध्यापन ही है, क्योंकि पूज्य गुरुजी ने प्रत्येक पदार्थ को हृदय में इस प्रकार प्रतिष्ठित करा दिया था कि इतने सुदीर्घकाल के अन्तराल होने पर भी यथावत् उद्बुद्ध हो जाता था। इसमें वेदादि

---

१. इस प्रकरण में 'पूज्य गुरुवर्य' तथा 'पूज्य गुरुजी' का निर्देश श्री पूज्य पं० चिन्नस्वामीजी महाराज के लिये समझें।

शास्त्रों का मेरे द्वारा अनायास किये गये पूर्व पारायण ने भी विशिष्ट भूमिका निभाई।

अध्ययन में विशेष बाधा—काशी के निवासकाल की अध्ययन की दिनचर्या इस प्रकार थी कि हम लोग शीत, ग्रीष्म और वर्षा की सभी ऋतुओं में अध्ययन के लिये घर से लगभग साढ़े बारह बजे निकलते थे। पहले श्री पूज्य पं० ढुण्ढिराजजी से न्यायादि शास्त्रों का अध्ययन करके सायंकाल ४-५ बजे के मध्य मीमांसा के अध्ययन के लिये पूज्य गुरुजी के पास पहुंचते थे। हमारा निवास स्थान हनुमान् घाट से, जहां पूज्य चिन्नस्वामीजी रहते थे, लगभग साढ़े तीन मील पड़ता था। पूज्य गुरुजी के स्थान पर (हनुमान् घाट) पहुंचने पर महीने में १०-१२ दिन ऐसे निकलते थे, जिनमें घर पर गुरुजी नहीं मिलते थे। अर्थात् महीने में १५ दिन से अधिक पाठ की औसत नहीं पड़ती थी। ढाई साल के सुदीर्घ काल में एक दिन भी पूज्य गुरुजी ने यह नहीं कहा कि कल मत आना, हम नहीं मिलेंगे। इस प्रकार प्रतिमास १०-१२ दिन गंगा के घाटों की सात मील की परिक्रमा मात्र करनी पड़ती थी। इतनी बड़ी बाधा होने पर भी हम सबने मीमांसा का अध्ययन नहीं छोड़ा। यही समझते रहे कि पूज्य गुरुजी हम सब की परीक्षा ले रहे हैं कि इनकी इस शास्त्र के अध्ययन में कितनी रुचि है। ढाई वर्ष के सुदीर्घ काल में पूज्य गुरुजी से शाबरभाष्य के लगभग ३ अध्याय और श्लोकवार्तिक के कुछ प्रकरण पढ़ पाये।

अध्ययनकाल की विशिष्ट घटनाएं

१—एक बार अध्ययन कराते हुए पूज्य गुरुवर्य ने बताया कि मेरी माता जी को सम्पूर्ण तैत्तिरीयसंहिता कण्ठाग्र थी। और जब हम पढ़े हुए पाठ की आवृत्ति करते समय कहीं भूल-चूक कर जाते थे, तो माताजी रसोई में बैठी हुई हमें टोकती थीं और शुद्धपाठ का उच्चारण बताया करती थीं। इस पर जब पूछा गया कि 'स्त्रियों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है, तो आपकी माताजी ने तैत्तिरीयसंहिता का अध्ययन कैसे किया ?' इस पर पूज्य गुरुवर्य ने कहा मेरी माताजी ने नियमपूर्वक संहिता का अध्ययन नहीं किया था, किन्तु उनके पिता के घर में निरन्तर वेद का अध्ययन अध्यापन चलता रहता था तो समीप में ही खेलते कूदते और सुनते हुए उन्हें सारी संहिता कण्ठाग्र हो गई थी। इतना कहने के पश्चात् भावविह्वल होकर बोले कि जब लड़कियां बिना नियमित अध्ययन के ही वेद के अध्ययन में समर्थ हो सकती हैं तो उन्हें वेदाध्ययन से वेदज्ञान से वञ्चित रखना अनुचित है। पुराकाल में भी गार्गी मैत्रेयी आदि अनेक वेद-विदुषियां हो चुकी हैं। इस

प्रकार पूज्य गुरुजी द्वारा अपने हार्दिक भाव को प्रकट करने से उनके उदार-चरित्र का बोध होता है।

२—संभवत: सन् १९३४ में माध्वसम्प्रदाय के एक परिव्राजक ने काशी में आकर चातुर्मास्य किया। अद्वैत वेदान्त के गढ़ में कोई द्वैतवादी आकर चातुर्मास्य करे यह अद्वैतवादियों को सहन नहीं हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि साक्षात् शास्त्रचर्चा के स्थान पर दोनों ओर से एक दूसरे के विरोध में सभायें करना, नोटिस निकालना अथवा एक दूसरे के मत के खण्डन में पुस्तिकायें प्रकाशित करने का क्रम लगभग ३ मास तक चलता रहा (हमने दोनों ओर से प्रकाशित पुस्तिकायें संगृहीत कर ली थीं)। पूज्य गुरुवर्य भी इस काण्ड में भाग लिया करते थे। एक दिन हम अध्ययन के लिये पूज्य गुरुवर्य के घर उपस्थित हुये तो पता चला कि गुरुजी थोड़ी देर में ही आने वाले हैं। अत: हम वहां प्रतीक्षा में बैठे रहे। लगभग दस मिनट के अनन्तर पूज्य गुरुवर्य पधारे और उन्होंने पढ़ाना आरम्भ किया। संभवत: वे द्वैतविरोधी सभा से उठकर आये थे अत: ५-१० मिनट के पढ़ाने के अनन्तर ही बोले—"माध्वसम्प्रदाय के द्वैतवादी आचार्यों ने अपने मत की सिद्धि के लिये अनेक जाली श्रुतियां बना लीं, जो कहीं उपलब्ध नहीं होतीं"। इस पर मैंने विनयपूर्वक कहा कि द्वैतमत के आचार्यों ने लिखा है कि "यदि हमारे आचार्य द्वारा उद्धृत श्रुतियां इस लिये जाली हैं कि वे सम्प्रति उपलब्ध वैदिक वाङ्मय में नहीं मिलतीं, तो शङ्कराचार्य के ब्रह्मसूत्र भाष्य में तथा शबरस्वामी के मीमांसा-भाष्य में भी बहुत सी ऐसी श्रुतियां हैं, जो सम्प्रति किसी ग्रन्थ में नहीं मिलतीं। क्या वे सब जाली हैं?"[1] मेरे इस प्रकार कहने पर पूज्य गुरुवर्य ने उक्त प्रसङ्ग को छोड़कर मीमांसा का पाठ पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। पाठ के अनन्तर बाहर आने पर गुरुजी पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु जी ने मुझसे कहा कि तुमने अच्छा नहीं किया, कहीं गुरुजी नाराज होकर पढ़ाना ही न छोड़ दें। इस पर मैंने कहा कि मैंने जयतीर्थ का उद्धरण बड़े विनीत भाव से गुरुजी के सामने प्रस्तुत किया था। मैं यह भी चाहता था कि पूज्य गुरुवर्यजी को यह ज्ञात हो जावे कि जो बात वे हमें

१. अर्वाचीनानामप्रसिद्धत्वेऽपि अनेकशाखाभिज्ञभाष्यकाराद्युक्तवाक्ये श्रुतित्वासन्देहात्। अन्यथा शाबरभाष्यादौ औदुम्बराद्यधिकरणेषु 'ऊर्जं पशूनामाप्नोत्यूर्जोऽवरुद्ध्यै' इत्यवरुध्यान्तवाक्यस्याप्रसिद्धस्योक्तिर्न स्यात्। परभाष्ये (=शांकरभाष्ये) च 'ॐ अतएव चोपमा सूर्यकादिवत् ॐ (वेदान्ते ३।२।१८) इत्यादौ 'यथा ह्ययं ज्योतिरात्मा विवस्वान्' इत्याद्यप्रसिद्धश्रुत्युक्तिर्न स्यात्... ...। राघवेन्द्राचार्यकृत मन्त्रार्थमञ्जरी ऋ० १।१।१, पत्रा ४ क॥

बताना चाहते हैं उसका प्रत्युत्तर भी हमें ज्ञात है। इस घटना के अनन्तर निरन्तर पूर्ववत् पाठ चलता रहा। इससे स्पष्ट है कि उदारचेता पूज्य गुरुवर्य ने मेरे उक्त कथन से बुरा नहीं माना।

इस घटना के पश्चात् पूज्य गुरुवर्य का मेरे प्रति स्नेहभाव निरन्तर बढ़ता गया। वे समझ गये कि ये लोग बहुत सुबोध हैं और इनको पढ़ाना उचित ही है। उक्त घटना के पश्चात् पूज्य गुरुवर्य का मेरे प्रति कितना स्नेह बढ़ा यह मैं स्वयं ही उनके व्यवहार से जानता हूं। मैं समझता हूं कि इसके पीछे भी उनका उदार चरित ही प्रधान कारण था।

मीमांसा के शेष भाग के अध्ययन की पूर्ति—पूज्य गुरुवर्य के दामाद पं० पट्टाभिराम शास्त्री पास में ही रहते थे। वे मीमांसाशास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे। अतः शेष शाबरभाष्य का अध्ययन उनसे पूरा किया। उस समय श्री शास्त्री जी किसी उदासी साधु को उनके स्थान पर जाकर शाबरभाष्य पढ़ाते थे। अतः हमसे उन्होंने कहा कि वहां आकर पाठ सुन लिया करें। उक्त स्थान पर जाने पर २-४ दिन के पीछे उदासी साधु ने कहा कि पाठ के मध्य 'कोई कुछ पूछ नहीं सकता'। इस प्रतिबन्ध को सहते हुए शाबरभाष्य के शेष अध्यायों का पाठ वहां पर सुना। यतः पूज्य गुरुवर्य के अध्यापन से मीमांसाशास्त्र के अध्ययन की भूमि सुदृढ़ हो चुकी थी, अतः उक्त प्रतिबन्ध से हमें कुछ विशेष कठिनाई नहीं हुई। कभी-कभी कोई बात पूछनी होती थी तो पाठ आरम्भ होने से पूर्व और पश्चात् पूछ लिया करते थे। शाबरभाष्य के कुछ अध्यायों के पाठ के अनन्तर शास्त्रदीपिका का पाठ चला, उसे भी हम सुनते रहे। अन्त के २॥-३ अध्याय माननीय शास्त्री जी के घर पर जाकर पढ़े।

अन्य दर्शनों का अध्ययन—काशीनिवास के इन ३ वर्षों में श्री पं० ढुण्ढिराज शास्त्री से न्यायभाष्य, न्यायवार्तिक का कुछ भाग, प्रशस्तपाद, प्रशस्तपाद की किरणावली और न्यायकन्दली नामक टीकायें, वैशेषिकदर्शन की सूत्रवृत्ति तथा सांख्यदर्शन का अध्ययन किया।

कात्यायन श्रौतसूत्र का अध्ययन—कर्मकाण्ड की याज्ञिक प्रक्रिया के परिज्ञान के लिये काशी के माने गये कर्मकाण्डी विद्वान् म० म० विद्याधर शास्त्री से कात्यायन श्रौतसूत्र पढ़ना आरम्भ किया। पं० विद्याधर शास्त्री के पास पं० केदारनाथजी सारस्वत हम लोगों को ले गये थे। उन दिनों हम सभी छात्र खद्दर पहनते थे। पं० विद्याधर शास्त्री कुछ दिन पढ़ाने के अनन्तर हमें आर्यसमाजी जानकर हमें पढ़ाने में आगा-पीछा करने लगे। २-३ बार पं० केदारनाथजी सारस्वत के पास

सूचना भेजी कि आप अपने छात्रों को मेरे पास आने के लिये मना कर दें। श्री सारस्वतजी ने भी उत्तर में कहा कि आप स्वयं मना कर दें। पं० विद्याधरजी की मना करने की हिम्मत तो नहीं हुई, किन्तु पाठ के समय वे स्वयं अनुपस्थित रहने लगे। १५-२० दिन की प्रतीक्षा के पश्चात् हम लोगों ने स्वयं उनके वहां जाना बन्द कर दिया।

पं० विद्याधरजी शास्त्री अपने पिता म० म० प्रभुदत्तजी शास्त्री के पाण्डित्य के बल पर अपनी प्रतिष्ठा बनाए हुए थे। हमें कात्यायन-श्रौतसूत्र का जितना अंश उन्होंने पढ़ाया उससे हम सन्तुष्ट नहीं थे। इसी बीच एक घटना और घट गई—हमारे शास्त्रीजी के पास जाने से पूर्व शास्त्रीजी किसी छात्र को निरुक्त पढ़ा रहे थे उसमें आये 'उताधीतं विनश्यति' (निरु० १।६) मन्त्रांश का अर्थ किया—'पढ़ा लिखा सब नष्ट हो जाता है'। इस अर्थ को सुनकर मुझे बहुत निराशा हुई। यह भी उनके यहां पाठ छोड़ने का एक कारण बना।

श्री भगवत्प्रसादजी मिश्र—पं० विद्याधरजी शास्त्री के यहां पाठ छोड़ने के पश्चात् मैं किसी और से कात्यायन श्रौतसूत्र पढ़ना चाहता था। मुझे ज्ञात हुआ कि पं० विद्याधरजी शास्त्री के प्रमुख शिष्य पं० भगवत्प्रसाद मिश्र राजकीय संस्कृत महाविद्यालय में कर्मकाण्ड का अध्यापन कराते हैं। मैं उनके पास कात्यायन श्रौतसूत्र पढ़ने के लिये पहुंचा और अपने जन्मना ब्राह्मण होने और आर्यसमाजी होने की बात कहकर पं० विद्याधरजी शास्त्री के यहां पर जो घटना घटी उसका निर्देश कर दिया। पूज्य पण्डितजी ने छूटते ही कहा कि मेरे पास तो कोई भी मनुष्याकृति आकर पढ़ सकता है। इससे मुझे परम सन्तोष प्राप्त हुआ।

पढ़ने का विचित्र क्रम—श्री पूज्य गुरुजी[1] (पं० भगवत्प्रसादजी) के पास जिस समय मैं कात्यायन श्रौतसूत्र पढ़ने जाता था उस समय यदि कोई और व्यक्ति होता था तो वे श्रौतसूत्र का पाठ पढ़ाना आरम्भ कर देते थे, यदि कोई अन्य व्यक्ति नहीं होता था तो वे प्रायः आर्यसमाज के सिद्धान्तों के विषय में ही चर्चा करते रहते थे। इस प्रकार उनके पास कात्यायन श्रौतसूत्र का पूर्वार्ध तक अध्ययन हो पाया।

एक दिन पूज्य गुरुजी विद्यार्थियों को पढ़ा रहे थे। मैं भी पाठ के लिये उनके चरणों में उपस्थित हो गया। पूर्व पाठ की समाप्ति पर गुरुजी ने एक छात्र को

---

१. इस प्रकरण में 'पूज्य गुरुजी' से तात्पर्य पं० भगवत्प्रसाद मिश्रजी से है।

अपनी सद्य: खिचवाई हुई ३-४ फोटो कापियां दी और उसे सुरक्षित रूप से पेटी में रखने के लिये कहा। विद्यार्थी ने फोटो इस प्रकार रखे कि आपस में रगड़ खाकर खराब हो जाते। अत: मैंने उस विद्यार्थी से कहा कि फोटो मुझे दो मैं ठीक तरह रख देता हूं। इस पर गुरुजी ने कहा कि तुम तो आर्यसमाजी हो मूर्तिपूजा करते नहीं, तुम्हें फोटो के खराब होने की चिन्ता क्यों इसलिये हुई कि मेरी फोटो हैं? मैंने उत्तर दिया कि गुरुजी यह बात नहीं है। इनके बनवाने में पैसा लगा है इसलिये इनको इस ढंग से सुरक्षित रखना चाहिये कि अधिक से अधिक समय तक ठीक रह सकें। यद्यपि गुरुजी किसी अन्य व्यक्ति की उपस्थिति में यह प्रकट नहीं होने देते थे कि मैं आर्यसमाजी विद्यार्थी को पढ़ाता हूं फिर भी इस दिन किस कारण से इतनी स्पष्ट रूप से मेरे साथ बात की, मैं नहीं जानता। संभव है उस समय उन्हें ध्यान न रहा हो।

कुछ मास के पश्चात् गुरुजी मुझसे बहुत प्रसन्न रहने लगे। यहां तक कि उनके ज्येष्ठ पुत्र गोपालचन्द्र मिश्र[1] के उपनयन के पश्चात् जब मैं पढ़ने के लिये उनके यहां पहुंचा तो गुरुजी ने अपने पुत्र से मेरे चरणस्पर्श करने को कहा और साथ ही यह भी कह दिया कि जब भी ये आया करें इनके चरणस्पर्श किया करो। यह क्रम जब तक मैं अध्ययन के लिये गुरुजी के पास जाता रहा, चलता रहा।

पूज्य गुरुजी को नवीन प्रकाशित वैदिक वाङ्मय के ग्रन्थों को पढ़ने की बहुत रुचि थी। इसके लिये वे मेरे काशी छोड़ने के पश्चात् भी पत्र द्वारा मुझसे वैदिक वाङ्मय के नवीन प्रकाशित ग्रन्थों की जानकारी लेते रहते थे या भिजवाने को लिख देते थे। आपके पास हस्तलिखित ग्रन्थों का भी अच्छा संग्रह था।

दयानन्द-निर्वाण-अर्धशताब्दी—दीपावली सं० १९९० (सन् १९३३) के अवसर पर परोपकारिणी सभा के तत्त्वावधान में सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधिसभा के सहयोग से अजमेर में दयानन्द-निर्वाण-अर्धशताब्दी मनाई गई। इस अवसर पर परोपकारिणी सभा के आना सागर के तट पर स्थित 'ऋषि उद्यान' में कार्तिक कृष्णा दो से दीपावली पर्यन्त 'चतुर्वेद-पारायण-महायज्ञ' हुआ।[2] इसके ब्रह्मा वयोवृद्ध म०

---

१. श्री गोपालचन्द्रजी मिश्र अपने पिता श्री पं० भगवत्प्रसादजी के सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय के वेद-विभाग के अध्यक्ष पद से कार्य निवृत्त होने पर उनके स्थान पर नियुक्त हुए थे। इनका कुछ वर्ष पूर्व निधन हो गया है।

२. आर्यसमाज में यह प्रथम 'चतुर्वेद-पारायण' यज्ञ था। यहीं से आर्यसमाज में इसका प्रचलन हुआ।

म० पं० आर्यमुनिजी थे। यतः पं० आर्यमुनिजी अत्यन्त वृद्ध थे अतः उनकी सहायता के लिये ४ उपब्रह्मा नियत किये गये थे। जिनके नाम हैं—पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, पं० जयदेवजी विद्यालङ्कार, पं० धुरेन्द्रनाथजी और पं० रामावतारजी शर्मा। इस यज्ञ में वेदपाठ के लिये लगभग १६ व्यक्ति चुने गये थे। हमारे आश्रम में से मैं और याज्ञवल्क्यजी थे। यह यज्ञ प्रतिदिन ४ घण्टे प्रातः और ४ घण्टे सायं होता था। इस अवसर पर मुझे श्री पं० आर्यमुनिजी के सत्सङ्ग का अपूर्व लाभ प्राप्त हुआ। वे मेरे वेदपाठ से बहुत प्रभावित थे। प० आर्यमुनिजी ने ऋषिदयानन्द के उस समय दर्शन किये थे, जब वे काशी में विद्याध्ययन करते थे।

ऋषि दयानन्द का नव्यन्याय में पारंगत होना—आर्यसमाज के सभी विद्वानों की यह मान्यता है कि ऋषिदयानन्द प्राचीन न्यायशास्त्र के तो प्रकाण्ड पण्डित थे, परन्तु नव्यन्याय में उनका प्रवेश नहीं था। इसके विपरीत पं० आर्यमुनिजी ने बताया कि "एक दिन काशी निवासकाल में नव्यन्याय का नवद्वीप का पढ़ा हुआ[1] विद्वान् शास्त्रार्थ के लिये ऋषिदयानन्द के पास उपस्थित हुआ। उसको भी यही ज्ञात था कि दयानन्द को नव्यन्याय नहीं आता। अतः उसने नव्यन्याय की पदावलि में शास्त्रार्थ करने का आह्वान किया। ऋषिदयानन्द ने भी नव्यन्याय के माध्यम से ही शास्त्रार्थ आरम्भ किया। परन्तु थोड़ी देर के पश्चात् ही नव्यन्याय के शास्त्री की बोलती बन्द हो गयी।" पं० आर्यमुनिजी जैसे प्रत्यक्षद्रष्टा और ऋषिदयानन्द के परम भक्त विद्वान् के द्वारा इस घटना के सुनाने से स्पष्ट हो जाता है कि ऋषिदयानन्द नव्यन्याय में भी पारङ्गत थे।

अर्धशताब्दी के अवसर पर आश्रम के सभी विद्यार्थी स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज के 'साधुमण्डल' में ही ठहरे थे। इस शताब्दी के सभी कार्यक्रम पर्याप्त सुचारु रूप से चलते रहे। इसका श्रेय श्री नारायण स्वामीजी महाराज को ही दिया जा सकता है। उन्हें मथुरा जन्म शताब्दी के अवसर का भी पर्याप्त अनुभव था। मैं तो इस अर्ध-शताब्दी के विशेष कार्यक्रम नहीं देख सका, क्योंकि मुझे दोनों समय यज्ञ में सम्मिलित होना पड़ता था।

महात्मा हंसराज सबसे बड़ा संन्यासी—एक दिन कुछ संन्यासी इकट्ठे होकर श्री स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज के पास पहुंचे और उनसे कहा कि हम आपको अगुआ बनाकर महात्मा हंसराज से संन्यास की दीक्षा लेने का अनुरोध करना चाहते

---

१. नव्यन्याय के अध्ययन के लिये नवद्वीप उसी प्रकार प्रसिद्ध था जैसे व्याकरण के लिये काशी।

हैं। इस पर स्वामी सर्वदानन्दजी ने कहा कि **महात्मा हंसराज** तो हम सबकी अपेक्षा बड़ा संन्यासी है, हम उसे संन्यास के लिये क्या कह सकते हैं। केवल गेरुए कपड़े पहनने से तो कोई संन्यासी नहीं होता। संन्यास का सम्बन्ध तो मन और आत्मा से है। इस दृष्टि से हम में से कोई भी महात्मा हंसराजजी की बराबरी नहीं कर सकता।

पिताजी का अजमेर आना—इस अवसर पर पिताजी भी नन्दवाई से अजमेर आये थे। और उनके साथ १-२ दिन के लिये मैं गांव भी गया था।

विशेष घटना—अजमेर में पिताजी के मामा के पुत्र श्री काका चिरञ्जीलालजी सबसे मिलने के लिये ब्यावर से आये थे। इससे पहले मैंने श्री काका चिरञ्जीलालजी को कभी नहीं देखा था, केवल नाम सुना हुआ था। एक दिन अचानक यज्ञ में जाते हुए मुझे मार्ग में मिले और पूछा मुझे पहचानते हो। मैंने तत्काल उत्तर दिया आपका नाम चिरञ्जीलालजी है। इस घटना से मैं स्वयं चकित था कि मैंने पूर्व न देखे हुए श्री काकाजी का नाम कैसे बता दिया।

काशीवास का विशेष कार्य—इस बार के काशीवास के काल में जहां मीमांसा न्याय आदि विविध शास्त्रों का गुरुजनों से अध्ययन किया, वहां प्रतिसप्ताह नियमित रूप से संस्कृत कालेज के 'सरस्वती भवन' पुस्तकालय में जाकर उसमें सगृहीत हस्तलेखों का अवलोकन विशिष्ट कार्य रहा।

इस समय डा० श्री **मङ्गलदेवजी** शास्त्री सरस्वती भवन पुस्तकालय के अध्यक्ष थे (पीछे कालेज के प्रिंसिपल बने)। हस्तलेख विभाग के कार्यकर्त्ता अध्यक्ष श्री पं० **नारायण शास्त्री खिस्ते** थे। कालेज के प्राध्यापकों के अतिरिक्त बाह्य व्यक्ति को हस्तलेखों के अवलोकन में विशेष सुविधा प्राप्त नहीं थी। परन्तु डा० श्री मङ्गलदेव जी शास्त्री के प्रधान पुस्तकाध्यक्ष होने से तथा कुछ समय पीछे मेरी लगनशीलता को देखकर श्री माननीय खिस्तेजी ने प्रभावित होकर स्वविभागीय कार्यकर्त्ताओं को कह दिया कि 'यदि मेरी अनुपस्थिति में भी युधिष्ठिर मीमांसक आवें तो ये जो पुस्तक देखना चाहें तत्काल निकाल कर देना'।[1]

---

१. सन् १९५३ या ५४ में जब श्री माननीय खिस्तेजी संस्कृत कालेज के प्राचार्य बने तब उन्होंने एक बार मेरी योग्यता से प्रभावित होकर कहा था कि आप हमारे कालेज में अध्यापन करना स्वीकार कर लें। जब मैंने उन्हें बताया कि आपके विभागीय नियमों के अनुसार मैं संस्कृत कालेज में अध्यापक नहीं बन सकता, क्योंकि मैंने कोई राजकीय परीक्षा नहीं दी है। इस पर उन्होंने कहा कि आपके लिये नियम शिथिल

इस समय तक हस्तलिखित पुस्तकों का सूचीपत्र लिखित रूप में ही था (वह भी कुछ भाग का) और बड़ी असावधानता से बनाया हुआ था। फिर भी श्री ख्रिस्तेजी के अनुग्रह से शतशः हस्तलिखित पुस्तकों को देखा। उनके नम्बर अङ्कित किये, विशेष उल्लेखनीय अंश संकलित किये।

दशपादी उणादिवृत्ति के हस्तलेख की प्राप्ति—दशपादी उणादिवृत्ति की पाषाण मुद्रणालय की छपी एक प्रति मेरे पास पूर्वतः संगृहीत थी (द्र०—पृ० १५८-१५९)। उसकी एक हस्तलिखित प्रति इस संग्रह में प्राप्त हो गई। यद्यपि इसके आरम्भ के ९ पत्रे खण्डित थे। पुनरपि इस हस्तलेख की सम्प्राप्ति से इसके सम्पादन के प्रति उत्साह बढ़ा। इसी समय श्री डा० मङ्गलदेवजी ने 'भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च डिपार्टमैंट पूना' से नागराक्षर में लिखित एक प्रति और मंगवा दी। मैंने इन दोनों और पूर्वतः प्राप्त मुद्रित प्रति का मिलान करके पाठभेद संगृहीत कर लिये।

काशी से वापिस लौटना—सन् १९३४ के चतुर्थ चरण तक काशी में रहकर पढ़ने योग्य ग्रन्थों का अध्ययन लगभग पूरा हो चुका था। अन्तिम दिनों में मेरा स्वास्थ्य खराब रहने लगा। अतः मैं नवम्बर १९३४ के अन्त में गुरुजी से अनुज्ञा लेकर बिरकच्यावास होता हुआ पिताजी के पास नन्दबाई चला गया और गुरुजी (श्री ब्रह्मदत्त जिज्ञासु) सब छात्रों को साथ लेकर दिसम्बर १९३४ के अन्त में लाहौर चले गये।

लाहौर में निवास—काशी से लौटकर गुरुजी, 'रामलाल कपूर एण्ड संस' के 'पैसा अखबार' मोहल्ले के मकान में ठहरे। अमृतसर का स्थान जहां काशी जाने से पूर्व ३ वर्ष रहे थे, वह चारों ओर आबादी से घिर गया था। अतः गुरुजी वहां रहना नहीं चाहते थे। रामलाल कपूर एण्ड संस का लाहौर में रावी के पार बारहदरी के पास एक बगीचा था उसमें एक ओर पञ्चनद पैन फैक्टरी थी और दूसरी ओर ३-४ कमरे कच्ची ईंटों के पशुओं के लिये बने हुए थे। श्री बाबू रूपलालजी ने वह स्थान दिखाया और कहा कि यहां आश्रम की व्यवस्था हो सकती है, परन्तु अभी तत्काल मकानादि बनवाने की व्यवस्था होना कठिन है। गुरुजी ने कहा कि हम इन्हीं कमरों में रह लेगें। तत्पश्चात् उक्त कच्चे मकानों में ही जाकर गुरुजी ने

करके एक ही वर्ष में आचार्य परीक्षा के तीनों खण्डों में बैठने की अनुमति दे दूंगा। परन्तु मैंने स्वीकार नहीं किया। इससे श्री माननीय ख्रिस्तेजी का मेरे प्रति कितना स्नेह था, यह भली प्रकार प्रकट होता है। ऐसे विद्वद्वर मेरे लिये नमस्य हैं।

अपना डेरा जमाया। कुछ काल पश्चात् आगे बरामदा बन गया और कमरों की दीवारों में भीतर की ओर १-१ पक्की ईंट की चिनवाई करवा दी। छत अन्त तक कच्ची ही रही। गुरुजी उसे पक्का नहीं कराना चाहते थे, क्योंकि पक्की छत गरमी में अधिक गरम और सर्दी में अधिक सरद हो जाती है। बरामदा और कमरे का आंगन भी कच्चा रहा। प्रति मास उसकी लिपाई होती रहती थी। पैन फैक्टरी में विद्युत् आई हुई थी, परन्तु गुरुजी ने अपने आश्रम में उसका सम्बन्ध नहीं किया।

आश्रम का नाम परिवर्तन—लाहौर में आकर पूज्य गुरुजी ने 'विरजानन्द आश्रम' के नाम के साथ **'सांगवेद-विद्यालय'** और जोड़ दिया था।

काशी से लाहौर लौटने पर पुराने छात्रों में से मैं, याज्ञवल्क्यजी, सत्यदेवजी और धर्मदेवजी चार ही थे। यहां आकर नये छात्र शनैः-शनैः प्रविष्ट होते गये। सन् १९४७ के भारत विभाजन तक जिन छात्रों ने यहां अध्ययन किया उनमें प्रमुख हैं—श्री ज्योतिःस्वरूप और उनके दो भाई, धर्मव्रत (बनवारीलाल), चन्द्रकान्त (मद्रास), यशःपाल (दादरी), वाचस्पति, अजयवीर, भीमसेन (सीमाप्रान्त), सत्य-प्रिय और ऋषिदेव प्रभृति। इनमें से और सब व्यक्ति तो वहां से पढ़कर अन्य विषयों की परीक्षायें देकर अपने लौकिक कार्यों में लग गये। एकमात्र पं० ज्योतिःस्वरूप जी ही आर्ष पद्धति के अनुसार गुरुकुल निक्की सूइयां (अमृतसर) तथा देश विभा-जन के पश्चात गुरुकुल एटा में आजीवन अध्यापन कार्य करते रहे।

विवाह-सम्बन्ध का निश्चय—श्री पं० भगवान्स्वरूपजी न्यायभूषण द्वारा पालिता कन्या का पिताजी को ज्ञान होना, इस विषय में न्यायभूषणजी से मिलना, उसके अन्यत्र सम्बन्ध की बात पक्की होना, उस सम्बन्ध का टूटना, दिसम्बर १९३१ को पिताजी का गुरुजी और मुझसे मिलने अजमेर आना, पिताजी के आने पर न्याय-भूषणजी का मेरे साथ विवाह के लिये कन्या से पूछना, उसका मना करना, पिताजी के निधन के पश्चात् आर्यप्रतिनिधिसभा राजस्थान के वार्षिक अधिवेशन के समय पिताजी के निधन के सम्बन्ध में शोक-प्रस्ताव पास करना, कन्या का स्वयं मेरे साथ विवाह का प्रस्ताव करना, मेरी अनुपस्थिति में श्री न्यायभूषणजी का गांव जाकर घर-बार के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना तथा मुझ से इस सम्बन्ध के लिये बात करने पर मेरा उत्तर देना, पिताजी के निधन के पश्चात् अब मेरे माता पिता गुरु आदि सब कुछ पूज्य गुरुजी हैं आप उनसे बात करें, इत्यादि प्रसङ्ग पूर्व (पृष्ठ ८९ से ९३ तक) लिखा जा चुका है।

मेरे कथन के अनुरूप श्री पण्डित भगवान्स्वरूपजी न्यायभूषण ने अपनी पालिता

कन्या के साथ मेरे विवाह के सम्बन्ध में गुरुजी से पत्र व्यवहार किया। यद्यपि गुरुजी उक्त सम्बन्ध से प्रसन्न नहीं थे। वे चाहते थे कि मेरा विवाह किसी गुरुकुल की पढ़ी हुई कन्या से हो जाये। परन्तु मैं विवाह के सम्बन्ध में पिताजी के निर्देशों को (जो पूर्व पृष्ठ ८६ पर लिखें जा चुके हैं) विशेष महत्त्व देता था। क्योंकि गृहस्थ होने एवं सामाजिक कार्यकर्त्ता होने से इस सम्बन्ध में उनके अनुभव अधिक यथार्थवादी थे। अतः मैंने गुरुजी से स्पष्ट कह दिया कि पिताजी ने अपने निधन से कुछ मास पूर्व विवाह के सम्बन्ध में मुझे जो बातें समझाई थी, मैं उन्हीं के अनुसार विवाह करूंगा। पं० भगवान्स्वरूपजी के द्वारा जो प्रस्ताव आपके पास आया है उसके सम्बन्ध में पिताजी उनसे मिल चुके थे। परन्तु उस समय उनकी कन्या का सम्बन्ध कहीं अन्यत्र निश्चित हो चुका था। इसलिये उनके जीवन काल में यह सम्बन्ध निश्चित नहीं हो सका। इसके अतिरिक्त मैं इस सम्बन्ध के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त कर चुका हूं। तदनुसार यह सम्बन्ध पिताजी के निर्देशानुसार मुझे उचित प्रतीत होता है। तदनन्तर गुरुजी ने न चाहते हुए भी इस सम्बन्ध को स्वीकार कर लिया।

इस प्रकार अन्तिम रूप से गुरुजी के साथ विवाह के सम्बन्ध में निर्णय हो जाने पर विवाह की व्यवस्था करने के लिये मैं कुछ दिनों के लिये गांव आया।

विवाह के लिये द्रव्य की आवश्यकता—हमारे गांव में एक सेठ रामप्रसादजी ईनाणी थे। पिताजी सब लेन-देन का व्यवहार इन्हीं सेठजी से रखते थे। और पिता जी को या उनके पत्र के आधार पर श्री काका गणेशीलालजी को आधी रात को हजारों रुपये देने में संकोच नहीं करते थे। किन्तु पिताजी के निधन हो जाने पर जब मैंने काकाजी के द्वारा उक्त सेठ से ५०० रुपये उधार मांगे तो उसने साफ मना कर दिया। जिस सेठ के साथ पिताजी का जन्मभर हजारों रुपये का लेन देन रहा, उसने जब ५०० रुपया देने से इन्कार कर दिया तो मुझे बहुत आघात लगा। मेरे पास उस समय कुछ भी द्रव्य नहीं था। पिताजी का बीमा आदि से जो रुपया आना था, उसमें काफी समय लग सकता था। पिताजी की डाकखाने की पासबुक में पांच सौ रुपये जमा थे। मैंने वह पासबुक लेजाकर सेठजी को दिखाई और कहा कि जितना रुपया आपसे मांगता हूं उतना डाकखाने में जमा है। इसको शीघ्र ही निकलवाकर आपका पूरा रुपया वापस लौटा दूंगा। इस प्रकार बड़ी कठिनाई से काका गणेशीलालजी के बीच में पड़ने पर सेठजी ने एक रुपया सैकड़ा मासिक ब्याज पर ५०० रुपया उधार दिया। पास में और द्रव्य न होने से मैंने सारा विवाह का व्यय इन्हीं रुपयों के अन्तर्गत पूरा किया।

समावर्तन-संस्कार – १० वैशाख सं० १९९३ (ता० २१-४-१९३६) को आश्रम के प्राङ्गण में विधिवत मेरा समावर्तन संस्कार हुआ। इस अवसर पर पूज्य गुरुजी ने आश्रम के इतिहास पर प्रकाश डाला।

इस अवसर पर रामलाल कपूर परिवार के श्री रूपलालजी आदि, अमृतसर के लाला गुलजारीमलजी, महात्मा हंसराजजी, पं० भगवद्दत्तजी, प्रिंसिपल शिवदयालुजी एम० ए०, डा० लक्ष्मणस्वरूप एम० ए०, स्वामी ब्रह्मानन्दजी दण्डी, श्री पं० विश्वश्रवा:जी आदि सज्जन महानुभाव विद्यमान थे।

इस समावर्तन संस्कार का विवरण 'हिन्दी मिलाप' (लाहौर) के ७ जून १९३६ के अङ्क में विस्तार से छपा है। इसे अष्टम परिशिष्ट में संख्या ५ पर देखें।

समावर्तन संस्कार के कुछ दिन पश्चात् मैं विवाह की तैयारी के लिये गांव चला गया। गांव के अपने सजातीय वृद्धजनों से विचार विनिमय करना आवश्यक था। गांव के सजातीय वृद्धजनों ने इस सम्बन्ध के प्रति प्रसन्नता व्यक्त की, परन्तु कतिपय कण्टकस्वरूप व्यक्ति प्रत्येक समाज में होते ही हैं, उनकी ओर से ५-६ जनों की उपस्थिति में विचार प्रकट किया गया कि किसी व्यक्ति को शाहपुरा जाकर कन्यापक्ष के कुल शील आदि का पता लगाना चाहिये। इस विचार के उपस्थित होते ही मेरे दूर रिश्ते के काका श्री राधाकृष्णजी बोले मैं शाहपुरा जाने को तैयार हूं। तदनुसार वे शाहपुरा गये और लौटकर वहां की सब बातें परिवार के विशिष्ट जनों को बताईं। श्री काका राधाकृष्णजी ने लौटकर मुझे बताया कि शाहपुरा जाने का प्रस्ताव करने वाले व्यक्ति अपने ही किसी व्यक्ति को भेजकर कोई अड़चन उपस्थित न करदें इसलिये मैं शाहपुरा जाने को तैयार हो गया। मेरे जाने का प्रमुख कारण यह था कि यदि किसी प्रकार की कोई कमी वेशी भी हो (जो प्रायः कुलों में होती ही हैं) तो भी प्रकट न की जाय और यह सम्बन्ध बना रहे।

विवाह की तिथि—विवाह की तिथि २ जून १९३६ नियत हुई। श्री पं० भगवान्स्वरूपजी ने कहा था कि बरात में ११ व्यक्तियों से अधिक न लावें। तदनुसार मैंने अपने प्रत्येक परिवार के एक-एक वयोवृद्ध व्यक्ति को चुना। जो संख्या में आठ थे और तीन अपने मित्रों को साथ लिया।

विवाह—पूज्य गुरुजी को तथा पं० शङ्करदेवजी को विवाह की तारीख लिख दी। दोनों ही गुरुजन १ जून को अजमेर पहुंच गये। गांव से सब लोग बरात के रूप में माङ्गलियावास से प्रातः ९ बजे के अद्धे (शटल) से चलकर दस बजे अजमेर पहुंच गये। स्टेशन पर अगवानी के लिये पं० भगवान्स्वरूपजी कई प्रसिद्ध आर्य व्यक्तियों

के साथ उपस्थित थे। हमें लेजाकर केसरगंज में पं० भद्रसेनजी के मकान पर ठहराया गया।

विवाह के समय विघ्न की आशङ्का—भावी पत्नी के पिता भी इस अवसर पर साथ में ५-७ व्यक्तियों को साथ लेकर अजमेर आये थे। वे चाहते थे कि किसी प्रकार लड़की को लेजाकर साथ में लाये गये व्यक्ति के साथ विवाह कर दिया जाये। इसकी भनक पं० भगवान्स्वरूपजी को पड़ गई। वे इससे चिन्तित हुए और उन्होंने गुरुजी से अपनी आशंका व्यक्त की।

अजमेर में आर्यसमाज दो धड़ों में बंटा हुआ था। एक के अगुआ थे श्री चांदकरण शारदा और दूसरे के अगुआ थे पं० जियालाल। पं० जियालाल बहुत दबंग कार्यकर्त्ता थे। उनसे मुसलमान इतने भयभीत रहते थे कि भगाई हुई स्त्री की सूचना मिलने पर वे अकेले ही मुसलमानों के मोहल्ले में जाकर भगा कर लाई गई स्त्री को मुसलमानों के घरों से निकाल लाते थे। पुलिस के साथ भी उनका अच्छा सम्पर्क था। यह बात गुरुजी जानते थे। अतः गुरुजी ने पं० भगवान्स्वरूपजी से कहा कि आपको कुछ आपत्ति न हो तो मैं पं० जियालालजी से इस सम्बन्ध में विचार विमर्श करूं। पण्डितजी ने स्वीकार कर लिया। गुरुजी ने पं० जियालालजी के पास जाकर सारी बात बताई और उनसे इस विवाह कार्य में सहायता मांगी। पं० जियालालजी तत्काल तैयार हो गये और कहा कि पण्डितजी आप चिन्ता न करें मैं स्वयं विवाह के समय उपस्थित रहूंगा और आधे घण्टे के भीतर १-२ पुलिस पहरे पर बिठा देता हूं।

इस प्रकार विघ्न का निवारण होने पर २ जून को गोधूलि के समय विवाह की विधि हुई। इस अवसर पर अजमेर के अनेक गण्यमान सज्जन उपस्थित थे। विवाह गुरुजी ने तथा पं० भद्रसेनजी ने कराया। पं० भगवान्स्वरूपजी का कार्यक्रम अगले दिन दोपहर का भोजन करा कर बरात को विदा करने का था। परन्तु पत्नी के पिताजी ने उपस्थित होकर गुरुजी से और पं० भगवान्स्वरूपजी से प्रार्थना की कि बरात को रात का भोजन मैं कराना चाहता हूं। और वर के साथ अपनी पुत्री को भी भेजने के लिये कहा, परन्तु पं० भगवान्स्वरूपजी ने कन्या को भेजना स्वीकार नहीं किया। तदनुसार ३ तारीख की रात को बरात के भोजन की व्यवस्था पत्नी के पिता की ओर से उनके किसी सम्बन्धी के यहां की गई।

यद्यपि पं० भगवान्स्वरूपजी ने और गुरुजी ने रात का भोजन पिता की ओर से स्वीकार कर लिया, परन्तु उनके मन में कुछ आशंका थी। गुरुजी ने मुझसे आशंका व्यक्त की कि कहीं भोजन में विषादि का प्रयोग न कर दें। मैंने गुरुजी से

कहा कि इस बात से आप निश्चिन्त रहिये। हमारे यहां रिवाज है कि ऐसे अवसर पर कन्या पक्ष का एक व्यक्ति भी वर के साथ में एक ही थाली में भोजन करता है। तदनुसार अपने साले मदनलालजी को अपने साथ भोजन के समय बिठा लूंगा। इससे गुरुजी निश्चिन्त हो गये। पूर्व योजना के अनुसार ३ तारीख की रात को पत्नी के पिता ने सब बरातियों को भोजन कराया और सबको एक-एक कलदार रुपया[1] भेंट किया। अगले दिन प्रातः काल प्रातराशादि कराकर ८ बजे की गाड़ी से पं० भगवान्स्वरूपजी ने बरात को विदा किया। हम लोग १० बजे मांगलियावास स्टेशन पहुंचकर बैलगाड़ी में बैठकर गांव गये।

गांव पहुंचने पर काकीजी आदि वृद्ध स्त्रियां अपनी रीति के अनुसार मंगल आदि कार्य करके पत्नी को घर में लिवा ले गईं। हमारे यहां ऐसा रिवाज है कि लौटी हुई बरात सायंकाल को ही गांव में प्रवेश करती है। हम सब ११ बजे गांव पहुंचे थे। इसलिये हमें गांव से सटे हुए बाहर 'देवजी के देवरे' पर ही दिनभर वृक्ष की छाया में रहना पड़ा। वहीं पर सबके भोजनादि की व्यवस्था हुई। सायंकाल के समय हम लोगों ने गांव में प्रवेश किया।

पत्नी का नाम परिवर्तन—पत्नी का पीहर का नाम **नर्मदाबाई** था। मेरी छोटी काकीजी का नाम भी 'नर्मदाबाई' ही था। इसलिये पत्नी का नाम परिवर्तन करके **यशोदा देवी** नाम रखा गया।

घूंघट का त्याग—गांव में स्त्रियां अपने बड़ों या पर पुरुषों के सामने घूंघट करके रहती हैं और बात-चीत भी नहीं करतीं। हमने इन दोनों प्रथाओं का आरंभ से परित्याग कर दिया। इससे गांव में बहुत नुकता-चीनी हुई। जो लगभग दो वर्ष तक चलती रही। अन्त में यशोदा के उचित व्यवहार से यह कहा सुनी धीरे-धीरे शान्त ही नहीं हुई, अपितु स्त्रियां कहने लगीं कि घूंघट न काढ़ने पर भी आज तक किसी ने यशोदा को ऊंची नजर से चलते हुए नहीं देखा। असली लाज तो नजर की ही है।

---

१. उन दिनों राजस्थान में अंग्रेज शासकों के रुपये के साथ विवाह आदि के अवसरों पर मुसलमानों के काल का एक मोटा चपटा सा पूरे एक तोले शुद्ध चांदी का रुपया, जिसे 'झाड़शाही' कहते थे, भी प्रचलित था। उसका मूल्य लगभग ६ आने था (चांदी के भाव के अनुसार घटता बढ़ता रहता था)। अन्य कतिपय देशी रियासतों के रुपये भी अपने-अपने राज्य में प्रचलित थे। उनका मूल्य अंग्रेजी रुपयों से कम होता था। अंग्रेजी रुपये का मूल्य १६ आने अर्थात् १६ कलावाला होने से कलदार कहाता था।

आश्रम में कार्य करने का निश्चय—विवाह के पश्चात् श्री पं० भगवान्स्वरूपजी (जो उस समय वैदिक-यन्त्रालय के प्रवन्धकर्त्ता थे) ने मुझे वैदिक-मन्त्रालय में ही ५० रुपये मासिक पर रखने का अपना विचार प्रकट किया था। परन्तु उससे पूर्व गुरुजी ने मुझे कम से कम पांच वर्ष तक अपने साथ कार्य करने की इच्छा प्रकट की थी। मैंने भी यह सोचकर कि माता-पिता के अभाव में गुरुजी ही मेरे माता-पिता हैं, गुरुजी का कथन स्वीकार कर लिया था। अतः मैंने श्री पं० भगवान्स्वरूपजी के प्रस्ताव को नम्रतापूर्वक अस्वीकृत कर दिया।

सपत्नीक लाहौर लौटना—लगभग सात दिन गांव में रहने के पश्चात् हम दोनों लाहोर के लिये रवाना हो गये। अकेले में यशोदा का मन न उक्ता जाये, इस लिये श्री काका गणेशीलालजी के ज्येष्ठ पुत्र धूलचन्द (विष्णुदत्त[1]), जिसकी आयु उस समय आठ वर्ष थी, को साथ लेते आये। लाहौर आकर कुछ दिन रामलाल कपूर के 'पैसा अखबार मोहल्ले' वाले मकान में ठहरे। तदनन्तर रावी पार आश्रम से लगे हुए 'बाजीगरों' के गांव में एक मकान की व्यवस्था गुरुजी ने कर दी। अतः हम बाजीगरों के मकान में आकर रहने लगे।

बाजीगरों की स्थिति—बाजीगर लोग न हिन्दू थे और न मुसलमान। हर एक स्त्री-पुरुष के दो-दो नाम थे—एक हिन्दू नाम और दूसरा मुसलमानी नाम। हिन्दुओं में हिन्दू नाम वताते थे और मुसलमानों में मुसलमानी नाम कहते थे। इस गांव में हम लगभग ४ वर्ष रहे। यद्यपि ये लोग शराब मांस का सेवन करते थे, फिर भी इतने लम्बे समय में भी हमने इन बाजीगरों में चोरी-जारी आदि की कोई घटना नहीं देखी। इनकी अपनी सभ्यता (सामाजिक नियम) अथवा आचार-संहिता थी, जिसका ये लोग कड़ाई से पालन करते थे। किसी के द्वारा कोई अपराध हो जाने पर उसे अपनी सच्चाई प्रकट करने के लिये अग्नि-परीक्षा देनी पड़ती थी।

अग्नि-परीक्षा का नियम—जिसको अग्नि-परीक्षा देनी होती थी, वह पहले स्नानादि करता था। जिसने आरोप लगाया है उसके और गांव के लोगों के सामने अग्नि में तपाकर लालवर्ण किये हुए लोहे के टुकड़े को हथेली में लेकर नियत दूरी तक जाना पड़ता था। हाथ में गर्म लोहा लेने से पूर्व उसके हाथ अच्छी प्रकार से धुला दिये जाते थे। यदि हाथ न जले तो मान लिया जाता था कि इस व्यक्ति ने कोई अपराध नहीं किया है और हाथ जलने पर अपराधी घोषित किया जाता था और उसे अपने नियमों के अनुसार दण्ड दिया जाता था। इस अग्नि-परीक्षा का

---

१. यह नाम हमने रखा था। तब से यही नाम प्रसिद्ध हो गया।

वैदिक-धर्म-परायणा

यशोदादेवी (नर्मदा बाई)

(चित्र—सन् १९३७)

दृश्य हमने ३-४ बार देखा है। जिसमें एक बार को छोड़कर कभी भी हाथ जले हुए नहीं देखे। हाथ न जलने के पीछे क्या रहस्य है, यह तो मैं नहीं कह सकता, परन्तु इन घटनाओं को देख कर रामायण में वर्णित सीता की 'अग्नि-परीक्षा' की घटना को मैं वास्तविक घटना मानने लगा। यहां यह भी स्मरण रखने योग्य है कि भारतीय धर्मशास्त्रों में सत्यासत्य के निर्णय के लिये अग्नि-परीक्षा, जल-परीक्षा आदि का उल्लेख मिलता है। इसे धर्मशास्त्रीय परिभाषा में दिव्य-परीक्षा कहा जाता है। इस का प्रयोग तभी किया जाता है जब अन्य विधियों से सत्यासत्य का निर्णय न हो।

गुरुजी का परोपकारिणी सभा के कार्य में सहयोग देना—सन् १९३६ के पश्चात् गुरुजी ने ऋषिदयानन्द के वेदभाष्य आदि ग्रन्थों के शुद्ध मुद्रण में सहयोग देना स्वीकार कर लिया। अतः इस कार्य के लिये याज्ञवल्क्यजी और धर्मदेवजी को अजमेर में ऋषिकृत ग्रन्थों के हस्तलेख से मिलान के कार्य पर लगा दिया। याज्ञवल्क्य जी का क्रान्तिकारियों के साथ पुराना संपर्क था। वह अजमेर में भी बना रहा। अतः उन्हें वहां से कार्य छोड़कर अन्यत्र जाना पड़ा।

याज्ञवल्क्यजी ने पूर्ण निष्ठा के साथ कम्युनिष्ट पार्टी के साथ आजीवन कार्य किया। इनका चरित्र अति श्रेष्ठ था। सेवाभाव, परदुःखनिवारण इनके रग-रग में व्याप्त था। निर्वाहार्थ वे प्रेस आदि में कार्य करते थे। अपरिग्रही तो इतने थे कि कभी किसी ने कुछ मांगा तो तत्काल दे देते थे। वेतन का पैसा ८-१० दिन में ही समाप्त हो जाता था। शेष दिनों में वे प्रायः चबैना चबाकर निर्वाह करते थे। इसी कारण मैं उन्हें **कम्युनिष्ट-ब्राह्मण** कहा करता था।

प्रथम सन्तति—विवाह के कुछ दिन पश्चात् ही धर्मपत्नी के पैर भारी हुए (= गर्भवती हुई)। ८वें मास के आरम्भ में अर्थात् जनवरी १९३७ के अन्त में धर्मपत्नी को गांव छोड़ आया। प्रसवकाल निकट आने पर मैं मार्च में गांव गया।

अशुभ निमित्त—गांव के पास पहुंचने पर श्मशान में मुर्दा जलता हुआ दिखाई दिया। इससे मेरा माथा ठनका, अनिष्ट की आशङ्का मनमें उत्पन्न हो गई।

मृत बालक का उत्पन्न होना—गांव जाकर मैंने यशोदा से कहा कि अजमेर या नसीराबाद चलकर प्रसव कराना ठीक होगा (अनिष्टसूचक निमित्त की चर्चा मैंने नहीं की), परन्तु उसने स्वीकार नहीं किया। प्रसवपूर्व की वेदना के लक्षण भी ठीक नहीं थे। दो दिन से हलकी पीड़ा के दौर चल रहे थे। मैंने एक बार पुनः नसीराबाद चलने की बात कही, परन्तु उसने पुनः मना कर दिया और कहा कि गांव में क्या बच्चे पैदा नहीं होते? मैं न चाहते हुए भी चुप लगा गया। अन्त में

रात में १०-११ बजे बच्चा हुआ। उसने बाहर आकर सांस नहीं ली अर्थात् मृत उत्पन्न हुआ। मेरा विचार है कि गांव की अशिक्षित दाई की जल्दबाजी के कारण बच्चा पेट में ही मर गया था। अगले दिन उसका अन्तिम संस्कार कर दिया।

यशोदा का रुग्ण होना—गांव में प्रसव कराने से बालक से तो हाथ धोना ही पड़ा, चिकित्सा की व्यवस्था न होने से यशोदा भी रुग्ण हो गई। उसे ज्वर रहने लगा, योनि में मवाद पड़ गया। अवस्था खराब देखकर मैंने अजमेर जाकर माता जी (=श्री पं० भगवान्स्वरूपजी की पत्नी) को सब हाल बताया। वे तुरन्त मेरे साथ गांव आईं और यशोदा की हालत देखकर मुझे बहुत बुरा भला कहा। इसी समय यह भी कहा कि बगीचे का पेड़ कहीं जंगल में फलफूल सकता है? अस्तु, मैं चुप रहा। अगले ही दिन वे यशोदा को अजमेर ले आईं। उनके प्रयत्न से १५ दिन में यशोदा स्वस्थ हुई।

एक मास में पूर्ण स्वस्थ होने पर हम दोनों दुःखी मन से वापस लाहौर पहुंचे। आगे इस प्रकार की भूल से बचने का संकल्प लिया।

बृहस्पति का जन्म—लाहौर आकर दिसम्बर १९३७ के अन्तिम दिनों में या जनवरी १९३८ के आरम्भ में यशोदा के पैर पुनः भारी हुए। इस बार पूरे नौ मास पूरी सावधानी बरती। इस बीच में श्री वैद्य ठाकुरदत्तजी मुल्तानी के ज्येष्ठ पुत्र श्री वैद्य भानुदत्तजी मुल्तानी के साथ हमारे विशेष सम्बन्ध बन चुके थे। उनकी पत्नी भी वैद्या और प्रसवकार्य-कुशला थी। अतः नवम मास में हम श्री रामलाल कपूर के 'गान्धी स्क्वेयर' में नवनिर्मित मकान में आ गये, जिससे समय पर उचित व्यवस्था हो सके। श्री पं० भानुदत्तजी का चिकित्सालय और घर भी समीप में ही थे।

इस बार श्री भानुदत्तजी की पत्नी के द्वारा ही गान्धी स्क्वेयर के मकान में ही आश्विन शुक्ला १ सं० १९९५ (=सितम्बर १९३८) को रात्रि में ११ बजे ज्येष्ठ पुत्र का जन्म हुआ। इसका मैंने बृहस्पति नाम रखा।

दांत निकलने के समय के उपद्रवों की विशेष औषध—लोक में कहावत है कि दांत आते समय भी दुःख देते हैं और जाते समय भी। बच्चों को प्रायः दांत निकलते समय ज्वर दस्त आदि अनेक उपद्रव हो जाते हैं। उनकी श्री चाचा ज्ञानचन्द जी कपूर ने बहुत उपयोगी एवं सरल औषध बताई थी। जो इस प्रकार है—

वंशलोचन, काकड़ासींगी और नागरमोथा समभाग लेकर कूट कर कपड़छान करके रख लें। प्रतिदिन २-३ तीन बार २-४ रत्ति के बराबर बच्चे को शहद के

साथ चटावें। काकड़ासींगी के अन्दर पोले स्थान में प्रायः मकड़ी जाले बना लेती है। अतः कूटने से पूर्व उसे तोड़कर भले प्रकार साफ कर लेना चाहिये।

इस औषध का प्रयोग मैंने सभी बच्चों के दांत निकलने के समय किया। इससे दांत सुगमता से निकले और कोई विशेष उपद्रव भी नहीं हुए।

वाचस्पति का जन्म—बृहस्पति के जन्म के लगभग डेढ़ वर्ष पश्चात् २७ अप्रेल सन् १९४० को दिन के बारह बजे द्वितीय पुत्र उत्पन्न हुआ। इसका जापा (= प्रसव) भी श्री पं० भानुदत्तजी की पत्नी ने ही कराया था।

आश्रम के छात्रों का हैदराबाद सत्याग्रह में सम्मिलित होना—सन् १९३९ के आरम्भ में आर्यसमाज की ओर से हैदराबाद को मुसलमानी रियासत में हिन्दुओं के और आर्यों के धार्मिक कर्मों और मन्दिरों पर लगाये गये प्रतिबन्धों को हटाने के लिये आर्यसमाज ने सत्याग्रह आरम्भ किया। इस सत्याग्रह में हमारे आश्रम के भी ७-८ विद्यार्थी सम्मिलित हुए थे। जिनके प्रमुख सत्यदेवजी वासिष्ठ थे। आश्रम के छात्र संभवतः मई मास में सत्याग्रह में सम्मिलित हुए थे। पं० सत्यदेवजी वासिष्ठ ने जेल में रहकर ही संस्कृत भाषा में **सत्याग्रह-नीतिकाव्यम्** की रचना की थी। यह काव्य तीन बार छप चुका है। रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़ से प्राप्य है।

विशेष घटना—हमारे आश्रम के छात्रों ने श्री पं० वेदव्रतजी के नेतृत्व में सत्याग्रह किया था। सायंकाल का समय होने से राज्य की पुलिस ने उन्हें रात में जंगल में ही रखा। वहां बिच्छू बहुत थे। सत्यदेवजी को वृश्चिक दंश की अतिसाधारण परन्तु अतिप्रभावकारी दवा ज्ञात थी।[1] जब दो-तीन सत्याग्रहियों को बिच्छू ने काटा (यहां का बिच्छू जहरीला भी बहुत होता है) और इन्हें ज्ञात हुआ तो इन्होंने पूछा किसी

---

१. आश्रम में मेरे पास विद्यमान एक १६ पृष्ठ के ट्रैक्ट में कई अनुभूत औषधें छपी हुई थीं उन्हीं में बिच्छू के काटने की इस सद्यः प्रभावकारी दवा का उल्लेख था। मैंने इसका आश्रम में ही अनेक बार प्रयोग किया था। प्रथम बार तम्बाकू का पानी कान में डालने के पश्चात् १५ मिनट तक पीड़ा में कमी न आवे तो इसका पुनः प्रयोग करना चाहिये। पुस्तिका में तो शरीर के जिस भाग में बिच्छू ने काटा हो उसके दूसरी ओर के कान में दवा डालने का उल्लेख था, परन्तु मैंने तो बिच्छू काटे हुए भाग के कान में डालने पर भी दवा का समान प्रभाव देखा है। तम्बाकू उपविष है। स्थावर और जंगम (प्राणिज) विष परस्पर विरुद्ध स्वभाव के होते हैं। अतः **'विषस्य विषमौषधम्'** नियम के अनुसार तम्बाकू का विष बिच्छू आदि के विष में लाभदायक होता है और संखिये आदि के विष में सर्पादि का विष।

के पास बीड़ी है ? (कई सत्याग्रही बीड़ी पीने वाले थे) । बीड़ी मिलने पर तम्बाकू निकालकर पानी में मलकर उस पानी को जिसे बिच्छू ने काटा था, के कान में तीन चार बूंद टपका दिया। इससे विष अतिशीघ्र उतर गया । इसके पश्चात् तो सारी रात यही क्रम चलता रहा। सत्यदेवजी की इस सेवा से सत्याग्रहियों को बहुत राहत मिली ।

लाहौर के कार्य से निवृत्त होना—पूज्य गुरुजी की इच्छानुसार मैंने जुलाई १९३६ से उनके साथ कार्य आरम्भ किया । उस समय मुझे रामलाल कपूर ट्रस्ट की ओर से ३५-०० रुपये व्ययार्थ मिलते थे। सन् १९३९ के अनन्तर द्वितीय विश्व महायुद्ध के कारण मंहगाई निरन्तर बढ़ती जा रही थी। ३५ रुपयों में निर्वाह में कठिनाई होने पर गुरुजी से जुलाई सन् १९४२ में मासिक बढ़ाने के लिये कहा। गुरुजी के द्वारा स्वीकार न करने पर मैंने आश्रम का कार्य छोड़ने का निश्चय किया। इस समय तक गुरुजी के कहे हुए ५ वर्ष भी पूरे हो गये थे। अतः गुरुजी को अपने निश्चय की सूचना देकर मैं सितम्बर १९४२ में अपने गांव विरकच्यावस चला आया। और अजमेर में किसी कार्य की व्यवस्था का प्रयत्न करता रहा।

मेरे लाहौर छोड़कर चले जाने पर गुरुजी ने धर्मदेवजी को अजमेर से ५० रुपये मासिक पर लाहौर बुला लिया ।

म्यादी बुखार के निदान की शिक्षा—लाहौर निवासकाल में ही एक बार जब गांव गया तो मेरी चाचीजी को 'निकाला' (म्यादी बुखार) हो गया था। उन्हें दिखाने के लिये श्री महादेवजी ईनाणी के पिता, जो चिकित्सा का कार्य करते थे, को बुलाकर लाया । उन्होंने जिस कमरे में चाचीजी बीमार थीं उसके दरवाजे पर पहुंच कर कहा कि इन्हें निकाला है, घासा[1] दो। मैंने कहा कि चाचीजी को पास जाकर देख तो लें। उन्होंने कहा देख लिया। मुझे चाचीजी को विना देखे ही रोग का निदान सुनकर आश्चर्य हुआ। मैंने उनसे पूछा तो उन्होंने कहा कि इस रोग में बीमार व्यक्ति के शरीर से विशेष प्रकार की गन्ध निकलती है। वह वायु में फैल

---

१. छोटी पीपल, तुलसी के ४-५ पत्ते, सोंठ और काला नमक घिस कर दिन में दो बार दिया जाता है। जाड़े में जावित्री का योग और कर लेते हैं तथा उसे कोसा गरम करके देते हैं। घिसकर देने से इस योग को घासा कहते हैं। यह म्यादी बुखार की अत्युत्तम औषध है। ईनाणीजी ने इस रोग में होने वाले उपद्रवों की चिकित्सा भी मुझे बताई थी। राजस्थान में इस रोग के रोगी को मोठ की दाल, बाजरे की रोटी देने का प्रचलन है।

जाती है। कमरे के बन्द होने से द्वार पर पहुंचते ही वह गन्ध आई। इसके आधार पर ही मैंने निकाले का निदान किया। मैंने उनसे कहा कि इसका ज्ञान मुझे भी करा दीजिये। उन्होंने कहा—तुम ५-७ दिन में वापस चले जाओगे। इसमें बहुत समय लगता है। अन्त में उन्होंने एक विधि बतलाई—जिस बीमार के बारे में निश्चित ज्ञान हो जावे कि निकाला है, उसकी हथेली दिन में कई बार ४-५ मिनट तक सूंघो। अनेक व्यक्तियों पर इस प्रकार अभ्यास करने से निकाले की खास गन्ध दिमाग में बैठ जायेगी और हथेली सूंघ कर यह बताने में समर्थ हो जाओगे कि निकाला है या नहीं। इस विधि से अभ्यास करने पर मैं निकाले के निदान में प्रवीण हो गया। निकाले की अवधि के परिज्ञान की विधि मैंने अनुभव से निर्धारित की।

विरजानन्द आश्रम में ५ वर्ष निवास का कार्य—विरजानन्द आश्रम लाहौर के निवासकाल में दो प्रधान कार्य मुझे करने पड़ते थे—

१—छात्रों को व्याकरण और निरुक्त आदि पढ़ाना।

२—पूज्य गुरुजी द्वारा क्रियमाण यजुर्वेद-भाष्य-विवरण के लेखन कार्य में सहयोग।

इनके अतिरिक्त मैंने आश्रमीय कार्य-निमित्त समय से अतिरिक्त समय में निम्न कार्य किये—

१—विविध ग्रन्थों के पारायण का पूर्व निर्धारित क्रम चलता रहा।

२—वररुचि विरचित **निरुक्त-समुच्चय का सम्पादन**। इसका प्रकाशन लाहौर की ओरियण्टल कालेज के मैगजीन में सन् १९३८ में हुआ था।

३—**दशपादी-उणादिवृत्ति का सम्पादन**—इस वृत्ति का प्रकाशन 'संस्कृत कालेज' बनारस की 'सरस्वतीभवन-ग्रन्थमाला' में सन् १९४३ में हुआ।

४—**संस्कृत-व्याकरण-शास्त्र के इतिहास** के लेखन के लिये श्री पं० भगवद्दत्तजी के सहयोग से सामग्री का संकलन तथा कुछ भाग की पाण्डुलिपि का लेखन।

५—शोध-विषयक कतिपय लेखों का लेखन। इनका प्रकाशन लाहौर के **'आर्य'** **'आर्यजगत्'** तथा 'ओरियण्टल कालेज की मैगजीन' में हुआ था।

परोपकारिणीसभा का वार्षिक अधिवेशन—पूज्य गुरुजी परोपकारिणीसभा के सदस्य थे। अक्टूबर १९४२ में परोपकारिणीसभा का जो वार्षिक अधिवेशन हुआ उसमें गुरुजी ने धर्मदेवजी के चले जाने के कारण मुझे परोपकारिणी में रखने का सुझाव दिया। जिसे पं० भगवान्स्वरूपजी के समर्थन से स्वीकार कर लिया गया और ८० रुपये मासिक पर मेरी नियुक्ति हुई।

मेरी अव्यावहारिकता—परोपकारिणीसभा के उक्त अधिवेशन में पूज्य गुरुजी की सभा के मन्त्री श्री हरविलास सारडा के साथ परोपकारिणीसभा के कार्य की दृष्टि से कुछ कहा सुनी हो गई। मैंने मूर्खतावश परोपकारिणीसभा में परस्पर हुई कहा-सुनी का अंश आर्य साहित्य-मण्डल के डाइरेक्टर श्री मथुराप्रसाद शिवहरे को सुना दिया। ये परोपकारिणीसभा के विरोधियों में से थे। अतः मुझे यह आशा नहीं थी कि यह बात श्री हरविलास सारडा तक पहुंच जायेगी। परन्तु शिवहरेजी ने उसी दिन, जो कुछ मैंने बताया था श्री हरविलास सारडा को जाकर बता दिया। श्री हरविलास सारडा ने अपने सहयोगी श्री घीसूलालजी वकील को बता दिया।

श्री हरविलासजी सारडा की महानता—उक्त घटना के दूसरे दिन मैं श्री घीसूलालजी वकील से मिलने उनके घर गया। तब उन्होंने बताया कि परोपकारिणी-सभा की कार्यवाही के सम्बन्ध में तुमने जो बातें शिवहरेजी से कीं, वे उन्होंने सारडा जी को बतला दीं। तुमने तो यह सोचकर इनसे बात की होगी कि शिवहरेजी परोप-कारिणी सभा के विरुद्ध हैं। इस पर मैंने कहा कि यह मेरे से बहुत बड़ी भूल हुई है। तब उन्होंने कहा कि यदि तुम अपनी भूल मानते हो तो सारडाजी से जाकर मिलो। मैं उसी समय सारडाजी के पास गया और नम्रतापूर्वक अपनी भूल स्वीकार की। इस पर सारडाजी ने कुछ नहीं कहा, परन्तु उनके व्यवहार से ज्ञात हुआ कि उन्होंने मुझे क्षमा कर दिया।

भुवस्पति का जन्म—लाहौर से आने के पश्चात् दिवाली के दूसरे दिन अर्थात् कार्तिक शुक्ला १ सं० १९९८ (=९ नवम्बर १९४२) को सायं ७ बजे अजमेर में भुवस्पति का जन्म हुआ। भुवस्पति नाम अलौकिक है, परन्तु सभी पुत्रों के वैदिक नाम रखने के विचार से यह अप्रसिद्ध नाम मैंने रखा।

परोपकारिणीसभा में नियुक्ति—वार्षिक अधिवेशन में स्वीकृत हुए प्रस्ताव के अनुसार श्री हरविलासजी सारडा ने धर्मदेवजी के रिक्त स्थान पर ८० रुपये मासिक पर मेरी नियुक्ति कर दी। मेरी नियुक्ति किस तिथि से हुई यह मुझे स्मरण नहीं है। परोपकारिणी सभा में कार्य करते हुए मैंने अथर्ववेद (षष्ठ संस्करण) और सामवेद (षष्ठ संस्करण) की संहिताओं का शुद्ध मुद्रण किया। परोपकारिणीसभा से पूर्व मुद्रित संस्करणों में ऋषि देवता और छन्द का निर्देश नहीं था। इनका संयो-जन मैंने प्रथम बार किया। सामवेद के ऋषि देवता छन्द आदि में जो भूलें थीं उन्हें दूर किया। तत्पश्चात् ऋग्वेद-भाष्य का हस्तलेखों से मिलान करके शुद्ध मुद्रण की कुछ प्रेस कापी तैयार की। उसके अनुसार दो फार्म (१६ पृष्ठ) छपे। उनमें कुछ स्थानों पर मेरी टिप्पणियां देखकर सारडाजी ने इस कार्य को बन्द कर दिया।

इसी प्रकार मेरे द्वारा वेदाङ्ग-प्रकाश के संशोधित संस्करण भी प्रकाशित नहीं हो सके। श्री सारडाजी का यह आग्रह था कि जिस ग्रन्थ का जो संस्करण ऋषिदयानन्द के जीवनकाल में छपा है, उसे वैसा ही छापो, उसमें कुछ भी अदला बदली मत करो। यत: श्री सारडाजी संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ थे, अत: मैं ऋषिदयानन्द के ग्रन्थों के प्रथम सस्करणों में मुद्रणादि के कारण जो भूलें हुई थीं, उनको समझा नहीं सकता था।

इन दिनों श्री सारडाजी अंग्रेजी में ऋषिदयानन्द का जीवन-चरित्र लिख रहे थे। उसमें एक प्रकरण ऋषिदयानन्द के ग्रन्थों का संक्षिप्त विवरण का था। उसके लिये सारडाजी के कहे अनुसार मैंने ऋषिदयानन्द के समस्त ग्रन्थों का संक्षिप्त विवरण तैयार किया, जिसे उन्होंने न्यूनाधिक करके अपने द्वारा लिखित जीवन-चरित्र में दिया।

अन्य घटना—श्री सारडाजी ऋषिदयानन्द के जीवन-चरित्र के मुद्रण कार्य की देखभाल के लिये वैदिक-यन्त्रालय प्राय: आया करते थे। एक दिन पं० भगवान्स्वरूप जी न्यायभूषण ने उनसे कहा कि यदि ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका 'पुस्तक साइज' में (२०×३०/१६) छापी जाये तो सस्ती भी पड़ेगी और बिक्री भी अधिक होगी। इस पर सारडाजी ने कहा कि—ऋषिदयानन्द का जो ग्रन्थ जिस आकार में और टाइप में उनके जीवनकाल में छपा है, उसे उसी आकार वा टाइप में छापो, कुछ अदला-बदली नहीं करनी। न्यायभूषणजी ने सारडाजी से कहा अब तो वह पुराना टाइप नहीं है। इस पर सारडाजी ने कहा वही टाइप नया ढलवाओ। जिस समय यह बात-चीत हो रही थी, न्यायभूषणजी ने मुझे भी बुला भेजा। ऋषिदयानन्द के समय के टाइप में ही छापने की बात मेरे सामने हुई थी। इस पर मैंने सारडाजी से कहा—'आप अपने ग्रन्थ को तो नवीनतम डिजाइन के टाइप में छपवाते हैं और ऋषिदयानन्द के ग्रन्थों को उस समय के पुराने टाइपों में, जब मुद्रण कार्य प्रारम्भिक अवस्था में था, छपवाने का आदेश देते हैं, यह मेरी समझ में नहीं आ रहा है। मेरी बात को सुनकर सारडाजी गुस्से में आकर थर-थर कांपने लगे। न्यायभूषणजी ने मुझे चले जाने का संकेत किया। मैं उठकर चला गया। इतनी बात होने पर भी सारडाजी ने इसके सम्बन्ध में मुझे कभी कुछ नहीं कहा। यह भी उनकी उदारता को बताता है।

लाहौर जाना और बीमार होना—पूज्य गुरुजी ने यजुर्वेद-भाष्य विवरण के विशेष कार्य से एक महीने के लिये सन् १९४४ के अप्रेल या मई में मुझे लाहौर बुलाया। मैं जिस दिन लाहौर पहुंचा उसी दिन अपराह्न में ३-४ बजे ठंड देकर मुझे ज्वर हो गया।

म्यादी बुखार होना—सायंकाल को मैंने गुरुजी से कहा कि मुझे २१ दिन या २८ दिन का म्यादि बुखार हो गया है। इसकी चिकित्सा मैं स्वयं कर लूंगा। आप घबरावें नहीं। परन्तु अगले दिन गुरुजी ने स्वामी अनुभवानन्दजी, जो एक कुशल चिकित्सक थे और उन दिनों आश्रम में ही रहते थे, को बुलाकर दिखलाया। मैंने स्वामीजी से निवेदन किया कि मुझे म्यादी बुखार हो गया है मैं इसकी चिकित्सा स्वयं कर लूंगा आप औषध देने का कष्ट न करें। अनुभवानन्दजी ने कहा कि कल ही तो बुखार हुआ है तुम कह रहे हो कि म्यादी बुखार है। म्यादी बुखार का पता तो ५-६ दिन के पीछे लगता है। मैंने स्वामीजी से नम्रतापूर्वक कहा मुझे इस रोग के निदान में विशेषता प्राप्त है (द्र०—पूर्व पृष्ठ १९१) और मैं किसी भी बुखार वाले व्यक्ति को २-३ दिन पश्चात् निश्चित रूप से बता सकता हूं कि म्यादी बुखार है या नहीं ? और यदि है तो कितने दिन का है। परन्तु स्वामीजी पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। गुरुजी के कहने से उनकी औषध लेनी पड़ी। ५वें दिन स्वामीजी ने कहा कि तुम्हें म्यादी बुखार ही है, पर तुमने पहले ही दिन कैसे कह दिया, यह मेरी समझ में नहीं आया। और स्वामीजी ने कहा कि मेरे पास म्यादी बुखार की विशेष औषध है, जिससे आधे समय में ज्वर शान्त हो जाता है। मैंने स्वामीजी से हाथ जोड़कर निवेदन किया कि मुझे अपनी विशेष औषध न दें। मैं स्वयं ठीक हो जाऊंगा। इस पर भी स्वामीजी ने अपनी विशेष औषध दी, जिसकी मुझे आशा नहीं थी क्योंकि उन्हें हाथ जोड़कर न देने के लिये मैं कह चुका था।

मैं विश्वास करके स्वामीजी की दवा लेता रहा। ११वें दिन रात को बहुत पसीना आया, ज्वर एकदम उतर गया। तबीयत बहुत घबराने लगी। ऐसा प्रतीत होने लगा कि संभवतः जीवन का अन्त हो जायेगा। परन्तु इस अवस्था में भी मैंने गुरुजी को यह सोचकर नहीं बताया कि वे घबरा कर स्वामीजी को कहेंगे और वे फिर कोई दवा दे देगें। उससे तो निश्चय ही मृत्यु हो सकती है। मैं उक्त कष्टमय अवस्था में लगभग २४ घण्टे रहा। अन्त में कुछ प्रकृति ठीक हुई, परन्तु कमर से नीचे का भाग सुन्न हो गया। उसके पश्चात् स्वामीजी जो भी औषध देते मैं उसको फैंकता रहा। बहुत कठिनाई से लगभग एक मास पश्चात् वापस अजमेर लौटने की स्थिति में आया। और अजमेर आकर ज्वर जल्दी तोड़ देने के कारण कमर के नीचे के भाग में जो रोग का विकार रह गया था तथा रक्त संचार ठीक प्रकार से नहीं होता था, उसके लिये स्वयं चिकित्सा की परन्तु विशेष लाभ नहीं हुआ।

पुनः म्यादी बुखार होना—६ महीने पश्चात् पुनः म्यादी बुखार हुआ जो २८ दिन तक बना रहा। उस काल में स्वयं ही अपनी चिकित्सा की। उससे पैरों में

जो सुन्नता थी वह पर्याप्त मात्रा में दूर हो गई । इस रोग का जो विकार पैरों में शेष रह गया था उसका प्रभाव बहुत वर्षों तक नगण्य सा रहा । कभी-कभी ४-६ महीने में कभी-कभी रात में पैरों में तनाव और दर्द हो जाता था । परन्तु सन् १९७८ के अक्टूबर मास के अन्त में जब मुझे 'उपान्त्रशोथ' (अपैण्डिक्स) का रोग हुआ उसमें निर्बलता अत्यधिक बढ़ जाने पर चिरकाल से दबा हुआ रोग प्रकट हो गया । और तब से लेकर अब तक बराबर रात्रि में दोनों पैरों में दर्द होता है और रातभर मैं नहीं सो पाता । मेरे दोनों गुर्दे चिरकाल से खराब हैं । इसलिये उक्त रोग की निवृत्ति के लिये मैं कोई ऐसी औषध का सेवन नहीं कर सकता जिसमें पारद और धातुओं की भस्मों का योग हो । साधारण काष्ठादि औषधि से कुछ लाभ नहीं हुआ । यह आमरण व्याधि बन गई है । इससे दोनों पैर अति निर्बल हो गये हैं । गत वर्ष (१९८७) से चलना फिरना भी बन्द हो गया है ।

ऋषिदयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास—पं० महेशप्रसादजी मौलवी आलिम फाजिल द्वारा ऋषिदयानन्द के ग्रन्थों के सम्बन्ध में लिखी गई पुस्तिकाओं को पढ़कर मेरे मन में विचार उत्पन्न हुआ कि ऋषिदयानन्द के समस्त ग्रन्थों के सम्बन्ध में ऐतिहासिक सामग्री संकलित करनी चाहिये । परोपकारिणीसभा के पुस्तकालय में ऋषिदयानन्द के बहुत से ग्रन्थों के प्रथम संस्करण विद्यमान थे । सन् १९३५ के नवम्बर और दिसम्बर मास में अजमेर जाकर गुरुजी ने ऋषिदयानन्द के ग्रन्थों के हस्तलेखों को व्यवस्थित करते हुए उनके जो विवरणात्मक नोट लिखे थे, वे भी हमारे पास विद्यमान थे । अतः परोपकारिणीसभा के दैनिक कार्यकाल के पश्चात् घर पर बैठकर ऋषिदयानन्द के ग्रन्थों के इतिहास की पाण्डुलिपि तैयार की । कुछ काल पश्चात् ही परोपकारिणीसभा ने सत्यार्थप्रकाश के १४वें समुल्लास के संशोधन के लिये पं० महेशप्रसादजी को अजमेर बुलाया । वे लगभग १०-१२ दिन अजमेर रहे । इस अवसर पर मैंने अपनी लिखी ऋषिदयानन्द के ग्रन्थों के इतिहास की पाण्डु-लिपि उन्हें दिखाई और उसमें संशोधन परिवर्धन करने की प्रार्थना की । उन्होंने पाण्डुलिपि देखकर उसमें संशोधन आदि करने का भार स्वीकार किया । मैंने कुछ समय पीछे पाण्डुलिपि की स्वच्छ प्रति बनाकर उनके पास बनारस भेजी । उस पर उन्होंने अनेक सुझाव लिखकर पुस्तक लौटा दी ।

अन्य कार्य—अजमेर में रहते हुए मैंने **संस्कृत-व्याकरण-शास्त्र का इतिहास** के प्रथम भाग की स्वच्छ कापी तैयार की । इसमें प्रथम अध्याय अजमेर में रहते हुए ही लिखा गया । नये अध्याय को जोड़ने की घटना इस प्रकार है—

किसी पत्रिका में मैंने श्री पं० बेचरदास दोशी लिखित 'गुजराती भाषानी

उत्क्रान्ति' पुस्तक की सूचना पढ़ी और मैंने वी० पी० से पुस्तक मंगवाई। पुस्तक का प्रथम भाग पढ़कर मेरे आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रही। हम सदा से मानते आये हैं कि वैदिक-भाषा और लौकिक संस्कृत भिन्न-भिन्न हैं, तथा लौकिक संस्कृत से प्राकृत भाषा उत्पन्न हुई है (**प्रकृतिः संस्कृतम्**—हेमचन्द्राचार्य)। इस ग्रन्थ में लेखक ने पाणिनीय व्याकरण के वेद-विषयक लगभग १०० सूत्र देकर यह सिद्ध किया है कि प्राकृत से वैदिक भाषा उत्पन्न हुई और उससे लौकिक संस्कृत। सप्रमाण सोदाहरण लिखित तथ्य से मैं आंखें बन्द करके नहीं बैठ सकता था। मुझे इस समस्या को सुलझाने में लगभग दो वर्ष लगे और मैं इस निर्णय पर पहुंचा कि वैदिक-लौकिक संस्कृत का भेद औत्तरकालिक है। आरम्भ में वैदिक पद भाषा में प्रयुक्त होते थे उन्हीं भाषा में प्रयुक्त वैदिक पदों से प्राकृत भाषा की उत्पत्ति हुई।

सभा के कार्य से त्यागपत्र देना—श्री मन्त्री हरविलासजी सारडा के नियन्त्रण से ऋषिदयानन्द के ग्रन्थों का यथावत् सम्पादन न कर सकने के कारण अपने समय का दुरुपयोग होते देखकर मैंने परोपकारिणीसभा के कार्य से सन् १९४५ के मध्य में त्यागपत्र दे दिया। मन्त्रीजी ने मुझे बुलाकर कहा कि तुम यहीं रहो। यहां जैसा स्थान दूसरा मिलना कठिन है। मैंने अपनी सेवा का सदुपयोग न होने की बात उनसे कहकर त्यागपत्र स्वीकार करने को कहा, जो उन्होंने अन्त में स्वीकार कर लिया।

पुनः लाहौर लौटना--जब मैं परोपकारिणीसभा के कार्य से त्यागपत्र देने की सोच रहा था तो मैंने भगवद्दत्तजी को इस विषय में पत्र लिखा था। उन्होंने उत्तर दिया कि तुम मेरे पास आ सकते हो। १०० रुपये मासिक का प्रबन्ध मैं कर दूंगा। संभवतः मेरे लाहौर लौटने की बात गुरुजी को पं० भगवद्दत्तजी से ज्ञात हुई होगी। गुरुजी ने श्री बाबू रूपलालजी कपूर से विचार करके ११० रुपया मासिक पर अपने पास ही कार्य करने के लिये मुझे लिखा। तदनुसार मैं १९४५ के मध्य में किसी समय गुरुजी के पास लाहौर पहुंच गया।

लाहौर पहुंच कर कुछ समय शाहदरा स्टेशन के पास नई बस्ती में मकान लेकर रहा। ७-८ महीने पीछे लाहौर के 'ग्वालमण्डी' मोहल्ले में किराये पर मकान लेकर रहने लगा और अन्त तक वहीं रहा। इस बार लाहौर पहुंच कर 'संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास' के प्रथम भाग की जो पाण्डुलिपि अजमेर रहते हुए लिखी थी, उसकी संशोधित कापी तैयार की। इस कार्य में श्री पं० भगवद्दत्तजी ने बहुत सहयोग दिया। मैं प्रत्येक अवकाश के दिन उनके पास 'माडल टाउन' पहुंच जाता था और अपने कार्य की प्रगति उन्हें दिखाता, वे उसमें कुछ संशोधन वा

परिवर्तन आदि करते। इस प्रकार व्याकरण-शास्त्र के इतिहास के प्रथम भाग का लेखन कार्य चलता रहा। इस भाग की प्रेस कापी १६४६ के अन्त तक तैयार हो गई थी।

मुद्रण—व्याकरण-शास्त्र के इतिहास के प्रथम भाग को प्रकाशित करने का भार पं० भगवद्दत्तजी ने अपने ऊपर लिया और आश्रम के साथ ही 'पञ्चनद पैन फैक्टरी' में ही स्थित 'पञ्चनद प्रेस' में इसके छपने की व्यवस्था की। पञ्चनद प्रेस में पं० भगवद्दत्तजी द्वारा सम्पादित 'ऋषिदयानन्द के पत्र और विज्ञापन' तथा 'भारतवर्ष का इतिहास' भी छपा था। और ऋग्वेद-भाष्य का परिमार्जित हिन्दी अनुवाद छप रहा था।

बृहस्पति को गुरुकुल भेजना—मेरे लाहौर पहुंचने के समय ही अमृतसर के पास 'निक्की सुंइयां' ग्राम में पूज्य गुरुजी के देखरेख में अमृतसर के कतिपय आर्यों ने एक गुरुकुल खोला था। उसके पं० ज्योतिस्वरूपजी आचार्य थे। मैंने अपनी ब्राह्मणोचित परम्परा को जारी रखने के विचार से बृहस्पति को निक्की सुंइयां के गुरुकुल में प्रविष्ट करा दिया। वहां रहते हुए बृहस्पति के सिर में फोड़े-फुंसियां निकल आईं। वहां चिकित्सा से लाभ न होने पर उसे मैंने लाहौर बुला लिया। बहुत समय तक जर्राहों (फोड़े फुंसी और चोट आदि की चिकित्सा करने वाले) की दवा कराई। जब तक दवा चलती, लाभ प्रतीत होता, दवा बन्द करने पर पुनः निकल आते। अन्त में अपनी सूझ-बूझ से उसे आंवले रात को भिगोकर प्रातः मल कर मीठा मिलाकर पिलाना आरम्भ किया। उससे १५ दिन में ही फोड़े फुंसी ठीक हो गये। पुनः नहीं हुए। बृहस्पति को वापस गुरुकुल भेजना चाहता ही था कि देश-विभाजन का क्रम आरम्भ हो गया। और अन्त में लाहौर छोड़ना पड़ा। इस प्रकार बृहस्पति को मैं अपनी पद्धति से संस्कृत पढ़ाने में असमर्थ रहा।

देश विभाजन के पूर्व लक्षण—सन् १६४७ के आरम्भ से ही पाकिस्तान बनने की आशङ्का उत्पन्न हो गई थी। इस समय सिक्खों के नेता मास्टर तारासिंह भी पाकिस्तान के अन्तर्गत खालिस्तान के निर्माण के लिये प्रयत्न कर रहे थे। उनकी जालन्धर से लेकर लायलपुर तक खालिस्तान बनाने की योजना थी। इसके लिये वे मि० जिन्ना से कई बार मिल चुके थे, परन्तु जिन्ना ने जब मा० तारासिंह की योजना से स्पष्ट इन्कार कर दिया तो ४ मार्च को मास्टर तारासिंह ने लाहौर में एक जोशीला भाषण दिया और उसमें तलवार घुमाकर कहा कि हम तलवार के बल पर खालिस्तान बनायेंगे। इस घटना के पश्चात् ही लाहौर में मुसलमानों की ओर से मारकाट आरम्भ हुई। जिसमें अधिकतर सिक्ख ही मारे गये। धीरे-धीरे

यह उपद्रव बढ़ता गया। उससे दैनिक कार्यों में भी बाधायें आने लगीं। पञ्चनद प्रेस में कार्य करने वाले व्यक्ति शहर से आते थे। अतः जब भी मारकाट अधिक होती थी कार्यकर्त्ताओं के न आने के कारण प्रेस प्रायः बन्द रहती थी। इस कारण लगभग ६ महीने में संस्कृत व्याकरण-शास्त्र के इतिहास के केवल १५२ पृष्ठ ही छप पाये।

हिन्दु मुसलमानों में हिंसा-प्रतिहिंसा—जब हिन्दु मुसलमानों में आपस में मारकाट व्याप्त हो गई, तब शहर में हिन्दु मुसलमानों ने अपने-अपने मोहल्लों में मोर्चा बांधकर रात्रि में चौकसी का विशेष प्रबन्ध किया। प्रायः प्रतिदिन ही कभी हिन्दुओं के मोहल्ले में और कभी मुसलमानों के मोहल्ले में आगजनी की घटनायें होने लगीं। इन दिनों हम 'ग्वालमण्डी' में रहते थे, जो तीनों ओर से मुसलमानों से घिरा था। सर्वदा आशङ्का की स्थिति बनी रहती थी। इस कारण मैं रात में व्याकरण-शास्त्र के इतिहास के छपे फार्म और शेष हस्तलिखित कापी अपने सिर के नीचे रख कर सोया करता था, जिससे अचानक घर छोड़कर भागना पड़े तो कम से कम इसे साथ रखा जाये। इससे भी अधिक विकट परिस्थिति जिसमें घर छोड़कर भागना भी कठिन हो उस समय के लिये 'संखिया' की डली पास में रखता था जिससे समय पर सबको खिलाया जा सके और कोई परिवार का जन जीवित मुसलमानों के हाथ न पड़े।

यशोदा और बच्चों को गांव भेजना—इतनी तनावपूर्ण स्थिति में भी मैं प्रतिदिन शहर से आश्रम साइकिल से आता-जाता था। मार्ग में आते-जाते सड़क पर कभी-कभी किसी की लाश भी दिखाई पड़ जाती थी। ऐसी परिस्थिति में प्रतिदिन शहर से आश्रम जाना और वापस आना खतरे से खाली नहीं था। अतः मैंने मई के प्रारम्भ में यशोदा को और दोनों बच्चों को गांव भेज दिया और सारा सामान भी सवारी गाड़ी से बुक करा दिया। इसके पश्चात् मैं अकेला आश्रम पर रहने लगा। कभी-कभी स्थिति शान्त होने पर शहर के मकान पर हो आया करता था।

मेरा गांव जाना—यशोदा के गांव जाने के कुछ दिन पश्चात् उसकी एक आंख दुःखने आई तो गांव के किसी व्यक्ति ने फिटकरी घिसकर आंख में डालने को कह दिया। उसने फिटकरी को फुलाकर डालने का निर्देश नहीं किया था, इसलिये कच्ची फिटकरी ही पानी में घिस कर १-२ बूंद आंख में डाल दी। इससे आंख में फोला पड़ गया और ज्योति मन्द हो गई। यशोदा ने आंख खराब होने की सूचना मुझे दे दी। मैं जुलाई के प्रारम्भ में गांव गया। अजमेर लेजाकर डाक्टर को दिखाया।

उसने कहा इसका कोई इलाज नहीं हो सकता। कुछ दिन गांव रहकर १५ जुलाई को मैं वापस लाहौर पहुंच गया।

पं० नेहरु का हिन्दुओं को झूठा आश्वासन—पं० नेहरु ने पश्चिमी पञ्जाब में जाकर अपने भाषणों में वहां के हिन्दुओं को बार-बार आश्वासन दिया कि पाकिस्तान बनने पर भी हम हिन्दुओं के जानमाल की सुरक्षा करेंगे। कोई भी हिन्दु यहां से पलायन न करे। इस आश्वासन पर अधिकतर हिन्दु पाकिस्तान की घोषणा हो जाने पर भी पश्चिम पञ्जाब में अपने घरों में निश्चिन्त बैठे रहे, परन्तु पं० नेहरु ने या भारत सरकार ने अपने आश्वासन को पूरा नहीं किया। इसके फलस्वरूप ही पाकिस्तान में हिन्दुओं के जानमाल की भीषण क्षति हुई। यदि पण्डित नेहरु आश्वासन न देते और हिन्दु समय रहते पश्चिम पञ्जाब से निकल आये होते तो उनके जानमाल की इतनी हानि न होती।

लाहौर में राष्ट्रियस्वयंसेवक-संघ का कार्य—लाहौर में जब हिन्दु मुसलमानों की मारकाट शुरू हुई तो आरम्भ में दो मास मुसलमानों का प्राबल्य रहा। मुसलमानों के विरोध में तथा हिन्दुओं की रक्षा में राष्ट्रिय स्वयं सेवक-संघ की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। इस कारण मई में पासा पलट गया। हजारों मुसलमान लाहौर छोड़कर भाग गये। कोई भी टांगेवाला मुसलमान दिन में भी हिन्दुओं के मोहल्ले में सवारी लेकर नहीं जाता था। हिन्दुओं को भी यही आशा थी कि पाकिस्तान बनने पर भी उसकी सीमा सामान्य नियम के अनुसार प्राकृतिक रूप में रावी नदी रहेगी इससे लाहौर हिन्दुस्तान में सम्मिलित होगा।

राष्ट्रियस्वयंसेवक-संघ का सहयोग—हिन्दुओं की रक्षा के लिये अनुशासित राष्ट्रिय स्वयं सेवकसंघ के कार्यकर्त्ताओं के आगे आने पर समस्त हिन्दुओं ने उसे यथाशक्ति सहयोग दिया। रामलाल कपूर की 'पञ्चनद पैन फैक्टरी' में इस काल में लड़ाई में काम आनेवाले छुरे, भाले, बम आदि का निर्माण करके राष्ट्रिय स्वयं सेवक संघ को भेजे जाते थे। इनको यथास्थान पहुंचाने का कार्य आश्रम का वेदव्रत नामक प्रज्ञाचक्षु छात्र बड़ी कुशलता पूर्वक किया करता था। छात्र वेदव्रत झोले में छुरे आदि रखकर ले जाया करता था उसके अन्धे होने के कारण किसी को उस पर कभी सन्देह नहीं हुआ। एक बार बम के परीक्षण के समय विस्फोट की ध्वनि रावी पार 'रावी रोड़ थाने' तक (लगभग १ मील से ऊपर) पहुंची। इसको सुनकर पहले आश्रम के पास रहने वाले फकीरसिंह सरदारजी जिनका रावी के किनारे फलों का बड़ा बाग था तथा जो आश्रम के हितेच्छुक थे दौड़े-दौड़े आये। उनको सारी बात बता दी, वे अभी अपने स्थान पर पहुंचे ही थे कि रावी रोड़ के

थानेदार २-३ सिपाहियों के साथ उनके यहां पहुंचे और विस्फोट की आवाज के बारे में पूछताछ की। सरदारजी ने कहा कि आवाज सुनकर मैं भी वहां पहुंचा था जहां से आवाज आई थी। तहकीकात करने पर पता चला कि ट्रक के ट्यूब टायर फटने की आवाज थी। थानेदार ने कहा ट्यूब टायर फटने की इतनी जोर की आवाज तो होती नहीं है जो हमारे थाने तक पहुंचे। सरदारजी ने कहा आपने जो आवाज सुनी वह किसी और की होगी। आप मेरे ऊपर विश्वास रखें कि इस इलाके में कोई भी किसी प्रकार की गड़बड़ी नहीं है। सरदारजी के विश्वास दिलाने पर थानेदार वापस चला गया।

भयंकर कैप्सूलों का निर्माण—उक्त फैक्टरी में ही एक ऐसे रासायनिक कैप्सूल का निर्माण किया गया, जिसका अङ्ग के साथ स्पर्श होने पर उसका घाव सामान्य चिकित्सा से नहीं भरता था। एक बार कैप्सूल में रासायनिक पदार्थ भरते हुए गुरुजी के जांघ पर भी कुछ भाग गिर गया था, जिससे उत्पन्न हुआ घाव कई दिनों में उपयुक्त चिकित्सा करने पर ठीक हुआ।

आश्रम के चारों ओर कांटेदार तार लगे हुए थे। अचानक हमला होने की अवस्था में उनमें विद्युत् सञ्चार की व्यवस्था की हुई थी।

पुस्तकालय को फगवाड़ा भेजना—१५ जुलाई को जब मैं वापिस आश्रम पहुंचा, तब गुरुजी को और ट्रस्ट के अधिकारियों को समझाने का प्रयत्न किया कि आश्रम के पुस्तकालय को यहां से स्थानान्तरित कर दिया जाये। परन्तु कई दिन तक मेरे प्रस्ताव को इसलिये स्वीकार नहीं किया कि लाहौर तो भारत में रहेगा ही। पर फिर मैंने कहा कि एक थोड़े से खर्च के लिये आपलोग पुस्तकालय को सन्दिग्ध अवस्था में क्यों रखना चाहते हैं? यदि लाहौर पाकिस्तान में चला गया तो सारा पुस्तकालय यहीं छूट जायेगा। निरन्तर प्रयत्न करने पर पुस्तकालय 'फगवाड़ा' भेजना स्वीकृत हुआ। २० जुलाई से लकड़ी की पेटियां बनाना और पुस्तकों को उसमें जमाना आदि कार्य आरम्भ किया. २७ जुलाई तक पुस्तकालय की समस्त पुस्तकें पेटियों में बन्द कर दीं। मेरा सुझाव था कि पुस्तकों को सवारी गाड़ी से लाहौर स्टेशन से रवाना किया जाये, जिससे उसी दिन अमृतसर पहुंच जायें। मेरा यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया गया और मालगाड़ी से शाहदरा स्टेशन से २९ जुलाई को पुस्तकें भेजी गईं। उसका जो फल हुआ उसकी चर्चा आगे होगी।

पुस्तकालय का बीमा कराना—लाहौर में आगजनी आदि की घटनायें आरम्भ होते ही आश्रम के पुस्तकालय का दस हजार का बीमा करा दिया था। पुस्तकें

भेजते समय, जिन पुस्तकों की दो दो प्रतियां थीं उनमें से एक-एक प्रति ही बाहर भेजी गई, शेष आश्रम में रहीं।

लाहौर का पाकिस्तान में जाने का निश्चय—संभवतः जुलाई के अन्तिम दिनों में ब्रिटिश सरकार ने यह निर्णय घोषित किया कि लाहौर पाकिस्तान में रहेगा और पाकिस्तान तथा हिन्दुस्तान की सीमा रावी की नहर को बनाया जायेगा। इस घोषणा से हिन्दुओं में बहुत मायूसी छा गई और जो मुसलमान लाहौर छोड़कर भाग गये थे, वापस लाहौर आने लगे। मैंने गुरुजी से भी बहुत कहा कि आश्रम के विद्यार्थियों को लेकर समय रहते अमृतसर या अन्यत्र सुरक्षित स्थान पर चले जायें परन्तु वे इसके लिये तैयार नहीं हुए।

मेरा लाहौर छोड़ना—जबसे पाकिस्तान बनने की विधिवत् घोषणा हो गई थी तबसे मारकाट बहुत बढ़ गई थी। स्थान-स्थान पर गाड़ियां रोककर हिन्दुओं को कत्ल किया जा रहा था। ऐसी विषम स्थिति में मैं एक छात्र को साथ लेकर शाहदरा स्टेशन से रेल में बैठकर लाहौर अपने ग्वालमण्डी वाले घर पहुंचा। वहां से अवशिष्ट लेने योग्य थोड़ा सा सामान लेकर स्टेशन के लिये रवाना हुआ। स्टेशन पहुंचने के लिये मुसलमान का ही तांगा मिला। वह ग्वालमण्डी से हांकर 'शाह आलमी' दरवाजे के बाहर वाले रेलवे रोड़ से स्टेशन पहुंचाना चाहता था। मैंने उसे दूसरे रास्ते से चलने को कहा, क्योंकि रेलवे रोड़ के साथ जो बगीचा था वहां पर छिपे हुए मुसलमान तांगों को रोककर हिन्दुओं को मार देते थे। इस पर तांगे वाले ने कहा आप जिस मार्ग से जाना चाहते हैं, उस रास्ते में हिन्दु मुसलमानों में मारकाट हो रही है। आप मेरे ऊपर विश्वास रखें। मैं बेशक मुसलमान हूं, परन्तु मुझे भी अपने बीवी-बच्चों को पालना है। अन्त में उसी की इच्छानुसार शाह आलमी दरवाजे के बाहर के रेलवे रोड़ से स्टेशन पर जाना पड़ा। मार्ग में बगीचे में से २-३ गुण्डों ने तागां रोकने को कहा। तांगेवाले ने तांगा धीमा कर दिया, जिससे गुण्डे आश्वस्त हो गये कि तांगा रुक रहा है, परन्तु गुण्डे जब तक तांगे के समीप पहुंचे उससे पूर्व ही तांगेवाले ने घोड़े को सरपट दौड़ाकर मुझे उस दुर्घटना से मुक्ति दिलाई। स्टेशन पहुंचकर ६ रुपये के बदले दस रुपये तांगेवाले को दिये। मेरे बहुत कहने पर भी उसने निश्चित किये किराये (६ रुपये) से अधिक नहीं लिये। उस तांगेवाले की मानवता को स्मरण करके आज भी रोमाञ्च होता है। वस्तुतः इसी प्रकार के खुदा से डरने वाले मुसलमानों ने लाहौर में सैकड़ों हिन्दु परिवारों की जान बचाई।

स्टेशन पहुंचने पर दिल्ली जानेवाली स्पेशल गाड़ी तैयार मिली। वह खचाखच

भरी हुई थी। किसी तरह उसमें स्थान मिला। स्टेशन के प्लेटफार्म पर जगह-जगह खून के निशान दिखाई पड़े। पूछने पर मालूम हुआ कि २ घण्टे पहले ही पश्चिम से आई हुई गाड़ी के हिन्दुओं को प्लेटफार्म पर मार डाला गया था। बड़ी सतर्कता से सफाई करने पर भी जगह-जगह खून के निशान बचे हुए थे। इस घटना से सहमे हुए यात्रियों ने सभी खिड़कियां बन्द कर दी थीं। गरमी के मारे अत्यन्त बेचैनी होने पर भी डर के मारे किसी ने कोई खिड़की नहीं खोली। थोड़ी देर की प्रतीक्षा के बाद ही गाड़ी स्टेशन से चल दी, परन्तु मार्ग में पड़ने वाले स्टेशनों पर भी कहीं हत्यायें हो सकती हैं इस डर से सभी यात्री सहमे हुए बैठे रहे। किसी प्रकार जब गाड़ी पाकिस्तान की हद को छोड़कर हिन्दुस्तान की हद में प्रविष्ट हुई तब सब यात्रियों ने अपना पुनर्जन्म हुआ माना। इस प्रकार मैं २ तारीख को लाहौर से चलकर ४ तारीख को गांव पहुंच गया।

देश-विभाजन के समय घटी कुछ घटनायें—देश विभाजन से पूर्व राष्ट्रिय स्वयं सेवकसंघ के पूर्ण अनुशासित व्यक्ति सम्पूर्ण भारत में सक्रिय थे। उन्होंने पश्चिम पञ्जाब, जो पाकिस्तान के नाम से पृथक् हुआ, के हिन्दुओं की जानमाल की सुरक्षा में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इसे उस समय के भुक्तभोगी या प्रत्यक्ष-द्रष्टा ही जानते थे। सम्प्रति मेरी भी यही धारणा है कि जब कभी हिन्दुओं पर किसी प्रकार का कोई संकट उपस्थित होगा तो केवल एक यही दल है जो हिन्दुओं की रक्षा के लिये आगे आयेगा। कांग्रेसी तो वोटों की प्राप्ति के लिये प्रायः देश-द्रोहियों के हाथ बिक चुके हैं। आर्यसमाज स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् प्रायः निष्क्रिय हो चुका है।

पञ्जाब नेशनल बैंक का सराहनीय कार्य—पञ्जाब नेशनल बैंक में उस समय राष्ट्रिय स्वयं सेवकसंघ तथा आर्यसमाज के कार्यकर्त्ताओं का आधिक्य था। इस बैंक में पश्चिमी पाकिस्तान के हिन्दुओं के करोड़ों रुपये जमा थे। ज्योंही पाकिस्तान की स्थापना की घोषणा हुई, पञ्जाब नैशनल बैंक के तत्कालीन अधिकारियों ने चुपचाप एक महत्त्वपूर्ण कदम उठाया। पश्चिमी पंजाब के जिन लोगों के खाते पंजाब नैशनल बैंक में कहीं पर भी थे उन खातेदारों के नाम से 'अपने खाते हिन्दुस्तान में विभिन्न स्थानों पर परिवर्तित करने का आज्ञापत्र' बनाकर, उनके खाते हिन्दुस्तान में समय से पूर्व ही परिवर्तित कर दिये। इस सूझ-बूझ से हिन्दुओं के करोड़ों रुपये पाकिस्तान में छूटने से बच गये। और जो खातेदार भारत में पहुंच गये थे, उन्हें ढूंढकर उनको उनके खाते के परिवर्तन की सूचना दी। यह बात पंजाब नैशनल बैंक के एक वरिष्ठ व्यक्ति ने पूज्य गुरुजी को बताई थी।

गुरुजी को मुसलमानों का आश्वासन—जब पश्चिमी पञ्जाब में हिन्दु लूटे और मारे जा रहे थे, तब गुरुजी ने आसपास के मुस्लिम बहुल ग्रामों के मुखियों को आश्रम पर बुलाया (आसपास के गांव वाले मुसलमान गुरुजी पर बहुत श्रद्धा रखते थे) और उनसे कहा कि आपलोग कहो तो हमलोग यहां से चले जायं। सभी ग्रामवासियों ने उन्हें विश्वास दिलाया कि आपको जाने की आवश्यकता नहीं है। हम अपनी जान की बाजी लगाकर भी आपकी रक्षा करेंगे। इस आश्वासन के कारण गुरुजी विद्यार्थियों सहित निश्चिन्त होकर आश्रम में हीं डटे रहे। १६ या २० अगस्त को कुछ ग्रामवासियों ने आकर गुरुजी से कहा—'गुरुजी अब आप शीघ्र ही यहां से निकल जायें। हिन्दुस्तान से मार खाकर जो मुसलमान आ रहे हैं, उनसे हम आपको नहीं बचा पायेंगे।' इस पर गुरुजी ने लाहौर में सुरक्षा शिविर के अधिकारियों को सूचित किया। सुरक्षा अधिकारी १ट्रक के साथ ४-५सिपाहियों को साथ लेकर २१को आश्रम पर पहुंच गये। सब छात्रों को और गुरुजी को ट्रक में बिठाया गया। जो अधिकारी ट्रक के साथ आया था,उसको शाहदरा में फंसे हुए हिन्दुओं को साथ लाने का भी आदेश था। अतः शाहदरे में फंसे हुए कुछ हिन्दु परिवारों को लेकर ट्रक लाहौर की ओर चल पड़ा। रावी का पुल पार करने के पश्चात् ही सड़क के दोनों ओर बीसियों स्त्री-पुरुषों की लाशें पड़ी हुई दिखाई दीं। पता करने पर ज्ञात हुआ कि पश्चिमी पञ्जाब से हिन्दुओं के ट्रक भरे हुए आये थे, उन्हें यहां रोककर मुसलमानों ने सब हिन्दुओं को मार दिया। गुरुजी मय छात्रों के तथा अन्य हिन्दु परिवारों के साथ डी० ए० वी० कालेज के प्राङ्गण में लगे सुरक्षा-शिविर में पहुंचाये गये और वहां से १-२ दिन पीछे अमृतसर पहुंचे।

पं० विश्वबन्धुजी का महत्त्वपूर्ण कार्य—डी० ए० वी० कालेज के प्राङ्गण में सुरक्षा-शिविर लगाये जाने के कारण वहां का पुस्तकालय सर्वथा सुरक्षित था। इस पुस्तकालय में सहस्रों मुद्रित पुस्तकों के अतिरिक्त लगभग ६-७ हजार दुर्लभ हस्तलेख थे और पं० विश्वबन्धुजी के द्वारा बनाये जा रहे 'वैदिक पदानुक्रमकोष' की चिटों से भरे कई बोरे थे। '**न संशयमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति**' सुभाषित के अनुसार पं० विश्वबन्धुजी ने शिविर में इकट्ठे हुए हिन्दुओं को लेकर जो ट्रक अमृतसर जाते थे, उनमें पुस्तकालय की पुस्तकें आदि नीचे रखकर ऊपर सवारियों को बैठा देते थे। इससे बिना किसी अड़चन के शनैः शनैः पुस्तकालय की सभी पुस्तकें और पण्डितजी के कोष सम्बन्धी कागज भारत में पहुंच गये। यह विश्वबन्धुजी का ऐसा महत्त्वपूर्ण कार्य था, जिसे उस समय के जानकार उन्हें साधुवाद देते थे।

गुरुदत्तभवन के पुस्तकालय की दुर्दशा—गुरुदत्तभवन लाहौर का पुस्तकालय भी

अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। उसमें आर्यसमाज से सम्बद्ध प्राचीन ग्रन्थों एवं पत्र-पत्रिकाओं का अभूतपूर्व सग्रह था। गुरुकुल विभाग के अधिकारियों ने इसकी सुरक्षा की ओर किञ्चित् भी ध्यान नहीं दिया, अन्यथा यह संग्रह भी भारत लाया जा सकता था। गुरुदत्तभवन में हिन्दुस्तान से गये हुए मुसलमानों का शिविर लगाया गया। उन्होंने पुस्तकालय की पुस्तकों का रोटी सेकने और चाय बनाने में खुलकर उपयोग किया।

व्यापारियों के गुम हुए सामान की उपलब्धि का प्रयत्न—लाहौर और पश्चिमी पञ्जाब के अनेक व्यापारियों का पाकिस्तान क्षेत्र से भेजा गया करोड़ों रुपये का सामान जब ६ महीने तक भी अमृतसर या अन्यत्र, जहां के लिये बुक कराया था, नहीं पहुंचा तो व्यापारी लोग बहुत निराश हुए। अन्त में उन्होंने पांच सौ रुपये दैनिक पर एक अंग्रेज सार्जेन्ट को इस बात के लिये नियत किया कि वह पाकिस्तान में घूम-घूम कर जहां कहीं भी उनका माल पड़ा हो, उसे हिन्दुस्तान पहुंचाये। मुसलमान कर्मचारी, विशेषकर लाहौर के, मालगाड़ी के जिन डिब्बों के ऊपर हिन्दुस्तान के किसी शहर का लेबल लगा हुआ देखते तो उसे हटा कर पाकिस्तान के किसी शहर का लेबल लगा कर इधर-उधर रवाना कर देते थे। हमारे पुस्तकालय की पुस्तकें भी इसी षड्यन्त्र का शिकार हुईं। अंग्रेज सार्जेन्ट ने नेक नियत से पाकिस्तान के विविध स्टेशनों पर जाकर मालगाड़ी के डिब्बे खुलवाकर माल को देखकर बहुत सा सामान हिन्दुस्तान में भिजवाया। उसी प्रयत्न में हमारी पुस्तकें भी किसी प्रकार फगवाड़ा पहुंच गईं। इस कार्य में लगभग साल भर लग गया।

बीमे की रकम की प्राप्ति–रामलाल कपूर ट्रस्ट के मन्त्रीजी ने जिस बीमा कम्पनी में पुस्तकालय की पुस्तकों का १० हजार का बीमा कराया था, उसमें प्रार्थना-पत्र दिया। बीमा के अधिकारियों ने ट्रस्ट के एक व्यक्ति को साथ लेकर अपने २-३ कर्मचारी रावी पार शाहदरा जांच करने के लिये भेजे। वहां कुछ शरणार्थी मुसलमान ठहरे हुए थे। बीमा कर्मचारियों को प्रमाण के रूप में पुस्तकों के फटे हुए तथा अधजले पृष्ठ यत्र तत्र उपलब्ध हुए। इस आधार पर बीमा कम्पनी ने पुस्तकालय के बीमे की रकम कुछ काल पश्चात् दे दी।

पं० भगवद्दत्तजी को पुस्तकालय के पुस्तकों की उपलब्धि—पं० भगवद्दत्तजी २-३ मास पूर्व ही सपरिवार देहरादून चले गये थे। उसके पीछे उनका लाहौर जाना नहीं हुआ। उनका अपना निजी पुस्तकालय और ऋषिदयानन्द के नाम अन्य व्यक्तियों द्वारा लिखे गये लगभग ४००-५०० पत्रों का संग्रह उनके माडल टाउन स्थित गृह में ही रह गया था। पुस्तकों के अभाव में उनको अपने कार्य में बहुत

कठिनाई होती थी। बहुत सी पुस्तकें ऐसी थीं जो उन्हें दिल्ली में किसी पुस्तकालय में भी देखने को नहीं मिलती थीं। माडलटाउन में ही एक यूरोपियन महिला रहती थी। उसका सालभर पश्चात् एक पत्र पण्डितजी को मिला। पण्डितजी ने उत्तर में लिखा कि यदि मेरे घर में पुस्तकें सुरक्षित हों तो कृपा करके उन्हें किसी प्रकार दिल्ली भिजवाने का कष्ट करें। उस महिला ने पण्डितजी के घर जाकर (जिसमें बाहर से आया परिवार रहता था) पुस्तकालय की जो पुस्तकें सुरक्षित मिलीं उन्हें उसने पण्डितजी के पास भिजवा दिया। पण्डितजी इस महिला का (मुझे नाम स्मरण नहीं रहा) अन्त तक यशोगान करते रहे।

देश विभाजन के पश्चात्

कुछ समय काशी रहना—देशविभाजन के पश्चात् गुरुजी ने अमृतसर पहुंच कर सभी छात्रों को उनके घर भेज दिया। उस समय अमृतसर की जो स्थिति थी उससे रामलाल कपूर परिवार के सभी सदस्य भयभीत थे। बहुत सोच विचार के पश्चात् यह निर्णय हुआ कि परिवार के एक-दो सदस्य को छोड़कर सभी लोग यहां से बाहर चले जायें। गुरुजी ने काशी को अधिक सुरक्षित समझकर वहां जाने को कहा। श्री रूपलालजी ने गुरुजी को काशी में निवास योग्य स्थान किराये पर लेने के लिये काशी भेजा। गुरुजी ने काशी जाकर 'मोतीझील' में कुछ मकान किराये पर लिये। तत्पश्चात् श्री रूपलालजी आदि अपने परिवारों के साथ काशी पहुंचे। लगभग १ साल ये लोग काशी रहे और अमृतसर की स्थिति कुछ सुधरने पर वापस अमृतसर आ गये।

गुरुजी का काशी में स्थायी निवास—गुरुजी ने काशी में जो मकान कपूर परिवार के लिये किराये पर लिये थे, उन्हीं में से एक, जो मुख्य द्वार के पास था अपने रहने के लिये रखकर शेष मकान लौटा दिया। रूपलालजी आदि के काशी निवासकाल में गुरुजी अधिकतर काशी ही रहे।

पञ्जाबियों और सिन्धियों का पुरुषार्थ—देश का विभाजन होने से दोनों ओर के हजारों व्यक्ति साम्प्रदायिक उपद्रवों में मारे गये। गाड़ियों और ट्रकों को रोक-कर दोनों ओर के आततायियों ने बड़ी निर्दयता से हत्यायें कीं। स्त्रियों को निर्वस्त्र कर उनके साथ बलात्कार करके हत्यायें कर दी गईं। जो लोग भाग्यवश बचकर पाकिस्तान से भारत में आ गये थे, उनके सामने निवास और रोजगार की अनेक समस्यायें जटिल रूप में खड़ी थीं। ये तो पञ्जाब और सिन्ध के कर्मठ व्यक्ति थे, जिन्होंने ऐसी भयंकर आपत्ति के समय में भी लोगों के आगे हाथ नहीं पसारा।

जिससे जो भी कार्य हो सका, छोटा-मोटा काम करके अपना नया जीवन प्रारम्भ किया। यहां तक कि छोटे-छोटे बच्चे भी रेलगाड़ी में खट्टी मिट्ठी गोलियां मूंगफली आदि वेचकर कार्य चलाते थे।

हमारा सहारा—मेरे सामने ऐसी कोई भयंकर स्थिति नहीं थी, क्योंकि गांव में अपना मकान और खेती की कुछ जमीन भी थी। लगभग एक हजार रुपया भी मेरे पास था। दो महीने तक सपरिवार गांव में रहा। बीच-बीच में अजमेर जाकर आजीविका के लिये कार्य ढूंढता रहा।

अजमेर में साम्प्रदायिक उपद्रव—मेरे गांव आने के लगभग १ महीने के पश्चात् अजमेर में भी साम्प्रदायिक उपद्रव हुआ। उसका प्रधान कारण था सिन्ध से आये हुए हिन्दुओं के रहने के लिये स्थान आदि उपलब्ध न होना। साथ ही २-४ दिन पूर्व 'नारनौल' के पास दिल्ली से आई हुई गाड़ी, जिसमें अधिकतर मुसलमान थे, रोककर चुन चुनकर मुसलमान यात्रियों को मार दिया गया। इसने भी अजमेर की स्थिति में बड़ा योग दिया। अजमेर में हुए उपद्रव की सूचना लगभग ११-१२ बजे गांव पहुंची। मैं अजमेर की स्थिति देखने के लिये साइकिल से अजमेर चल पड़ा। मेरे सम्बन्धीजनों ने बहुत रोका, परन्तु मैंने उत्तर दिया कि लाहौर में महीनों चलने वाले उपद्रवों में भी मैं भयभीत नहीं हुआ और साइकिल से आश्रम से शहर आता जाता रहा। अजमेर तो अपना ही नगर है, यहां डरने की क्या बात है।

मार्ग में मुसलमान से सामना—जब मैं अजमेर पहुंचा तो उससे कुछ समय पश्चात् ही कर्फ्यू लगाने की घोषणा हो गई। उसे सुनकर मैं वापस गांव रवाना हो गया। मार्ग में सराधना और मांगलियावास के बीच में कुछ मुसलमान घोसी रहते थे, उन्होंने भी आते-जाते कतिपय हिन्दुओं पर आक्रमण किया था। जब मैं लौटते हुए उक्त स्थान पर पहुंचा तो कुछ दूर से एक मुसलमान नवयुवक को सड़क के बीच में खड़ा हुआ देखा। छुरा छिपाये हुए होने पर भी वह किसी तरह मेरी दृष्टि में आ गया। मैं सावधान हो गया और अपनी साधारण गति से साइकिल चलाता रहा। संभवतः वह मुसलमान आश्वस्त था कि मुझे उसके इरादे का पता नहीं चला। मैं उसके पास पहुंचने से दस-बीस कदम पूर्व ही साइकिल तेज करके सड़क के किनारे मुड़कर सरपट उसके पास से निकल गया।[1] इस प्रकार इस अन-

---

१. इसी युक्ति से लाहौर के मुसलमान तांगेवाले ने मुझे बचाया था (द्र०—पूर्व पृष्ठ २०१)।

होनी घटना से मेरी सतर्कता के कारण बचाव हुआ। अजमेर में उपद्रव के ४-५ दिन पश्चात् मारवाड़ जंकशन से आने वाली गाड़ी को 'खरवा' स्टेशन से पूर्व हिन्दुओं की भीड़ ने रोककर उसमें बैठे हुए सभी मुसलमानों को मार डाला। इससे मुसलमानों में बहुत भय व्याप्त हो गया। अजमेर के आसपास लगभग तीन चौथाई मुसलमान भाग गये। अजमेर प्रायः मुसलमानों से खाली हो गया। यही स्थिति देश के अनेक भागों में भी घटी। उत्तरी भारत लगभग मुसलमानों से रहित हो गया था, परन्तु हमारी सरकार ने अदूरदर्शिता से लगभग १ वर्ष पश्चात् जब देश में पूर्णतया शान्ति स्थापित हो गई, तो विभिन्न स्थानों से भागे हुए मुसलमानों को अभयदान देकर वापस लौटने का निमन्त्रण दिया। इससे प्राय: सर्वत्र भागे हुए मुसलमानों में से अधिकतर लोग अपने-अपने घरों में वापस लौट आये। आज वे ही मुसलमान देश में सरकार और हिन्दुओं के लिये सिरदर्द बन रहे हैं और नये पाकिस्तान के स्वप्न देख रहे हैं। इसका फल क्या होगा यह तो आगे आने वाला समय ही बतायेगा।

अजमेर में दुकान चलाना—दो मास तक गांव में रहने पर यह समझ में आया कि यहां रहते हुए अजमेर में निर्वाहार्थ किसी कार्य को ढूंढना कठिन है। इसके लिये अजमेर जाकर ही रहना पड़ेगा। परन्तु जब तक कार्य न मिले खाली बैठकर अपना पैसा व्यय करना भी उचित प्रतीत नहीं हुआ। इन दिनों पण्डित महेन्द्रजी शास्त्री अजमेर में 'बिहारीगंज' में रहते थे। उनके साथ पिछली बार अजमेर में रहने के काल में पर्याप्त घनिष्ठता हो गई थी। उनसे मैं मिला और छोटा-मोटा कार्य करने का अपना विचार प्रकट किया। उन्होंने बिहारीगंज में ही अपने एक मित्र से सड़क की ओर का एक कमरा मुझे किराये पर दिला दिया। कमरे के आगे बरामदा था। उसी में लगभग चालीस रुपये की बच्चों के द्वारा खरीदी जानेवाली चीजें लेकर छोटी सी दुकान करली। इसके साथ ही गांव से घी लाकर बेचना भी प्रारम्भ किया। उस इलाके में दुकानों का साप्ताहिक अवकाश बृहस्पतिवार को होता था। इसलिये मैं बृहस्पतिवार को साइकिल से गांव जाकर या राजगढ़ आदि से घी लेकर आता था। हमारे गांव का घी अजमेर की घी-मण्डी में प्रथम कोटि का माना जाता था और अन्य स्थानों के घी से कुछ मंहगा बिकता था। यह घी लाने की यात्रा लगभग ४०-४५ मील की हो जाती थी। धीरे-धीरे मेरे अनेक पुराने मित्रों ने मेरे से घी लेना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार एक महीने पश्चात् मैं अपना खर्च निकालने लग गया। इसी बीच में पूज्य गुरुजी परोपकारिणी सभा की मीटिंग के लिये अजमेर आये। और मुझे दुकान करते देखकर बहुत चकित

हुए। मुझसे उन्होंने पूछा कि यह दुकान का काम कैसे आरम्भ कर दिया। मैंने उत्तर दिया कि जीविका के लिये कोई न कोई साधन तो अपनाना ही पड़ता, और कोई काम न मिलने पर दुकान का ही विचार मन में आया। अभी तो थोड़े दिन ही हुए हैं, फिर भी किसी प्रकार मैं अपना खर्च निकाल ही लेता हूं। फिर विद्या पढ़ने का यदि समयानुसार उचित उपयोग न लिया जाये तो उसका क्या लाभ? कम से कम मैं पराश्रित तो नहीं हूं। इससे गुरुजी बहुत प्रभावित हुए।

आर्य-साहित्य-मण्डल में कार्य करना—लाहौर से आकर आर्य-साहित्य-मण्डल के संचालक श्री मथुराप्रसादजी शिवहरे से मिला था और उन्हें प्रेस में कुछ कार्य देने को कहा था, परन्तु उन्होंने उस समय कहा कि अभी कुछ दिन पहले ही प० याज्ञवल्क्यजी को हमने रख लिया है। इसलिये इस समय हमारे पास कोई स्थान नहीं है। ५-६ महीने दुकान का कार्य करने के पश्चात् एक दिन शिवहरेजी ने अपनी कार रोककर (आदर्शनगर से साहित्य-मण्डल जाने का मार्ग यही था) मुझसे कहा कि मण्डल में आकर मुझसे मिलो। तदनुसार मैं आर्य-साहित्य-मण्डल में जाकर उनसे मिला। उन्होंने ८० रुपये मासिक पर मुझे अपने यहां रखने की बात कही। तत्कालीन परिस्थिति को देखते हुए मैंने **'वरमद्य कपोतः श्वो मयूरात्'** कहावत के अनुसार स्वीकार कर लिया और उसी मकान में एक कमरा और किराये पर लेकर गांव से सबको अजमेर ले आया। इस मकान में हम लगभग एक साल रहे। इस अवधि में पूर्व अजमेर निवासकाल के पड़ोसी श्री बाबू रामगोपालजी गुप्ता, जो रेलवे में नौकर थे, ने हमारी बहुत सहायता की। रेलवे से प्राप्त होने वाले अपने भाग के राशन में से कुछ वस्तुएं वे हमें देते रहे।

बच्चों की पढ़ाई का प्रबन्ध—बच्चों के गांव से आ जाने पर उनकी पढ़ाई के लिये 'पुरानी मण्डी' में चल रहे आदर्श विद्यालय में प्रबन्ध किया। यद्यपि यह सर्वथा निजी संस्था थी, तथापि पढ़ाई की दृष्टि से बहुत अच्छी थी, इसके संस्थापक जो स्वयं प्रधानाध्यापक भी थे, पढ़ाई के ऊपर बहुत ध्यान देते थे। आवश्यकता पड़ने पर रात को भी विद्यार्थियों को रोककर पढ़ाया करते थे। एक प्रकार से वे एक आदर्श अध्यापक थे। यह स्थान बिहारीगंज से ढाई मील पड़ता था। आर्य-साहित्य-मण्डल जाते समय तीनों बच्चों को साइकिल पर केसरगंज तक छोड़ देता था और लौटते समय वहीं से उनको साथ ले लेता था। आदर्श विद्यालय से केसरगंज तक आने-जाने के दो मार्ग थे। अतः मैंने बच्चों को विशेषरूप से कह दिया था कि विद्यालय से लौटते समय अमुक मार्ग से ही आवें। यह प्रतिबन्ध इसलिये लगाया था कि लौटते समय मुझे बच्चे नियत स्थान पर न मिलें तो मैं स्कूल की ओर

जाकर जहां भी वे मिलें, उन्हें साथ ले सकूं अन्यथा दूसरे मार्ग से आने-जाने पर मैं किसी मार्ग से स्कूल पहुंचता और वे दूसरे मार्ग से आकर प्रतीक्षा करते।

संस्कृत-व्याकरण-शास्त्र के इतिहास की पुनः प्रेस कापी बनाना—लाहोर में संस्कृत-व्याकरण-शास्त्र के छपे हुए फार्म तथा अवशिष्ट प्रेस कापी मैं साथ सुरक्षित ले आया था। परन्तु विगत २-३ साल में प्रेस कापी में संशोधन व परिवर्तन की आवश्यकता प्रतीत हुई। पूर्व प्रेस कापी में सबसे बड़ी कमी यह थी कि प्रत्येक ग्रन्थ या प्रवक्ता के वर्णन में एकरूपता नहीं थी। इसलिये मुद्रण से पूर्व सम्पूर्ण प्रेस कापी का पुनर्लेखन किया। इससे ग्रन्थ में जहां एकरूपता आ गई वहां पूर्व लिखित भूलचूक भी दूर हो गई।

इसके अतिरिक्त इन दिनों में मैं विभिन्न विषयों पर कुछ लेख भी 'सरस्वती' आदि पत्रिकाओं में छपने के लिये भेजता था। इससे पारिश्रमिक के रूप में कुछ सहायता भी हो जाती थी।

कन्या का निधन होना—निरन्तर पुत्र उत्पन्न होने पर यशोदा को कन्या का अभाव बहुत खटकता था। दैवयोग से बिहारीगंज में ही एक कन्या उत्पन्न हुई। उससे यशोदा को परम सन्तोष हुआ। उसका नाम 'शारदा' रखा। परन्तु वह ६-७ मास पश्चात् सूखे रोग से पीड़ित हो गई। मैंने बहुत चाहा कि उसका देशी इलाज किया या कराया जाये, परन्तु यशोदा को डाक्टर मानकरणजी पर अधिक भरोसा था, अतः उसने उनकी ही चिकित्सा करानी चाही। उन दिनों बिहारीगंज से शहर जाने तक यातायात के कोई व्यवस्थित साधन नहीं थे। कभी भूले भटके आते जाते तांगा मिल जाता था, अन्यथा अधिकतर वह स्वयं ही कन्या को गोद में लेकर दवा के लिये पैदल ही शहर आती जाती थी। बिहारीगंज से डाक्टर मानकरणजी का दवाखाना लगभग दो मील पड़ता था। मानकरणजी की चिकित्सा से कुछ लाभ नहीं हुआ उत्तरोत्तर वह क्षीण होती गई। उसे ५५ इन्जेक्शन लगवाये, परन्तु वह एक दिन रात्रि में ९-१० बजे चल बसी। इस कन्या के प्रति यशोदा का विशेष प्रेम था क्योंकि यह पांच[1] भाइयों के पश्चात् उत्पन्न हुई थी। अतः यशोदा को उसके निधन से बहुत आघात लगा।

तीनों बच्चों को म्यादी बुखार होना—इन्हीं दिनों बृहस्पति, वाचस्पति और भुवस्पति तीनों को एक साथ म्यादी बुखार हुआ। यशोदा के कहने से मेरे न चाहते हुए भी उनकी डाक्टर मानकरणजी से चिकित्सा कराई। चिकित्सा से ज्वर दूर हो गया, परन्तु मुझे डाक्टरी चिकित्सा से म्यादी बुखार की पुनरावृत्ति का भय

---

१. सन् १९४४ में उत्पन्न बालक अल्पकाल जीवित रहा था।

प्रतीत हुआ। बहुत सावधानी बर्तने पर भी १५ दिन के बाद तीनों को पुनः म्यादी बुखार हो गया, तब यशोदा का कहना न मानकर मैंने स्वयं बच्चों को दवा दी। उससे रोग पूर्णतया निर्मूल हुआ।

स्थान परिवर्तन—आर्य-साहित्य-मण्डल में कार्य करने के लगभग ९-१० महीने के पश्चात् मण्डल के सञ्चालक शिवहरेजी ने मण्डल के अहाते में ही हमें स्थान देने की इच्छा प्रकट की। इसका कारण यह था कि मण्डल में छुट्टी के बाद कोई जिम्मेवार व्यक्ति नहीं रहता था। छपाई का कार्य रात में भी होता था। अतः उन्होंने सोचा मेरे यहां रहने से मण्डल को लाभ होगा। स्थान मुझे विना किराये के दिया गया। यह पर्याप्त बड़ा था।

ऋषिदयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास का मुद्रण होना--सन् १९४९में पं०भगवद्दत्तजी ने अपने व्यय से संस्कृत-व्याकरण-शास्त्र के इतिहास के छपवाने की व्यवस्था की। इस समय मेरे मन में यह विचार आया कि **संस्कृत-व्याकरण-शास्त्र के इतिहास से छपने से पूर्व ऋषिदयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास छपना चाहिए।** इस समय विना परमिट के कागज प्राप्त नहीं होता था और विदेशी कागज जिस पर नियन्त्रण नहीं था, बहुत मंहगा था। इसलिये अजमेर के पूर्व निवासकाल के पड़ौसी श्री बाबू दीन-दयालजी, जो उस समय प्रेस चलाते थे, से बात की। उन्होंने अपनी प्रेस में छप-वाने पर कागज की व्यवस्था कर देना स्वीकार किया। इस ग्रन्थ को छपवाने के लिये मेरे पास द्रव्य नहीं था। इसे मैंने अपने गांव के साथी भाई महादेवजी ईनाणी से एक हजार रुपया ऋण लेकर छपवाया। पैसे की कमी के कारण और अनुभव न होने के कारण ५०० प्रतियां अच्छे कागज पर छपवाई और ५०० प्रतियां न्यूज पेपर पर। इस प्रकार यह ग्रन्थ सन् १९५० में छपकर तैयार हुआ। यहां यह लिख देना भी सामयिक होगा कि इस ग्रन्थ के अच्छे कागज की केवल २५०-३०० प्रतियां ही पच्चीस वर्ष में बिकीं। शेष देने लेने में समाप्त हुई। न्यूजप्रिन्ट की सभी कापियां कागज के जीर्ण होने से नष्ट हो गईं। इस प्रकार उधार लिया हुआ रुपया मुझे ब्याज सहित चुकाना पड़ा।

संस्कृत-व्याकरण-शास्त्र का इतिहास का मुद्रण होना—संस्कृत-व्याकरण-शास्त्र के मुद्रण की व्यवस्था पं० भगवद्दत्तजी ने आर्य-साहित्य-मण्डल में की। जिससे मैं यथोचित रूप से अपने देख-रेख में छपवा सकूं। इसी लिये विदेशी कागज श्री भ्राता देवेन्द्रकुमारजी ने बम्बई से भिजवा दिया था। उक्त ग्रन्थ के प्रथम भाग का मुद्रण सन् १९५० में पूर्ण हुआ।

भ्राता याज्ञवल्क्य का अस्वस्थ होना—पूर्व मैं लिख चुका हूं कि याज्ञवल्क्यजी बड़ी उदार प्रकृति के थे। अतः उनके कम्युनिष्ट साथी प्रायः वेतन मिलने के पश्चात्

उनसे कुछ न कुछ रुपया झड़प लिया करते थे। किसी को मना करना उनके स्वभाव से बाहर की बात थी। अतः वेतन मिलने के पश्चात् १०-१२ दिन में ही उनकी जेब खाली हो जाती थी और वे शेष दिन चवैना आदि चबाकर गुजारते थे। इससे सन् १९४९ में उनका स्वास्थ्य बहुत गिर गया था। मेरे तो वे प्रारम्भिक काल के साथी थे, यशोदा को भी उनसे बहुत स्नेह हो गया था। अतः हमने निश्चय किया कि याज्ञवल्क्यजी दोनों समय हमारे यहां ही भोजन करें। इसमें एक प्रमुख बाधा थी, उनके कम्युनिष्ट साथियों का हमारे यहां आना आरम्भ होने की। अतः मैंने उन्हें स्पष्ट कह दिया कि आपका कोई साथी आपसे मिलने भी हमारे घर न आवे, जिससे हमारे ऊपर कोई आपत्ति न आवे। हां, केवल आपके संसर्ग के कारण हम पर कोई आपत्ति आती है तो उसे झेलने को हम तैयार हैं। इस प्रकार हमारे यहां नियमित रूप से दोनों समय भोजन करने से उनका स्वास्थ्य ठीक हो गया। यह क्रम मेरे अजमेर छोड़ने तक चलता रहा।

सुनीति का जन्म—प्रथम कन्या के निधन के पश्चात् 'आर्य-साहित्य-मण्डल' के मकान में शरद् पूर्णिमा सं० २००६ (=७ अक्टूबर १९४९) को प्रातः ७ बजे द्वितीय कन्या का जन्म हुआ। इसका सुनीता नाम रखा। पश्चात् इसे बदलकर सुनीति रखा।

देश विभाजन के पश्चात् रामलाल कपूर ट्रस्ट का पुनरारम्भ

गुरुजी का पठन-पाठन आदि कार्य छोड़ने का संकल्प—काशी में आकर लगभग एक वर्ष तक भी जब लाहौर से भेजी गई पुस्तकें प्राप्त नहीं हुईं तो गुरुजी ने अध्ययन अध्यापन और लेखन कार्य छोड़ने का विचार किया। किन्तु दैव को यह अभीष्ट नहीं था। अतः ५-६ मास पश्चात् ही पुस्तकें फगवाड़ा पहुंच गईं और साथ ही पुस्तकालय के बीमें की रकम भी प्राप्त हो गई। बीमें की रकम मिल जाने से श्री बाबू रूपलालजी कपूर ने गुरुजी को ट्रस्ट का कार्य पुनः आरम्भ करने को लिखा।

झरिया के बाबू अर्जुनदेव का महत्त्वपूर्ण सहयोग—देश-विभाजन के पश्चात् रामलाल कपूर परिवार की अवस्था ऐसी नहीं थी कि वे विद्यार्थियों का तथा ग्रन्थ-मुद्रण का व्यय पूरा कर सकें। इन दिनों गुरुजी के गुरुभाई पं० अखिलानन्दजी झरिया में बाबू अर्जुनदेवजी के पास रहते थे। उन्होंने गुरुजी को झरिया आने का निमन्त्रण दिया और बाबू अर्जुनदेवजी को ट्रस्ट के कार्य के सम्बन्ध में सारी स्थिति बताई। दो-तीन बार परस्पर भेंट होने पर बाबू अर्जुनदेवजी ने २ साल के लिये ५०० रुपये मासिक देना स्वीकार कर लिया। उस समय की स्थिति में श्री अर्जुन

देवजी का यह सहयोग बहुत मूल्यवान् था। उनके आर्थिक सहयोग से ही गुरुजी ने पुनः ट्रस्ट के कार्य की रूपरेखा बनाई।

अप्रिय घटना—लाहौर में जिन व्यक्तियों से घनिष्ठता थी, उन्हीं अपने कुछ व्यक्तियों ने पूज्य गुरुजी को नीचा दिखाने के लिये यजुर्वेद-भाष्य-विवरण को लेकर सन् १९४९ में समाचार पत्र आदि के द्वारा बहुत प्रचार किया। इन्होंने मुझे भी साथ में घसीटा। मेरे विरोध में तो सन् १९६१ तक लगे रहे। परन्तु सांच को आंच नहीं कहावत के अनुसार ये लोग गुरुजी का और मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सके। अतः धीरे-धीरे यह अकाण्ड ताण्डव स्वयं समाप्त हो गया।

काशी जाना—देश-विभाजन के कारण नष्ट हुए ट्रस्ट के कार्य को पुनः चालू करने में गुरुजी को मेरी आवश्यकता का अनुभव हुआ। अतः १९४९ में जब वे परोपकारिणी के अधिवेशन में अजमेर आये तो उन्होंने मुझे काशी चलने के लिये कहा। मैंने गुरुजी से पूछा कि ट्रस्ट मुझे कितना मासिक देगा? इस पर उन्होंने १५० रुपये मासिक देने की बात कही। मंहगाई बढ़ती जा रही थी और काशी दूर स्थान था। साल में एक दो बार परिवार सहित गांव भी आना जाना संभव था। इस लिये मैंने उत्तर दिया कि गुरुजी मुझे 'आर्य-साहित्य-मण्डल' में प्रोविडेंट फण्ड मिलाकर ११० रुपये मिलते हैं। यह मकान मुफ्त दे रखा है इसका भी लगभग २०रुपये मासिक किराया समझना चाहिये। इसके अतिरिक्त दुकान करते समय मेरे कुछ इष्ट मित्र घी के स्थाई ग्राहक बन चुके हैं, उन्हें गांव से घी लाकर देने में लगभग २०-२५ रुपये महीने में बचत हो जाती है। इस प्रकार मेरी यहीं १५० रुपये के लगभग आय हो जाती है। अतः काशी जैसे सुदूर स्थान में जाने पर कम से कम २०० रुपये मासिक तो मिलना चाहिये। गुरुजी ने स्वीकृति दे दी और मार्च सन् १९५० तक मुझे काशी पहुंचने का निर्देश दिया।

इस निश्चय के अनुसार आर्य-साहित्य-मण्डल को त्यागपत्र देकर परिवार के अन्यत्र रहने की व्यवस्था करके मार्च १९५० के आरम्भ में मैं काशी पहुंच गया। परिवार को अजमेर इसलिये छोड़ना पड़ा कि बच्चों की वार्षिक परीक्षायें मई या अप्रेल में होनी थीं।

अजमेर में पानी का अभाव—मेरे काशी जाने से पूर्व यशोदा आदि के रहने की व्यवस्था मदार दरवाजे के अन्दर एक चार मञ्जिल की बड़ी बिल्डिंग में, जिसमें मेरे एक मित्र सपरिवार रहते थे, उन्होंने अपने पास ही कर दी। इस मकान में दो भारी असुविधायें थी। लगभग २५-३० परिवारों के लिये दो ही शौचालय थे। इसलिये या तो जल्दी उठकर निबटना पड़ता था या लाइन लगानी पड़ती थी। इसी प्रकार पानी का एक ही नल नीचे था। पानी का दबाव कम होने के कारण

नीचे से पानी भरकर ऊपर चौथी मञ्जिल ले जाना पड़ता था। आधे अप्रेल तक तो अजमेर में पानी की अत्यन्त कमी हो गई। थोड़ी देर के लिये नल में पानी आता था। जो सबको नहीं मिल पाता था। अत: पानी के लिये इधर-उधर सार्वजनिक नलों पर भटकना पड़ता था, या कहीं ट्यूबवैल लगा हुआ हो तो वहां से पानी लाना पड़ता था। वृहस्पति आदि भी छोटे-छोटे बर्तन लेकर पानी के लिये इधर-उधर भटकते थे।

बच्चों की वार्षिक परीक्षायें समाप्त होने पर मैं अजमेर जाकर मई १९५० के अन्त में सबको काशी ले आया। जब मैं अकेला आया था, तब काशी में 'कबीर चौरा' के पास एक मकान में दो कमरे किराये पर लिये थे। यहीं पर सब अजमेर से आकर ठहरे। मैं अकेला तो दिनभर आश्रम में रहना था। अतः मुझे कुछ विशेष कठिनाई नहीं हुई। किन्तु परिवार के आ जाने पर ज्ञात हुआ कि मकान की मालकिन और लड़के का व्यवहार ठीक नहीं है। अत: हमें यह मकान जल्दी ही छोड़ना पड़ा। और उसी के पास दूसरा मकान किराये पर लेकर रहने लगे।

उरस्तोय (प्लुरूरिसी) रोग का आक्रमण—वेदवाणी का प्रकाशन पं० वीरेन्द्र शास्त्री ने आरम्भ किया था। तीसरे वर्ष के चौथे अंक से वेदवाणी का प्रकाशन रामलाल कपूर ट्रस्ट ने अपने हाथ में ले लिया। पूज्य गुरुजी बाहर गये हुए थे। इसलिये तीसरे वर्ष के चौथे अङ्क की छपाई का सारा भार मुझे उठाना पड़ा। दिसम्बर १९५० के अन्त में वर्षा होने से सरदी बहुत बढ़ गई। जनवरी में भी वर्षा का प्रकोप रहा। ऐसे मौसम में वेदवाणी की छपाई का प्रबन्ध करने और मोती झील एक दो बार रुक जाने से सरदी लग गई। आरम्भ में साधारण जुकाम और ज्वर समझ कर मैंने न उसकी चिकित्सा की ओर न ही उसपर विशेष ध्यान दिया। प्रेस और मोतीझील आने जाने का क्रम चालू रहा। इससे रोग बढ़ गया। छाती और सिर में दर्द रहने लगा। इस पर भ्राता विद्याभास्करजी की सम्मति से श्री वैद्य वृजमोहन दीक्षित को घर पर बुलाकर दिखाया। उन्होंने उरस्तोय का निदान किया। इस रोग के ठीक होने में लगभग ६ महीने लग गये। फेफड़े कमजोर हो जाने से मेरा नियमित व्यायाम सदा के लिये छूट गया।

अम्लपित्त का प्रकोप—व्यायाम छूट जाने से सन् १९५३ में अम्लपित्त का रोग हो गया। उसकी चिकित्सा सालभर तक श्री वैद्य वृजमोहन दीक्षित से कराने पर भी कुछ लाभ नहीं हुआ। सन् १९५४ के अप्रेल में १ मास के लिये गांव गया। वहां की जलवायु से १ महीने तक उल्टी व खट्टी डकारें आनी बन्द रहीं। इससे निश्चय हो गया कि चिकित्सा कराने पर भी जो रोग शान्त नहीं हुआ है, वह जल-

वायु के परिवर्तन से ठीक हो सकता है। इसलिये काशी छोड़ने का निश्चय किया। परन्तु बच्चों की पढ़ाई के कारण काशी में लगभग एक वर्ष रहना पड़ा। ५-६ मास के अनन्तर पेट में भयंकर दर्द उठा। स्वयं चिकित्सा से लाभ न होनेपर वैद्य दीक्षितजी के पास चिकित्सा के लिये गया। उन्होंने कहा—यह अम्लपित्त का ही विकार है। मैंने उत्तर में कहा कि अम्लपित्त ही ठीक नहीं हुआ तो यह कष्ट भी मुझे यहां रहते हुए ५-६ महीने भोगना ही पड़ेगा। इस पर वैद्यजी ने उत्तर दिया **न अम्लपित्त रहेगा न पेट का दर्द**। मुख्य औषधि तो पूर्ववत् ही दी परन्तु अनुपान के रूप में **पटोल पत्र** (परवल के पत्ते) का रस बताया। इससे कुछ दिनों में अम्ल-पित्त और पेटदर्द को पर्याप्त लाभ हुआ।

कर्मज-व्याधि—कभी-कभी ऐसी व्याधियां भी उत्पन्न होती है, जो भोग-काल व्यतीत होने पर ही शान्त होती हैं। इस काल में औषध करते रहने पर भी वे शान्त नहीं होतीं और कभी-कभी भोगवश चिकित्सक का उचित औषधि की ओर ध्यान नहीं जाता। पटोल-पत्र अम्लपित्त की प्रमुख औषध है, मुझे भी इसका ज्ञान कई वर्षों से था, परन्तु न वैद्यजी को इसका ध्यान आया और न मुझे आया। ऐसी एक घटना लाहौर निवासकाल में मेरे साथ बीती थी। मुझे रात्रि के समय बिच्छू ने काट लिया था। मेरे पास एक १६ पृष्ठ की पुस्तिका थी जिसमें बिच्छू के काटे की विशेष दवा उल्लिखित थी।[1] मैंने उस पुस्तिका को २-३ बार देखा। मुझे वह औषध दिखाई नहीं दी। सत्यदेव वासिष्ठ को भी उक्त पुस्तिका में से बिच्छू के काटे की औषध ढूंढ़ने को पुस्तिका दी। उन्होंने भी पुस्तिका को देखा, परन्तु उनकी दृष्टि में भी नहीं आई। रातभर कष्ट भुगतने के पश्चात् प्रातःकाल पीड़ा कम होने पर उस पुस्तिका को पुनः उठाकर खोला तो वही पृष्ठ खुला जिसमें दवा लिखी हुई थी। इन दोनों घटनाओं से यही निश्चित होता है कि कर्मज-व्याधियों में भोग की प्रबलता के कारण न दवा लाभ करती है और न मुख्य दवा की ओर ध्यान ही जाता है। इस तथ्य का अनुभव मुझे जीवन में कई बार हुआ है।

सुधा का जन्म—काशी-निवासकाल में ही २४ जनवरी १९५२ को रात में बारह बजे 'सुधा' का जन्म हुआ।

काशी छोड़कर दिल्ली आना—काशी छोड़ने से पूर्व पं० भगवद्दत्तजी से पत्र व्यवहार किया था। उन्होंने प्रतिदिन दो घण्टे के कार्य के लिये १०० रुपये मासिक देना स्वीकार किया था। गुरुजी ने भी घर पर बैठकर ट्रस्ट का कार्य करने के लिये

---

१. यह दवा थी तम्बाकू। इसका विशेष वर्णन पूर्व पृष्ठ १८९ पर देखें।

१०० रुपये मासिक देने का प्रावधान कर दिया । इस प्रकार मैं काशी से सम्भवतः मई १९५५ में देहली आ गया । आते ही जवाहर नगर के समीप किराये का मकान लिया । यहां से पं० भगवद्दत्तजी के पास पटेलनगर, जो ६-७ मील पड़ता था, साइकिल से जाने में कष्ट होता था । अतः कुछ महीने पश्चात् श्री शिवचन्दजी इनाणी[1] की पुत्री सरजूबाई[2] के प्रयत्न से करौलबाग में मकान किराये पर लिया । यह मकान भी कुछ महीनों में छोड़ना पड़ा । क्योंकि मकान मालिक प्रत्येक मास की पहली तारीख को किराया लेने आ जाता था । उसे समझाया कि मेरी सरकारी नौकरी तो है नहीं कि नियत तारीख पर किराया दे सकूं । हां, इतना विश्वास दिला सकता हूं कि वेतन मिलने पर पहले आपका किराया देकर फिर अपने स्थान पर जाऊंगा । परन्तु उन्हें सन्तोष न होने के कारण ३-४ महीने में वह मकान छोड़ कर करौलबाग में ही दूसरा मकान लिया । उस गली में तथा पीछेवाली गली में रेगड़ बसते थे । इस कारण चमड़े की बहुत दुर्गन्ध आती थी । अन्त में सरजूबाई के मकान में ही एक भाग खाली होने पर उसमें आ गया । यहां हमारे पास एक ही कमरा था । रसोई भी बरामदे में बनानी पड़ती थी । २-३ महीने पश्चात् नीचे एक भाग खाली होने पर हम उसमें आ गये ।

नीचे के भाग में और तो सब सुविधाएं थीं, परन्तु देहली की रीति के अनुसार मकान के नीचे भाग में रहने वालों को गर्मियों में गली में ही सोना पड़ता था । इसका अभ्यास न होने से कुछ समय कष्ट अनुभव हुआ । मेरे देहली से चले जाने पर भी यह भाग मई १९८६ तक पुत्रों के पास रहा ।

देहली आकर काशी की अपेक्षा स्वास्थ्य कुछ सुधर गया । अजमेर के निकट होने से गांव के साथ भी सम्पर्क बना रहा । यहां राजेन्द्रनगर आर्यसमाज में भी लगभग ६-७ महीने तक रात्रि में संस्कृत पढ़ाने का कार्य करता रहा । लाहौर के मित्र डा० सीताराम शास्त्री सहगल, जो उन दिनों आकाशवाणी में काम करते थे, मुझे आकाशवाणी में कभी-कभी प्रोग्राम दिला देते थे ।

गुर्दे खराब होना—अक्टूबर १९५८ में एक दिन रात को ९ बजे राजेन्द्र नगर से पढ़ाकर आ रहा था तो आटोरिक्शा ने पीछे से साइकिल में टक्कर मारी । इससे मैं गिर गया । विशेष चोट तो नहीं लगी किन्तु उसके कुछ दिन पीछे ही दाहिने गुर्दे में भयंकर दर्द हुआ । वैद्य श्री रामगोपालजी शास्त्री, जिनका लाहौर से ही

---

१. इनका वर्णन पूर्व किया जा चुका है । द्र०—पृष्ठ २७, ३१ ।

२. इनकी एक घटना का वर्णन पृष्ठ ५१ पर किया है ।

मेरे प्रति स्नेह था, की चिकित्सा कराई। परन्तु लाभ नहीं हुआ। मैं नहीं कह सकता कि साइकिल से गिरने के कारण गुर्दे पर कुछ आघात पहुंचा अथवा वह धीरे धीरे पहले से ही खराब हो रहा था। उसकी पीड़ा में साइकिल से गिरना निमित्त बन गया।

गङ्गाराम हस्पताल में उन दिनों लाहौर के सर्जन खेड़ाजी कार्य करते थे उनको जाकर दिखलाया। उन्होंने एक्सरे आदि लेने के पश्चात् बताया कि तुम्हारा दाहिना गुर्दा बिल्कुल खराब हो गया है। उसे निकालना होगा। दूसरा गुर्दा भी आधा खराब हो चुका है। मैंने उनसे पूछा कि आपलोगों का यह मानना है कि एक गुर्दे से भी जीवन निर्वाह हो सकता है परन्तु आपने बताया कि दूसरा गुर्दा भी आधा खराब हो चुका है। इस अवस्था में यह गुर्दा कितने दिन काम करेगा? जबकि सारा बोझ इसी पर पड़ेगा। डा० खेड़ाजी ने कहा कि इसका इलाज हमारे पास नहीं है। मैंने अन्य १-२ सर्जन से भी इस विषय में सलाह ली तो उनका भी वही कहना था जो डा० खेड़ाजी ने कहा था। ऐसी सन्दिग्ध अवस्था में मैंने दायें गुर्दे को निकलवाने के लिये आपरेशन कराना उचित नहीं समझा। उन्हीं दिनों बम्बई से भ्राता देवेन्द्रकुमारजी कपूर आये हुए थे, उनसे भेंट हुई। और गुर्दे के सम्बन्ध में डा० खेड़ा की बात कही, तो उन्होंने कहा यदि आपरेशन कराना हो तो मुझे सूचना देकर बम्बई आ जाना, वहां अच्छे सर्जन हैं।

गुर्दे के रोग का स्वरूप—कुछ दिन पश्चात् दाहिने गुर्दे के रोग की यह स्थिति बन गई कि जब उसमें दर्द होता तो पेट में दाहिनी ओर गांठ बन जाती और खाना-पीना सब छूट जाता। ५-६ दिन भयंकर कष्ट रहता। किसी दवा से और सेक करने से विशेष लाभ नहीं होता था। ५-६ दिन के पश्चात् गांठ स्वयं बैठ जाती। दर्द मिट जाता और कुछ खाने-पीने लगता। १२-१३ दिन के पश्चात् पुनः यही क्रम चालू हो जाता।

जलवायु परिवर्तनार्थ गांव जाना—मैं यह विचार कर कि संभव है कि जलवायु के परिवर्तन से कुछ लाभ हो जाये, अतः फरवरी १९५९ में गांव चला गया। परन्तु पं० भगवद्दत्तजी की तरफ से मिलने वाले मासिक वेतन के बन्द हो जाने से आर्थिक दशा बहुत क्षीण हो गई।

टंकारा का निमन्त्रण—इसी समय ऋषिदयानन्द की जन्म-भूमि टंकारा में शिव-रात्रि के अवसर पर होने वाले उत्सव का निमन्त्रण पाकर मैं टंकारा गया। वहां इस अवसर पर पूज्य गुरुजी भी काशी से आये थे और आर्यसमाज के अनेक विद्वान् इस अवसर पर पहुंचे थे।

टंकारा जाने से पूर्व गुरुजी के व्याकरण-शास्त्र के शिष्य पं० पद्मनाभराव, जो माध्व सम्प्रदाय के प्रतिष्ठित आचार्य थे, का पत्र मिला। उसमें उन्होंने लिखा था—'पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्डजी' ने अपनी पुस्तक 'वेदों का यथार्थ स्वरूप' में **चतुर्वेद-विद्भिर्ब्रह्मभिर्ब्राह्मणैर्महर्षिभिः प्रोक्तानि यानि वेदव्याख्यानानि तानि ब्राह्मणानि** वचन को महाभाष्य ५।१।७ के उद्धरण रूप में दिया है। यह वचन महाभाष्य-कार का नहीं है। स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी का है (द्र०—ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका वेदसंज्ञा-विचार)। मैंने पं० धर्मदेवजी का इस भूल की ओर ध्यान आकृष्ट किया और उनसे कहा कि आपने यह पङ्क्ति अन्य पुस्तक से लेकर लिखी है। आपको लिखने से पूर्व महाभाष्य देख लेना चाहिये था, अथवा जिस ग्रन्थ से ली है उस ग्रन्थ का नाम निर्देश करना चाहिये था। पं० धर्मदेवजी ने भूल स्वीकार की और कहा कि अगले संस्करण में ठीक कर दूंगा। परन्तु अगले संस्करण में भी यह भूल पूर्ववत् ही रही।

टंकारा में ही पं० वैद्यनाथजी शास्त्री से भेंट हुई। उनकी नवीन पुस्तक 'उरु-ज्योति' देखी। उसमें कई पृष्ठ पूज्य गुरुजी के यजुर्वेद-भाष्य विवरण से लेकर संक्षेप से लिखे गये थे, परन्तु उन्होंने गुरुजी का या यजुर्वेद-भाष्य विवरण के नाम का उल्लेख नहीं किया। इस विषय में जब मैंने शास्त्रीजी से कहा तो उन्होंने उत्तर दिया—मैंने यजुर्वेद-भाष्य विवरण से कुछ भी नहीं लिया है। क्या दो व्यक्ति एक जैसा विचार नहीं कर सकते? मैंने उत्तर दिया विचार कर सकते हैं, परन्तु एक जैसा लिख नहीं सकते हैं। इस पर भी जब उन्होंने यजुर्वेद-भाष्य विवरण से उक्त अंश लेना स्वीकार नहीं किया तो मैंने उनसे पूछा कि आपने शतपथ के हरिस्वामी के भाष्य की **'वेदानां स्वतःप्रामाण्यसिद्धे तद्हेतुत्वात् तच्छाखानामपि प्रामाण्यं बादरायणादिभिरुक्तम्'** यह पंक्ति कहां से उद्धृत की है? क्योंकि इस ग्रन्थ का एक मात्र हस्तलेख है जिसका आपको ज्ञान भी नहीं है कि कहां है? गुरुजी ने उसकी प्रतिलिपि की थी। इसलिये उन्होंने इस पङ्क्ति के आगे 'हमारा हस्तलेख पृष्ठ ८' लिखा है। आपने चतुराई से 'हमारा हस्तलेख' पाठ छोड़कर पृष्ठ संख्या वही दी है, जो हमारे हस्तलेख की है। इस पर जब शास्त्रीजी निग्रहस्थान पर आ गये तो ऊट-पटांग बकने लगे। इसी घटना से शास्त्रीजी मेरे साथ वैर-भाव रखने लगे। इससे पूर्व भी सन् १९४६ में जब वे लाहौर आये थे, तब इन्होंने मेरे प्रति गुरुजी को विमुख करने की भरपूर चेष्टा की थी। परन्तु कुछ महीने पश्चात् ही गुरुजी को अपनी भूल ज्ञात हो गई।

विक्टोरिया (नेहरु) हस्पताल में भर्ती होना—टंकारा से लौटकर वापस गांव आ गया। संभवतः अप्रैल १९५९ में परोपकारिणी सभा के विशेष अधिवेशन में

पूज्य गुरुजी और पं० आनन्दप्रियजी आये थे। मैं गुरुजी से मिलने गांव से अजमेर पहुंचा था। गुरुजी डा० मानकरणजी से मिलने उनके घर गये। मैं भी साथ था। वहां पर डा० मानकरणजी ने मेरे रोग के विषय में सारी स्थिति सुनकर हस्पताल में भर्ती होने को कहा और यह भी कहा कि हस्पताल में मेरे मित्र डा० 'शास्त्री' हैं और अच्छे सर्जन हैं। मैं उनको कह कर सारी व्यवस्था कर दूंगा। गुरुजी ने भी हस्पताल में भर्ती होने की सम्मति दे दी। तदनुसार २-३ दिन पीछे मैं हस्पताल में भर्ती हो गया। डा० शास्त्री ने उस समय पेट में वर्तमान गांठ को देखकर आपरेशन करने का निर्णय किया। मैंने डाक्टर साहब से कहा कि ४-५ दिन पीछे जब यह गांठ नहीं रहेगी उस समय की स्थिति भी आप देख लें, तब उचित निर्णय लें। डाक्टर शास्त्री को समय समय पर बाहर भी जाना पड़ता था। इसलिये उन्होंने जब भी मुझे देखा, उस समय पेट में गांठ पड़ी हुई थी। मैं सामान्य स्थिति को देखे विना आपरेशन कराना नहीं चाहता था। इस प्रकार लगभग २० दिन बीत गये। अन्त में उन्होंने गांठ की अवस्था में ही आपरेशन करने का निर्णय किया। मैं विना सामान्य स्थिति को देखे विना आपरेशन कराने को तैयार नहीं था। इसलिये डा० साहब से कहा कि मेरे माता-पिता सब कुछ गुरुजी हैं। उनको विना सूचना दिये आपरेशन नहीं कराऊंगा। यही बात डाक्टर मानकरणजी से भी कही। डा०मानकरण जी के कहने पर डा० शास्त्री कुछ दिन पीछे आपरेशन करने को राजी हो गये। मैंने गुरुजी को पत्र नहीं लिखा, क्योंकि उनको सूचना की बात तो समय टालने के लिये की थी। ४-५ दिन पीछे जब डाक्टर साहब ने देखा तो उस समय गांठ बैठ चुकी थी। पेट सामान्य हो गया था। उस अवस्था को देखकर डाक्टर शास्त्री ने आपरेशन की कोई आवश्यकता न कहकर उन्होंने गुर्दे के लिये दवा लिख दी और हस्पताल से छुट्टी दे दी। दवा अजमेर और देहली में नहीं मिली तब भ्राता देवेन्द्र कुमार कपूरजी को बम्बई से दवा भेजने को लिखा। वहां से दवा आने पर उसका सेवन किया, पर लाभ कुछ नहीं हुआ। स्थिति पूर्ववत् ही चलती रही।

टंकारा में नियुक्ति—९ अप्रेल को जब पं० आनन्दप्रियजी गुरुजी से डा० मानकरणजी की कोठी पर मिले थे, तब पं० आनन्दप्रियजी ने गुरुजी से कहा था कि हम टंकारा में अनुसन्धान विभाग खोलना चाहते हैं। आप अपने शिष्य युधिष्ठिर मीमांसक को हमारे यहां कार्य करने के लिये अनुमति दें। इसी समय पण्डितजी ने मुझसे भी टंकारा के सम्बन्ध में बातचीत की। मैंने उनसे कहा कि अनुसन्धान विभाग खोलने के लिये २५ हजार की पुस्तकें तत्काल लेनी होंगी और आगे प्रतिवर्ष १० हजार रुपये की पुस्तकें खरीदनी होंगी। इसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। मुझसे मासिक

वेतन के लिये पूछा तो अपने स्वभाव के अनुसार निर्वाहमात्र के लिये तीन सौ रुपये मासिक पर टंकारा जाना स्वीकार कर लिया।

यद्यपि इस रुग्ण अवस्था में दिल्ली से बहुत दूर (रेल से चालीस घण्टे का मार्ग) जाना नहीं चाहता था, परन्तु आर्थिक विषम परिस्थिति के कारण मुझे यह स्वीकार करना पड़ा।

टंकारा जाना—हस्पताल से छुट्टी मिलने पर पं० आनन्दप्रियजी से पत्र-व्यवहार करके मैं जून १९५९ के आरम्भ में टंकारा पहुंच गया।

सहायक—पण्डित आनन्दप्रियजी ने मुझे अपना एक सहायक बुलाने के लिए स्वीकृति दी। इस पर मैंने पं० धर्मदेवजी हंसराज निरुक्ताचार्य को अजमेर से टंकारा बुला लिया।

टंकारा महालय, जिसमें सब कार्य होना था, उसका एक ट्रस्ट बना हुआ था। पं० आनन्दप्रियजी उसके मन्त्री थे। किन्तु सर्वप्रिय बने रहने के कारण ट्रस्टी लोग अपनी मनमानी किया करते थे। मेरे टंकारा पहुंचने से पूर्व ही वहां पर 'दयानन्द स्कूल' की स्थापना कर दी गई। इस कारण जिस उद्देश्य को लेकर मैं टंकारा गया था उसमें प्रबल बाधा उपस्थित हो गई। जो धन अनुसन्धान विभाग में व्यय होना था, वह सब स्कूल में व्यय होने लगा। महालय के कार्यकर्त्ताओं को समय पर वेतन मिलना भी कठिन हो गया। इस परिस्थिति में भी मैं कार्य निभाता रहा। ६ महीने पीछे ही गुजरात सरकार के गोशाला को दिये जाने वाले विशेष अनुदान की चकाचौंध में 'गोशाला' भी स्थापित कर दी गई। अगले वर्ष वर्षा न होने से गोशाला का व्यय बहुत बढ़ गया। दूध से आमदनी नाममात्र की होती थी। इस प्रकार रही सही कसर गोशाला ने पूरी कर दी।

कार्य—टंकारा में रहते हुए मैंने सबसे पूर्व ऋषिदयानन्द के समस्त ग्रन्थों में दिये गये उद्धरणों की सूची बनाने का कार्य आरम्भ किया। लगभग एक लाख चिटें उद्धरणों की बनीं। मैंने सब चिटों को वर्णानुसार छांट कर अकारादि क्रम से प्रेसकापी तैयार करनी आरम्भ की। इसी बीच मेरे सुझाव पर पञ्जाब की शास्त्री परीक्षा में नियत ऋषिदयानन्द के यजुर्वेद-भाष्य को प्रकाशित करने का निर्णय किया।

यजुर्वेद-भाष्य के प्रकाशन करने में कठिनाई—ऋषिदयानन्द के वेद-भाष्य में पचासों ऐसे प्रयोग मिलते हैं, जिन्हें साम्प्रतिक वैयाकरण अशुद्ध मानते हैं। यजुर्वेद-भाष्य पर कार्य करते हुए उक्त प्रकार के शब्दों की बिना शुद्धता दर्शाये वेद-भाष्य

छापना मैं उचित नहीं समझता था। इसलिये अन्त में एक विस्तृत परिशिष्ट दिया जिसमें आधुनिक वैयाकरणों द्वारा अशुद्ध माने जाने वाले शब्दों का वर्गीकरण करके पाणिनीय व्याकरण के अनुसार उनका साधुत्व दर्शाया (यह अंश 'ऋषिदयानन्द की पद-प्रयोगशैली' के नाम से अलग से भी छपवाया गया)। भाष्य में यत्र तत्र भाषा का यथाशक्य अल्प मात्रा में परिमार्जन भी किया। कहीं कहीं नीचे टिप्पणियां भी दीं। यह ग्रन्थ छपकर जब तैयार हुआ तो आर्यसमाज के कतिपय विघ्नसंतोषी विद्वानों ने इसका विरोध किया। अन्त में परिणाम यह हुआ कि वह ग्रन्थ वैसे ही पड़ा रहा।

वृक्करोग पूर्ववत्—जब मैं टंकारा गया था तब गुर्दे के रोग से रुग्ण था। वहां जाकर भी वह शान्त नहीं हुआ। रुग्णावस्था में अकेले रहने से बहुत कष्ट होता था। अतः मैंने टंकारा छोड़ने का विचार पं० आनन्दप्रियजी के सामने रखा। उन्होंने कुछ महीने बड़ौदा में रहकर कार्य करने का आग्रह किया। मैं ४ मास बड़ौदा रहा। उससे उनको यह ज्ञात हो गया कि वस्तुतः मेरा इस रुग्णावस्था में घर से इतनी दूर रहना ठीक नहीं है। इसलिये उन्होंने बड़ी उदारता से अजमेर में बैठकर टंकारा पत्रिका के सम्पादन आदि कार्य करने के लिये कहा।

अजमेर आना—इस प्रकार मैं श्री माननीय पण्डितजी के सुझाव के अनुसार १९६१ में अजमेर आ गया। अजमेर आकर मैंने ऋषिदयानन्द के ग्रन्थों में उद्धृत उद्धरणों की, जो चिटें तैयार की थीं उनको अकारादि क्रम से व्यवस्थित करके टंकारा पत्रिका में छपवाना आरम्भ किया। इस सूची में परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित ऋषिदयानन्द के विभिन्न संस्करणों में उद्धरणों के जो पाठ बदले गये थे, उनका भी निर्देश टिप्पणी में करना पड़ता था। टंकारा पत्रिका वैदिक यन्त्रालय अजमेर से प्रकाशित होती थी। उसमें अभी उद्धरण सूची के कुछ ही पृष्ठ छपे थे कि मेरी टिप्पणियों पर परोपकारिणीसभा ने रुष्ट होकर सूची का प्रकाशन बन्द करवा दिया। उद्धरण-सूची के मुद्रित भाग से आगे की सहस्रों चिटें मैं साथ ले आया था, मुद्रण परन्तु में अत्यधिक रुपया व्यय होने के कारण गत वर्ष तक चिटें मेरे पास सुरक्षित पड़ी रहीं और अन्त में मैंने उन्हें नष्ट कर दिया।

बृहस्पति का विवाह—सन् १९६०में बृहस्पति के विवाह के लिये जयपुर से श्री मदनलालजी ओझा और उनके श्वसुर इन्दौर-निवासी श्री जानकी बल्लभजी हमारे गांव पहुंचे। मैं उस समय गांव में ही था। इस समय बृहस्पति की आयु २१ वर्ष की ही थी, परन्तु मेरा स्वास्थ्य ठीक न होने से भावी अनिष्ट को ध्यान में रखकर

इन महानुभावों के प्रस्ताव को मैंने स्वीकार कर लिया। क्योंकि लौकिकता के नाते मेरे निधन होने के पश्चात एक परिवार हमारे साथ और जुड़ जाने से अगले पुत्र पुत्रियों के विवाह में कुछ सुगमता हो सकती थी। बृहस्पति इन दिनों रेलवे में 'सवाई माधोपुर' स्टेशन पर कार्य करता था। निश्चय के अनुसार मैं अपनी पत्नी के साथ लड़की को देखने जयपुर गया। मुझे लड़की और परिवार के लोगों का व्यवहार पसन्द आया और मैंने अपनी स्वीकृति दे दी। यद्यपि हमारे समाज में उस समय तक विवाह से पहले लड़के द्वारा लड़की को देखने का प्रचलन नहीं हुआ था, फिर भी मैंने उनसे कहा कि बृहस्पति आकर लड़की को देखेगा तभी अन्तिम निश्चय होगा। आप भी बृहस्पति को देख लें। इन औपचारिकताओं के पश्चात् सम्बन्ध निश्चित हो गया और २७ जून १९६१ को बृहस्पति का विवाह सम्पन्न हो गया। यत: उन दिनों मैं अजमेर में था, इसलिये विवाह भी अजमेर से किया।

मेरे गुर्दे के वृक्क रोग का अधिक बढ़ना—बृहस्पति के विवाह के कुछ दिन पीछे ही मेरा रोग बहुत बढ़ गया। पेट में बनने वाली गांठ, जो ४-५ दिन कष्ट देकर स्वयं ही बिखर जाती थी, वह इस बार लगभग १२ दिन शान्त नहीं हुई। इस स्थिति में खाना पीना छूट जाने से निर्बलता बहुत बढ़ गई और अन्त समय निकट प्रतीत होने लगा। ऐसी सन्देहास्पद स्थिति में मैंने आपरेशन कराना उचित समझकर श्री भ्राता देवेन्द्रकुमार कपूरजी को बम्बई पत्र लिखा और तार द्वारा उत्तर मांगा। उन्होंने बम्बई आने को लिखा। मैं वाचस्पति को साथ लेकर बम्बई पहुंचा। जुलाई मास होने से उस समय बम्बई में वर्षा बहुत हो रही थी, फिर भी भ्राता देवेन्द्रकुमारजी ने एक्सरे आदि कराकर डा० मिराजकर, जो उन दिनों बम्बई में थे और देश-विभाजन से पहले लाहौर में देवेन्द्रजी के अनेक परिचित व्यक्तियों के गुर्दे का आपरेशन कर चुके थे, को २७ या २८ जुलाई १९६१ को मुझे लेजाकर दिखाया। इस समय डा० मिराजकर की आयु लगभग ८५ वर्ष की थी। डा० मिराजकर ने एक्सरे देखकर कहा कि दायां गुर्दा निकालना होगा। बांया गुर्दा भी खराब है, पहले मैं उसका आपरेशन करके उससे पूर्ण कार्य करने योग्य बना दूंगा, तब दायें गुर्दे को निकालूंगा। ढाई वर्ष पूर्व देहली के सर्जनों से जो प्रश्न मैंने किया था, उसका समाधान मुझे अनायास प्राप्त हो गया। और मैं डा० मिराजकर की योग्यता से सन्तुष्ट हो गया। डा० मिराजकर ने कहा कि मैं २-३ दिन में दिल्ली जा रहा हूं। यदि ४ दिन पहले भी यहां आ जाते तो मैं यहां ही आपरेशन कर देता। अब दिल्ली ही आकर आपरेशन कराना होगा। दिल्ली में 'तीर्थराम' हस्पताल में ४ अगस्त को उपस्थित होने को कहा। उन दिनों डा०

मिराजकर ३-४ महीने बम्बई और ३-४ महीने देहली में कार्य करते थे।

आपरेशन से पूर्व द्रव्य का अभाव—डा० मिराजकर को बम्बई दिखाकर मैं देहली लौट आया। पूर्व निश्चयानुसार ४ अगस्त को डा० मिराजकर को दिखाने तीर्थराम हस्पताल में जाना था। १ दिन पूर्व अर्थात् ३ अगस्त को मेरी पत्नी ने कहा कि घर में केवल ३४ रुपये हैं। डाक्टर ने पहले फीस मांग ली या अगाऊ जमा कराने को कहा तो कैसे इन्तजाम होगा। मैंने उत्तर दिया—डाक्टर साहब ने ४ तारीख को बुलाया है, हमें चलना चाहिए। आगे जो दैवी इच्छा होगी, देखा जायेगा। इस प्रकार ४ अगस्त को मैं पत्नी को साथ लेकर दस बजे तीर्थ हस्पताल में पहुंच गया। डाक्टर ने देखकर मुझे प्रविष्ट कर लिया। और कुछ फीस या अगाऊ धन जमा कराने की कोई बात नहीं की। हां, इतना कहा कि पण्डित! तुम्हारा साधारण विभाग में रहना ठीक नहीं होगा, अलग रहने पर दस रुपये प्रति-दिन व्यय होगा। मैंने इसे स्वीकार कर लिया। ४-५ दिन विविध प्रकार की रक्त आदि की परीक्षा के अनन्तर आपरेशन करने का निर्णय लिया। आपरेशन के दिन पारिवारिक जनों के अतिरिक्त रामलाल कपूर परिवार के श्री बाबू सुरेन्द्रकुमारजी कपूर, श्री शान्तिस्वरूप कपूर,श्री ब्रह्मदेव कपूर आदि अनेक व्यक्ति दिनभर हस्पताल में रहे। आपरेशन में साढे तीन घण्टे लगे।२-३बोतलें रक्त चढ़ाया गया। होश आने पर अपने स्थान पर पहुंचाने के पश्चात् सब लोग निश्चिन्त होकर अपने अपने घरों पर गये। ४-५ दिन पश्चात् मैंने डाक्टर मिराजकर से पूछा कि आपने कहा था कि बांया गुर्दा, जो पूरा काम नहीं करता है पहले उसका आपरेशन करूंगा पीछे दांया गुर्दा निकालूंगा। आपने तो दांय गुर्दे का ही आपरेशन किया। इस पर डाक्टर ने कहा पण्डित! पहले यही विचार था, पर जब आपरेशन का समय आया तो विचार हुआ क्यों न पहले दाहिने गुर्दे को ही खोलकर देख लिया जाये। यदि वह ठीक हो सकता हो तो उसे ही ठीक कर दिया जाये। यदि ठीक होने योग्य न हो तो उसे निकाल कर उसी समय दूसरे गुर्दे का भी आपरेशन कर दिया जाये। यह विचार आने पर मैंने पहले दांया गुर्दा ही खोलकर देखा तो विदित हुआ कि यह ठीक हो सकता है। अतः इसे ही प्लास्टिक सर्जरी से कामलायक बना दिया। दूसरे गुर्दे को नहीं छूआ। जब तक बांया गुर्दा काम करता है छेड़ने की आवश्यकता नहीं है। दाईं मूत्रनाली भी, जो गुर्दे से बस्ती तक जाती थी सड़ गई थी, उसे बदल दिया।

हस्पताल की दिनचर्या—दिन में भोजनादि से निबट कर यशोदा आ जाती थी और रात को वाचस्पति मेरे पास रहता था। इस काल में वाचस्पति ने बहुत

सेवा की। वृहस्पति तो अन्यत्र काम पर लगा होने से कभी अवकाश मिलने पर ही आता था। भुवस्पति अभी बालक था।

आपरेशन के पश्चात् एक महीना व्यतीत होने पर डा० मिराजकर जब रोगियों के देखने के समय मेरे पास आये तो कहा पण्डित,! पन्द्रह दिन के लिये घर चले जाओ। यहां व्यर्थ में पैसा व्यय होगा। १५ दिन के पीछे फिर ५-७ दिन के लिये आकर भरती हो जाना। मैंने कहा कि जैसी आपकी आज्ञा। इस अवधि में कुछ द्रव्य इकट्ठा हो गया था। कैसे और किसने भेजा यह मुझे ज्ञात नहीं। मैंने वाचस्पति को डाक्टर साहब के पास फीस पूछने के लिये भेजा तो उन्होंने नाराज होकर कहा—क्या वापिस नहीं आना? यह बात वाचस्पति ने आकर मुझे बताई। इस काल में हस्पताल का जो बिल बना था उसमें तीन सौ रुपये कम पड़ते थे। उसी समय शान्तिस्वरूपजी मुझे देखने के लिये हस्पताल आये और कहा कि कुछ रुपयों की आवश्यकता हो तो बतावें। मैंने कहा हस्पताल का बिल चुकाकर १५ दिन के लिये घर पर जाना है। उसमें ३०० रुपये की कमी है। उन्होंने ३०० रुपये तत्काल दे दिये। शान्तिस्वरूपजी के जाने के कुछ काल पश्चात् ही श्री बाबू प्यारेलालजी कपूर मुझे देखने के लिये हस्पताल आये और उन्होंने भी खर्चे के लिये जो आवश्यकता हो, बताने को कहा। मैंने उनसे कहा अभी कुछ देर पहले ही भाई शान्तिस्वरूपजी आये थे, उन्होंने भी इसी विषय में पूछा था। हस्पताल का बिल चुकाने में ३०० रुपये की कमी पड़ती थी सो उन्हें बता दिया। उन्होंने ३०० रुपये दे दिये हैं। अब कुछ और आवश्यकता नहीं। इस प्रकार हस्पताल का बिल चुका कर १५ दिन के लिये घर पर चला गया।

पुनः हस्पताल में—१५ दिन के पीछे हस्पताल में आकर पुनः प्रविष्ट हुआ। डाक्टर साहब ने पेशाब निकालने के लिये जो नाली लगाई थी, उसे निकाल दिया और ४-५ दिन में घाव भर गया। एक दिन पूर्ववत् ही मरीजों को देखते हुए डा० मिराजकर मेरे पास आये और पूछा कि तुम्हारे पास कोई नहीं है? मैंने उत्तर दिया—अब किसी प्रकार की आवश्यकता तो है नहीं, इसलिये यशोदा बच्चों को खिला-पिलाकर आने वाली है। डाक्टर ने घड़ी देखी। १२ बजने में ५ मिनट शेष थे। डाक्टर ने कहा अभी उठकर मेरे साथ चलो। ५ मिनट और यहीं रहोगे तो व्यर्थ में एक दिन का १० रुपया और देना पड़ जायेगा। डाक्टर के साथ एक सहायक डाक्टर और एक नर्स थी। मुझे लेकर डाक्टर साहब कमरे से बाहर आये और पूछा कि तुम्हारे पास तो इन दिनों का बिल चुकाने का पैसा नहीं होगा। मैंने कहा मेरे पास तो नहीं है, परन्तु कोई न कोई आने ही वाला है। उसके आने पर

बिल चुकानें की व्यवस्था कर दूंगा । डाक्टर ने बिल चुकाने के लिये रुपये देने की इच्छा से पैन्ट की जेब में हाथ डाला । इतने में दूर दरवाजे पर भुवस्पति आता दिखाई दिया । मैंने डाक्टर साहब से कहा—बच्चा आ गया है । बिल चुकाने की व्यवस्था मैं कर दूंगा । जब तक भुवस्पति समीप नहीं पहुंचा, डाक्टर साहब खड़े रहे । पास आने पर भुवस्पति से पूछा—मिस्टर कहां रहते हो ? भुवस्पति ने कहा करौलबाग में । तब डाक्टर साहब ने मुझ से कहा—पैसा लेने इतनी दूर बच्चे को भेजोगे । ये लो रुपये और हस्पताल का बिल चुकाकर घर जाओ । यह कहकर मुझे ५० रुपये दिये । मैं हस्पताल का बिल चुका कर घर चला गया ।

डा० मिराजकर का हस्पताल में इतना रौब था कि जब यह पता चलता कि डा० साहब आ गये हैं तो सारे हस्पताल में ऐसा सन्नाटा छा जाता था कि सूई भी यदि फर्श पर गिरे तो उसकी आवाज सुनाई दे जाये । इतने रौबीले डाक्टर को मेरे प्रति इस प्रकार दयालु देखकर सब लोग चकित थे ।

डा० मिराजकर अपने समय के सर्वोत्कृष्ट सर्जनों में अन्यतम थे । वे आल-इण्डिया मैडिकल रिसर्च सोसाइटी के कई बार प्रधान रह चुके थे । हस्पताल में रहते हुए हमने डा० मिराजकर को फीस के बारे में जानकारी प्राप्त की, तो ज्ञात हुआ कि उपान्त्र-शोथ (अपेण्डिक्स) जैसे छोटे से आपरेशन की फीस १००० रुपया है । तो मैंने सोचा मेरे आपरेशन में तो साढे तीन घण्टे लगे हैं, तो इतने बड़े आपरेशन की फीस तो न जाने कितनी होगी । परन्तु डा० साहब का मेरे प्रति जो स्नेह था उससे मैं आश्वस्त था ।

डा० मिराजकर की महती उदारता—विगत डेढ़ महीने में डा० साहब ने फीस के सम्बन्ध में कोई बात नहीं की और अन्तिम दिन भी अस्पताल का बिल चुकाकर घर जाने के लिये ५० रुपये दिये, ऐसे व्यक्ति को आपरेशन की क्या भेंट की जावे, यह कुछ समझ में नहीं आता था । अगले दिन ५०० रुपये देकर यशोदा को डा० साहब के पास भेजा । (५० रुपये अलग से, जो डा० साहब ने दिये थे) और कहा कि डाक्टर साहब से कहना कि हमारी इतनी ही सामर्थ्य है, आगे जैसा आप कहेंगे तदनुसार किया जायेगा । यशोदा ११ बजे के लगभग हस्पताल पहुंची और पूछा कि डा० साहब कहां हैं तो सिस्टर ने उत्तर दिया कि आपरेशन के लिये आपरेशन रूम में गये हैं । अभी तुम चली जाओ शायद तुम्हें डा० साहब मिल जायें, नहीं तो ६ बजे तक इन्तजार करना पड़ेगा । बहुत गम्भीर आपरेशन है । यशोदा ऊपर गई । डा० साहब अपने सहायक के साथ आपरेशन रूम में जाने की तैयारी में थे । चाय आई हुई दोनों के सामने रखी हुई थी । डा० साहब ने यशोदा से पूछा—कैसे

आई ? तो यशोदा ने उत्तर दिया कि आपसे कुछ काम है। डा० साहब ने कहा कि पहले चाय पीयो। यशोदा ने कहा आप पीजिये। डा० साहब ने पूछा कि क्या तुम चाय नहीं पीतीं ? इस पर यशोदा ने कहा—डा० साहब ! आपके सामने झूठ तो नहीं बोलूंगी कि चाय नहीं पीती हूं, पर अभी घर से पीकर आ रही हूं, आप पीजिये। इस पर डा०साहब ने अपने सहायक को कहा कि तुम कैन्टीन से चाय पीकर आओ और सहायक की चाय यशोदा के आगे कर दी। यशोदा ने ५०० रुपये देते हुए कहा कि डा० साहब हमारी इतनी ही सामर्थ्य है आगे आप जैसा कहें। डाक्टर साहब ने रुपये गिनकर यशोदा से कहा कि तुम बहुत रुपये ले आई हो। हम जानते हैं कि तुम्हारी इतनी सामर्थ्य नहीं है, यह कहकर ५०० रुपये में से २०० रुपये लौटा दिये।

टंकारा के कार्य से त्यागपत्र देना—पं० आनन्दप्रियजी का मेरे प्रति हार्दिक स्नेह रहा। पूर्व(पृ०२२०)लिख चुका हूं कि उन्होंने टंकारा में स्वास्थ्य ठीक न रहने से बड़ौदा में कार्य करने की सुविधा दी। वहां पर मैंने टङ्कारा के कार्य से त्यागपत्र देने की चर्चा की तो उन्होंने पूछा कि तुम्हें कहां अनुकूल पड़ता है। इस पर मैंने कहा कि मेरे लिये अजमेर की जलवायु अनुकूल पड़ती है। इस पर अजमेर में रहकर टङ्कारा का कार्य करने की अनुमति दे दी। अजमेर आकर कष्ट बढ़ जाने पर और आपरेशन कराने के पश्चात् ४-५ महीने निर्बलता के कारण कार्य न कर सकने पर भी मासिक वेतन बराबर देते रहे। अन्त में इतनी उदारता के बदले पूर्णतया कार्य न कर सकने के कारण मन पर बहुत बोझ पड़ा और मैंने टङ्कारा के कार्य से त्यागपत्र दे दिया।

स्वतन्त्ररूप से कार्य करना—टङ्कारा के कार्य से त्यागपत्र देने के पश्चात् सन् १९६२ से अजमेर में रहकर स्वतन्त्ररूप से अध्यापन और ग्रन्थ प्रकाशन का कार्य प्रारम्भ किया।

वाचस्पति का विवाह—अजमेर के अपने पूर्व परिचित श्री पं सुरेशचन्द्रजी की आयुष्मती कन्या स्नेहलता के साथ चि० वाचस्पति का विवाह २७ मई १९६४ को सम्पन्न हुआ। २६ मई को श्री पं० जवाहरलाल नेहरु के निधन के कारण विवाह अत्यन्त सादगी से हुआ।

अमृतसर में पौराणिक विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ

श्री स्वामी करपात्रीजी के प्रयत्न से कई वर्षों से प्रति तीसरे वर्ष अर्थात् एक एक वर्ष छोड़कर सर्ववेदशाखा सम्मेलन का आयोजन विभिन्न स्थानों पर होता रहा

है। श्री स्वामी करपात्रीजी की ओर से मुझे इस सम्मेलन में भाग लेने के लिए सन् १९६० से निमन्त्रण प्राप्त होता रहा है और मैं इसमें सम्मिलित होता रहा हूं। सन् १९६४ के नवम्बर मास की ११-१८ तारीख तक 'सर्ववेदशाखासम्मेलन' अमृतसर में हुआ। उसमें भी मुझे निमन्त्रित किया गया। मैं इस सम्मेलन में पढ़ने के लिये पूर्ववत् एक निबन्ध लिख कर ले गया। मैंने पूर्व ही लिख दिया था कि मैं अन्तिम दो दिनों में उपस्थित हो सकूंगा। तदनुसार मैं वहां १६ की सायं उपस्थित हुआ।

अमृतसर सम्मेलन का वैशिष्ट्य—अमृतसर सम्मेलन से पूर्व श्री पं० चन्द्रशेखर जी शास्त्री संन्यास लेकर 'निरञ्जनदेव तीर्थ' के नाम से पुरी की 'शङ्कराचार्य पीठ' पर आसीन हो चुके थे। ये सदा से ही करपात्रीजी के विशिष्ट सहयोगी रहे हैं। अमृतसर पौराणिकों एवं आर्यसमाजियों का गढ़ रहा है। अतः यहां आर्यसमाजी विद्वानों को पराजित करने की विशेष योजना बनाई गई। इसकी सफलता के लिये श्री स्वामी निरञ्जनदेव तीर्थ ने अपना प्रथम चातुर्मासा अमृतसर में किया।

श्री स्वामी करपात्रीत्री अत्यन्त व्यवहारकुशल व्यक्ति थे। उन्होंने अमृतसर के आर्यसमाज के अधिकारियों को बुलाकर कहा कि आप इस सम्मेलन में सम्मिलित होने योग्य अपने विद्वानों की पूर्ण पते सहित सूचीं हमें देवें। हम उन्हें मार्गव्यय भी देवेंगे। आर्यसमाज के अधिकारियों ने सूची बनाकर दे दी। ये लोग इस सम्मेलन के अन्तः गूढ अभिप्राय को न समझ सके। श्री करपात्रीजी ने सूची में निर्दिष्ट पण्डितों को निमन्त्रण भेजा परन्तु कोई भी आर्यविद्वान् सम्मेलन में उपस्थित नहीं हुआ। ११-१२ सितम्बर तक किसी आर्यसमाजी विद्वान् के उपस्थित न होने पर और आर्यसमाज के अधिकारियों को इस सम्मेलन के गूढ अभिप्राय का परिज्ञान होने पर उन्होंने 'आर्यसार्वदेशिक प्रतिनिधिसभा देहली' को तार भेजा और २-३ पण्डितों को भेजने के लिये लिखा। परन्तु १६ नवम्बर शाम तक कोई आर्यसमाजी विद्वान् उपस्थित नहीं हुआ।

मैं १६ नवम्बर की शाम को जब श्री करपात्रीजी को सूचित करने पाण्डाल में गया तो मुझे अनेक आर्यसमाजियों ने घेर लिया और वहां की स्थिति बताते हुए कहा कि अच्छा हुआ आप आ गये। हमने और आर्य विद्वानों के साथ-साथ आपका नाम भी श्री करपात्रीजी को दिया था। सारी परिस्थिति सुनकर मुझे अत्यन्त खेद हुआ और मैंने कहा कि मुझे श्री करपात्रीजी ने आपके द्वारा नाम देने पर नहीं बुलाया है। वे तो इससे पूर्व भी मुझे बुलाते रहे हैं और मैं उनके सम्मेलन में भाग लेता रहा हूं। रही शास्त्रार्थ की बात, सो आप जानें। मैं शास्त्रार्थ करने के लिये

नहीं आया हूं। इसके अनन्तर करपात्रीजी से भी कह दिया कि मैं जो निबन्ध लिखकर लाया हूं उसे ही पढ़ूंगा।

१७ तारीख की प्रातः जब सम्मेलन की कार्यवाही प्रारम्भ हुई तो श्री करपात्री जी ने अकेला मुझे आया जानकर अपने पूर्व निश्चय के अनुसार शास्त्रार्थ के रूप में ही कार्य आरम्भ किया। काशी के एक पण्डित ने ऋषिदयानन्द की 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में आयं गौः पृश्निरक्रमीत् मन्त्र की व्याख्या को उद्धृत करके अपना पक्ष रखा—'स्वामी दयानन्द ने पाश्चात्य मतानुसार पृथिवी का सूर्य के चारों ओर भ्रमण सिद्ध करने के लिये आयं गौः मन्त्र को उद्धृत किया है। मन्त्र में अयम् पुंल्लिङ्ग है और पृथिवी स्त्रीलिङ्ग है। इस कारण उनकी व्याख्या अशुद्ध है। आर्यसमाजी विद्वान् इसका उत्तर देवें।' ऐसा कहकर बैठ गये। अमृतसर के आर्यसमाज के व्यक्तियों ने मुझे बहुत कहा कि आप उत्तर देवें। मैं अमृतसर के आर्यसमाजियों की अव्यावहारिकता से अत्यन्त खिन्न था अतः मैंने कहा कि शास्त्रार्थ का आह्वान आर्यसमाजी विद्वानों ने किया है। मैं यहां शास्त्रार्थ के लिये नहीं आया हूं। मैं चुपचाप बैठा रहा। पांच मिनट के पश्चात् पूर्व पण्डित ने पूर्वोक्त आक्षेप पुनः दोहराया और समाधान के लिये आह्वान किया। इस बार भी मैं बैठा रहा। पुनः तीसरी बार पूर्व आक्षेप को दोहराकर जब पण्डित ने कहा कि यदि कोई इसका समाधान प्रस्तुत नहीं करता है तो समझा जायेगा कि स्वामी दयानन्द का लेख मिथ्या है। इस अन्तिम घोषणा पर मैंने उठकर कहा कि पृथिवी के भ्रमण की बात स्वामी दयानन्द ने पाश्चात्य मत से प्रभावित होकर नहीं लिखी है। हमारे वैदिक ग्रन्थों में इसका बहुत्र उल्लेख है। ज्योतिषाचार्य आर्यभट्ट ने अपने ग्रन्थ में इस पक्ष को अच्छी प्रकार उपस्थापित किया है। इसके साथ ही ब्राह्मण ग्रन्थों के भी प्रमाण दिये। स्वामी दयानन्द की व्याख्या पर जो आक्षेप किया था उसके उत्तर में कहा—प्रतीत होता है अपना पक्ष प्रस्तुत करने वाले विद्वान् ने स्वामीजी की व्याख्या देखी ही नहीं है, सुनी सुनाई बात के आधार पर शङ्का प्रस्तुत कर दी है। स्वामीजी ने इस मन्त्र की व्याख्या में लिखा है—पृथिव्यादिलोकः। इसमें अयम् पद से केवल पृथिवी का ही निर्देश नहीं है, अपितु पृथिव्यादि लोकों का निर्देश है। अतः पुंल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग की बात कहकर जो दोषारोपण किया है वह मिथ्या है, विना सोचे समझे किया गया है।

इसके अनन्तर शास्त्रार्थ प्रारम्भ हो गया। ता० १७-१८ की प्रातः और मध्याह्नोत्तर की चार बैठकों में ६ घण्टे तक ऋषिदयानन्द के वेदविषयक अनेक मन्तव्यों पर संस्कृत में शास्त्रार्थ हुआ (सम्मेलन की सारी कार्यवाही संस्कृत भाषा में होती

थी)। अन्त में पुरी के शङ्कराचार्य श्री निरञ्जनदेव तीर्थ ने कहा। यह शास्त्रार्थ नहीं है शास्त्रचर्चा है। 'श्री मीमांसकजी मेरे पूर्व आश्रम के मित्र हैं, बड़े विद्वान् हैं। हमने शास्त्रचर्चा की है इसमें जय-पराजय की भावना नहीं है'। इस प्रकार इस शास्त्रार्थ का पटाक्षेप हुआ। इस शास्त्रार्थ का विवरण अन्यत्र प्रस्तुत करने का विचार है। इस शास्त्रार्थ से घबराकर जो करपात्रीजी मुझे अपने सर्ववेदशाखा-सम्मेलन में बुलाते रहे थे, उन्होंने पुनः आगे से बुलाना बन्द कर दिया।

इस शास्त्रार्थ की कुछ विशेषताएं—

१—ऋ० द० के पक्ष का पोषक मैं अकेला व्यक्ति था। दूसरे पक्ष में अनेक विद्वान् थे जो बदल-बदल बोलते थे।

२—मेरे पास पूज्य गुरुवर विरचित यजुर्वेद-भाष्य विवरण के अतिरिक्त कोई पुस्तक नहीं थी। दूसरे पक्ष की मेजों पर पचासों ग्रन्थ विद्यमान थे।

३—मेरे द्वारा स्थान निर्देश पूर्वक दिये गए उद्धरणों को उन उन पुस्तकों में विपक्षी विद्वान् निकाल कर मिलाते थे। दो तीन बार तो ऐसा भी हुआ कि हड़बड़ाहट में उन्हें मेरे द्वारा उद्धृत उद्धरण न मिलने पर पुस्तक मंगाकर और उस स्थान पर निकाल कर दिखाया।

४—पौराणिक विद्वान् प्राय: वैदिक पदों की स्वर प्रक्रिया को नहीं जानते हैं अत: मैं यत्र तत्र प्रसंगवश स्वर प्रक्रिया पर बल देता था। इस पर श्री स्वामी निरञ्जनदेवजी ने आर्यसमाजियों की प्रमुख कमी ध्यान में रखकर कहा—'मीमांसक जी बार-बार स्वर पर बल देते हैं, परन्तु किसी वेद के एक मन्त्र का तो सस्वर पाठ सुना देवें।' यह आर्यसमाजी विद्वानों की वेदविषयक महती उपेक्षा पर एक करारी चोट थी। इस पर मैंने कहा—'आज मैं एक मन्त्र का भी सस्वर पाठ नहीं कर सकता तो इसमें मेरा दोष नहीं है, आपके समाज का है। मैंने सामवेद का सस्वर पाठ सीखने का प्रयत्न किया था। आप लोगों के मन्तव्यानुसार जन्मना ब्राह्मण होने पर भी आर्यसमाजी होने से मुझे नहीं पढ़ाया (द्र० – पूर्व पृष्ठ १५७)। यदि आपके मतावलम्बी अन्य गुरुजनों के सदृश ये सामवेदी अध्यापक भी उदार होते तो मैं वेद के सस्वर पाठ-ज्ञान से वञ्चित न रहता।

५—इसी प्रकार पौराणिकों में पूर्व मीमांसा-शास्त्र के ज्ञाता भी विरले ही हैं।[1]

---

१. दिल्ली में सम्पन्न एक सर्ववेदशाखासम्मेलन में एक बार म० म० श्री पं० गिरिधरशर्मा चतुर्वेदी ने 'वेद में इतिहास' के निरूपण में व्याख्यान दिया और उसमें प्रबल प्रमाण के रूप में मीमांसा के 'लोकवेदाधिकरण' के 'य एव लौकिकाः शब्दास्त

अतः मैंने अपने कथ्य के प्रमाण में मीमांसा-शास्त्र का बहुधा आश्रय लिया। और सभा में विद्यमान मीमांसा-शास्त्रज्ञ अपने गुरुभाई श्री पं० सुब्रह्मण्य शास्त्रीजी[1] की ओर संकेत करके कहता था कि यदि मैंने कुछ शास्त्रविपरीत कहा हो तो मेरा समाधान कर देवें। मीमांसा-शास्त्र का अनेक बार उल्लेख करने पर श्री स्वामी करपात्रीजी ने श्री पं० सुब्रह्मण्य शास्त्री को ४-५ बार बुलाकर मेरा प्रतिवाद करने को कहा। यतः मेरा कथन मीमांसा-शास्त्र के अनुकूल था, इसलिये उन्होंने कहा कि जब तक मीमांसा-शास्त्र के सिद्धान्तों के विपरीत नहीं बोलते मैं प्रतिवाद कैसे कर सकता हूं। यह बात माननीय शास्त्रीजी ने मुझे अगले दिन बताई थी और यह भी कहा था कि ये लोग हम दोनों गुरुभाइयों को लड़ाकर तमाशा देखना चाहते थे।

सन् १९६४ के अन्त में गुरुजी का स्वर्गवास हो जाने के पश्चात् रामलाल कपूर ट्रस्ट का कार्य अजमेर रहकर ही करता रहा। इसके लिये ट्रस्ट दो सौ रुपये मासिक देता रहा। ट्रस्ट के कार्य से बीच-बीच में काशी जाकर भी ट्रस्ट की व्यवस्था देखता रहा।

डा० माधवकृष्ण शर्मा का सहयोग—श्री डा० माधवकृष्ण शर्मा से एक बार मैं बीकानेर में मिल चुका था। उस समय वे 'अनूप लाइब्रेरी' के अध्यक्ष थे। आप पं० भगवद्दत्तजी के अन्यतम मित्र थे। पं० भगवद्दत्तजी ने ही अनूपपुस्तकालय में वर्तमान एक हस्तलिखित पुस्तक के कुछ अंश की प्रतिलिपि करने के लिये मुझे बीकानेर भेजा था। डा० माधवकृष्ण शर्मा मेरे द्वारा सम्पादित 'दशपादी उणादि-वृत्ति' के कार्य से बहुत प्रसन्न थे। कुछ वर्ष पश्चात् बीकानेर से स्थानान्तरित होकर

एव वैदिकाः त एव च तेषामर्थाः' पक्ष को उद्धृत करके कहा कि जब लोक में वसिष्ठ विश्वामित्र व्यक्तिवाचक हैं तो वेद में भी इनका यही अर्थ होगा। व्याख्यान के अन्त में मैंने उठकर आदर एवं नम्रतापूर्वक कहा कि 'मीमांसा में लोक वेदाधिकरण में जातिवाचक गुणवाचक और क्रियावाचक शब्दों पर ही विचार किया है, रूढ शब्दों को स्वीकार नहीं किया है'। यह कहकर पूज्य गुरुवर चिन्नस्वामीजी शास्त्री के गुरुभाई श्री विद्वद्वर अनन्तकृष्णजी शास्त्री, जो संन्यस्त अवस्था में वहां विराजमान थे, उनकी ओर संकेत करके कहा कि ये हमारे पूज्य मीमांसा शिरोमणि जी विराजमान हैं, वे निर्णय देवें कि मैंने सही कहा है वा नहीं? इस पर शास्त्रीजी ने कहा—मीमांसकेन यदुक्तं तत्सत्यम्, नहि तत्र रूढशब्दानां विचारः कृतः।

१. इनका कुछ वर्ष पूर्व निधन हो चुका है।

डा० माधवकृष्ण शर्मा राजस्थान संस्कृत विभाग-जयपुर के अध्यक्ष बन कर आ गये थे। श्री डा० शर्मा व्याकरण साहित्य वेदान्त आदि अनेक विषयों के विशिष्ट विद्वान् होते हुए अत्यन्त सरल चित्त और गुणज्ञ थे।

जब मैं १९६१ में अजमेर में रहने लगा तो उन्हें वैद्य मुनिदेव उपाध्याय[1] से मेरा अजमेर में निवास करना ज्ञात हुआ तो उन्होंने मिलने के लिये मुझे जयपुर बुलाया। इसके पश्चात् तो वे प्रायः समय-समय पर मिलने के लिये मुझे लिखते रहते थे।

राजस्थान सरकार का विशिष्ट पुरस्कार— उस समय 'राजस्थान सरकार' द्वारा संस्कृत के विद्वानों को एक हजार से तीन हजार तक के पुरस्कार से सम्मानित करने की योजना चालू की हुई थी। इसी योजना के अन्तर्गत सन् १९६३ में राजस्थान राज्य के संस्कृत विभाग ने वेद और व्याकरण-शास्त्र सम्बन्धी शोधकार्य पर ३००० रु० का पुरस्कार देकर मुझे सम्मानित किया। इसी प्रकार सन् १९६५ से ६७ तक तीन वर्ष के लिये माध्यन्दिन पदपाठ के सम्पादन के लिये १५० रुपये मासिक सहायता दिलवाई। राष्ट्रपति सम्मान के लिये राजस्थान सरकार की ओर से मेरे नाम का प्रस्ताव भी डा० माधवकृष्ण शर्मा ने ही भेजा था।

भुवनेश्वर में पाणिनि सान्ध्य महाविद्यालय—भुवनेश्वर में अष्टाध्यायी महाभाष्य के क्रम से पाणिनीय व्याकरण पढ़ने-पढ़ाने के अत्यन्त श्रद्धालु एवं पुरुषार्थी श्री निवासदासजी रहते थे। वे काशी में आकर कई बार गुरुजी से भेंट कर चुके थे। उनकी महती इच्छा थी कि भुवनेश्वर में एक ऐसा महाविद्यालय खुले जिसमें अष्टाध्यायी के क्रम से पाणिनीय-व्याकरण का पठन-पाठन हो। यद्यपि वे साधारण क्लर्क ही थे, परन्तु उन्होंने अदम्य साहस और उत्साह से उड़ीसा के शिक्षामन्त्री से केन्द्र के साथ पत्रव्यवहार कराकर भुवनेश्वर में केन्द्रीय सरकार की ओर से पाणिनि सान्ध्य महाविद्यालय खोलने की अनुमति प्राप्त कर ली।

आचार्य बनकर भुवनेश्वर जाना—पाणिनि सान्ध्य महाविद्यालय के लिये श्री निवासदासजी को एक आचार्य और दूसरे प्राध्यापक की आवश्यकता थी। इसके लिये वे मेरे पास अजमेर आये और मुझसे तथा पं० सत्यानन्द वेदवागीश के सामने अपनी समस्या रखी और हम दोनों से भुवनेश्वर में कार्य करने का अनुरोध किया। मैंने अपनी दो समस्याएं उनके सामने रखीं।

---

१. श्री मुनिदेव उपाध्याय पूज्य गुरुवर के आद्य सहयोगी श्री पं० बुद्धदेवजी (धारनिवासी) के पुत्र होने के नाते मेरे साथ विशेष स्नेह रखते हैं।

१—मैंने कोई राजकीय परीक्षा उत्तीर्ण नहीं की है। इसलिये मुझे प्राचार्य बनना या बनवाना कठिन है।

२—गुरुजी के स्वर्गवास के कारण मुझे रामलाल कपूर ट्रस्ट का कार्य संभालना है। क्योंकि मेरा इस ट्रस्ट के साथ बचपन से सम्पर्क होने के कारण यह मेरा कर्तव्य है। इस कारण मेरा भुवनेश्वर चलना कठिन है। इस पर श्री निवासदासजी ने कहा पहली कठिनाई मैं दूर कर लूंगा। दूसरे के लिये कहा कि आप छः महीने के लिये ही कार्य करना स्वीकार करलें, तदनन्तर अन्य की व्यवस्था कर लेंगे।

भुवनेश्वर का कार्य स्वीकार करने में दो लौकिक कारण थे। प्रथम—विना राजकीय परीक्षा दिये भी कोई व्यक्ति अपने अध्यवसाय से महाविद्यालय का प्राचार्य बन सकता है। दूसरा—भुवनेश्वर में ८०० रु० मासिक वेतन पर नियुक्ति होने से रामलाल कपूर ट्रस्ट के अधिकारियों को मुझे उचित मासिक वृद्धि देने में अधिक सोचना नहीं पड़ेगा।

पं० सत्यानन्द वेदवागीश सरकारी माध्यमिक शाला पुष्कर में कार्य करते थे। वहीं उनकी पत्नी भी कन्याशाला में अध्यापिका थी। परन्तु अत्यन्त भावुक प्रकृति के होने के कारण वेदवागीशजी स्थिर नौकरी से त्यागपत्र देकर भुवनेश्वर जाने के लिये उद्यत हो गये। हम दोनों से वचन लेकर श्री निवासदासजी ने भुवनेश्वर जाकर हम दोनों को नियुक्तिपत्र भिजवा दिया। मैं फरवरी १९६७ के आरम्भ में भुवनेश्वर पहुंचा।

वेदवागीशजी ने मुझ से पूर्व पहुंच कर प्रारम्भिक कार्य में उचित सहयोग प्रदान का किया। मेरे जाने पर और दोनों की नियुक्ति प्रमाणित हो जाने पर विद्यालय कार्य आरम्भ हुआ। लगभग २५-३० विद्यार्थी विद्यालय में प्रविष्ट हुए।

पाठ्यक्रम निर्द्धारण में धांधली—पाठ्यक्रम के निर्द्धारण के लिये जो समिति बनी थी, उसमें स्थानीय पण्डित ही प्रमुख थे। जो न्याय, साहित्य और व्याकरण के पण्डित थे। वैदिक साहित्य के साथ उनका परिचय न होने के कारण जब पाठ्यक्रम में व्याकरण के साथ-साथ अन्य वैदिक ग्रन्थों को समाविष्ट करने के प्रयत्न का उन्होंने विरोध किया तथा एक प्रमुख विद्वान् (जिनका सम्प्रति नाम स्मरण नहीं है) समझाने बुझाने पर भी चुप नहीं हुए तब मुझे डांट कर कहना पड़ा आपने जिस ग्रन्थ को देखा ही नहीं है, उसके सम्बन्ध में आपकी सम्मति स्वीकार नहीं की जा सकती। इसके फलस्वरूप अन्य विद्वानों ने भी विशेष विरोध नहीं किया और हमारे द्वारा बनाया गया पाठ्यक्रम समिति ने स्वीकार कर लिया।

गुर्दे की पीड़ा का बढ़ना—भुवनेश्वर की भूमि में लौह की पर्याप्त मात्रा होने से वहां के जल में भी उसका प्रभाव स्वाभाविक है। इस कारण मेरे गुर्दे में दर्द रहने लग गया। डाक्टर की औषधि लेने पर भी कुछ शान्ति नहीं हुई। कुछ समय पश्चात् बहालगढ़ में रामलाल कपूर ट्रस्ट के शिलान्यास के अवसर पर मुझे सोनीपत आना पड़ा। साथ में श्री निवासदासजी भी बहालगढ़ आये। इस अवसर में जल-वायु परिवर्तन से मेरे गुर्दे का दर्द स्वतः शान्त हो गया। इससे निश्चय हो गया कि भुवनेश्वर में रहना मेरे स्वास्थ्य के लिए ठीक नहीं है।

पाणिनि सान्ध्य महाविद्यालय छोड़ना—यतः जब निश्चय हो गया कि भुवनेश्वर का जलवायु मेरे प्रतिकूल है तो मैंने विद्यालय के प्राचार्य पद से त्यागपत्र दे दिया। शिक्षाविभाग कार्यालय के प्रमुख व्यक्ति ने मुझे सलाह दी कि 'आप त्यागपत्र मत दीजिए दश दिन पीछे ढाई मास का ग्रीष्मावकाश होगा। आप दश दिन की छुट्टी लेकर चले जायें और ग्रीष्मावकाश के पश्चात् कुछ दिन कार्य करके त्यागपत्र देवें। इससे आपको तीन मास के वेतन का लाभ प्राप्त होगा।' मैंने नम्रता से उत्तर दिया—आपका सुझाव लौकिक व्यवहार के अनुसार सही है, परन्तु जब मैं यहां कार्य करना ही नहीं चाहता तो मेरे लिये अवकाशकाल का वेतन प्राप्त करना अनैतिक कार्य होगा। यह मैं नहीं कर सकता। अतः मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लें।

भुवनेश्वर छोड़ने से पूर्व यशोदा को भी 'पुरी' आदि के दर्शनीय स्थान देखने के लिये भुवनेश्वर बुला लिया था। भुवनेश्वर से लौटते समय यशोदा को पुरी जगन्नाथ मन्दिर आदि दर्शनीय स्थान दिखाये। हैदराबाद के पं० मदनमोहनजी विद्यासागर के विशेष आग्रह पर हम पुरी से हैदराबाद गये। वहां ५-७ दिन रह कर वहां के दर्शनीय स्थान देखकर अजमेर वापस पहुंचे।

पाणिनि सान्ध्य महाविद्यालय का भङ्ग करना—ग्रीष्मावकाश के पश्चात् महाविद्यालय पुनः चालू हुआ। कुछ समय पश्चात् ही पञ्चवर्षीय विधानसभा के चुनाव हुए। उसमें कांग्रेस पार्टी, जिसने महाविद्यालय खोलने की स्वीकृति दी थी, हार गई तथा दूसरी पार्टी सत्ता में आई। जिसमें तथाकथित असवर्णों का बाहुल्य था। मुख्यमन्त्री भी असवर्ण जाति के ही थे। उन्होंने राजनीतिक एवं जातीय विद्वेष के कारण कांग्रेस द्वारा स्थापित 'पाणिनि सान्ध्य महाविद्यालय' भंग कर दिया। इस विद्यालय का सारा वार्षिक व्यय केन्द्र सरकार वहन करती थी, उड़ीसा सरकार को एक पैसा भी खर्च नहीं करना पड़ता था, फिर भी सत्ता में आये नूतन दल द्वारा इस विद्यालय को भंग करने में विद्वेष ही एकमात्र कारण था।

पं० सत्यानन्द वेदवागीश की विषम परिस्थिति—पाणिनि सान्ध्य महाविद्यालय

को भंग करने पर शिक्षाविभाग के अधिकारियों ने पं०वेदवागीशजी को अन्य कालेज में नियुक्त करने का प्रस्ताव किया, परन्तु उन्होंने विना विशेष लक्ष्य की पूर्ति के घर से इतनी दूर रहना स्वीकार नहीं किया।

पं० वेदवागीशजी ने आर्षपाठविधि के प्रचार प्रसार की दृष्टि से जो स्थायी राजकीय सेवा का त्याग किया, वह उन्हें जीवन में वहुत मंहगा पड़ा। आर्यसमाज की संस्थाएं उन्हें अपना नहीं सकीं, क्योंकि वे सिद्धान्तवादी होने के नाते संस्थाओं के अधिकारियों के साथ तालमेल नहीं बैठा सकते थे। अतः यायावर वृत्ति से ही निर्वाह करना पड़ रहा है। यदि उनकी धर्मपत्नी राजकीय सेवा में न होतीं तो उन्हें जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता था, उन्हें भुक्तभोगी सहज ही जान सकता है।

भुवस्पति का विवाह—भुवस्पति के विवाह सम्बन्ध की वार्ता श्री पं० करण-सिंहजी शर्मा की सुपुत्री 'शारदा' बी० ए० के साथ मेरे भुवनेश्वर रहने के काल में ही आरम्भ हो गई थी। भुवनेश्वर से लौटने के पश्चात् दो मास के भीतर ही १० जुलाई १९६७ को 'लाखेरी' (राजस्थान) में विवाह कार्य सम्पन्न हो गया।

सोनीपत में स्थानान्तरण—भुवस्पति के विवाह के पश्चात् अपना सब सामान और पुस्तकें रेल द्वारा देहली भेज दीं और हम जुलाई के अन्त में सोनीपत पहुंच गये। हमारे रहने के लिये 'माडल टाउन' में किराये का मकान पहले से ही ले रखा था। इस समय छोटी पुत्री सुधा और पौत्र राजीव हमारे साथ था।

प्रेस की स्थापना—रामलाल कपूर एण्ड संस का अमृतसर में 'पञ्चनद' नाम का एक प्रेस था। उसे ही ट्रस्ट ने खरीद लिया और उसे मशीन टाइप आदि सभी सामान के साथ अगस्त (१९६७) के अन्त में सोनीपत लाया गया। प्रेस का लाइसेन्स आदि लेने में २-३ महीने लगे। इस प्रकार १९६७ के अन्त तक 'रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रेस' का कार्य आरम्भ हो गया। बिक्री के लिये ट्रस्ट की कुछ मुद्रित पुस्तकें भी काशी से मंगवा लीं। प्रेस की देख-रेख तथा बिक्री का सारा कार्य मुझे ही करना पड़ता था। प्रेस में छपने वाली पुस्तक की प्रेस कापी बनाना, प्रूफ देखना आदि कार्य भी मैं ही करता था। इस प्रकार लगभग ३ वर्ष तक बारह-तेरह घण्टे प्रतिदिन कार्य करना पड़ता था।

वेदवाणी का सोनीपत से प्रकाशन—जून १९७० से 'वेदवाणी' पत्रिका का मुद्रण 'रामलाल कपूर ट्रस्ट' के अपने प्रेस में प्रारम्भ हुआ।

श्री हरिकृष्णजी मलिक का सहयोग—दिल्ली के श्री हरिकृष्णजी मलिक सब जज

ऋषिदयानन्द के अनन्य भक्त थे। वे ४-५ वर्षों से मुझे महाभाष्य की हिन्दी व्याख्या करने के लिये प्रेरित कर रहे थे। अन्त में सन् १९७० से महाभाष्य की हिन्दी व्याख्या प्रारम्भ की। नवाह्निक की पं० चारुदेवशास्त्री की हिन्दी व्याख्या उपलब्ध थी। इसलिये पहले नवाह्निक के आगे प्रथमाध्याय के पाद २-३-४ की व्याख्यारूप दूसरा भाग सन् १९७२ में प्रकाशित हुआ। द्वितीयाध्याय की व्याख्यारूप तृतीय भाग १९७४ में प्रकाशित हुआ और नवाह्निकरूप सन् १९७९ में छपा। महाभाष्य की व्याख्या को भी रामलाल कपूर ट्रस्ट का कार्य ही समझ कर विना पारिश्रमिक करता रहा। ट्रस्ट के अधिकारियों ने भी इसे अपना ही कार्य समझ कर मेरे इस कार्य को करने में कोई आपत्ति नहीं की। छपाई का व्यय जज साहब करते थे। अन्त में जज साहब के कुछ व्यवहार से खिन्न होकर और मीमांसा-शाबर-भाष्य की हिन्दी व्याख्या के कार्य को विशेष महत्त्वपूर्ण मानकर मैंने महाभाष्य की व्याख्या का कार्य छोड़ दिया।

श्री चौ० प्रतापसिंहजी का सहयोग—करनाल निवासी श्री चौ० प्रतापसिंहजी ऋषिदयानन्द के परम भक्त एवं वैदिक-धर्म के प्रचार प्रसार में विशेष लगन रखते थे। आपके साथ सन् १९७० में सम्बन्ध होने पर मैंने उन्हें ऋषिदयानन्द के ऋग्वेद-भाष्य का शुद्ध सटिप्पण एवं सुन्दर संस्करण प्रकाशित करने के लिये सुझाव दिया। श्री चौधरीजी ने इसे स्वीकार कर कार्य करने के लिये कहा। तदनुसार ऋग्वेद-भाष्य का प्रथम भाग एवं द्वितीय भाग सन् १९७३ में और तृतीय भाग १९७४ में प्रकाशित हुआ।

प्रथम भाग का वैशिष्ट्य—ऋषिदयानन्द ने ऋग्वेद-भाष्य और यजुर्वेद-भाष्य के पांचवें अङ्क के टाइटल पेज ३-४ पर अपने वेद-भाष्य के विषय में एक विज्ञापन, छपवाया था। उसमें उन्होंने लिखा था—

'जो कोई भूमिका के विना केवल वेद ही लेना चाहे सो नहीं मिल सकते। किन्तु भूमिका ५ रुपये देने से पृथक् मिल सकती है।' द्र०—पत्र और विज्ञापन संस्करण तीन पूर्ण संख्या २०४ भाग १ पृ० १५६ पं० १०-११।

इस विज्ञापन के द्वारा ऋषिदयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के विना वेद-भाष्य बेचने का निषेध किया है परन्तु परोपकारिणीसभा द्वारा आज तक, जब उसके पास ऋग्वेद-भाष्य भेजने का आर्डर प्राप्त होता है तो वह भूमिका के विना ही भेजा जाता है। सभा के अधिकारियों ने ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका को वेद-भाष्य-भूमिका न समझकर स्वतन्त्र पुस्तक समझा हुआ है। इसी कारण विना भूमिका के वेद-भाष्य का विक्रय करते हैं। भूमिका प्रत्येक ग्रन्थ का आदि भाग होता है। कोई भी पुस्तक

उसके विना न प्रकाशित होती है न भेजी जाती है। इतना ही नहीं ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका को पढ़े विना ऋषिदयानन्द का वेद-भाष्य यथावत् समझ में नहीं आ सकता, क्योंकि ऋषिदयानन्द ने अपने वेद-भाष्य के समस्त आधारभूत नियमों का विवरण भूमिका में ही दिया है। मैंने परोपकारिणीसभा की सौ वर्ष से चली आई भूल का निराकरण करने के लिये 'ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका' को ऋग्वेद-भाष्य के प्रथम भाग के आरम्भ में प्रकाशित किया। अगले भागों का प्रकाशन श्री चौधरीजी किसी कारणवश नहीं कर सके।

ऋग्वेद-भाष्य के अतिरिक्त भी श्री चौ० प्रतापसिंहजी ने कई पुस्तकों का प्रकाशन कराया। आपने श्री पं० विश्वनाथजी विद्यामार्तण्ड से अथर्ववेद भाष्य लिखवा कर प्रकाशित करना आरम्भ किया। आपके द्वारा काण्ड ९ से २० तक का भाष्य प्रकाशित हुआ।

सुनीति का विवाह—९ जून सन् १९७१ को ज्येष्ठ पुत्री सुनीति का विवाह जयपुर निवासी श्री पं० सोमदेवजी शर्मा पाराशर के ज्येष्ठ पुत्र श्री धीरेन्द्रकुमार शर्मा के साथ सोनीपत में सम्पन्न हुआ। इस कार्य में श्री भ्राता सुरेन्द्रकुमारजी कपूर, श्री वीरेन्द्रजी कपूर तथा श्री नरेन्द्रजी कपूर आदि का विशेष सहयोग प्राप्त हुआ।

ऋ० द० कृत ग्रन्थों के प्रकाशन की विशेष योजना—मेरी चिरकाल से इच्छा थी कि ऋषिदयानन्दकृत ग्रन्थों के शुद्ध प्रामाणिक सटिप्पण एवं विविध प्रकार की सूचियों से सम्पन्न संस्करण प्रकाशित किये जायें। रामलाल कपूर ट्रस्ट की ओर से इसकी एक विशेष योजना वेदवाणी में प्रकाशित की। ऋ० द० की समस्त पुस्तकें अग्रिम धन भेजने वाले महानुभावों को लागतमात्र २५० रु० में देने, और कम से कम २५० अग्रिम ग्राहक बनने पर योजना आरम्भ करने की घोषणा की थी। परन्तु खेद से लिखना पड़ता है कि इस महत्त्वपूर्ण योजना के केवल ४०-५० ही अग्रिम ग्राहक बने। अतः यह योजना पूर्णरूप में सफल न हो सकी। जिन महानुभावों ने अग्रिम धन भेजा था वह उन्हें वापस कर दिया।

उक्त योजना के खटाई में पड़ जाने पर भी 'आर्यसमाज-शताब्दी-महोत्सव' के अवसर पर सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि, ऋषिदयानन्द के १४ लघु ग्रन्थों का संग्रह, ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन (चार भागों में) और ऋ० द० के शास्त्रार्थ एवं प्रवचन आदि के विशिष्ट महत्त्वपूर्ण संस्करण प्रकाशित किये।

जगन्नाथपुरी की यात्रा—भुवनेश्वर से लौटने के नौ वर्ष पश्चात् मई १९७६ में उत्तरप्रदेश के भूतपूर्व राज्यपाल श्री विश्वनाथदास द्वारा पुरी में स्थापित वेद-

मन्दिर के समारोह में श्री प्रियव्रतदासजी के विशेष निमन्त्रण पर मेरा पुरी जाना हुआ। उस समय की सारी व्यवस्था के सञ्चालक वे ही विद्वान् थे जिनको भुवनेश्वर में मैंने 'पाणिनि सान्ध्य महाविद्यालय' की पाठविधि निर्धारण के समय डांटा था। वेद-मन्दिर के समारोह पर उक्त पण्डितजी बड़ी नम्रतापूर्वक मेरे आगे-पीछे फिरते रहे। श्री प्रियव्रतदासजी ने मुझसे पूछा कि यह अभिमानी पण्डित आपके आगे-पीछे क्यों फिरता है ? मैंने उन्हें भुवनेश्वर की बीती घटना सुनाई और कहा कि इनके मन में कहीं यह शङ्का छिपी हुई है कि मैं उनके विरुद्ध यहां भी कुछ न कह दूं, जिससे उनका अपमान हो।

मोहनलाल बागड़िया (कलकत्ता) के साथ सम्बन्ध—मैं मई सन् १९७६ में पुरी के 'वेदमन्दिर' के उत्सव से निवृत्त होकर 'एशियाटिक सोसाइटी' के पुस्तकालय में स्थित कतिपय हस्तलेखों को देखने के लिये कलकत्ता गया और आर्यसमाज विधानसरणी में ५-६ दिन ठहरा। इसी मध्य रविवार के दिन साप्ताहिक अधिवेशन में मेरा भाषण हुआ। मेरे भाषण की सूचना किसी प्रकार श्री मोहनलालजी बागड़िया को मिल गई। इससे वे रविवार के दिन साप्ताहिक अधिवेशन में उपस्थित हुए। अधिवेशन की समाप्ति पर बागड़ियाजी मुझे और मेरी पत्नी यशोदादेवी को अपने घर पर ले गये। उनके घर पर हम लगभग ३ घण्टे रहे। इस प्रकार बागड़ियाजी और उनकी धर्मपत्नी सौ० विमलादेवी के साथ हमारा प्रथम वार मिलन हुआ।

श्री बागड़ियाजी का संक्षिप्त परिचय-श्री मोहनलालजी बागड़िया ऋषिदयानन्द के परम भक्त और वैदिक-धर्म के प्रति श्रद्धालु व्यक्ति थे। इनके वैमात्रिक नाना बिन्ध्यवासिनीप्रसाद अग्रवाल की पूज्य गुरुवर्य के प्रति विशेष श्रद्धा थी। वे गुरुजी से मिलने प्रायः काशी आते रहते थे और कई-कई दिन आश्रम में निवास करते थे। उन्हीं दिनों में मेरे साथ भी उनका सम्पर्क हो गया था। वे पूज्य गुरुजी के स्वर्गवास के पश्चात् लगभग १५ दिन मेरे पास अजमेर में भी रहे थे। श्री अग्रवालजी गम्भीर विचारक और लेखक थे। ऋषिदयानन्द के प्रति उनकी गहरी श्रद्धा और आस्था थी। मोहनलालजी बागड़िया और सौ० विमलादेवीजी आरम्भ में पौराणिक मत के प्रति श्रद्धालु अनुयायी थे। श्री अग्रवालजी जब कलकत्ता जाते थे, तो अपने साक्षात नातियों के पास न ठहरकर अधिकतर बागड़ियाजी के पास ही ठहरते थे। श्री अग्रवालजी के सम्पर्क से दोनों पति-पत्नी वैदिक-धर्म के परम श्रद्धालु और आस्थावान् अनुयायी बन गये। बागड़ियाजी के घर पर निवासकाल में श्री अग्रवाल जी द्वारा पूज्य गुरुवर्य की और मेरी चर्चा प्रायः होती रहती थी। इसी अप्रत्यक्ष

सम्पर्क के कारण बागड़ियाजी मुझ से मिलने आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशन में आये थे।

वैदिक-ग्रन्थों के प्रकाशन में बागड़ियाजी का सहयोग—बागड़िया परिवार के साथ सम्पर्क होने के पश्चात् सौ० विमलादेवीजी कभी-कभी मुझे पत्र लिखती रहीं। इसी पत्राचार के माध्यम से बागड़िया दम्पती ने अपनी स्वर्गीय माताजी की स्मृति में संस्थापित **श्रीमती सावित्रीदेवी बागड़िया ट्रस्ट** के द्वारा प्राचीन वैदिक-ग्रन्थों के उद्धार एवं वैदिक-धर्म के प्रचारार्थ विशिष्ट ग्रन्थों के प्रकाशन की योजना बनाई। सन् १९७८ के आरम्भ में इस योजना ने मूर्तरूप धारण कर लिया।

आत्मीयता की पराकाष्ठा—जैसे-जैसे समय बीतता गया बागड़िया दम्पती की हमारे साथ आत्मीयता बढ़ती गई। श्री मोहनलालजी और सौ० विमलादेवी हमें अपने नाना श्री विन्ध्यवासिनीप्रसाद अग्रवालजी के रूप में अर्थात् हम दोनों को नाना नानी के रूप में मानने लगे। न्यू अलीपुर में जब उन्होंने अपना नवीन भवन निर्मित किया तो उसमें 'गृह-प्रवेश' के अवसर पर मेरी सम्मति से श्री पण्डित मदनमोहनजी विद्यासागर (हैदराबाद) के ब्रह्मत्व में १५ दिन तक ब्रह्म पारायण महायज्ञ कराया। पूर्णाहुति से ३-४ दिन पूर्व हम दोनों भी इस शुभ अवसर पर बागड़िया परिवार को आशीर्वाद देने उपस्थित हुए।

सन् १९८४ में श्री बागड़ियाजी ने अपनी ज्येष्ठ कन्या के विवाह के अवसर पर नूतन यज्ञशाला बनवाई और उसी में वैदिक-विधि से विवाह सम्पन्न किया गया। इस शुभावसर पर भी हम दोनों वर-वधू को आशीर्वाद देने कलकत्ता गये।

परम सात्त्विक—मोहनलालजी बागड़िया के समस्त परिवार का जीवन अत्यन्त सात्त्विक और वैदिक-कर्मकाण्ड के प्रति श्रद्धालु है। उन्होंने अपने गृह में नित्य-विधिवत् दैनिक अग्निहोत्र के लिये एक सुयोग्य पण्डित को नियुक्त किया हुआ है। दैनिक-यज्ञ में सारा परिवार श्रद्धापूर्वक प्रतिदिन भाग लेता है। सामाजिक कार्यों के प्रति भी बागड़िया दम्पती सदा अग्रसर रहते हैं। आर्यसमाज के वेद प्रचार के कार्य के अतिरिक्त 'कल्याण आश्रम', 'विश्व हिन्दू परिषद्' और 'मानव सेवा आश्रम' आदि संस्थाओं के साथ भी श्री मोहनलालजी का सम्पर्क था। मोहनलालजी बागड़िया का व्यवसाय सिनेमा जगत् से सम्बद्ध है। सिनेमा जगत् से सम्बद्ध व्यक्ति अनेक प्रकार के दुर्गुणों से अनायास ही आक्रान्त हो जाते हैं, परन्तु सिनेमा व्यवसाय के साथ सम्बद्ध होने पर भी यह परिवार 'पद्मपत्रमिवाम्भसि' उक्ति के अनुरूप उसके दोषों से सर्वथा निर्लिप्त है।

सुधा का विवाह—छोटी पुत्री सुधा का विवाह श्री मुन्शीराम शर्मा के सुपुत्र श्री ब्रह्मदेव शर्मा के साथ निश्चित हुआ। इस निश्चय में भ्राता शान्तिस्वरूपजी का विशेष योगदान था। श्री शर्माजी को शान्तिस्वरूपजी लाहौर से ही भली भांति जानते थे। अन्त में १८ सितम्बर १९७४ को श्री ब्रह्मदेवजी के साथ सुधा का विधिवत् विवाह सम्पन्न हुआ। विवाह कराने के लिये श्री पं० मदनमोहनजी विद्यासागर (हैदराबाद) को निमन्त्रित किया था। इस विवाह में रामलाल कपूर परिवार, विशेषकर भ्राता सुरेन्द्रकुमार कपूर और शान्तिस्वरूप कपूर का विशेष सहयोग रहा। इनके सहयोग के बिना तत्कालीन महार्घता के समय मुझे अत्यधिक आर्थिक असुविधा का सामना करना पड़ता।

पौरुष ग्रन्थि का आपरेशन—जून १९७५ के अन्त में अचानक पौरुष ग्रन्थि की वृद्धि से मूत्र का अवरोध हो गया। इसके लिये सोनीपत के जनता हस्पताल में आप्रेशन करवाया। वर्षा की अधिकता के कारण अधिक दिनों तक कष्ट सहन करना पड़ा। इस अवसर पर अपने पाणिनि महाविद्यालय के छात्रों ने निरन्तर डेढ़ मास तक बड़ी तन्मयता से मेरी सेवा शुश्रूषा की। इस अवसर पर डाक्टर ने मूत्र के साथ जानेवाले मवाद को बन्द करने के लिये अति तीक्ष्ण दवाइयां और इन्जेक्शन दिये। उनसे पूर्वत: विकृत गुर्दे अधिक विकृत हो गये।

बहालगढ़ में अक्टूबर १९७५ में स्थान्तरित हुआ।

मीमांसा-शाबर-भाष्य की व्याख्या करने का निश्चय—महाभाष्य के दो अध्यायों की हिन्दी व्याख्या लिखने के अनन्तर मन में विचार उत्पन्न हुआ कि व्याकरण का पठन-पाठन तो प्रचलित है। मीमांसा-शास्त्र का अध्ययन अध्यापन तो भारतवर्ष में प्राय: लुप्त सा हो चुका है। समस्त भारत में इस शास्त्र के सम्प्रति ३-४ ही विशिष्ट विद्वान् रह गये हैं। इसके साथ ही मीमांसा-शास्त्र का सम्बन्ध समस्त वैदिक वाङ्मय में वर्णित यज्ञों के साथ होने से इस शास्त्र का विषय अत्यन्त विस्तृत एवं गम्भीर है। यज्ञों में पशुहिंसा जैसी अनेक अवैदिक क्रियाओं का भी उत्तरकाल में सन्निवेश हो चुका है। इससे यज्ञों की पवित्रता सात्त्विकता लुप्त हो चुकी है। यद्यपि वैष्णव मत के आचार्य यज्ञों में साक्षात् पशुहिंसा तो नहीं करते, परन्तु पिष्ट पशु के रूप में पशुहिंसा का ही यज्ञों में वर्णन स्वीकार करते हैं। यद्यपि मैंने सन् १९३४ के अन्त में मीमांसा-शास्त्र का विधिवत् अध्ययन पूरा कर लिया था, परन्तु यज्ञों में वर्णित पशु हिंसा का कोई समाधान नहीं सूझ रहा था। इसके साथ ही यदि मध्यकालीन परम्परा के अनुसार वेदों में यज्ञों का ही वर्णन माना जाये तो वेदों की सर्वज्ञानमयता समाप्त हो जाती है। इन कठिनाइयों पर निरन्तर विचार करता

रहा। अन्तत: इन दोनों का समाधान सन् १९७५ के आसपास समझ में आया। यज्ञों की और तदन्तर्गत पशुयागों की समस्या हल हो जाने पर ही मैंने सन् १९७६ में मीमांसा-शाबर-भाष्य की हिन्दी व्याख्या लिखनी आरम्भ की।

शाबर-भाष्य की व्याख्या क्यों?—आर्यसमाज के विद्वान् विभिन्न शास्त्रों की व्याख्यायें लिखते रहे हैं। उनका प्रचार आर्यसमाज तक ही सीमित रहता है। तत्तत् शास्त्रों के सम्बन्ध में ऋषिदयानन्द के जो मन्तव्य हैं, वे आर्यसमाज से बाहर के विद्वानों तक नहीं पहुंच पाते। इसलिये मेरा आरम्भ से यह विचार रहा है कि या तो ऐसे सामान्य विषयों पर ग्रन्थ लिखा जायें, जिसकी आवश्यकता सभी वैदिक विद्वानों को पड़ती है, अथवा किसी प्राचीन मान्य ग्रन्थ की हिन्दी व्याख्या करते हुए यथा-स्थान वैदिक मन्तव्यों का संन्निवेश किया जायें, तभी वैदिक मान्यताओं का व्यापक प्रचार होना संभव है। इसी दृष्टि से **'संस्कृत-व्याकरण शास्त्र का इतिहास', 'वैदिक-स्वर-मीमांसा', 'वैदिक-छन्दोमीमांसा'** आदि स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखे। हिन्दी व्याख्या के लिये पातञ्जल महाभाष्य और मीमांसा के शाबरभाष्य को चुना।

मीमांसा-शास्त्र के उपलब्ध व्याख्या ग्रन्थों में शबरस्वामी कृत भाष्य सबसे प्राचीन है। और सभी मीमांसक इसे प्रामाणिक मानते हैं। इस भाष्य में यद्यपि पशुयाग विषयक कुछ अवैदिक परम्पराओं का समर्थन किया गया हैं तथापि अनेक ऐसे प्रकरण हैं जो वैदिक-मन्तव्य के अनुसार इसी भाष्य में मिलते हैं। यथा—**देहधारी देवतादि खण्डन**। शाबर-भाष्य में जो अश वैदिक मन्तव्य के अनुसार वर्णित हैं, उनका उत्तरवर्ती भट्टकुमारिल प्रभृति मीमांसकों ने घोर खण्डन किया हैं। प्रधानतया इस भाष्य में ५-६ ही ऐसे सिद्धान्त हैं, जिनका वैदिक मन्तव्यों के साथ विरोध है। यथा—यज्ञों में पशु-हिंसा, ब्राह्मण ग्रन्थों की वेद-संज्ञा, स्त्रियों को वेद का अनधिकार आदि। प्रथम दो विषयों पर विस्तार से प्रथम खण्ड के आदि में विचार किया है। अन्य विषयों की यथास्थान विवेचना की है। आरम्भ में तीन विषयों पर लगभग डेढ़ सौ पृष्ठों में विस्तार से मीमांसा की है। उनमें से **'वेद-श्रुति-आम्नायसंज्ञामीमांसा'** तथा **'श्रौतयज्ञमीमांसा'** का स्वामी करपात्रीजी ने 'वेदार्थ-पारिजात' में लगभग ३०० पृष्ठों में खण्डन करने का प्रयास किया है। यह प्रयास मध्यकालीन परम्पराओं को मानने वालों के लिये तो कुछ सार्थक हो सकता है, परन्तु तात्त्विक दृष्टि से विचार करने वाले विद्वानों के लिये उनके प्रयास का कोई विशेष मूल्य नहीं है।

मीमांसा-शास्त्र का परिमाण—'संकर्ष काण्ड' को मिलाकर जैमिनि प्रोक्त पूर्व मीमांसा-शास्त्र में १६ अध्याय हैं। उनमें से संकर्ष काण्ड के ४ अध्यायों को छोड़कर

शेष १२ अध्यायों पर शबर स्वामी ने भाष्य लिखा है। उनमें से सन् १९८६ तक प्रारम्भ के ६ अध्यायों की 'आर्षमत विमर्शिनी' नाम्नी हिन्दी व्याख्या लिख चुका हूं, जो पांच भागों में छप चुकी है।

इन पांच भागों के प्रकाशन में लगभग ११ सहस्र रुपया वैदिक-धर्म प्रेमी आर्य बन्धुओं से प्राप्त हुआ है।

राष्ट्रपति-सम्मान[1]—मैं सोनीपत आकर परिवार के निर्वाहार्थ ४०० रुपये मासिक लेता था। रहने के लिये मकान रा० ला० कपूर ट्रस्ट की ओर से प्राप्त था। मंहगाई अधिक बढ़ने पर लगभग सन् १९७३ से ट्रस्ट ने ५०० रुपया देना आरम्भ किया। सुधा के विवाह के पश्चात् हम दोनों पति-पत्नी का निर्वाह-व्यय हो अपेक्षित था। सुधा के विवाह के समय लिया गया उधार भी जब चुक गया तो मैंने जुलाई १९७६ में दो व्यक्तियों के निर्वाह का व्यय, जो उस समय लगभग ३०० रुपया मासिक था, ही ट्रस्ट से लेने का निश्चय किया। अर्थात् ५०० रुपये मासिक के स्थान पर ३०० रुपया मासिक लेने का विचार किया। मैंने यह विचार धर्मपत्नी यशोदादेवी के सामने रखा। उसने मान तो लिया पर कुछ अनमनेपन से। १५ अगस्त १९७६ को प्रातः आकाशवाणी के समाचारों में राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित संस्कृत के विद्वानों में मेरा नाम भी उद्घोषित किया गया। इस काल में राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित व्यक्ति को ३००० रुपया प्रतिवर्ष अनुदान दिया जाता था। मैंने राष्ट्रपति द्वारा अपने सम्मानित किये जाने का समाचार यशोदा को सुनाते हुए कहा कि हमने तो ट्रस्ट से ली जाने वाली मासिक वृत्ति में से २०० रुपया मासिक ही कम किया था, परन्तु अपने निश्चय के २० दिन पश्चात् ही प्रभु ने २५० रुपये मासिक का प्रबन्ध कर दिया।

राष्ट्रपति सम्मान प्राप्त कराने वाले डा० माधवकृष्ण शर्मा—मैं पूर्व (पृष्ठ २३०) लिख चुका हूं कि जब मैं टंकारा से लौटकर अजमेर में निवास करता था तभी मित्रवर डा० माधवकृष्ण शर्मा ने राष्ट्रपति सम्मान के लिये राजस्थान शिक्षा-विभाग की ओर से केन्द्र को मेरा नाम भेज दिया था। उसी की परिणति स्वरूप मुझे यह सम्मान प्राप्त हुआ था।

रा० ला० कपूर ट्रस्ट से मासिक वृत्ति लेना बन्द की—सन् १९७९ से राष्ट्रपति सम्मान के कारण प्राप्त होने वाली वार्षिक सहायता तीन हजार के स्थान में ५०००

---

१. जितने भी राजकीय एवं सामाजिक सम्मान मुझे आज तक प्राप्त हुए हैं, उनका ब्यौरा दशम परिशिष्ट में (पृष्ठ १६२-१६३) देखें।

रुपया वार्षिक कर दी गई। अतः मैंने सन् १९८० के आरम्भ से रा० ला० कपूर ट्रस्ट से तीन सौ रुपया मासिक वृत्ति लेना भी बन्द कर दिया। तब से रा० ला० कपूर ट्रस्ट का कार्य सेवा भाव से कर रहा हूं।

श्रौतयज्ञों की प्रक्रिया जानने के लिये महाराष्ट्र की यात्राएं[1]

मीमांसा-शाबरभाष्य की व्याख्या लिखते समय मुझे अनुभव हुआ कि बहुत सी याज्ञिक-प्रक्रियाओं का विवरण यज्ञ-प्रक्रिया को साक्षात् बिना देखे नहीं लिखा जा सकता है। इससे पूर्व सन् १९३४ में मैंने पूज्य गुरुवर पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु के साथ बौधायन श्रौतसूत्रानुसार किये जाने वाले दर्श-पूर्णमास यागों की प्रक्रिया काशी के प्रसिद्ध अथर्ववेदी श्री पं० रामचन्द्रजी रटाटे के यहां देखी थी। सोमयाग और अग्निचयन यागों की प्रक्रिया देखने का अवसर ही नहीं मिला था। इनको प्रत्यक्ष देखने के लिये मैंने सन् १९७६-१९८६ तक महाराष्ट्र के विभिन्न नगरों की सात बार यात्राएं कीं। इन सभी यात्राओं में मेरी यज्ञ-प्रेमी पत्नी सदा साथ रही।

प्रथम यात्रा—अकस्मात् सन् १९७८ के फरवरी या मार्च मास में वैदिक-संशोधन मण्डल पुणे के मित्रवर डा० हरिभाऊ जोशीजी से सूचना मिली कि शोलापुर में इस वर्ष मई में सोमयाग हो रहा है। मैं अपनी पत्नी यशोदा के साथ सोमयाग देखने शोलापुर गया। हमारे साथ श्री पं० विजयपालजी ब्र०धर्मवीर और हैदराबाद के श्री व्रतपालजी भी साथ थे।

आर्यसमाज के सम्बन्ध में मिथ्या धारणाएं—महाराष्ट्र में आर्यसमाज का प्रचार नाम मात्र को है। साथ ही आर्यसमाजी पौराणिक विद्वानों से और पौराणिक विद्वान् आर्यसमाजी विद्वानों से दूर-दूर रहते हैं। अतः पौराणिक विद्वानों में आर्यसमाजियों के प्रति अनेक मिथ्या धारणाएं व्याप्त हैं।

यज्ञ-विध्वंसक आर्यसमाजी—हमारे शोलापुर पहुंचने से पूर्व वहां चर्चा व्याप्त थी कि हरयाणा से चार आर्यसमाजी विद्वान् यज्ञ में विघ्न डालने के लिये आ रहे हैं। शोलापुर पहुंचने पर जब यह बात हमें ज्ञात हुई तो मुझे बहुत दुःख हुआ। शोलापुर पहुंचने पर डा० हरिभाऊ जोशीजी के सौजन्य से हमारे निवास आदि की उचित व्यवस्था हो गई।

शोलापुर पहुंच कर प्रधान याज्ञिक श्री पं० विश्वनाथजी श्रौती से अपने आने का प्रयोजन बताया और आर्यसमाज के प्रवर्तक ऋषि दयानन्द की श्रौतयज्ञों के

---

१. यज्ञ-प्रक्रिया देखने और समझने के लिये विभिन्न कालों में जितनी यात्राएं कीं उनका इसी प्रसङ्ग में इकट्ठा वर्णन किया जायेगा।

सम्बन्ध में जो मान्यता है उससे उन्हें अवगत कराया। लगभग १ घण्टे की बात-चीत से समस्त भ्रम दूर हो गये।

अग्निष्टोम—शोलापुर में अक्कल कोट (महाराष्ट्र) के सन्त श्री गजाननजी महाराज के शिष्य अत्रेजी ने सोमयाग की प्रथम संस्था[1] अग्निष्टोम याग कराया था। यह कर्म कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता और उसके आपस्तम्ब श्रौतसूत्र के अनुसार सम्पन्न हुआ था।

पशुयाग का अभाव - सोमयाग में अग्नीषोमीय, सवनीय और अनुबन्ध्या संज्ञक तीन पशुयागों का विधान मिलता है। प्रस्तुत सोमयाग में पशुयाग के स्थान में घृताहुतियां दी गईं। श्री पं० विश्वनाथ श्रौतीजी (जो कुल परम्परा से याज्ञिक हैं) से ज्ञात हुआ कि उनके पिताजी ने ही प्रथम पशुयाग का परित्याग किया था।

अग्निहोत्र के प्रचारक श्री गजाननजी महाराज—सन्त श्री गजाननजी महाराज के देश विदेश में सहस्रों शिष्य हैं। जिनमें ईसाई और मुसलमान भी हैं। श्री गजाननजी महाराज[2] अपने शिष्यों को चाहे वह किसी भी मत का अनुयायी हो, सायं प्रातः ठीक सूर्योदय और सूर्यास्त के समय अग्निहोत्र करने की दीक्षा देते हैं। समय की कठोर पाबन्दी है, परन्तु कर्म उतना ही सरल है। गौ के शुष्क गोबर को प्रज्वलित करके उस पर दोनों समय केवल दो दो गौ के घृत की आहुतियां दी जाती हैं[3] (कोई चाहे तो अधिक आहुतियां दे सकता है)। यह कृत्य ४-५ मिनट में पूर्ण हो जाता है।

सुखद आश्चर्य—शोलापुर में यज्ञभूमि के साथ हमारे ठहरने का कमरा था। एक दिन सायंकाल यज्ञकर्म से निवृत्त होकर आने के पश्चात् वेदमन्त्रों की ध्वनि कान में पड़ी। बाहर आकर देखा तो यज्ञभूमि के एक कोने में पांच छः विदेशी युवक युवतियां अग्निहोत्र कर रहे हैं। विदेशी व्यक्तियों के द्वारा मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण सुनकर अत्यन्त सुखद आश्चर्य हुआ।

---

१. सोमयाग की ७ संस्थाएं हैं—अग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, अतिरात्र, अत्यग्निष्टोम, वाजपेय और अप्तोर्याम।

२. गतवर्ष इनका स्वर्गवास हो गया है।

३. गौ के गोबर से प्रज्वलित अग्नि में गोघृत की आहुति से निष्पन्न भस्म पर श्री गजाननजी महाराज के शिष्य अमेरिका और जर्मनी में इस बात का अनुसन्धान कर रहे हैं कि इस भस्म का किस-किस रोग में औषधरूप से प्रयोग हो सकता है।

आर्यसमाज में शुद्ध मन्त्रोच्चारण के प्रति अनास्था—आर्यसमाज के अनुयायी मन्त्रों का प्रायः अशुद्ध उच्चारण करते हैं। उनसे कोई विज्ञ पुरुष उच्चारण शुद्ध करने के लिये कहे तो वे उत्तर देते हैं—मां तोतले बच्चे की बात समझ लेती है तो क्या परमात्मा हमारी नहीं सुनेगा समझेगा ? यही कारण है कि आर्यसमाजी यज्ञप्रेमी व्यक्ति भी मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण के लिये प्रयत्न नहीं करते।

श्री रङ्गनाथ कृष्ण सेलूकरजी से भेंट—श्री रंगनाथ कृष्ण सेलूकरजी कई वर्षों से नियमित श्रौत अग्निहोत्र दर्शपूर्णमास करते थे। उनकी सोमयाग करने की महती इच्छा थी। वे उपरि निर्दिष्ट सोमयाग में आये थे। उन्होंने मुझसे भेंट की और कहा कि मैं शुक्ल यजुर्वेदी ब्राह्मण हूं। सोमयाग करना चाहता हूं। प्रायः सभी शुक्ल यजुर्वेदी याज्ञिकों से मिल चुका हूं परन्तु वे पशुयाग के विना सोमयाग कराने को तैयार नहीं होते। मैं पशुयाग के विना सोमयाग करना चाहता हूं। मैंने उन्हें समझाया कि मीमांसा-शास्त्र के अनुसार कर्म प्रधान है। सर्वशाखा प्रत्ययैककर्मताधिकरण (२।४।८) के अनुसार किसी भी शाखा के अनुसार कर्म किया जा सकता है क्योंकि अवान्तर कर्मों में न्यूनाधिकता होने पर भी कर्म सब शाखाओं में समान है। आप श्री विश्वनाथ श्रौतीजी से तैत्तिरीय शाखा के अनुसार सोमयाग कराकर अपना संकल्प और शास्त्रीय विधान पूरा कर सकते हैं। सेलूकरजी को मेरा कथन युक्तियुक्त जंचा और श्री विश्वनाथ श्रौतीजी से अगले वर्ष सोमयाग कराने की बात करली। इसके साथ ही मुझे भी उपस्थित होने का निमन्त्रण दे दिया।

श्री वेदमूर्ति विश्वनाथ श्रौती महानुभाव वैदिक-कर्मकाण्ड के अद्भुत विद्वान् हैं। जहां वे याज्ञिक प्रक्रिया में कुशल हैं वहां शास्त्रीय ज्ञान में भी पारङ्गत हैं। शास्त्र और प्रक्रिया दोनों में कुशल विद्वान् अत्यन्त विरल हैं। मैंने ६ बार आपकी अध्यक्षता में सम्पन्न होने वाले सोमयाग अग्निचयन आदि कर्म देखने के लिये विविध स्थानों की यात्रा की। जब भी मुझे कर्म-प्रक्रिया सम्बन्धी कुछ भी शङ्का हुई तो आपने शास्त्र-दृष्ट्या उसका समाधान किया। आपके सान्निध्य से मीमांसा-शाबर-भाष्य की व्याख्या में आने वाली मेरी अनेक समस्यायें हल हो गईं। शनैः शनैः आत्मीयता बढ़ती गई।

विद्वानों को वैदिक-साहित्य भेंट में देना—इस यज्ञ के अवसर पर उपस्थित हुए विद्वानों को मैंने लगभग ४-५ सहस्र का वैदिक-साहित्य भेंट में दिया।

इस याग के तीन-चार दिन पश्चात् 'अखिल भारतीय प्राच्य विद्या परिषद्' (आल इण्डिया ओरियण्टल कान्फ्रेंस) का अधिवेशन पूना नगर में होना था। यज्ञ

से निवृत्त होकर हम पूना गये । वहां पर अधिवेशन में उपस्थित हुए देशी विदेशी विद्वानों को ५-६ सहस्र रुपयों का वैदिक साहित्य भेंट में दिया।

यज्ञ दर्शनार्थ द्वितीय यात्रा—सन् १९७९ के मई मास में श्री सेलूकरजी ने नांदेड़ में सोमयाग की प्रथम संस्था अग्निष्टोम याग किया। इसमें निमन्त्रित करने के लिये श्री सेलूकरजी बहालगढ़ (सोनीपत) भी आये। उन्होंने मुझे विशेष रूप से यज्ञ में उपस्थित होने के लिये कहा क्योंकि उन्हें इस बात की आशंका थी कि उनके सम्प्रदाय के शुक्ल-यजुर्वेदी विद्वान् कृष्णयजुर्वेद से सोमयाग कराने में बाधा पहुंचा सकते हैं।

श्री सेलूकर दम्पती अत्यन्त सात्विक-वृत्ति के उदारचेता व्यक्ति हैं। नांदेड़ में उनके व्यक्तित्व की छाप सब सम्प्रदायों के व्यक्तियों पर देखी।

इस यज्ञ में नांदेड़ के हिन्दू मतावलम्बियों के अतिरिक्त आर्यसमाज, जैन एवं सिख सम्प्रदाय के व्यक्तियों ने अपना भरपूर सहयोग प्रदान किया।

नांदेड़ के इस यज्ञ में हम दोनों के अतिरिक्त व्रतपालजी, ब्र० धर्मवीर, पं० वीरसेनजी वेदश्रमी, पं० मदनमोहन विद्यासागर भी उपस्थित थे। अन्तिम दोनों व्यक्तियों को बुलाने का सुझाव मैंने दिया था।

सोमयाग श्री वेदमूर्ति पं० विश्वनाथ श्रौती की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। ऋत्विजों में भी गोकर्ण के जोगलेकर बन्धुद्वय तथा अन्य कतिपय शोलापुर के परिचित ही थे।

श्री सेलूकरजी का एक सत्प्रयत्न—श्री सेलूकरजी समन्वयवादी व्यक्ति हैं। इसलिये उन्होंने इस यज्ञ में आर्यसमाज की तथाकथित यज्ञपद्धति से भी अलग मण्डप में वेद पारायण कराया। उन्होंने यह क्रम अगले यज्ञों में भी चालू रखा।

आर्यसमाज द्वारा ऋत्विजों का सम्मान—नांदेड़ आर्यसमाज की अन्तरङ्ग सभा ने बाहर से आये आर्यविद्वानों का सत्कार करने की योजना बनाई थी। इस विषय में मेरे साथ बातचीत करने दो-तीन व्यक्ति आये थे, इनमें एक महिला भी थी। जब इन्होंने अपना विचार प्रकट किया तो मैंने कहा—हम लोग तो घर के व्यक्ति हैं सत्कार किया जाये या न किया जाये कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। मैं चाहता हूं कि इस यज्ञ में आये वैदिक-विद्वानों को आर्यसमाज की ओर से सम्मानित किया जाये तो कम से कम इन पर आर्यसमाज का अच्छा प्रभाव तो अवश्य पड़ेगा। मेरी बात से सभी सहमत हो गये परन्तु उनकी १८-२० संख्या सुनकर कुछ संकुचाये और कहा कि इतने खर्च की तो अन्तरङ्ग से अनुमति लेनी होगी। इसका अब समय

नहीं है। इस पर साथ में जो महिला आई थीं (वे अन्तरङ्ग-सदस्या भी थीं) उन्होंने कहा—मीमांसकजी का कहना युक्तियुक्त है। यदि अन्तरङ्ग सभा इस खर्चे की अनुमति नहीं देगी तो मैं स्वयं शेषपूर्ति कर दूंगी। इस प्रकार यज्ञ में आये सनातनी वैदिक-विद्वानों को, प्रति व्यक्ति २१ रुपया एक उपवस्त्र यज्ञशाला में जाकर भेंट किया। तत्पश्चात् बाहर से पहुंचे हुए हम चार-पांच व्यक्तियों को भी सम्मानित किया।

सिखों द्वारा ऋत्विजों का सम्मान—सिख समुदाय ने यज्ञ में आये सभी (ऋत्विक् वा दर्शक) विद्वानों को सम्मानित किया।

तीसरी यात्रा—श्री सेलूकरजी ने दूसरा महायज्ञ सन् १९८१ (अप्रेल-मई) में नांदेड़ में ही किया। इसमें सोमयाग के साथ अग्निचयन याग का प्रथम भाग भी किया। अग्निचयन के लिये वैदिक-ग्रन्थों में **चित्या, अग्निचित्या, श्येनचिति, सुपर्ण-चिति** नाम भी प्रयुक्त होते हैं। अग्निचयन तीन भागों में पूर्ण होता है। प्रथम भाग में इष्टकाओं (इंटों) का चयन दो दो सौ इष्टकाओं की पांच चितियों में होता है। इसमें इंटों का चयन उसी प्रकार होता है जैसे दीवार की इंटें चुनी जाती हैं। अत: प्रथम तृतीय और पञ्चम चिति की इंटों का चयन एक जैसा होता है और द्वितीय तथा चतुर्थ का उससे उलटा। इसकी वेदि पंख फैलाए हुए श्येन पक्षी के आकार की बनाई जाती है। इसलिये श्येन आकार के निर्माण के लिये इंटे कई आकार प्रकार की नियत परिमाण की होती हैं। द्वितीय भाग में दो सहस्र इंटों का चयन १० चितियों में, तथा तृतीय भाग में तीन सहस्र इंटों का १५ चितियों में चयन होता है। प्रथम भाग की वेदि की ऊंचाई जांघों तक, द्वितीय भाग की छाती तक, तृतीय भाग की मुख तक होती है।

इस याग में भी प्राय: पहले वाले ही पं० विश्वनाथ श्रोती और ऋत्विग् गण थे।

इस याग के समय तीन विदेशी व्यक्ति भी भारतीय वेश में सम्मिलित हुए। जिनमें दो युवक और एक युवति थी। विदेशी व्यक्ति भी यजमान सहित सबके साथ एक ही पङ्क्ति में भोजन करते थे। दोनों युवकों ने पं० विश्वनाथ श्रोती से उप-नयन कराने के लिये कहा। उन्होंने पं० मदनमोहनजी विद्यासागर (जो वेद पारायण यज्ञ कराते थे) से लेने को कहा और स्वयं उस समय उपस्थित रहने का वचन दिया, परन्तु उन्होंने पं० मदनमोहनजी विद्यासागर से यज्ञोपवीत लेना स्वीकार नहीं किया, कारण कुछ भी रहा हो।

प्रसंगतः—श्री पं० विजयपालजी इस याग के समय उपस्थित हुए थे। वहां ज्ञात हुआ कि इस याग के दो चार दिन पीछे बंगलोर में सपशु सोमयाग हो रहा है। (उसके ऋत्विक् आदि अन्य व्यक्ति थे) अतः पं० विजयपालजी और श्री व्रतपाल जी इसे देखने बंगलोर गये। उसमें किसी कारणवश कुम्भघोणम् के रामानुज सम्प्रदाय के कर्मकाण्ड विशारद श्री पं० रामानुज ताताचार्य भी उपस्थित हुए थे। उन्होंने यज्ञ के अवसर पर विद्वानों और ऋत्विग्गणों के मध्य अपने भाषण में कहा —पांच हजार वर्ष में एक स्वामी दयानन्द ही ऐसे व्यक्ति हुए हैं जिन्होंने वेदों का पुनरुद्धार किया। शङ्कराचार्य प्रभृति तो उपनिषदों तक ही सीमित रह गये। इस कथन से श्री ताताचार्य की उदारता एवं स्पष्टवादिता स्पष्ट झलकती है।

मेरा भी दक्षिण भारत के अनेक विद्वानों से मिलन हुआ। मेरा अपना निष्कर्ष भी यही है कि दाक्षिणात्य विद्वानों में अनेक उदारचरित व्यक्ति हैं परन्तु हमने (आर्यसमाजियों ने) उनके साथ सम्पर्क ही नहीं किया।

चौथी यात्रा--श्री सेलूकरजी ने मई १९८२में महाराष्ट्र के लातूर नगर में वाज-पेय संज्ञक सोमयाग किया। इसमें हम दोनों के अतिरिक्त श्री पं० मदनमोहनजी विद्यासागर, श्री स्वामी ओमानन्दजी महाराज (३-४ ब्रह्मचारियों के साथ) तथा श्री स्वामी सत्यप्रकाशजी भी निमन्त्रित किये गये थे।

लातूर की विशेष घटनाएं

१—हम लोग और श्री स्वामी ओमानन्दजी आर्यसमाज मन्दिर में ठहरे थे। यहां के आर्यसमाजी इस याग के विरोधी थे। उन्होंने तो हम पर भी लाञ्छन लगाया कि हम दक्षिणा के लोभ से आये हैं। अस्तु मैंने ऋषिदयानन्द के वचनों के आधार पर उन्हें समझाया कि ऋ० द० इन्हीं श्रौतयज्ञों को वैदिक मानते थे, परन्तु उन पर कुछ असर नहीं हुआ। इस याग के विरोध में एक सभा की और हरिजनों को इस यज्ञ में प्रविष्ट होकर इसको हानि पहुंचाने का यत्न किया। उन्होंने हेतु दिया कि यह यज्ञ सार्वजनिक है और उसमें कानूनन हरिजन सम्मिलित हो सकते हैं। वस्तुतः यह यज्ञ व्यक्तिगत था, श्री सेलूकर महाराज से ही सम्बद्ध था। अतः मजि-स्ट्रेट को प्रार्थना-पत्र देकर उत्पात मचाने की दृष्टि से हरिजनों के प्रवेश को रोकने के लिये पुलिस की सहायता लेनी पड़ी।

२—यज्ञकाल में एक बार श्रौतीजी की कमर में इतना दर्द बढ़ा कि उनका उपस्थित होना कठिन हो गया। उनकी अनुपस्थिति में यज्ञ कार्य नहीं हो सकता था क्योंकि वे ही इसके संचालक थे; उन्होंने मुझे सूचित किया। तत्काल बाजार से दवा

मंगवाकर ब्र० धर्मवीरजी से उनकी मालिश करवाई और वे यज्ञ में उपस्थित होने योग्य हो गये। दो-तीन दिन पश्चात् पेट में भयङ्कर अफारा हो गया। मुझे बुलाया। मैंने पूछा कि हींग है या नहीं। यत: दाक्षिणात्य इसका प्रयोग करते हैं अत: श्रौतीजी की कन्या ने उत्तर दिया, है। तो मैंने उसे लेकर पानी में घोलकर गरम करके नाभि के आस पास गाढ़ा लेप कर दिया और उनके पास ही बैठा रहा। मुझे जो हींग दी थी वह उत्कृष्ट कोटि की थी। पंजाब में इसे हीरा हींग कहा जाता है। पंजाब छोड़ने के पश्चात् आज तक खालिस हीरा हींग हमें उपलब्ध नहीं हुई। हींग के लेप से आध घण्टे के पश्चात् वायु का सरण आरम्भ हुआ और एक घण्टे में स्वस्थ हो गये। इससे श्रौतीजी बहुत प्रसन्न हुए और कहा कि आपने आज मुझे बचा लिया।

३—सोमयाग आदि में ऋत्विजों को दक्षिणा देने का विधान शास्त्रों में यज्ञ समाप्ति से पूर्व दिन मध्याह्नोत्तर किया है। इन सभी वैदिक-यज्ञों की दक्षिणा भी शास्त्रों द्वारा गायों के रूप में नियत है। परन्तु सम्प्रति कोई भी यजमान शास्त्र-नियत दक्षिणा नहीं दे सकता। अत: पहले एक गाय की न्यूनतम कीमत स्वीकार करके दक्षिणा नियत कर ली जाती है। पूर्व प्रकारानुसार इस याग की अल्पतम दक्षिणा ४९ सहस्र रुपया स्वीकार की गई थी। परन्तु दैवयोग से लातूर में इस याग में व्यय होने वाले लगभग दो ढाई लाख रुपयों का प्रबन्ध लातूर निवासी नहीं कर सके। यह भनक ऋत्विजों को पड़ गई थी। यज्ञ समिति के पास लगभग ४० हजार रुपया ही था। कई यज्ञों में बराबर सम्मिलित रहने तथा इसी यज्ञकाल में दो बार रुग्ण होने पर मेरे उपचार से लाभ होने के कारण श्री श्रौतीजी की मुझ से अत्यन्त घनिष्ठता हो गई थी। अत: दक्षिणा काल से पूर्व श्री श्रौतीजी ने दक्षिणा के सम्बन्ध में मुझ से बात की। यज्ञ में बाधा उत्पन्न न होवे इसलिये मैंने उन्हें यज्ञ के अन्त में दक्षिणा के लिये राजी कर लिया। यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो गया (दक्षिणा समय पर न मिलने से यज्ञ रोक दिया जाता है)।

यज्ञ के अन्त में जब दक्षिणा देने का अवसर आया तो यज्ञसमिति के संचालक ने ४० हजार रुपया होते हुए भी १५ हजार रुपया व्यय के शेष भुगतान के लिये रोक लिया और २५ हजार रुपया ही देने को उद्यत हुए। श्री सेलूकरजी बहुत संकट में पड़ गये। यदि ४० हजार रुपया नकद दे देते तो मैं किसी प्रकार ४९ हजार के स्थान पर ४० हजार लेने के लिये मनवा लेता, परन्तु यहां तो बिलकुल आधी दक्षिणा रह गई थी।

श्री सेलूकरजी ने श्री श्रौतीजी से कहा कि शेष रुपया मैं तीन मास में प्रबन्ध

करके दे दूंगा। परन्तु श्रौतीजी ने इस बात का विश्वास न होने के कारण कहा कि यदि मीमांसकजी इस बात के जामिन बनें तो हमें यह बात स्वीकार है।

मेरे जैसे अपरिग्रही व्यक्ति के लिये यह अत्यन्त संकट का समय उपस्थित हो गया। अतः परिस्थिति को संभालने के लिये मैंने जामिन बनना स्वीकार कर लिया। और तीन मास में २४ हजार रुपया देने का प्रतिज्ञा-पत्र लिखा गया, उस पर मैंने हस्ताक्षर करके इस संकटमय काल को किसी प्रकार टाला। इस घटना की जानकारी मेरी पत्नी के अतिरिक्त किसी को नहीं थी। मुझे परिस्थिति को देखते हुए यह आशंका पहले ही थी कि श्री सेलूकरजी तीन मास में १४-१५ हजार से अधिक इकट्ठा नहीं कर सकेंगे। अतः बहालगढ़ पहुंचकर मैंने दस हजार का प्रबन्ध किसी प्रकार कर लिया। परन्तु दैवयोग से श्री सेलूकरजी दो ढाई मास में १४-१५ हजार का भी प्रबन्ध नहीं कर पाये। इससे नियत काल उपस्थित होने पर मैं वचन-भंग के घोर संकट में पड़ गया। तत्काल १४ हजार का और प्रबन्ध करना मेरे लिये भी कठिन था। अतः समय रहते हुए १२ हजार रुपया भेज कर मैंने अपने रूप में एक मास की और अवधि मांगी। श्रौतीजी ने उदारतापूर्वक इसे स्वीकार कर लिया और अगले मास किसी प्रकार १२ हजार का प्रबन्ध करके उनकी दक्षिणा पूरी की।

मेरे इस कार्य से आर्यत्व की रक्षा के नाते मेरी और आर्यसमाज की साख तो बढ़ी परन्तु मुझे बहुत कष्ट उठाना पड़ा। श्री सेलूकरजी ने कुछ काल पश्चात् दो बार में कुछ रुपया दिया और जो शेष रहा वह अगले वर्ष बीड़ में होनेवाले यज्ञ के समय दिया।

पांचवीं यात्रा—श्री सेलूकरजी ने बीड़ महाराष्ट्र में अप्रेल १९८३ को अग्निचयन का द्विसहस्र इष्टकात्मक दूसरा भाग सम्पन्न किया। इस याग में श्री विश्वनाथ श्रौतीजी समय पर उपस्थित नहीं हो सके। अतः तत्काल गोकर्ण से श्री श्रौती रामचन्द्र गणेश शास्त्री कोड्लेकेरे को बुलाकर उनकी अध्यक्षता में यह याग सम्पन्न हुआ। श्री श्रौती विश्वनाथजी की आकस्मिक अनुपस्थिति के कारण याग के आरम्भ होने में चार दिन का विलम्ब हो गया। इस स्थिति को संभालने में श्री आर्यमुनि वानप्रस्थीजी के ब्रह्मत्व में आरम्भ किये गये यजुर्वेद पारायण यज्ञ ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। अन्यथा स्थानीय और बाहर से आयी यज्ञप्रेमी जनता का उत्साह भङ्ग हो जाता।

इस महायज्ञ में लगभग ५-६ लाख रुपया व्यय हुआ। यज्ञ समिति के सदस्यों के उत्साह से इतना रुपया संगृहीत हुआ कि यज्ञ की समाप्ति के अनन्तर दो ढाई

लाख रुपया बच गया। जिसे अगले यज्ञ के लिये सुरक्षित जमा करा दिया। लातूर के महायज्ञ के समय दक्षिणा की न्यूनता के कारण मैंने जो २४ हजार रुपया व्यय किया था उसमें से शेष ८-६ हजार रुपया भी इसी अवसर पर प्राप्त हुआ था।

छठी यात्रा—श्री सेलूकरजी के नान्देड़ के प्रथम सोमयाग के समय श्री नानाजी काले अग्न्याधान करके अग्निहोत्री बने थे। उन्होंने मई सन् १९८५ में यवतमाल (विदर्भ) में सोमयाग किया था। इस यज्ञ में मैं इसलिये गया था कि श्री विश्वनाथ श्रौतीजी से यज्ञ-प्रक्रिया सम्बन्धी कतिपय शङ्काओं का समाधान प्राप्त करना चाहता था, परन्तु वे नहीं आये और गोकर्ण के श्रौती रामचन्द्र कोड्लेकेरे ने यह यज्ञ सम्पन्न कराया।

सातवीं यात्रा—श्री सेलूकरजी ने अग्निचयन का अन्तिम त्रि सहस्र इष्टकात्मक भाग मई १९८६ में बीड़ में ही सम्पन्न किया। इस बार यज्ञ में अनेक विघ्न उपस्थित हुए परन्तु जैसे-तैसे यह कर्म पूर्ण हुआ।

इस बार श्रौतयाग देखने का अन्तिम अवसर होने से श्री पं० विजयपालजी के साथ आश्रम के ५-६ विद्यार्थी और पं० चन्द्रदत्त एवं ब्र० धर्मवीर भी उपस्थित हुए थे। मेरे निर्देश से श्री प्रज्ञाकुमारीजी आचार्या जिज्ञासु स्मारक पाणिनि कन्या महाविद्यालय की २-३ छात्राओं के साथ आईं थीं। श्री पं० वेदपालजी, आचार्य गुरुकुल गौतम नगर देहली भी आये थे। इस प्रकार इस यज्ञ में आर्यमतावलम्बी पर्याप्त संख्या में उपस्थित हो गये थे।

हमारे मण्डल के सब मिलकर ९-१० व्यक्तियों के निवास की व्यवस्था यज्ञशाला के समीप श्री गौरीशंकर गङ्गाविशमजी जोशी (मारवाड़ी ब्राह्मण) के निवास स्थान पर की गई थी। इस ब्राह्मण परिवार ने हम सब की बड़ी सेवा की। जब तक हम लोग यज्ञशाला से वापस नहीं आ जाते थे तब तक महिलाएं हमारी प्रतीक्षा में विना भोजन किये बैठी रहती थीं। एक बार तो ३ बजे तक इन्हें भूखा रहना पड़ा। इस परिवार की अतिथि-सेवा की जितनी प्रशंसा की जाये स्वल्प है।

इस बार यज्ञ के सभी पात्र हम अपने साथ ले आये, जिससे छात्रों को यज्ञ-प्रक्रिया के शिक्षण में सुगमता होवे।

उपान्त्र-शोथ और पैरों में दर्द—अक्टूबर १९७८ के अन्तिम सप्ताह में उपान्त्र-शोथ का आक्रमण हुआ। यद्यपि इससे पूर्व प्रथम बार उपान्त्र-शोथ रोग सन् ६५ के जनवरी मास में, जब मैं पूज्य गुरुवर्य के निधन के पश्चात् वेदवाणी के नये प्रकाशन का स्वीकृति पत्र प्राप्त करने के लिये काशी गया था, तब हुआ था। इसके पश्चात्

कई बार इस रोग के आक्रमण हुए। यतः दायें गुर्दे के आपरेशन करने वाले डाक्टर मिराजकर ने इस भाग में किसी भी प्रकार के आपरेशन कराने का निषेध कर दिया था, इसलिये उपान्त्र-शोथ की शल्य चिकित्सा नहीं कराई। इस अन्तिम उपान्त्र-शोथ के समय निर्बलता अत्यधिक हो जाने से सन् १९४४ में हुए म्यादी बुखार की गलत चिकित्सा से नीचे के भाग में म्यादी बुखार का जो विकार शेष रह गया था (द्र०—पृष्ठ १९४) उसके कारण इस बार के उपान्त्र-शोथ के समय दोनों पैरों में जांघ से लेकर तलवे तक भयंकर पीड़ा आरम्भ हुई। इस पीड़ा में वात और कफ के विकार का सम्बन्ध था। इसके लिये जो भी आयुर्वेदिक रसादि औषध लेनी आवश्यक होती है, उन्हें मैं गुर्दे की खराबी के कारण नहीं ले सकता था। साधारण काष्ठादि औषधियों एवं तैलादि के मर्दन से कुछ लाभ नहीं हुआ। यह कष्ट गर्मियों में कुछ कम हो जाता है। इस पीड़ा के कारण रात्रि में निद्रा न आने से उदर-विकार भी रहने लगा। इस कारण बहुत वर्षों से मैंने सायकाल का भोजन बंद कर रखा है। लगभग दस वर्ष से इस रोग के चालू रहने से पैरों की शक्ति क्षीण हो गई है। अब तो चलना फिरना भी बन्द हो गया है।

उत्तर प्रदेश शासन से विशिष्ट पुरस्कार—उत्तर प्रदेश के साहित्यिक पुरस्कार सन् १९७६ तक मुझे वेद व्याकरण विषयक अनेक ग्रन्थों पर प्राप्त होते रहे।[1] सन् १९७६ तक उत्तरप्रदेश के साहित्यिक पुरस्कार अखिल भारतीय थे। इसके अनन्तर ये पुरस्कार उत्तर प्रदेशस्थ व्यक्तियों तक सीमित कर दिये गये। इसलिये १९७६ के पश्चात् उत्तर प्रदेश सरकार से मुझे किसी ग्रन्थ पर कोई पुरस्कार नहीं मिल सका। पर नवम्बर १९७९ में उत्तर प्रदेश सरकार ने व्याकरण-शास्त्र से सम्बद्ध महत्त्वपूर्ण सेवा के लिये मुझे १५ हजार रुपयों का विशिष्ट पुरस्कार दिया, जो उस समय का सबसे बड़ा पुरस्कार था। अब उसकी राशि एक लाख कर दी गई है।

अन्य संस्थाओं से पुरस्कारों की प्राप्ति—सन् १९७५ से सन् १९८४ तक आर्यसमाज की कई संस्थाओं ने मुझे पुरस्कृत किया। इनकी सूची दशम परिशिष्ट में पृष्ठ १६३ पर देखें।

सहयोगी महानुभावों का असामयिक निधन—मुझे विविध ग्रन्थों के प्रकाशन कार्य में श्री हरिकृष्णजी मलिक जज, देहली, श्री चौधरी प्रतापसिंहजी (करनाल) और श्री मोहनलालजी बागड़िया (कलकत्ता) का भरपूर सहयोग प्राप्त हुआ। इन्हीं के साहाय्य से मैंने इन व्यक्तियों द्वारा संस्थापित ट्रस्टों के द्वारा अनेक महत्त्वपूर्ण वैदिक ग्रन्थों का प्रकाशन किया। द्र०—क्रमशः पृष्ठ २३३, २३४, २३६।

---

१. इनकी सूची दशम परिशिष्ट में पृष्ठ १६३ पर देखें।

श्री मोहनलालजी बागड़िया का निधन—श्री श्रेष्ठिवर्य मोहनलालजी बागड़िया, जिनका न केवल वैदिक-ग्रन्थों के प्रकाशन में ही महत्त्वपूर्ण योगदान रहा, अपितु आपके साथ घनिष्ठ पारिवारिक सम्बन्ध भी बन गये थे (द्र०—पृष्ठ २३७), का ५ मई १९८४ को लगभग ५२ वर्ष की अल्प आयु में असामयिक निधन हो गया। आपके निधन की सूचना १०-११ अप्रेल को प्राप्त हुई, परन्तु मैं कुछ अस्वस्थ होने तथा १९ मई को आर्यसमाज सान्ताक्रुज, बम्बई द्वारा मुझे सम्मानित किये जाने के निश्चय के कारण इस दुःखद घटना पर बैठने कलकत्ता नहीं जा सका। बम्बई से लौटकर हम दोनों कलकत्ता गये।

यद्यपि आपके निधन के कारण आपके द्वारा प्रारब्ध वैदिक-ग्रन्थों के प्रकाशन कार्य के बन्द होने की संभावना थी, परन्तु हम जब बैठने कलकत्ता गये तो उनकी वैदिक-धर्मानुरागिणी पतिव्रत-परायणा धर्म-पत्नी श्रीमती विमलादेवीजी ने कहा कि पतिदेव द्वारा प्रारब्ध कार्य बन्द नहीं होना चाहिये। मैं यथाशक्ति इसको चालू रखना चाहती हूं। जब भी प्रकाशन कार्य के लिये धन की आवश्यकता होवे आप मुझे लिखें।

श्री बागड़ियाजी के निधन के पश्चात् श्रीमती विमलादेवीजी ने दस-दस हजार करके दो बार में २० सहस्र रुपया प्रकाशन कार्य के लिये भेजा। श्री बागड़ियाजी के निधन के पश्चात् चार ग्रन्थ छप चुके हैं। इनकी माताजी की स्मृति में स्थापित ट्रस्ट द्वारा इस समय तक ११ ग्रन्थ छप चुके हैं[1]। उनके नाम और विवरण परिशिष्ट भाग में पृष्ठ १७५ पर देखें। १२वां ग्रन्थ पुरुषार्थ-प्रकाश छप रहा है।

श्री चौधरी प्रतापसिंहजी का निधन—श्री चौधरी प्रतापसिंहजी का जहां अपने 'श्री चौ० नारायणसिंह प्रतापसिंह धर्मार्थ ट्रस्ट' के द्वारा वैदिक-ग्रन्थों के प्रकाशन में सहयोग मिला, वहां रामलाल कपूर ट्रस्ट को तथा मुझे व्यक्तिगत सहयोग भी प्राप्त होता रहा। आर्यसमाज के विद्वानों द्वारा विरचित प्रायः सभी उत्कृष्ट ग्रन्थों के प्रकाशन में आप आर्थिक सहयोग देते रहे। आपकी ऋषि दयानन्द के प्रति अटूट आस्था थी। धनधान्य से सम्पन्न होते हुए भी आप स्वभाव से अत्यन्त विनीत थे।

---

१. इनमें उणादिकोष पहले श्री चौ० नारायणसिंह धर्मार्थ ट्रस्ट (करनाल) द्वारा प्रकाशित हुआ था। श्री चौ०प्रतापसिंहजी के निधन के पश्चात् उनके पुत्र द्वारा इस कार्य में रुचि न लेने और ग्रन्थ की मांग अधिक होने से श्रीमती सावित्रीदेवी बागड़िया ट्रस्ट की ओर से प्रकाशित किया गया। और ध्यानयोग-प्रकाश का पूर्व प्रकाशन रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा हुआ था।

सम्पन्नता के साथ विनय का संयोग संसार में अत्यन्त विरल उपलब्ध होता है। प्रायः लोक में तो

कनक कनक ते सौ गुनी मादकता बौराय।
एके पावत बौराय है दूजे खावत बौराय॥

कहावत के अनुसार धनवान् व्यक्ति अभिमानी ही देखे जाते हैं। पुराणों में लक्ष्मी का वाहन उल्लू कहा गया है, यह भी इसी तथ्य को अभिव्यक्त करता है।

आपका २७ जुलाई १९८५ को प्रातः निधन हो गया। आपके निधन से जहां आर्यसमाज की महती हानि हुई, वहां मुझे वैदिक-ग्रन्थों के प्रकाशन में एक परम सहायक का वियोग सहना पड़ा। आपके पुत्र श्री रघुवीरसिंह को श्री चौधरीजी के देश जाति और समाज की सेवा-कार्य से कुछ भी लगाव नहीं है।

आ० स० सान्ताक्रुज द्वारा सम्मान—१९ मई १९८५ को आर्यसमाज सान्ताक्रुज बम्बई ने वैदिक-वाङ्मय की सेवा के लिये मेरा विशेष सम्मान किया और अभिनन्दन-पत्र एवं सुवर्ण टाफी के साथ ७५ वर्ष के वयः (आयु) को ध्यान में रखकर ७५ हजार रुपये की थैली भेंट की। मैंने सम्मान में प्राप्त यह पूरी राशि वैदिक-ग्रन्थों के प्रकाशन में ही लगा दी। सुवर्ण टाफी पर निम्न लेख अङ्कित है—

'जीवन-पर्यन्त वैदिक अनुसन्धान हेतु समर्पित जीवन
के प्रति कृतज्ञता के प्रतीक स्वरूप
पूजनीय पं० युधिष्ठिरजी मीमांसक को
उनके अभिनन्दन समारोह पर
रु० ७५००० हजार की थैली सहित
दिनाङ्क १९ मई १९८५'

कलकत्ता की यात्रा—बम्बई से लौटकर हम दोनों श्री श्रेष्ठिवर्य मोहनलालजी बागड़िया के असामयिक निधन पर पारिवारिक जनों को सान्त्वना देने और भावी कार्य की व्यवस्था जानने की दृष्टि से कलकत्ता गये।

श्री बागड़ियाजी का संक्षिप्त परिचय उनकी स्मृति में प्रकाशित वैदिक-जीवन में दिया है।

हम दोनों के कन्धों का जाम होना—सन् १९८५ के अन्त में मेरा दाहिना कन्धा और यशोदा का बायां कन्धा जाम हो गया। इससे कन्धे और बाजू में पीड़ा रहने लगी। दोनों ने देहली में अस्थि-विशेषज्ञ को दिखाया। बिजली का सेक कराया। डाक्टर के कहे अनुसार हाथ की कसरत करते रहे। यशोदा को तो ५-६ मास में

कुछ लाभ हुआ, परन्तु मुझे अभी तक कुछ भी लाभ नहीं हुआ। हाथों की कसरत करते रहने पर भी मेरे बायें कन्धे में भी पीड़ा आरम्भ हो गई है। दस वर्ष पूर्व रात में मेरे पैरों में जो पीड़ा आरम्भ हुई थी, उसके फलस्वरूप दोनों पैर बहुत निर्बल हो गये। अब तो उठने-बैठने में भी कष्ट होता है और बीस कदम चलना भी अशक्य हो गया हैं।

संयोगा वियोगान्ताः

संसार का यह शाश्वत नियम है कि संयोग की परिसमाप्ति वियोग में होती है। लगभग सढे पचास वर्ष[1] पूर्व हम दोनों का पति-पत्नी के रूप में जो संयोग हुआ था, उसका कालान्तर में वियोग होना निश्चित ही था।

मेरी पत्नी यशोदादेवी यह चाहती थी कि वह सौभाग्यवती ही अर्थात् मुझ से पूर्व परलोकगामिनी होवे। यद्यपि भारतीय सभी पत्नियों में यह कामना देखी जाती है, तथापि सामान्य रूप से मानव-समाज की वर्तमान स्थिति को देखते हुए मैं भी यही चाहता था। संयोगा वियोगान्ताः नियम के अनुसार मेरे जीवन में यह विरह का काल उपस्थित हो गया।

उदर-शूल—यद्यपि यशोदा को २०-२५ वर्ष से आतों में घाव (अलसर) था, तथापि पथ्य रहन-सहन और औषध के प्रयोग से कार्य यथासम्भव ठीक चलता रहा (जब पीड़ा होती थी तभी वह दवा का प्रयोग करती थी)। सन् १९८६ के सितम्बर मास के उत्तरार्ध में यशोदा के पेट में पीड़ा आरम्भ हुई। अलसर की पीड़ा समझकर उसकी ५-६ दिन औषधि ली, परन्तु कुछ लाभ नहीं हुआ। सोनीपत जाकर डाक्टर को दिखाया। उसने चार दिन की दवा दी। उससे दूसरे दिन से ही लाभ आरम्भ हो गया और दो दिन में पीड़ा शान्त हो गई। चार दिन के पश्चात् पुनः डाक्टर के पास गई और पीड़ा शान्त होने की बात कही। डाक्टर ने कहा यह पर्ची संभालकर रखना। पुनः कभी पीड़ा हो तो यही दवा ले लेना। १५-२० दिन ठीक रहने के पश्चात् पुनः पेट में पीड़ा आरम्भ हुई। डाक्टर की पूर्व निर्दिष्ट दवा ३-४ दिन ली, उससे कुछ लाभ नहीं हुआ। डाक्टर को पुनः दिखाया। उसने दवा बदली, परन्तु उससे भी लाभ नहीं हुआ। डाक्टर ने बदल-बदल कर कई दवाएं दीं, परन्तु १०-१२ दिन तक कुछ लाभ नहीं हुआ। अन्त में डाक्टर ने पेट का विशेष एक्सरे कराने को कहा। देहली जाकर डाक्टर द्वारा निर्दिष्ट विशेष एक्सरे कराया। एक्सरे का चित्र दिल्ली में ही २-३ डाक्टरों को दिखाया। उन्होंने पित्ताशय में पथरी

---

१. ५० वर्ष, ७ महीने, ८ दिन।

बताई। यहां आकर डाक्टर को एक्सरे दिखाया और उन्होंने भी पित्ताशय में पथरी का ही निदान किया और उसका आप्रेशन कराने को कहा। इस प्रकार नवम्बर की १२ तारीख को देहली जाकर हस्पताल में भरती होने की व्यवस्था की।

पेट का आप्रेशन और कैंसर की स्थिति—नवम्बर की अठारह तारीख को यशोदा को गंगाराम हस्पताल में भरती कराया। आप्रेशन से पूर्व की सब परीक्षाओं के पश्चात् २१ नवम्बर को आप्रेशन हुआ। पथरी निकालने के लिये जब डाक्टर ने पेट को उघेड़ा तो ज्ञात हुआ कि पेट में कैंसर है और काफी फैल चुका है। डाक्टर ने विना छेड़-छाड़ किये वापस पेट में टांके लगा दिये। डाक्टर ने सेवा में निरत पुत्र और बहु को तो कैंसर की बात आप्रेशन के बाद ही बता दी और यह भी कह दिया कि अधिक से अधिक ५-६ मास निकालेगी। मुझे यह बात नहीं बताई। बहुत पूछने पर तीसरे या चौथे दिन बड़ी बहू कुसुम ने कैंसर की बात मुझे बताई। अस्तु।

आप्रेशन के पीछे पेट में बराबर दर्द रहने लगा। मौसमी के रस के अतिरिक्त कोई तरल पदार्थ भी पेट में नहीं ठहरता था, तत्काल उल्टी हो जाती थी। टांके खोलने तक १०-११ दिन हस्पताल में रखकर डाक्टर ने छुट्टी दे दी।

पेट की पीड़ा, उल्टी और निर्बलता दूर करने की जो औषधियां डाक्टर ने लिखकर दी थीं, उनसे घर पर लाने के पश्चात् ८-१० दिन तक तो आप्रेशन से उत्पन्न निर्बलता में उत्तरोत्तर कमी आई, परन्तु अन्त में स्थिति बिगड़नी आरम्भ हो गई। निर्बलता दिन प्रतिदिन बढ़ने लगी। पेट का दर्द तो दिन रात रहता था।

पुत्र-पुत्रियों और बहुओं के द्वारा सेवा—यशोदा की इस बीमारी की अवस्था में पुत्रों पुत्रियों और बहुओं ने यथाशक्ति तन-मन-धन से अपनी माता की सेवा की। स्वयं यशोदा सबके द्वारा की गई सेवा से सन्तुष्ट थी और मेरा अन्तःकरण भी सन्तुष्ट हुआ। इन सभी के मन और आत्मा में सेवाभाव सदा बना रहे, यही मैं परमात्मा से प्रार्थना करता हूं। संसार में परस्पर मिलके रहना, एक दूसरे की विपत्ति के समय आत्मभाव से सेवा करना, यही मानव का एकमात्र कर्तव्य है। सेवा का क्षेत्र जितना विस्तृत होगा, उतना ही अधिक आत्मसन्तोष होगा।

दीपक का बुझने से पूर्व विशेष चमकना—यह सभी जानते हैं कि दीपक बुझने से पूर्व एक बार विशेष रूप से चमकता है। इसी नियम के अनुसार यशोदा के पेट में चौबीसों घण्टे जो कष्ट रहता था, वह अन्तिम समय से दस दिन पूर्व ही शान्त हो गया था। यद्यपि निर्बलता दिन प्रतिदिन बढ़ रही थी, तथापि पेट के दर्द के शान्त होने से अन्त के दिनों में उसे कुछ राहत मिली।

ब्राह्म धर्मम् अनुपालयन्ती

कर्तव्य-परायणा स्नेह-सिक्त-हृदया स्मित-वदना

जन्म—सं० १९७३ निधन—सं० २०४३, पौष शु० ११

सन् १९१६ १० जनवरी १९८७

यशोदादेवी (नर्मदा बाई)

(चित्र—२६ मई १९८६)

बहालगढ़ आना—भयंकर बीमारी और निर्बलता की स्थिति में भी यशोदा ने बहालगढ़ जाने की इच्छा प्रकट की। तदनुसार उसे यहां लाया गया। चौथे दिन अवस्था खराब होने पर उसने वापस देहली ले जाने को कहा। तदनुसार उसे वापस देहली लाया गया।

अन्त-समय—उत्तरोत्तर निर्बलता बढ़ने से आवाज भी धीरे-धीरे क्षीण क्षीणतर क्षीणतम होती गई। मैंने विषम स्थिति को देखते हुए २-३ दिन पूर्व यशोदा से कहा कि पुत्रियों और बहुओं को तुमने जो कुछ देना हो वह अपने हाथ से दे दो। और पांच सहस्र रुपया हाथ में देकर दान करने के लिये कह दिया। स्वयं जीवित रहते हुए उसने उसके पास जो भी कुछ था(अपरिग्रहवृत्ति से जीवन-यापन करने के कारण उसके पास कुछ विशेष था ही नहीं) पुत्रियों और बहुओं को अपने हाथ से आशीर्वादरूप में दे दिया। और किस संस्था को क्या देना है, यह भी बता दिया।

सं० २०४३, पौष शुक्ला एकादशी (१० जनवरी १९८७) शनिवार के दिन सायंकाल से स्थिति अधिक बिगड़ने लगी। १० बजे के लगभग कफ बढ़ जाने से श्वास लेने में कठिनाई होने लगी। डाक्टर को दिखाने के लिये २-३ डाक्टरों से सम्पर्क किया, परन्तु किसी का भी आना न हो सका। यह भी अन्त समय का सूचक पूर्व निमित्त था।

तुलसी और गंगाजल से लाभ—भारतीय समाज में अन्त समय में तुलसी-पत्र और गङ्गाजल म्रियमाण व्यक्ति के मुख में डालने की परम्परा देखी जाती है। साधारण जन इनका वास्तविक महत्त्व तो जानते नहीं, अतः वह केवल रूढिमात्र बनकर रह गई। ये दोनों ही अन्तिम समय में उत्पन्न कफ की निवृत्ति करने वाले पदार्थ हैं। इसी दृष्टि से मैंने ८-१० तुलसी के पत्ते पीसकर १ छटांक गङ्गाजल में मिलाकर थोड़ी-थोड़ी देर में आधा-आधा चम्मच गले में डालने को कहा। इससे २०-२५ मिनट में ही कफ की वृद्धि से सांस लेने में जो कष्ट होता था, वह दूर हो गया।

अन्त में जिस देवी ने पचास वर्ष से अधिक काल तक न केवल मेरी तन-मन से सेवा की और पूर्ण सहयोग दिया, अपितु जिन कार्यों से मुझे समाज में यश प्राप्त हुआ, उस सबकी प्रमुख निमित्ता देवी अपने यशोदा और पीहर के नर्मदा नामों को स्वजीवन में सार्थक करके रात्रि में ११ बजकर ५०-५५ मिनट पर महायात्रा के पथ की पथिक बन गई।

अगले दिन परिवार के सब व्यक्तियों एवं मित्रों के उपस्थित हो जाने पर दो

वजे भस्मान्तं शरीरम् (यजु: ४०।१५) के अनुसार अन्तिम संस्कार किया। शेष कर्म भी यथा-काल निपटाये।

इसके अनन्तर की तो एक ही बात उल्लेखनीय है। वह है—

पिङ्गल छन्दःशास्त्र में एक सूत्र है—धी श्री स्त्री (१।१)। व्याख्याकारों ने इस सूत्र की प्रकरण से बहिर्भूत व्याख्या की है—'पुरुष क्रमशः विद्या और धन की प्राप्ति के अनन्तर स्त्री को प्राप्त करे'। इस क्रम से धी श्री स्त्री की प्राप्ति के अनन्तर मेरे जीवन में उलटा क्रम भी चरितार्थ हुआ है। देवी यशोदा के वियोग के अनन्तर श्री और धी ने भी साथ छोड़ दिया।[1] अस्तु।

इस आत्म-चरित को भी अखण्ड सौभाग्यवती देवीस्वरूपा यशोदा के जीवन के पटाक्षेप के साथ ही परिसमाप्त कर रहा हूं। अब इस जराजीर्ण और विविध रोगों से शीर्ण शरीर वाले स्वीय आवश्यक नैत्यिक कर्म में असमर्थ व्यक्ति का कर्मविहीन होकर नाम मात्र को जीवित रहना केवल विडम्बना मात्र ही है।

अन्त में—

'जगन्नियन्ता परेशस्त्वां 'यशोदात्रीं (यशोदादेवीं) नर्म=सुखदात्रीं (नर्मदादेवीं)' जन्म-जन्मान्तरेष्वपि सुखं शान्तिम् अमृतत्वं च प्रयच्छतु' इत्येवाहर्निशं प्रार्थये।

तव जीर्णशीर्णशरीरोऽर्धाङ्गः
युधिष्ठिरो मीमांसकः

मैंने अपने जीवन में अध्यापन, अनुसन्धान, सम्पादन और प्रकाशन का जो कार्य किया है उसके लिये दशम परिशिष्ट पृष्ठ १५१ से १६६ तक देखें।

---

१. यहां पूर्व पृष्ठ १८ पर लिखित तुलसी भुवाजी के सम्बन्ध में लिखी घटना भी देखें।

प्रथम परिशिष्ट

सामान्य एवं किशनगढ़ राज्य तथा बीकानेर राज्य की नौकरी से सम्बद्ध पत्र

(१)

श्री 333 आदर्श नगर,
अजमेर रोड़, ब्यावर (राज०)

Om

[श्री काका आनन्दीलालजी का पत्र]

प्रिय भाई युधिष्टर जी,

शुभाशीष ! आपका पत्र मिला उसमें आपने जो बातें पूछी उनके उत्तर में निम्न विवरण है ।

१. हम लोग लुहारु के निवासी थे, कुरल सारस्वत परिवार में ।

२. मेरे परदादाजी का नाम लच्छीरामजी जो लुहारु में ही रह गये ।

३. उनके पुत्र मेरे दादा जी हीरानन्द जी जो सलेमाबाद आकर बस गये ।

४. उनके ४ पुत्र, दो बहनें, मूझे जहाँ तक याद है थीं ।

५. हीरानंद जी के चार पुत्रों में बड़े श्री गोपाल जी उनसे छोटे श्री रूपदास जी उनसे छोटे श्री रामचन्द्र जी (जो मेरे पिता जी थे) और श्री रामवल्लभ जी थे । आपकी दादी जी का नाम जड़ाव बाई था । मेरी माता जी का नाम सत्यभामा था ।

६. आपकी माता जी और मेरी माता जी का तांवणियाँ परिवार में जन्म होवे के नाते बहनों का संसंबन्ध था ।

७. आपके पिता श्री गोरीलाल जी के हमारे माता जी, पिता जी सगे मामा जी, मामी जी लगते थे ।

८. हम लोग सलेमबाद से नृसिंहपुरा (ब्यावर के समीप) आ गये । नृसिंहपुरा से हमारे माताजी पिताजी [जब] बद्रीनारायण की यात्रा पर गये तब मैं करीब ६ या ७ साल का था । तो आपकी दादी जी मुझे किशनगढ़ ले आयी जहाँ भाई बहनों

गोरीलालजी व आपकी माताजी व आप महेश्वर से बिडकाचियावास आयें तो आपके साथ में भी खेलता था।

९. जब मेरे माता जी पिता जी बद्रीनाथ की यात्रा से वापस नृसिंहपुरा आगये। पिता जी के बीमार होने से भुवा जी मुझे नृसिंहपुरा लेकर आई। उस समय संवत 1973 के कार्तिक बदी 14 दिवाली महालक्ष्मी पूजन के पहले मेरे पिताजी शांत हो गये। मेरे माता जी को धैर्य बंधाने वाली आपकी दादीजी ही थी। इसलिये आपके माता जी पिताजी व आप का मेरे और मेरे परिवार से घनिष्ट संवन्ध रहा और अब तक है।

१०. आपकी माता जी और मेरी माता जी के सम्बन्ध से आप मेरे बड़े भाई होते हैं।

१०. मेरे बड़े भाई साहब [चिरंजीलाल जी] से तो आप मिल ही चुके हो उनका मन तीर्थाटन में ही था।

सब को शुभाशीष। बच्चों व बहुओं को धोक। कार्य सेवा की प्रतीक्षा में।

आनन्दी लाल

[श्री काका चिरंजीलालजी ने हरद्वार से बद्रीनारायण आदि तीर्थों की १५ बार पैदल यात्रा की। अन्तिम यात्रा में ही उनका स्वर्गवास हो गया [यु० ओ०]।

(२)

[श्री फूफा काशीनाथ जी का पत्र]

चि० गोरीलालजी आशिरवाद. तुमारा पत्र ता० १४-१-३२ चंन्द्रभूषण के नाम का रद्दी कागजों में मुजे मिला और आज एह पत्र कइ वर्षों के बाद लिखा है कारण पता नहीं था. ता० ३० जुन १९२८ की स्याम को जेपुर से बंबई के वास्ते रवंने होके ता० २ जुलाई को प्रातकाल ६ बजे बंबई पुचा साथ में ८ आदमी और ६५ लाख का जेवर बद्रीदास मुकीम कलकते वाले का रहन करने या वेचने को वीस्में मुझको कमी सनके रु० ४००००) चालीस हजार मिलने तारीख १६ जुलाई तक तमाम बंबई के सेठ साहुकार-हिंदु-मुसलमान एक २ के मिला किसीने रहन नहीं कीया ओर[न]खरीदा ता० १७ जुलाई को जेवर देके आदमीयो को कलकते भेजा में ता० १८ जुलाइ को रतलाम आ गया रतलाम राजाजी के पास २ महीने रया उज्जीन जावरा मंदसोर परतापगड फीर रतलाम फीर बंबइ गया बंबइ से २ अंग्रेज जुहरी ४ हींदुस्तानी लेकर जेपुर आया वहा भी काम नहीं बना अंग्रेज ओर हींदु जुहरीयों को रु०५६०० देके रवाने कीया-फिर

आगरा, हथरस छौंक, मुरसान, धोलपुर भर्थपुर मथुरा, जेपुर फीर अलवर-६ महीने रहा-रीवाडी-दिल्ली-मथुरा-भर्थंपुर-कोटा अब ५ महीने हुये जेपुर में हूं. अब १० या १५ रोज में अलवर जाउगा अलवर के आदमी १॥ महीने से ठरे हुए लेजाएगे को रपाचत अलवर नहीं आउगा रतलाम जाउंगा कारण अलवर राजाजी झूठा बेईमान है परंतु ६—७ रोज मे रावजी खरवा से पहले मिलुगा रावजी खरवा हिंदुस्तान मे १ ही क्षत्री सच्चा सुरबीर है मेरे से हृद्य की प्रीति रखता है जबकवी खरवे जाता हूं तो चार पांच महीने रखना मै नही जाता हूं तो फतेसिंहजी राठोड उन का सेक्रेटरी को भेज के वुलाता है—

अब मै जमिन मे गडा हुवा द्रव्य (दफिना) निकानने का काम करता हूं. अभि तक लाखों क्रोडो के माल निकालने की २ जगे है रतलाम या अलवर। अलवर राजा झुठा बेईमान है—रतलाम राजाजी सचा है इमानदार है इन से बातचीत यकी हो रइ है रतलाम से १६ कोश पर अमरगढ़ पहाड है उसमे औरंगजेव वादसाह का माल गुजरात की लूटका ६ कोड का है मै इस पहाड़ पर ३ दफे पहले गया था चौथी दफे बंबइ से सन २८ मे राजा को साथ लेके गया था माल का पुरा हाल स्थान वहां पहाड़ मे रखा है मुजे अच्छी तरे मालूम है—

अगर तुमारी निगे मे तुमारी तर्फ कही जमि मे खजाना होवे तो खुलासा लिखो रतलाम जाता हुवा तुमसे मीलता जाउगा—चन्द्रभूषण वहुत प्रसन्न है मोटर बिजली के काम का एक नम्बर हूसीयार है ऐसा काम कर्ता है के कलकते बवई मे बडे कारखानो मे होता है पडना छोड दीया है अगर कायदेवार काम मिले तो रु० २००) २५०) कर सकता है विलायतवालों की माफीक काम करता है—अब इसको जेपुर मे ईकला नही छोडुगा साथ रखुगा-

कमला शामभइ आमरे शाकंभरी हैदराबाद दक्षिण १ लडकी ८ महीने की पता—शाकंमभरीबाइ. ठीकाना देबीडासाद जी मिश्र. बिए.एल.एलबी. वकील हाइकोर्ट. बेगम बजार हैदराबाद—दक्षिण—शान्तावाई—ठीकाना. न्यु सिलक फेकटरी. भागलपुर—इस्के २ लड़के है——ज्यानाबाइ को १० चीठीया दइ न्यारे न्यारे ठीकाने लिखती रइ सब वापीस आयई अब ५ वर्ष से नही दई मालूम न्ही क्या पते से उहा का गर पोचता है हम प्रसन्न है तुम प्रसन्नता का पत्र जल्दी देना जेपुर के योग्य कार्य लिखो अगर तुम भेज सको तो रु० १५०) नही कम से कम रु० १००) तार से फौरन भेज देवो कुछ रकम की कमी है हम येह रुपया ३ महीने के वाद मे जरुर २ जमा करा देवेगे फीक्र न्ही करना बलके तुम जादा चावोगे भेजेगे—मगर इस बखत हमको जरुरत है

पत्र-तार-का पता— पंडित काशीनाथ बाबूजी का बाग जेपुर १४.११.३२

[पाठक विचार करें कि कहां तो पूफा जी पत्र में हजारों लाखों रुपये पाने का उल्लेख कर रहे हैं और कहां पत्र के अन्त में १५० रु० या १०० रु० ही भेजने को लिख रहे हैं। मु० मी०]

(३)

[पिता जी का वर्नाक्यूलर परीक्षा का प्रमाण पत्र]

Serial Number of the Certificate 419

EDUCATION DEPARTMENT, NORTH-WESTERN PROVINCES AND OUDH.

Middle Class Vernacular Examination.

(Instituted by G. O. No. 317A, Dated 11th September 1877).

Registered Number of Candidate in the list of candidates of the year. } 3396

Certified that Gaurilal son of Raghunath cast Brahman resident of Ajmere District passed the Middle Vernacular Examination of December 1890, and that he was placed in the Third Division.

Language (Urdu. or Hindi) } Hindi

QUEEN'S COLLEGE BENARES[१]

Age declared by the Candidate at the time of the Examination } Eighteen years.

QUEEN'S COLLEGE, BENARES: Dated 31st March 1897. }

W. H. Wright
Registrar,
Middle Vernacular Examination.

E. No. 4213.-9-2-97. 2,100-P. D.

१. यह अंश गोल मोहर में है।

(४)

श्री नाथ जी ॥

जनाब याली गुजारिश यह है कि फिदवी को दक्षिण में जाने की जियादा जरुरत है अतः कृपा करके १ माह की रुखसत सावण बदि १ से मंजूर फरमावें फिव्वी को जो-जो करवसतें शुरु से आज तक मिली उनका ओसत अधिक नहीं है सो रोशन होवे ॥

संवत् १९६१ असाढ सुदि १२

ह० गौरी लाल, शर्म्मा हैड पंडित महाराजा स्कूल कृष्णगढ
वर्तमान समय रुखसत में

हुक्म[1] नं० २

पहले तुम को १५ दिन की रियायती छुट्टी मिल चुकी है अब नहीं मिल सक्ती अगर अब छुट्टी चाहते हो तो विनां तनखा छुट्टी मंजूर है सं० १९६२ श्रावणवद १

(५)

आज्ञा पत्र

राज श्री बीकानेर के तहसीली पाठशालाओं की इन्स्पेकटरी से

मोहर सरिस्ते इन्स्पेक्टरी मदारिस बीकानेर[2]

पंडित गौरीलाल शर्मा

महकमह श्री खास की आज्ञा नम्बरी १९० तारीख १६ जून सन १९०६ के अनुसार तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार की जाकर तुमको रु० १५) मासिक पर इस विभाग की इन्स्पेकटरी की क्लार्की पर ६ मास के लिये इमतहानन मुकरर किया गया है इसलिये तुमको आशा पत्र के द्वारा सूचित किया जाता है कि इस आशा के पहुंचने पर यहां चले आओ और काम संभाल लो—जो तुम अपना काम सच्चाई के साथ अच्छा करोगे तो छः माह पीछे तुमको पक्की जगह पर मुकर्रर किया जावेगा—वेतन तुमको काम संभालने के दिन से दिया जावेगा सूचित रहो—तारीख २० जून सन् १९०६ ई.

ता० ३-७-०६ को चार्ज लिया।

ता० १२-१२-०६ को पिता की बीमारी के तार आने से घर आया. वापस नहीं गया.

---

१. यह हुक्म नं० २ इसी प्रार्थना पत्र के उपर के भाग में लिखा हुआ है। इस के अन्त में 'सं० १९६२' अशुद्ध लिखा गया है। पिताजी के प्रार्थना पत्र में सं० १९६१ सही लिखा है। २. यह रबड़ की गोल मोहर में हिन्दी उर्दू अंग्रेजी में छपा है।

द्वितीय परिशिष्ट

इन्दौर राज्य की नौकरी के समय के सरकारी आदेश आदि

(१)

सर्विस रेकार्ड ऑफ मि० गौरीलाल आचार्य

हकीकत

१. नाम, बाप का नाम और सरनाम	गौरीलाल आचार्य.
२. जात	सारस्वत ब्राह्मण.
३. सकूनत हाल	सनावद राज इंदोर
४. सकूनत कदीम.	बिडगच्यावास जिला अजमेर
५. तारीख पैदायश याने जन्म.	५ जुलाय सन् १८८१
६. उंचाई (फूट और इंचा में).	५ फूट ७ इंच.
७. बदन के खास निशान और दहने हाथ के अंगूठे की छाप.	
८. दस्तखत जिसकी सर्विस बुक है.	
९. दस्तखत ऑफिसर जिसके मातहत है.	(Sd.) D. B. Rahade

[स्थान-परिवर्तन]

बदलियां हुई हो तो कहां से चार्ज कब छोड़ा और कहां कब लिया उसकी तारीखें तथा हुक्मों के नं० तारीख

१	२	३	४	५	६
स्थान.	स्कूल.	ओहदा.	चार्ज लिया	चार्ज छोड़ा	हु. नं. डा. सा.
सनावद	ए. वी.	हिं. फ. म.	२७-४-०८	२३-६-०८	१४७८/१३-४-०८
बरूड़	बॉ. प्रा.	हे. मा.	७-७-०८	१७-७-०९	२०-६४/२५-६-०८
महम्मदपुर.	मिडल.	हे. मा.	२३-७-०९	१४-४-१२	२४४७/४-७-०९
महेश्वर	प्र. प्रा.	हे. मा.	१५-४-१२		४३/२५-१-१२
	ए. वी.	हिं. फ. म.		१७-९-१५	
मंडलेश्वर	ब. फा.	हे. मा.	१८-९-१५	-९-१७	१४२/८-७-१५
महेश्वर	ए. वी.	हिं. फ. म.	-९-१७	२९-७-२६	
बरगोण	ए. वी.	हिं. फ. म.	७-८-२६	३०-६-२७	न. २५/२६-७-२६
”	हाई०	हिं. फ. म.	१-७-१७	७-११-२८	
पीपलिया नन्दबाई	लो. प्रा.	हे. मा.	२२-११-२८ ४-६-३०*	२१-५-३०*	न.७२/३१-१०-२८

* इसके लिये देखो द्वितीय परिशिष्ट में संख्या २ पर पिता जी के हाथ का लेख।

[मासिक वृद्धि]

नौकरी की शुरू तारीख	७ जुलाई १९०८ ई० (कायमी)				
नौकरी के प्रारम्भ से आज तक प्रमोशन, या तनज्जुली हुई हो, वा टेमपरेरी से कायम हुए हों तो वे मय हुक्म के नं० ता० आदि लिखें	प्रकार.	कब से.	वेतन.	अलौंस.	हु. नं. डाइरेक्टर सा०.
	टेमपरेरी,	२७-४-०८	२५)		१४९८/१३-४-०८
	कायम	७-७-०८	१०)	५) पोस्ट अ.	२०९४/२५-६-०८
	प्रमोशन	२३-७-०९	१४)	५) ,,	२४४७/४-७-०९
	,,	१-७-१०	१६)	५)	१८७१/१५-६-१०
	,,	१-५-११	३०)	५) ,,	४७/१०-५-११
	,,	१५-४-१२	३०)		४३ /२५-१-१२
	,,	१५-९-१५	३५)		१४२/८-९-१५
	,,	३-१२-२०	४०)		१८२१/९-१२-२०
	,,	१-१२-२२	१८) + २२)		१/२-१-२३
	,,	१-१०-२३	१८) + १) + ३३)		
	,,	१-१०-२५	४८)		
	,,	१-१०-२६	५०)		

(२)

[बदली का आदेश-पत्र]

श्रीमान डायरेक्टर साहेब के दफ्तर हुक्म नंबर ए १८/१२,४,३० अनुसार नीचे लिखे मुजब बदलियां की जाती है. रा. रा. हैड मास्तर नंदवाई अपने असिस्टंटको चार्ज देकर पीपल्या को जाकर वहाका चार्ज लेंगे, और पीपल्या के हैड मास्तर रा. रा. गौरीलाल नंदवाई असिस्टंट से उक्त पाठक का चार्ज लेंगे

नाम.	हालका ओहदा	मंजूर शुदा ओहदा.
१. रा. रा. भागीरथ ओकार	हैड मास्तर नंदवाई	हैड मास्तर पीपल्या (जिरापूर परगना)
२ ,, ,, गौरीलाल रघुनाथ आचार्य	हैड मास्तर, पीपल्या (जिरापूर)	हैड मास्तर नंदवाई

Inspector of Schools Northern Division Indore C.I.

तामिली वास्ते रा. रा. हैड मास्तर साहेब नंदवाई तरफ रवाना.

२७५८/१२-४-३० ,, ,, ,, ,, पीपल्या ,, (जिरापुर)

माहिती वास्ते रा. रा. सर्कल इन्स्पेक्टर साहेब गरोठ तरफ रवाना.

Inspector of Schools Northern Division Indore C. I.

[पिताजी के हाथ का लेख]

प्राप्ति ता० २१-४-३० गो० आ० हैड मास्टर पीपलिया स्कूल

नं० ७३/२२-४-३०

यह असल हुकम गौरीलाल रघुनाथ आचार्य को दिया जाकर के नकल हुयका आफिस में रखा है।

चार्ज दिया गया पीपलिया स्कूल का २१-५-३० गौरीलाल आचार्य हैड मास्टर

चार्ज लिया नंदवाई स्कूल का ४-६-३० पीपलिया (जीरापुर)

(३)

श्री   नंबर २४६६/१६-४-०७

विद्याखातें, इंदूर

हुकूम

श्री मन्त होळकर सरकारां चे विद्याखातें
इन्स्पेक्टर
कचेरी
इन्दूर[1]

राजश्री गोरीलाल   उम्मैदवार

मु० बिड़क्च्चावास
पोस्ट मांगलियावास
(अजमीर) यांसी.

विनंती विशेष फिलहाल तुमको दो माह के लिये ए. व्ही. पाठशाला सनावद में हिंदी असिस्टंट नं.···की जगह माहवार रु० २५) पर नियत किया है. इस हुकूम के देखते ही सनावद जाकर अपने काम का कार्य हेड मास्तर साहेब से समझ लो. वाद इस मुद्दत के तुम्हारी पेस्तर के हुक्म नं० २०११/१४.३.०८ के अनुसार तजवीज की जावेगी. प,न,त.

D. B. Ranade
इन्स्पेक्टर ऑफ स्कूल्स इंदूर.

[पीठ पर पिताजी के हाथ का लेख]

२६-४-०८ को सनावद पहुंच के चार्ज लिया······की एवजी ता. २३-४-०८ को पूर्ण हुई

गोरीलाल आचार्य

१. यह गोलाकार मोहर में अङ्कित है।

(४)

श्री नंबर ३६३४/२६-६-०८

हुकूम

श्री मन्त होलकर सरकारां चे विद्या खाते

इन्सपेटर

कचहरी

इन्दूर[1]

राजश्री गौरीलाल उम्मैदवार

C/o HEAD MASTER

A.V. SCHOOL SANAWAD

राम राम विनंति विशेष बमूजिम हुक्म नं० २०६४/२५-६-०८ ....[2]

पाठशाला मास्टरी पर मासिक वेतन रुपये १०) पर नियत किया है पस तुम इस हुक्म के देखत ही बरूड़ रवाना होजाव और हाल के पाठक गयाचंरण से स्कूल का चार्ज नियमानुसार लेकर इत्तला भेजो. तुम को वहां पर पोस्ट का भी काम करना होगा। और उस का ......[3] तुम को माहवारी रु० ५) पोस्ट खाते से बतौर अलाउन्स के मिलेंगे इस विषय में हम पोस्ट खाने के ओर कार्यवाही कर चुके हैं.

D. B. RANADE
इन्सपेक्टर आफ स्कूल
इन्दूर

[निम्न लेख पीठ पर लिखा है]

Forwerded to Mr. Gorilal ji
Shiv Chand
D. 2-7-08 Hd. Master
sanawad

[इसके नीचे पिता जी नें अपने हाथ से लिखा है—]

ता० ७-७-०८ को बरूड़ पहुंचा ता० २०-७-०८ को चार्ज देने पर लिया

---

१. यह गोल मोहर में अङ्कित है।
२. कागज फट जाने से एक पंक्ति नष्ट हो गई।
३. कागज फट जाने से एक शब्द नष्ट हो गया।

(५)

श्री नंबर ३८६१/१०-७-६
विद्याखातें इन्दूर

हुकूम

एजूकेशन डिपार्टमेन्ट
इंस्पेक्टर
आफिस
इन्दूर[1]

राज श्री गोरीलाल मास्टर बरूड़ यांसी.

विनंती विशेष——

बमूजिब हुक्म नं० २४४७/८-७-०६ मे. डाइरेक्टर साहव के—तुम्हारी—तवदीली—महमदपुर पाठशाला में हेड मास्टर की जगह माहवार रु. १४)पर की है. पस वहां पर तुम जाकर काम का चार्ज देवीप्रसाद चौवे से लो और दफ्तर हाजा में इत्तला भेजो. तुमे डाक का काम भी करना होगा. बरूड़ हेडमास्टरी का शिवाजी राव विद्यार्थी नामंल,..................[2] महम्मदपुर रवाना होना चाहिये।

D.B. RANADE
इन्सपेक्टर ग्राफ स्कूल
इन्दूर

[पीठ पर पिताजी के हाथ का लेख]

प्राप्ति ता० १३-७-०६ गोरीलाल ग्राचार्य हेड मास्टर बरूड़

लो० प्रा० शाला[3] बरूड़ नं० ८६ ता० १३ जुलाई १६०६ में दर्ज कर असल यह हुंक्म नामा पाया

गोरीलाल आचार्य
हेड मास्टर बरूड़

---

१. यह लेख अंग्रेजी में गोल मोहर में है।
२. कागज फट जाने से वाक्य का कुछ भाग नष्ट हो गया है।
३. इस काल में लोग्रर प्रायमरी कक्षा २ तक मानी जाती थी तथा कक्षा ३

लोग्रर प्रायमरी स्कूल वरूड़ का चार्ज..........¹ता० १९०९..........¹ शिवाजी राव वि० नार्मल स्कूल (निवासी कन्नोट) को दिया

(६)

श्री नंबर ८६०३/१४-३-१२

हुकूम

श्री मन्त होलकर सरकारां चे विद्याखातें

इन्सपेक्टर

कचेरी

इन्दूर²

राज श्री गौरीलाल हेड मास्तर महम्मदपुर यांसी

विनंती विशेष बमूजिब हु० नं० ४३/२५-१-१२......³ रा० सा० के तुम्हारी तवदील महेश्वर पाठशाला में हेडमास्तर की जगह माहवार रु० ३०) तीस पर ता० १६-४-१२ से की जाती है।

तुम्हारी जगह निसरपुर के हे० मा० सुभानअली को माहवार रु० १८) पर ता० १६-४-१२ से तवदील..................⁴ तब्दील की जगह रवाना हो जाव.

चार्ज रि. सिरस्ते की रजारूल १२ के अनुसार भेजो

D. B. RANADE

इंस्पेक्टर आफ स्कूल्स,

इन्दूर

अपर प्रायमरी। चतुर्थ श्रेणि से ए. व्ही (एंग्लो वर्नाक्यूलर) स्कूल आरम्भ होता था। प्रथम कक्षा से पूर्व चार खण्ड होते थे। इनमें समय की विशेष पाबन्दी नहीं थी. जब भी कोई छात्र अपने खण्ड की पढ़ाई पूर्ण कर लेता था उसे K अगले खण्ड में चढ़ा देते थे। (यह जानकारी पिता जी के संग्रह में प्राप्त 'अभिप्राय-संग्रह' संचिका में निर्दिष्ट परीक्षा परिणामों से ज्ञात हुआ है)। इसके पश्चात् सम्भवतः सन् १९१५ या १६ से लोग्रर प्राइमरी कक्षा तीन तक और अपर प्राइमरी कक्षा चार तक स्वीकृत हुई। प्रथम कक्षा से पूर्व के चार खण्ड भी अ. ब. दो खण्डों में परिणमित हुए। सन् १९१६ में जब मैं मण्डलेश्वर में शाला में प्रविष्ट कराया गया तब यही क्रम चालू हो गया था। मैंने मार्च १९२१ में अपर प्राईमरी अर्थात चतुर्थ कक्षा उत्तीर्ण की थी। यह श्रेणि क्रम पिताजी द्वारा संगृहीत अभिप्राय-संग्रह में निर्दिष्ट परीक्षा परिणामों से ज्ञात होता है।

१. कागज के जीर्ण हो जाने से यहां का कुछ अंश नष्ट हो गया।
२. यह गोल मोहर में अङ्कित है।
३. यहां एक शब्द कागज के अति जीर्ण होने से टूट गया है।
४. यहां एक लाइन नष्ट हो गई है।

(७)

[अभिप्राय-संग्रह से]

गौरीलाल हिन्दी फर्स्ट असिस्टेंट—इंगलिश चौथी को भाषा और हिन्दी ३री को सब विषय पढ़ाते हैं। पाठक तथा हेडमास्टर सम्बन्धी इनकी योग्यता पहिले परीक्षित हो चुकी है मुझे खुशी है जहां पर ये हेडमास्टर थे वहीं पर सहायक पाठक रहकर अपने को इन्होंने योग्य सिद्ध किया है. नये युवा इंग्लिश हेडमास्टर तथा जूने अनुभवी प्रथम सहायक पाठक में ऐसे समय में बेबनाव होना एक साधारण बात [है]. परन्तु यहां पर गौरीलाल ने हेडमास्टर का पद खोने बाबद रंज न करते अपने वरिष्ठ को जितनी हो सकी सब मदद की है, इस शान्तिपूर्वक कार्य चलने के लिये हेडमास्टर को उतना ही श्रेय है, जितना की गौरीलाल को, कारण कि इन्होंने भी अपने मातहत को मातहेती का ख्याल न होने देने की कालजी ली है और उनकी सलाह हमेशा बड़े प्रेम से ग्रहण की है महेश्वरकर और गौरीलाल दोनों ने व्यर्थ अभिमान न धरते मेरी सूचनाओं का उपयोग किया, इसके लिये मुझे इन्हें धन्यवाद देना चाहिये। मैं आशा करता हूं कि यही अच्छा सम्बन्ध आगे रहेगा।

ता. १०–८–१९१३

डी. एम. गोडसे
फर्स्ट सब इन्सपेक्टर आफ
स्कूल. इन्दोर

तृतीय परिशिष्ट

मेरी गुरुकुलीय शिक्षा से सम्बद्ध पत्र

(क)

मन्त्री आर्यविद्यासभा, गुरुकुल सान्ताक्रुज, बम्बई को लिखे गये पत्र

(१)

ओ३म् — महेश्वर

सेवा में:— — ४-४-२१

श्रीमान् मान्यवर मंत्रीजी महाशय,
आर्य्य विद्या सभा, गुरुकुल सान्ताक्रुज मुम्बई,

नमस्ते,

मैंने आपकी स्वीकृति ता० १२-३-२१ प्रमाणे कसरावद निवासी श्रीयुत् शंकररावजी आदि भाइयों के संग बालक युधिष्ठिर को गुरुकुल में शिक्षण पाने के लिये श्रीमान् की सेवा में भेजा था, ता० २९-३-२१ का पत्र श्री शंकररावजी का मुझे प्राप्त हुआ कि "युधिष्ठिर शारीरिक मानसिक परीक्षा में तथा विद्या में जितना पास हुआ उतने अन्य बालक नहीं हुए, किंतु पांवों की व्यंगता के कारण प्रविष्ट करने के लिये गुरुकुल कमेटी भी असमर्थ रही". आदि.

महाशय ! यह सत्य हो, मैं गुरुकुल कमेटी को हार्दिक धन्यवाद देता हूं कि जो वैदिक धर्म्म के पुनरुद्धार और भारत राष्ट्र सुधार का बीड़ा उठाने वाली महात्मा समाज का अंग है.

हम भी दीन हीन और अपंग लोग धर्म्म और राष्ट्र के अंग हैं ऐसा हम स्वत्व के साथ कह सकते हैं और न्याय परायणता से आप जैसे विद्वान् अथवा कमेटी के सभ्य गण मानने को बाधा नहीं कर सकते, हिन्दुओं के समान अछूत जाति को भी आप······· मार सकते. मैं मुक्त कंठ से कह सक्ता हूं कि आज आर्य्यसमाज ही एक ऐसी संस्था है कि जो वेदों का दृढ़ जहाज लेकर के भारत क्या संसार भर के दीन हीन अंगहीन और अंत्यजों को भी पार लगाने के लिये उदार हृदय से समर्थ है,

फिर समझ में नहीं आता कि केवल १ बच्चे को जिसके पांवों में जन्म से थोड़ी सी व्यंगता है वह ४।६ मील चलता है दौड़ता है कुछ व्यायाम करता है (अवश्य ही अपने साथियों की अपेक्षा कुछ धीरे सही) डील डौल में, विद्या बुद्धि में, सदाचरण और अभिरुचि में अवस्थानुसार अच्छा है, पार लगाने के लिये असमर्थता दिखाई ! और उसे विमुख कर उलटा लौटा दिया ! ! ! उसके साथ दिये हुए पत्र में पांवों के विषय में मैंने वहुत कुछ प्रार्थना भी की थी, पांवों के कारण वह केवल कठिन पेचीदा व्यायामों में रुक सक्ता था, गुरुकुल को इसमें उसके शिक्षणदान में कोई बाधा ही नहीं है. अंग्रेजी और अमेरिकन नियम भी इतने कड़े नहीं हैं। पश्चात्ताप कि भारती का मान अपने भारत में (घर में) ही नहीं किया जाता. (आनंद है कि अब किया जाने लगा है)·

मैं कह नहीं सक्ता कि आर्य्य भद्र पुरुष भी भारतीय लकीर पर फकीर होनेवाले कीचड़ में अभी तक फंसे हुए हैं; इसी को विद्वान् लोग दूसरे वाक्यों में यों कहते होंगे कि नियम का पालन करना हमारा मुख्य कर्तव्य है, अवश्यहै, नियम की लकीरों को सोचते हुए विद्वान् लोग उद्देश्य पर पानी नहीं फेर देते होंगे, मान्यवर ! क्षमा करेंगे.

मान्यवर ! गुरुकुल में एक दो दीन ब्रह्मचारी पर निःशुल्क भी लिये जाने की दया दिखावा नहीं है और भविष्यत में कभी द्रव्यपूर्ति के समय उदारतापूर्वक निःशुल्क शिक्षण देने का ध्येय स्पष्ट हो रहा है. ऐसी दयालु संस्था को मैं हृदयासन से स्वप्न में भी नीचे नहीं उतार सक्ता. दया का क्षेत्र सीमाबद्ध नहीं हो सक्ता; एक दया को उसमें और सम्मिलित होने का अवसर देवें कि दोनों के समान एक दो काम करने योग्य होनहार अपंग ब्रह्मचारी भी वैदिक धर्म्म शिक्षणार्थ गुरुकुल में स्थान पावें और सहयोगी बनकर अपने गौरव को समझें. न कि उन असमर्थ दुःखियों को अपना न समझकर क्लेश की विशेषता बढ़ायें ! आर्य्यसमाज हमको, हमारे बालकों को जो धर्म्मग्राही हैं, नहीं अपनाती है, तिरस्कार करके निराधार छोड़ देती है. मेरी व्याकुलता मेरे हृदय को छेदन करती है और आत्मा को कहलाने के लिये विवश करती है कि क्या हम धर्म्म भिक्षार्थ ईसाइयों के दयाजाल की शरण में जावें ! ! ! धिक्कार है मेरे ऐसे शब्दों को; परन्तु महाशय ! हम देखते हैं कि दयामूर्ति हिन्दु महात्माओं की ठोकरों के मारे ही योग्य अंत्यजों और योग्य स्त्री समाज को, क्यों अच्छे २ संस्कृतज्ञों को उन्हीं का शरणागत बनना पड़ा है.

हे उदार महानुभाव ! 'विद्याविहीनः पशुः' ऐसा ही एक आप के आश्रम में मनुष्यत्व प्राप्त्यर्थ याचना करने आया था, वह अपंग भी था; विद्या की संगति से कुरूप भी सुरूप हो जाते हैं; कितना स्वरूपमान मनुष्य वह बन सक्ता था यदि आप का प्रशाद

उसको मिलता तो आपका प्यारा बनता, अष्टावक्र और चाणक्य का समय कहीं दूर नहीं गया है यदि हम उदारता की सीमा को बढ़ाने का साहस करें. महाशय मैं मानता हूं आप अपने द्रव्यानुसार नियमित संख्या भरती करते हैं. तब अच्छे-अच्छे पूर्णांग मिलते हुए अपूर्णांग क्यों लेवें. परंतु अपूर्णांग कदापि त्यागे नहीं जा सकते वे परमात्मा की सृष्टि के जीव हैं वे आप की उदारता और गुरुकुल को भूषित करेंगे. वह खारा नमक त्याज्य नहीं है जो भोजन के फीकास को सुस्वादु बना देता है.

मुझे मेरा अनुभव स्पष्ट प्रेरणा दे रहा है कि मेरे पांवो की व्यंगता से मुझे आज १ आने की मजूरी भी नही मिलती, कुछ थोड़ी मेरे कर्म की अपेक्षा विद्या के सहारे से मेरा निर्वाह भले प्रकार चल रहा है ईश्वर की दया विशेष है तब इकलोते पुत्र को धर्म्म और विद्या प्राप्ति के लिये गुरुकुल सदृश उच्चतम विद्यालय शरण में देना मेरा कर्त्तव्य समझता हूं. मेरे पांव में ४० वर्ष की अवस्था में भी अधिक कमजोरी नहीं आई है ५/६ कोस चल सकता हूं।

महामान्य ! मेरी अपील रूप विनय है. कि किसी भी प्रकार से इस बच्चे को गुरुकुल में लेने के लिये मुझे स्वीकृति देने की कृपा करिये ताकि मैं पुनः आप की सेवा में भेज दूं. आगामि वार्षिक संमेलन तक आयु का नियम सच्चा बाधक बनेगा और इसका समय सद्विद्या के बिना व्यर्थ जा रहा है. युधिष्ठिर आदि लोग अभी आये नहीं हैं उनके आने पर समाचार सुनकर और आपका उत्तर पाकर यह अपील कदाचित् आर्य्य सेवक नृसिंहपुर द्वारा गुरुकुलों की सेवा में नम्रता पूर्वक निवेदन करना पड़ेगी. क्यों नहींअ पने देशोद्धार का बाना लिया है। इसलिये आपको विनय करता हूं.

महाशय यह अपील स्वीकार न हो तो शीघ्र ही युधिष्ठिर के शारीरिक मानसिक परीक्षा का फल मुझे भेजने की कृपा करिये और मुझे आज्ञाधारक मानकर यथासमय आज्ञा देते रहिये. ब्रह्मचारियों के सेवकों में इसको सम्मिलित करिये.

नोट—सूचित करियेगा कि कितने ब्रह्मचारी इस वर्ष लेने का निश्चय किया कितने आये उन में से कितने ना पास हुए.

(२)

ओ३म्

महेश्वर
२४-४-२१

सेवा में:—

श्रीमान् मान्यवर मंत्री जी महाशय
आर्य्य विद्यासभा—गुरुकुल मुंबई.

सेवा में:—

श्रीमान् की सेवा में १ अपील बालक युधिष्ठिर को गुरुकुल में प्रविष्ट करने के विषय में अर्पण की थी, मैं स्मरणार्थ विनय करता हूं कि मुझे कोई भी उत्तर नहीं मिला, यदि कमेटी की सेवा में उपस्थित नहीं हुई हो तो कब तक होवेगी. कृपया १ बार वापसी डाक से उत्तर प्रदान करिये. नित्याशा से निराशा श्रेष्ठ है।

गुरुकुल में प्रविष्ट न करने से इस बालक के चित्त में ऐसा झटका बैठ गया है कि वह उदास रहता है रोता भी है भोजन भाता नहीं है दुर्बल होता जा रहा है मुझे इसका पता तब लगा कि कल कसरावद से आकर श्रीमान् मेघराज जी आर्य ने इस से वार्तालाप किया. मुझे बड़ा खेद और पश्चात्ताप है कि मेरी ओर से इसको २ वर्ष से दी हुई उत्तेजनायें और मेरे प्रयत्न जो गुरुकुल शिक्षणार्थ थे, भयंकर परिणाम के कारण बन गये मेरी पुकार थी न्याय से चाहे वह अरण्यरोदनवत् हो गई मेरा कोई वश नहीं परमात्मा की शरण सर्वश्रेष्ठ है.

भवदीय गौरीलाल आचार्य
महेश्वर
होलकर स्टेट.

(३)

॥ ओ३म् ॥

गुरुकुल
ता. २९-४-१९२१

आपका खत मिला। आपकी पहली अरजी मंत्री जी को भेजी थी किन्तु अब तक उसका कोई जवाब ही नहीं। आज आपका पत्र श्री मंत्री जी को पुनः विचारणार्थ भेजते हैं, जिसका उत्तर आने पर आप को सूचित कर देंगे।

भवदीय
रमणीक लाल जी यादो

(ख)

मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी से किया गया पत्र-व्यवहार

(१)

पिताजी का पत्र

[पिताजी ने फाल्गुन कृष्ण ८ सं. १९७७ को एक पत्र 'श्रीमान् अधिष्ठाताजी, गुरुकुल कांगड़ी' के नाम लिखा था[1]। इस पत्र की प्रतिलिपि प्राप्त नहीं हुई।]

(२)

सं. ८९१७ ओ३म्[2] ति० २५-११-१९७७

No............... Dated......192

कार्य्यालय मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी

डा० गुरुकुल कांगड़ी जि० बिजनौर (रेलवे स्टेशन हरिद्वार ओ०आर०आर)

Offiec of the Governor Gurukula Vishva Vidyalaya kangri
P.O. Gurukula Kangri District Bijnor (Ry, Station Hardwar) O.R.Ry.

प्रिय महाशय !

नमस्ते ! आप का पत्र तिथि फा० कृ० ८ का मिला! इस वर्ष नये बालकों का चुनाव समाप्त हो गया है अब आप अगामी वर्ष पौष मास में अपने बालक का प्रार्थना पत्र भेजने की कृपा करें। नियमावली अभी छप रही है छप जाने पर भेज दी जावेगी!

भवदीय
र. स. द. सक्सेना
मुख्याधिष्ठातार्थं

---

१. इस तिथि को पत्र लिखने की सूचना अधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी के अगले संख्या २ पर निर्दिष्ट पत्र से मिलती है।

२. यह पत्र कार्ड पर लिखा गया है। इस पर महेश्वर डाकखाने की मोहर १० मार्च १९२१ की है।

(३)

पिताजी का पत्र

[पिताजी ने एक पत्र फाल्गुन कृष्णा १४ सं. १६७७[1] को 'श्रीमान्, अधिष्ठाता गुरुकुल, कांगड़ी' के नाम लिखा था। इस पत्र की प्रतिलिपि प्राप्त नहीं हुई।]

(४)

ओ३म्

॥ ब्रह्मचर्य्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत ॥

संख्या ६० तिथि २-२-१६७७

No ....Dated..................191

कार्य्यालय गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी. डा० गुरुकुल कांगड़ी जि० बिजनोर

Gurukula Vishvavidyalaya Kangri P.O. Gurukula Kangri Dt. Bijnor.

महा. गोरीलाल जी आचार्य्य
हिन्दी प्रथमाध्यापक
महेश्वर
(होल्कर स्टेट)

प्रिय महाशय—नमस्ते ।

आप का पत्र तिथि फाल्गुन कृष्णा १४-७७ प्राप्त हुआ। आप के पूर्व पत्र का उत्तर कार्य्यालय के पत्र सं० ८६१७ तिथि २४-११-७७ द्वारा दिया जा चुका है। कारण ज्ञात नहीं कि क्यों आप को नहीं मिला।

ब्रह्मचारियों का चुनाव हो चुका है। अब प्रविष्ट होना कठिन है। यदि आप १७००) एक साथ देने का अभिवचन दें तो पत्र का उत्तर आने पर विचार हो सकेगा, अन्यथा अब प्रविष्ट होना अति कठिन है। कृपया आगामी वर्ष प्रार्थना-पत्र भेजें।

भवदीय
(हस्ताक्षर अस्पष्ट)
मुख्याधिष्ठाता

---

१. इस तिथि को पत्र लिखने की सूचना अधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी के अगले संख्या ४ पर निर्दिष्ट पत्र से मिलती है।

(५)

ओ३म्

महेश्वर
४–४–२१
चैत्र कृष्ण ११ सं १९७७

सेवा में–

श्रीमान् मान्यवर मुख्याधिष्ठाता जी महाशय
गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार.

नमस्ते.

श्रीमान् का कृपापत्र ता० १९–३–२१ को मुझे प्राप्त हुआ। इतने में युधिष्ठिर को सान्ताक्रुज गुरुकुल में भेजने की तैयारी हो गई थी और ३ बालकों का तथा उनके पिताओं का साथ था अतः ता० २१–३–२१ को उधर भेज दिया गया। आज तक वे लोग लौट के नहीं आये हैं कदाचित् अहमदाबाद होकर आवेंगे।

युधिष्ठिर की आयु और शिक्षणादि के विषय में माघ कृष्णा १ के पत्र में विनय कर चुका हुं। सांताक्रुज से आया हुआ श्रीयुत शंकरराव जी का पत्र और आज उक्त गुरुकुल की सेवा में विनय की हुई अपील की प्रति श्रीमान् को सेवार्पण की है। श्रीमान् की सेवा में भी अपील करना मैंने इसको माना है। स्वीकृत हो।

महामान्य, मेरे प्रयत्न में कोई दोष मुझे दीखता नहीं है किंतु सिद्धि नहीं होती है। मैं आशा करता हूं कि आप आयु का नियम न पालेंगे कि एक स्थान का अनुत्तीर्ण व्यक्ति दूसरे स्थान में भी तिरस्कार के योग्य समझा जावे, जिसके लिये वह स्वतः दोषी नहीं है। मुझे स्वीकृति अथवा आश्वासन दिया जावे। प्रवेश काल निकल गया है, तो उसे अधिक विलम्ब नहीं हुआ। और ब्रह्मचारी संख्या पूर्ण हो गई है तो उसे तटस्थ स्थान दीजिये। गुरुकुल कार्य्य एक के भार से भारी नहीं होगा। आगामि प्रवेश काल तक आयु और अधिक हो जाने से नियम में अधिक बाधा आवेगी। मैं बड़े असमंजस से कैसे पार होऊं, मेरा एकाएक बच्चा धार्म्मिक सद्विद्या से शून्य रहा जाता है। और बिना भरती किये वारम्वार मार्गव्यय गरीब मनुष्य को भारी पड़ता है।
१.............................. गत बर्ष यज्ञोपवीत संस्कार के लिये मैं इसको .... होशंगाबाद गुरुकुल में ले गया था वहां इसको प्रविष्ट करते थे ....परन्तु आपके महाविद्यालय में आने का लालच कर रखा था।

---

१. इस पत्र का कागज अतिजीर्ण हो जाने से कई स्थानों में फट गया है। अतः लेख नष्ट हो जाने का.........चिह्न से निर्देश किया है।

मेरे पांव जन्म से वांके हैं तलुवे पीछे की ओर हैं और अग्रभाग भीतर को मुड़े हुए हैं। युधिष्ठिर के पांव भी जन्म से वैसे ही थे । आपरेशन कराने को इन्दोर ले गया था किन्तु उब्वा रोग हो जाने से २५ दिन तक भी अस्पताल में रखा परन्तु स्वास्थ्य आपरेशन योग्य न होने से ले आना पडा । पश्चात् मालिश करने से इतना लाभ हुआ कि तलुवे धरती पर रखे जाते हैं थोड़ा झुकाव बांए पांव का भीतर की ओर रह चुका। दाहिने पांव में बहुत कुछ सफलता हुई है । और मैंने सुना था कि कृष्णगढ़ निवासी श्रीमान् पं० नाथूलाल जी शर्मा आप के गुरुकुल में शिक्षक हैं। मेरे पांवों की चलने फिरने की शक्ति का निश्चय आप उनसे कर सकते हैं । युधिष्ठिर की शक्ति तलुवे धरकी पर टिकने के कारण मेरी अपेक्षा वढ़ती रहेगी।

श्रीनान् ने शुल्क के लिये एकदम १७००) रु० देने के अभिवचन की आज्ञा की है। मैं भी चाहता हूं कि मैं अकेला हूं और कभी मेरा देहांत हो गया तो वच्चे के शिक्षण में रुकावट न आवे। अत: मैं ६ मास में १७००) रु० भरती करने का अवश्य प्रयत्न करूंगा । आरंभ में सौ दो सौ रु० जमा कर सकूंगा। इसके लिये वचनवद्ध होना कठिन है कदाचित् ६ मास में प्रयत्न करते भी १७००)रु० नहीं हुए तो पीछे से मासिक अथवा वार्षिक शुल्क पेशगी लेना श्रीमान् को स्वीकारना होगा। मैं विड़गंच्यावास. पो० स्टे० मांगलियावास. जिला अजमेर निवासी हूं। वहां की मेरी कृषि उत्पन्न [अनाज] युधिष्ठिर की शुल्क को पर्याप्त होगी। वर्तमान में मेरी स्थिति ठीक है। ऋण से······मास में उऋण हो जाऊंगा। वेतन के ४०) रु० और महर्घता के ८) रु० मिल रहे हैं। सारांश में विनय है कि शुल्क का यथायोग्य प्रवध कर देना मेरा कर्तव्य है।

मेरी विनय है कि अपंग बच्चे को आश्रयदान करिये। पांवों के विषय को इसलिये कि आप देशोद्धारक हैं दृष्टि में न लाइये। मेरी शेष संतानें जीवित रहतीं तो मैं नियम भंग करने पर उतारू होने के लिये कोई गुरुकुल को त्रास नहीं देता, तो भी मेरा उत्साह मेरे इस सर्वस्व को उत्तमतर··········में लाने के लिये भरसक प्रयत्नवान् रहेगा और आर्यसमाज को जिसको कि मैं मेरा घर मेरा राज्य और मेरा आश्रयदाता समझता हूं, न्याय के लिये निवेदन करता हूं।

उदार महाशय ! मुझे बहुत विस्तृत लिख कर के श्रीमान् को परिश्रम पहुंचाना पड़ा है इसका क्षमाप्रार्थी हूं। और भिक्षार्थी हूं इस बात का कि कोई प्रकार से मेरा अपंग वालक गुरुकुल में लिया जाय।

भवदीय नम्र

गोरीलाल आचार्य
हिन्दी प्रथमाध्यापक ए० व्ही० स्कूल
महेश्वर–होलकर स्टेट.

(६)

महेश्वर
२५-४-२१

सेवा में:— मुख्याधिष्ठाता,

श्रीमान् मान्यवर जी महाशय.
गुरुकुल, कांगड़ी-हरिद्वार.

नमस्ते.

श्रीमान् की सेवा में १ विनय और १ अपील बालक युधिष्ठिर को गुरुकुल में प्रविष्ट करने के विषय में ता. ४-४-२१ अर्पण की थी, मैं स्मरणार्थ विनय करता हूं कि मुझे कोई भी उत्तर नहीं मिला. यदि गुरुकुल सभा की सेवा में उपस्थित नहीं हुई हो तो कब तक होवेगी कृपया १ बार वापसी डाक से उत्तर दीजिये. अच्छा तो यह कि आप स्वीकृति देते हों तो तार से खुलासा दीजिये कारण शाला की वार्षिक परीक्षार्थ आज श्रीमान् इन्स्पेक्टर साहब पधारे हैं ता. १-५-२१ से १० दिन की मुझे छुट्टी मिलेगी. मैं बालक को इन छुट्टियों में लाना चाहता हूं. तार के रुपये मैं पीछे से सेवार्पण करूंगा.

गुरुकुल सांताक्रुज से भी ता. ४-४-२१ की अपील का उत्तर नहीं मिला.

गुरुकुल सांताक्रुज में प्रविष्ट न करने से इस बालक के चित्त में ऐसा झटका बैठ गया है कि वह उदास रहता है रोता भी है. दूध के सिवाय भोजन में अरुचि रखता है: दुबला होता जा रहा है. मुझे इसका पता तब लगा कि कल कसरावद निवासी श्रीमान् मेघराज जी आर्य्य ने इस से वार्तालाप किया मुझे बड़ा खेद और पश्चात्ताप है कि मेरी ओर से इस को २ वर्ष से दी हुई उत्तेजनाएं और मेरे प्रयत्न जो गुरुकुल शिक्षणार्थ थे भयंकर परिणाम के कारण बन गये. गुरुकुल के अतिरिक्त इसे कोई धुन नहीं प्रसन्नता से सांताक्रुज को चला गया था पिता को याद भी नहीं किया. महामान्यवर ! मेरा स्वार्थ नहीं है इस अबोध को तो आश्रय दीजिये.

गोरीलाल

(ग)

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के पत्र

(१)

गुरुकुल कांगड़ी
१८-३-७८

प्रिय ब्रह्मचारी युधिष्ठिर !

नमस्ते ।

तुम्हारा पत्र पंहुचा । श्रद्धा के प्रबन्धकर्ता को कह दिया है कि उक्त पत्र को तुम्हारे पास नियमपूर्वक भेजते रहा करें ।

२. कार्यालय में लिख दिया है कि गुरुकुल की नियमावलि तुम्हारे पास भेज दी जावे । अपने पठन पाठन का ब्योरा मुझे लिखकर भेजोगे, और उसके विषय में सम्मति मांगोगे तो मैं लिखता रहूंगा ।

अपने पिताजी को मेरी नमस्ते कहना । तुम्हारा मङ्गलाभिलाषी.

श्रद्धानन्द

(२)

ओ३म्

गुरुकुल काङ्गड़ी
२ आषाढ़, १९७२

प्रिय ब्रह्मचारी युधिष्ठिर,

तुम्हारा पत्र मिला ।

यह नियम अनिवार्य है कि १० वर्ष की आयु समाप्त होने पर किसी बालक को प्रबन्धकर्तृ सभा भी प्रवेश की आज्ञा नहीं दे सक्ती । यदि तुम यहां इस पर भी आकर कुछ धरना आदि करोगे तो सत्याग्रह नहीं प्रत्युत दुराग्रह होगा । गुरुकुल काङ्गड़ी में तुम्हारी पढ़ाई का प्रबन्ध सभा भी नहीं कर सक्ती फिर मेरा तो कुछ भी वश नहीं है ।

तुम्हारा मंगलाभिलाषी
श्रद्धानन्द संन्यासी

(३)

OM

P. O. GURUKULA-KANGRI.
Ditt. BIJNOUR
Dated 24।3।1978

महाशय !

नमस्ते ।

आपका विस्तृत पत्र पंहुचा । जब आप ब्र० युधिष्ठिर को लेकर भाद्रपद में बाहिर निकलेंगे और हरदुआगंज और ऋषीकेश इत्यादि में उसके लिये यत्न करेंगे उस समय आपने गुरुकुल भूमि में भी आजाना, तो उसके पठन पाठन विषय में मैं अपनी सम्मति भी दे दूंगा ।

पत्र भेजते ससय आप टिकट न भेजा करें, इसकी कुछ आवश्यकता नहीं ।

चिरंजीव युधिष्ठिर को आशीर्वाद कहिये ।

आपका—
श्रद्धानन्द

(४)

ओ३म्

नया बाजार,
देहली.
ति० ७ आश्विन, १९७१

महाशय

नमस्ते । आपका पत्र पहुंचा । चिरञ्जीव युधिष्ठिर का ठीक प्रबन्ध हो गया, यह सुनकर सन्तोष हुआ ।

श्रद्धानन्द

(व)

सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा देहली के साथ पत्र-व्यवहार

(१)

ओ३म् महेश्वर २४-५-२१
ज्ये. कृ. ३ सं. ७८

सेवा में:—

श्रीमान. मान्यवर मन्त्रीजी महाशय
सार्वदेशिक आ. प्र. सभा. दिल्ली.

नमस्ते.

श्रीमान् का उत्तर पाकर युधिष्ठिर नामक मेरे ब्रह्मचारी के लिये इस पत्र के साथ अपील सेवार्पण करता हूं. उज्जेन की ओर चले जाने से अधिक विलम्ब हो गया.

कृपया जहां तक संभव हो; इस अपील को मीटिंग में शीघ्र उपस्थित करियेगा. और आद्योपान्त सर्व पत्रों की मीटिंग में पढ़े जाने का परिश्रम किया जाय, जिस से कदाचित बालक को कार्य्य सिद्धि में सुभीता होवे. गुरुकुल विश्व विद्यालय कांगड़ी के अधिष्ठाता जी सभा के कहने को कभी उल्लंघन न करेंगे. ऐसी आशा है.

उनके पत्र नं. १०१८/२०-१-७८ में आज्ञा है कि "इस वर्ष आपके ब्रह्मचारी के विषय में कुछ नहीं किया जा सक्ता." पांवों और आयु के ऊपर उन्होंने खुलासा नहीं किया. इस से आगामि वर्ष में भी मुझे धोखा हो सक्ता है. इधर बालक इस खेद से दुर्बल हो गया है. श्रीमान् मुख्याधिष्ठाता जी, इसे भरती काल के पहले पढ़ावें चाहे न पढ़ावें, गुरुकुल में बुला लेवें और पड़ा रहने देवें तो उत्तम हो. प्रतिज्ञा पत्र और त्रैमासिक शुल्क की व्यवस्था नियमानुसार मैं अभी से कर देना चाहता हूं.

नम्रः—

गोरीलाल रघुनाथ आचार्य्य
हिन्दी प्रथमाध्यापक
महेश्वर, होलकर स्टेट.

विशेष परिचयः—

युधिष्ठिर की आयु ११.५ वर्ष की सत्य है मैं छिपाता नहीं, यदि नियम

विपरीत है तो भी यह मेरे निरीक्षण में स्कूल बोर्डिंग में अर्थात् एकांत में रहा है इसे आप गुरुकुल सेवी ही मान सक्ते हैं. ब्रह्मचारियों के आचरण को अतिशीघ्र ग्रहण करेगा. हिन्दी अपर प्रायमरी पास हुआ है.

मैं इसके लिये विवश था कि आयु बड़ी कर दी. कारण कि ३ वर्ष के पहले इसकी माता, मेरी माता, और अन्य संतानें क्रम २ से देहांत हो गईं विशेषकर इसकी माता की ६ मास की सेवा ने मुझे १२ मास बीमार रखा. ऋण अधिक हो गया. द्रव्य विना बालक को मैं कैसे गुरुकुल में भेज सक्ता था. गत वैशाख में सं. ७७ में होशंगाबाद गुरुकुल में यज्ञोपवीत संस्कार के लिये ले गया था और व्यवस्था देखकर भरती कराने का विचार था सो पूरा न हुआ. उस समय मैं इन्फ्लेंजा सेवकाई में स्वतः बीमार होकर ज्वर में ही वहां गया था। इस वर्ष कांगड़ी गुरुकुल में ले जाता तो प्रविष्ट हो जाता, परंतु मंजूरी में विलम्ब हुआ था. इतने में सांताक्रुज गुरुकुल से स्वीकृति मिली और इसे वहां भेज दिया. साथियों के हजार विनय करते भी वहां की कमेटी के किसी भी सभ्य को साहस नहीं हुआ कि इसे भरती करते. उस नियम से डर गये और रोते बालक को आंसू पोंछ पीछा लौटा दिया. अब आगे ईश्वर है. इति.

विनीत—गौरीलाल आचार्य्य,

महेश्वर.

(२)

।।ओ३म्।।

१७, बर्न बेश्चियन सड़क,

देहली।

ति० २४ ज्येष्ठ १९७८.

महाशय—नमस्ते !

आपकी ज्येष्ठ कृ. ३. सं. १९७८ की लिखी अपील मन्त्री जी ने मुझे दी। सार्वदेशिक आ. प्र. सभा के साथ गुरुकुलों का कोई सम्बन्ध नहीं, इसलिये यह अपील सभा के किसी व्यक्ति विशेष में भी पेश नहीं हो सक्ती (२) आपके बालक की आयु १० वर्ष से अधिक होने के कारण गुरुकुल काङ्गड़ी में तो वह प्रविष्ट हो ही नहीं सक्ता। कदाचित् अन्य गुरुकुलों का भी ऐसा ही नियम हो—यह सम्भव है (३) जब तक गुरुकुलों के नियम ऐसे हैं तब तक ऐसे मामलों में कुछ नहीं हो सक्ता।

भवदीय

श्रद्धानन्द प्रधान

सार्वदेशिक आ. प्र. सभा

(३)

ओ३म्

महेश्वर
२७-४-२१

सेवा में:—

श्रीमान. मान्यवर मन्त्री जी महाशय.
सार्वदेशिक आ० प्र० सभा—दिल्ली.

नमस्ते,

महाशय, कृपा कर के यह बताइये कि सार्वदेशिक आर्य्य प्रतिनिधि सभा के वार्षिक अधिवेशन की तिथियें कौन सी नियत की गई हैं ?

और यदि वा० अधिवेशन को अधिक विलम्ब हो तो पहले होने वाली कोई विशेष बैठक की भी तिथि बताइये,

एक ब्रह्मचारी को गुरुकुल सांताक्रुज मुंबई में केवल पांवों की थोड़ी व्यंगता के दोष से प्रविष्ट नहीं किया है. उसकी अपील ता. ४-४-२१ को उक्त गुरुकुल की सेवा में अपील की गयी है.[1] उत्तर अभी तक न आने से मैं श्रीमान् से पूछता हूं कि विशेष बैठक में ऐसे ब्रह्मचारी की अपील पर किसी भी गुरुकुल में देने का विचार हो सक्ता है या नहीं. मेरी अपील न्यायशून्य न होगी.

कृपया उत्तर वापसी डाक से प्रदान कीजिये.

भवदीय गौरीलाल आचार्य्य.
हिं. प्रथमाध्यापक ए. व्ही. स्कूल, महेश्वर
होलकर स्टेट

(४)

ओ३म्

१०-५-२१ रानीखेत १०-५-२१

श्रीमान् जी नमस्ते

आप का पत्र दहली से होता हुवा यहां रानीखेत में पहाड़ पर मिला

सार्वदेशिक सभा के वार्षिक अधिवेशन की कोई तिथी नियत नहीं की गयी है कोई नियम इस प्रकार का नहीं है कि गुरुकुल में प्रविष्ट ना हो सकने की अपील सार्वदेशिक सभा सुन सके प्रंतू आप अपील भेज देवें मैं सभा की पहली मीटिंग में पेश कर दूंगा.

नारायणदत्त
मंत्री

---

१. इस सम्बन्ध के पत्र तृतीय परिशिष्ट 'क' में संख्या १, २ पर देखें।

(५)

ओ३म्

महेश्वर
२५–५–२१

सेवा में—

श्रीमती सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

स्थान—दिल्ली

नमस्ते

मेरी हाथ जोड़ कर विनय है कि मैं मेरे एकलौते अपंग बच्चे को गुरुकुल में पढ़ाना चाहता हूं परंतु मैं संयोगवश मेरे प्रयत्नों में ४ वर्ष से असफल हो रहा हूं, मुख्यकर अब तो इसलिये कि बच्चा अपंग है। फिर भी वह ऐसा है कि आप उसे ४ मील चलाकर देख सकते हैं। यह अपंग होने पर भी मेरा तो सर्वस्व है, परंतु अब जान पड़ता है कि एसा अपूर्णांग गुरुकुल संस्थाओं (आर्यों?) में (अप्रकट) घृणास्पद है चाहे ईश्वर की सृष्टि में और सर्वसाधारण समाज में वे उदारता के पात्र हों। हिंदू विद्या का द्वार शूद्रों के लिये बंद है? ऐसे ही वैदिक विद्या का मुख्य द्वार (गुरुकुल) अपूर्णांगों के लिये खुला नहीं है। वे विचारे उसमें प्रवेश करने नहीं पाते!! महा-मान्यो! क्षमा के साथ दोनों की परीक्षा करिये। पहला नंबर किसने प्राप्त किया?

महाशयो, मैं नहीं समझता कि वे नियम हैं कि कुनियम हैं, जिनकी भ्रमात्मक शक्ति के द्वारा कोई २ व्यक्तिकों को, जो उन्नत कार्य करने में अग्रसर और हार्दिक उत्साही होते हैं, करने से रोक दिया जाता है। यहां अपंगों के बाल्यावस्थाजन्य आरंभिक सुविचारों के कोमलांकुरों पर विना परिणाम सोचे वज्राघात कर दिया जाता है। मेरा ऐसा अनुभव बड़ रहा है, कुछ स्वार्थ की दृष्टि से ही नही।

वास्तव में ऐसे अपंगों की सहायता करने और सुधारने की पहली आवश्यकता है। ये खरे उपदेशक बन सकते हैं। संसार में गूगों बहिरों और अंधों की भी स्कूलें हैं।

इतनी बड़ी महत्वाकांक्षी जगत् प्रसिद्ध समाज में अनेक सभ्य उदार महानुभाव है, जरा विचार करेंगे? और यह भी कि इस समाज के संस्थापक महर्षि महाराज के विशुद्ध ज्ञान की पुष्टि कहां से हुई? [1]आभार मानते हुए हृदयों से उत्तर निकल पड़ेगा कि चर्मचक्षुविहीन कोई अपूर्णांग महात्माही से!!! तो अपूर्णांग महात्मा की विश्वव्यापी संपत्ति के केवल स्वल्पांश पर ही, अपूर्णांगों की वारिसी देख कोई २ पूर्णांगों के

---

१. यह संकेत गुरुवर प्रज्ञाचक्षु विरजानन्द जी के लिये है।

हृदयों में क्यों चिड़ उठती है ? कौन से न्याय से ? मुझ अपूर्णांग[1] को तो स्टेट के डाक्टरों ने नापास कभी नहीं किया।

मेरा ब्रह्मचारी मोटर नहीं रोक सकेगा, कोई बात नहीं। परंतु सामान्य व्यायाम और प्राणायाम द्वार स्वास्थ रक्षा करते हुए इन्हीं पांवों से भ्रमण करके क्या धर्मप्रचार नहीं कर सकेगा। यही प्रश्न शारीरिक शिक्षण का है जो कि व्यक्तिगत विषय (सबज्यकूट) है। इसमें सब ब्रह्मचारियों को सफलता समान नहीं हो सकती।

मैं मेरी समाज से उक्त शब्दों के लिये नम्रतापूर्वक क्षमाप्रार्थी हूं। लिखते समय मेरा नहीं, एक ब्रह्मचारी का उन्नतिस्वार्थ प्रबल हो रहा था।

गुरुकुलों पर सार्वदेशिक सभा का अधिकार (मैं नहीं जानता) हो चाहे न हो, मुझे यही उपाय सूझ पड़ा, और मेरे असंतोष को मेरे समाज के चरणों में पटक कर वर्तमान में मैं विश्राम लेता हूं, इस महदाशा पर कि इस ब्रह्मचारी को गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी अथवा उसकी शाखाओं में आश्रय देने के लिये उक्त गुरुकुल के उच्चाधिकारियों की सेवा में कष्ट पहुंचाया जायगा। अवश्य ही वे सार्वदेशिक सभा का संकेत पाकर इस ब्रह्मचारी को टूटे हाथ के समान गले बांधेंगे।

(६)

दहली
३१-५-२१

श्रीमान् जी नमस्ते.

आपका पत्र और फाईल पहुंच गई है, जुलाई की किसी तिथी में सार्वदेशिक सभा की मीटंग होगी. उस में आप की फाईल पेश कर दी जावेगी. और नतीजे से आपको इतला दी जावेगी.

आपका
नारायणदत्त
मंत्री सार्वदेशिक सभा
दहली.

इस पर पत्रादि पहुंचने की सूचना दीजिये और अनुमान से मत दीजिये कि किस प्रकार और कब तक सफलता हो सक्ती है, मेरे योग्य कार्य्य से आज्ञा देते रहें
गोरीलाल आचार्य्य

---

1. पिता जी के दोनों पैर जन्म से टेढ़े थे।

(ङ)

गुरुकुल वृन्दावन से पत्र-व्यवहार

(१)

॥ ओ३म् ॥ विभागसंख्या

पत्रस्य लिपिं फाइलसंख्या

क्रमसंख्या

रजिष्टरसंख्या

संयुक्तप्रान्तीय श्रीमतीआर्यप्रतिनिधिस्थ

गुरुकुल-कार्यालय वृन्दावन (मथुरा)

तिथि संवत् १९७ वि०

तारीख सन् १९१ ई०

श्रीमान् म० गौरीलाल जी आचार्य महेश्वर होलकर स्टेट

श्रीमन्महाशय ! नमस्ते ।

आपके पत्र के लेखानुसार १ प्रति गुरुकुलनियमावली भेजी जाती है। इस वर्ष के लिये नवीन बालक मास दिसम्बर में दाखिल हो चुके हैं ! अब अगले वर्ष मास नवम्बर सन् २१ में दाखिल किये जायेंगे । इस समय नहीं ।

कुंवरपालसिंह

(२)

सं. १०१८ ओ३म् गुरुकुल

२०.१.७८

प्रीय महोदय

नमस्ते

कृपापत्र मिला । इस वर्ष का नये ब्रह्मचारियों का प्रवेश हो चुका है । गुरुकुल वृन्दावन का गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी से कोई सम्बन्ध भी नहीं है । इस कारण इस वर्ष आपके ब्रह्मचारी के विषय में कुछ नहीं किया जा सकता । भवदीय

इन्द्र

सं. मुख्याधिष्ठाता

(३)

ओ३म् महेश्वर
११-६-२१

श्रीमान् मान्यवर.

नमस्ते.

आपका असमाधानकारक पत्र पाया.

मैं यथाशक्ति मेरे ब्रह्मचारी के लिये कि वह गुरुकुल में शिक्षण पावे, पर्याप्त उपाय कर चुका. अब निश्चय हो गया कि आर्य्य समाज एक बिहिड़ वन है उस में मेरा रुदन किसी ने नहीं सुना; उस वन में कोई दयापूर्ण त्यागी भी नहीं था. मैं अभी कह नहीं सक्ता कि मेरा पुरुषार्थ बालक के लिये दूसरे प्रयत्न में लग जावे.

आप का आभार मैं मानता हूं इसके लिये कि आप ने शीघ्र उत्तर दे डाला. मुंबई सान्ताक्रुज गुरुकुल ने मेरे ही पोस्टेज से मुझे उत्तर तक नहीं दिया.

गौरीलाल आचार्य्य

(च)

भरत महाविद्यालय हृषीकेश से पत्र-व्यवहार

(१)

ओ३म् महेश्वर
ज्येष्ठ कृ-२ सं. ७८

सेवा में:—

श्रीमान् मान्यनीय, व्यवस्थापक जी महाशय
महाविद्यालय हृषीकेश.

प्रणाम.

श्री वेङ्कटेश्वर पत्र ६ मई की विज्ञप्ति अनुसार मेरी विनय है कि मेरे एकाएक युधिष्ठिर नामक बच्चा ११ वर्ष का है. पांवों में व्यंगता है परंतु चलता फिरता है दौड़ता और सरल व्यायाम करता है. हिंदी अपर प्रायमरी पास हुआ है. अजमेर निवासी सारस्वत ब्राह्मण है. मैं चाहता हूं कि ब्रह्मचर्याश्रम पालन करते वेदाध्ययन करे.

सांताक्रुज (मुंबई) के गुरुकुल ने इस वर्ष शारीरिक मानसिक परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर भी केवल पांवों से घृणा करके इसको प्रविष्ट किया नहीं. अब हरिद्वार कांगड़ी के गुरुकुल से आगामि वर्ष प्रविष्ट करने के लिये पत्र व्यवहार कर रहा हूं.

उधर मुंबई कमेटी को भी अपील की थी परंतु उन से उत्तर बन नहीं पड़ा. ऐसे ब्रह्मचारी को आप आश्रय और विद्या दान की उदारता दिखा सक्ते हों तो मैं अर्पण कर सक्ता हूं.

कृपा करके शीघ्र ही लौटती डाक से प्रार्थना फार्म, शिक्षण क्रम, और नियम पत्रक, तथा प्रवेशतिथि का निश्चय प्रदान करियेगा. ताकि मैं निश्चय कर लूं.

शारीरिक व्यायाम और शिल्पकला का कितना शिक्षण होगा बताइयेगा.

दूसरा ब्रह्मचारी जयपुर निवासी गुर्जर गौड़ ब्राह्मण ८ वर्ष का, पिताविहीन, दीन, निराधार केवल वर्णमाला अंक का ज्ञाता है[1] पुण्य का कार्य है, स्वीकृत हो तो युधिष्ठिर के साथ भेज दूं,

भवदीय—गौरीलाल आचार्य्य
हिंदी प्रथमाध्यापक, ए० व्ही० स्कूल
महेश्वर
होलकर स्टेट

(२)

ओ३म्

न० १/११

कार्य्यालय श्री भरत महाविद्यालय
हृषीकेश जि० देहरादून
ता० १८-६-१९२१

श्री मान्

यथोचित शिष्टाचार।

क्षमाकरें प्रथम बालक युधिष्ठिर के प्रवेश के विषय में असमर्थ हैं। द्वितीय बालक प्रविष्ट हो सकता है परन्तु स्वास्थ्य, कुलीनताऽऽदि आपको प्रमाणित करना होगी, अतः इसी के विषय में उत्तर पत्र दीजिये।

व्यवस्थापक
श्री भरतमहाविद्यालय
हृषीकेश (देहरादून)

---

१. इस की माता ने महेश्वर में पिता जी के पैर के आप्रेशन के समय कुछ समय भोजन बनाने का कार्य किया था। इस समय वह इन्दौर में थी।

(३)

ओ३म्

महेश्वर २४-६-२१
आषाढ़ कृष्ण ४ सं० १९७८

सेवा में:-

श्री मन्महामान्य व्यवस्थापक जी महाशय
श्री भरत महाविद्यालय-हृषीकेश

प्रणाम.

आपका कृपा पत्र नं०१/११ ता० १८-६-२१ प्राप्त हुआ तदनुसार विनय है कि:-

द्वितीय बालक (श्री नारायण) की माता को जो आठ दस मास से इन्दोर में है पत्र लिखा है, जब मैं बैशाख में उज्जैन गया था, और युधिष्ठिर के विषय में बात निकली थी तब उनने भी पुत्र [के] शिक्षण के प्रयत्न की सदिच्छा प्रकट की थी. भेजने की स्वीकृति आने पर वहां से प्रतिष्टित वैद्य का सारटिफिकट मंगाकर तथा उनके कुटुम्बी और सम्बन्धी लोगों का सारटिफिकट यहां से लेकर सेवा में पहले ही अर्पण करूंगा जो कि पर्याप्त प्रमाण होगा.

धृष्टतायुक्त पृथक् प्रार्थना:-

मेरे बालक युधिष्ठिर के प्रवेश विषय में आप समर्थ क्यों नहीं हैं। कारण स्पष्ट करना था. मुझे शंका है कि मेरे आर्य्यसमाजी होने से कदाचित् आपने अस्वीकार किया हो.

अस्वीकृति से मुझे रुष्टता नहीं है और न गुरुकुलों के प्रति मैं कृतघ्न हो सक्ता हूं। इसलिये कि केवल मेरे एक बच्चे के उन्नत स्वार्थ में बाधा दी है। प्रसंग आने से श्रीमान् की सेवा में (संक्षिप्त) निवेदन करने को मैं स्वतंत्र हूं कि जब कि २ आर्य्य गुरुकुलों ने शुल्क देते भी कुछ नियमों के आश्रय से न्यायोचित स्वाधीनता को तिलां-जलि देकर पांवों की थोड़ी व्यगता और आयु की थोड़ी अधिकता बताकर एक अबोध बरन् मुख्यकर दयापात्र अपंग भिक्षार्थी के लिये दया और शिक्षण पूरित हाथ नहीं बढ़ाया ! ! ! मेरी बारम्बार प्रार्थना और अनथक उद्योग पर तनिक भी विचार नहीं किया।

तो हे उदार महानुभाव ! मेरे चित्त के पश्चात्ताप का प्रमाण आप विचारिये, न मैं समाजसेवा योग्य हुआ और न मेरी संतान ही होवेगी, ऐसी दशा में मेरा एका-एक बालक कोई भी तो धर्म्म को ग्रहण करे कि निरा अधर्म्मी ही रहे ! ! ! अथवा

कि जनसेवार्थ मुसलमानी एवम् क्रिश्चियन धर्म्म का शिक्षण पावे, जो कि थोड़ी विनय से ही मिल सक्ता है.

महाशय ! मैं अवश्य ही आर्य्यसमाजी हूं परंतु मुझे सनातनधर्म्मावलम्वी (जिस से मेरा कुटुम्ब पृथक् नहीं है) तो क्या मुसलमान ईसाई से भी द्वेष नहीं रहा है, जैसा कि हम शिक्षकों का कर्तव्य है, और फिर आज राष्ट्रीय मेल के विपरीत मेरा सामर्थ्य नहीं। मेरा बच्चा सनातनधर्म्मी वनेगा तो उसके भविष्य जीवन के लिये वह स्वतंत्र है; मतधारण में पिता पुत्र का संवंध बाधक नहीं हो सक्ता. उचित विचार करके आज्ञा दीजिये, अथवा शंका प्रश्न करके निवर्तन करियेगा (यद्यपि मेरा प्रयत्न उधर से अभी हटा नहीं है.)

कृपया पाठ्य पद्धति और नियमावलि शीघ्र बताइये कि मैं भी उसे सोच लूं. यद्यपि मेरा विश्वास है कि ब्रह्मचर्याश्रम पालन करना और विद्वत्ता के साथ २ स्वावलम्बी बनना इतना अलभ्य उपकार आप इन बच्चों का कर सक्ते हो. फिर जन्म सार्थक बनाना इनके हाथ है. शुद्ध और सरल भाव से विनय किया है.

विनम्र—गोरीलाल आचार्य्य.
हिन्दी प्रथमाध्यापक ए. व्हीं. स्कूल
महेश्वर
होलकर स्टेट.

नोटः—महेश्वर श्रीमती विख्यात दानवीरा अहल्या माता की राजधानी रहा है यहां के दानविभाग के उच्चाधिकारी से अथवा कोई भी विद्वान् से निश्चय कर लीजियेगा कि ९ वर्ष से यहां रहनेवाले आर्य्यसमाजी गोरीलाल ने सनातन धर्म्म की निंदा में कभी भाषण किया क्या ? अथवा प्रत्येक मतानुयायियों से प्रेम वर्ताव नहीं रखा क्या ? परंतु पहले महाविद्यालय की पाठविधि मुझे बताने की कृपा करिये। गो.

(४)

ओ३म्

महेश्वर १२-८-२१
श्रां. शु. ९ सं ७८

सेवा में—

श्रीमान् व्यवस्थापक जी महाशय
श्री भरत महाविद्यालय हृषिकेष

प्रणाम

आप के कृपापत्र नं. १/११ ता. १८–६–२१ के उत्तर में एक प्रार्थनापत्र ता. २४-६-२१ श्रीमान् की सेवा में मैंने अर्पण किया था किंतु आपकी ओर से उत्तर आने की प्रतीक्षा ही कर रहा हूं.

श्री नारायण (द्वितीय बालक) की माता ने इन्दोर से पत्र में अपने बालक को श्री भरत महाविद्यालय में भेजना स्वीकार किया है और वह असली पत्र श्रीमान् की सेवा में इसके साथ में अर्पण किया है.

आप के महाविद्यालय के नियमों के अनुसार प्रतिज्ञा फार्म आदि उसकी माता (संरक्षक) से लिखवाने का हो वे कृपा करके शीघ्र भेजियेगा और उन नियमों के पालनार्थ पूर्ण हिदायतें लिख भेजियेगा.

मेरे बालक युधिष्ठिर को प्रविष्ट करने के विषय (में) श्रीमान् की इच्छा नहीं हो तो उक्त दीन बालक को तो प्रविष्ट करियेगा. मैं १० सितम्बर १९२१ को यहां से प्रस्थान करके कुछ दिन अजमेर गृहव्यवस्थार्थ ठहर के लगभग ३० सितंबर तक श्रीमान् की सेवा में उपस्थित होऊंगा, युधिष्ठिर को कोई भी उपयुक्त आश्रम की शरण में प्रविष्ट कराने के लिये मेरा यह भ्रमण होगा. ऐसा साथ होने से उक्त दीन बालक भी श्रीमान् के चरणों में आ पड़ेगा.

मैं लगभग २ मास से ज्वर से रुग्ण हूं अतएव मेरी ओर से पत्रव्यवहार में ढील हो गई किंतु आप का उत्तर १।। मास से न आया देखकर मुझे खेद है. जो कुछ उत्तर देना हो इस बार में प्रदान कर दीजियेगा क्योंकि बालकों के समय को व्यर्थ नष्ट जाने देना मैं क्या, आप भी पसंद नहीं कर सक्ते. किंतु भरोसे पर न रखियेगा.

भवदीय गोरीलाल आचार्य्य
हिं. प्र. अध्यापक. महेश्वर
होलकर स्टेट.

(छ)

(१)

ओ३म् महेश्वर. १६-८-२१
श्रा. शु. १३ सं. ७८

सेवा में:—

श्रीमान् मान्यवर प्रबंधक जी महाशय.
वैदिक दीन बालाश्रम
कासगंज (एटा.)

नमस्ते. (आप की विज्ञप्ति 'कर्मवीर' (पत्र) ता. ४-६-२१)

मेरे बालक युधिष्ठिर को जो आयु १२ वर्ष हिंदी अपर प्राइमरी पास है, ब्रह्मचर्याश्रम पालन करते हुए संस्कृत अध्ययन कराने की पूर्ण इच्छा करता हूं. आप के विद्यालय के नियमादि तथा शिक्षणक्रम के पत्र मुझ को शीघ्र प्रदान करियेगा. और साथ ही बुलाने की स्वीकृति दीजियेगा. इसलिये कि मैं सितंबर की ६ ता. को यहां से छुट्टी में प्रस्थान करने वाला हूं. बालक को कोई न कोई आश्रम के आश्रय में अर्पण करना ही है. यदि आप के विद्यालय के शिक्षणक्रम और नियमादि मेरे विचार में इच्छानुकूल हुए तो आप की स्वीकृति अनुसार सेवा में उपस्थित होऊंगा.

दूसरा एक बालक अत्यंत ही दीन आयु ८ वर्ष शब्द अंक सीखा है केवल माता के आश्रित है जो इंदोर में मजदूरी से निर्वाह करती है. उस का भी कहना है स्वीकार करिये तो उसे भी साथ लेते आऊं. दोनों में से इसे तो आश्रय देना समुचित होगा.

गौरीलाल आचार्य्य.

(२)

ओ३म्

संख्या

वैदिक दीन-बालाश्रम कासगंज।
ता० २२-८-२१

श्रीमान् जी !

सादर यथायोग्य ॥

आप का पत्र प्राप्त हुआ वृत्त विदित हुआ उत्तर में आप को सूचित किया जाता है कि आपने कुछ विलम्ब से पत्र भेजा है अत: मैं आपके पुत्र युधिष्ठिर को मैं प्रविष्ट करने में विवश हूं। क्योंकि इस वर्ष के प्रबन्ध के अनुसार विद्यार्थियों की संख्या पूरी हो गई है अब किसी भी बालक के लिये आश्रम में स्थान रिक्त नहीं है। अब अन्य बालकों का आश्रम में प्रवेश आगामी वर्ष ज्येष्ठ तथा आषाढ़ के १५ दिवसपर्यन्त होगा अब आपको उचित है कि आगामी वर्ष नियत समय पर स्मरण दिलाने की कृपा कीजिये आगामी वर्ष ज्येष्ठ में पत्र भेजिये। आशार्थी हूं कि आप इस समय मुझे क्षमा करेंगे। शमिति

यदि आप अपने पुत्र के भोजनादि के व्यय को आप ही सहन कर सकते हैं तो आप लिखिये मैं नियमादि भेज दूंगा-तब आप उचित समझें तो पुत्र को यहां भेज दीजिये॥ किमधिकम्

भवदीय—
नन्दकिशोर श० धर्मा (?)
प्रबन्धकर्त्ता वैदिक दीन-बालाश्रम

(ज)

आर्यप्रतिनिधिसभा नरसिंहपुर का पत्र

(१)

नं॰ ३७ ओ३म् कार्यालय आ॰ प्र॰ नि॰ सभा नरसिंहपुर
५-४-२१

सेवा में

श्रीमान महा॰ गोरीलाल जी आचार्य
महेश्वर

आपका कृपा पत्र ता. ३१-३-२७ का मिला उत्तर में निवेदन है कि किसी बालक को एक साल अथवा थोड़े समय के लिये भरती करने का नियम नहीं है अत: गुरुकुल में भरती करने में असमर्थ हूं।

भवदीय
(हस्ताक्षर अस्पष्ट)
महा॰ मंत्री सभा[1]

---

१. पिताजी ने सम्भवत: आ. प्र. सभा मध्यप्रदेश के अधीन चलने वाले गुरुकुल होशंगाबाद में कुछ समय के लिये भरती करने के लिये लिखा होगा। उस का यह उत्तर पत्र है।

(फ)

आचार्य विरजानन्द साधु आश्रम (अलीगढ़) के साथ पत्र-व्यवहार

(१)

ओ३म् महेश्वर

६-६-२१

सेवा में:— ज्येष्ठ अमावस्या ७८

श्रीमान् मान्यवर आचार्य्य जी महाशय

वृजानन्द साधु आश्रम

पुल काली नदी

हरदुआगंज-(अलीगढ़)

नमस्ते.

प्रार्थना है कि मेरे युधिष्ठिर नामक बालक को सांताक्रुज गुरुकुल ने प्रविष्ट नहीं किया. केवल इस कारण से कि उसके पांवों में कुछ व्यंगता है और उधर भेजने से गुरुकुल कांगड़ी का प्रवेश काल भी हाथ से निकल गया. आगामि वर्ष प्रविष्ट करने का आश्वासन मिला परंतु शंका है गुरुकुलों के नियमों से. अतएव अपील श्रीमती सार्वदेशिक आ०प्र० सभा स्थान दिल्ली की सेवा में ता० २४-४-२१ को अर्पण की है. समय पर स्वीकृत होवेगी—

तो भी मैंने आज सुना है कि आपके आश्रम में जो कि साम्प्रत में खोला गया है, इस को आश्रय मिलेगा इस से भी बालक का अभीष्ट सिद्ध होगा. कि वह ब्रह्मचर्याश्रम पालन करते हुये वेदाध्यपन कर के सच्चा ब्राह्मण बन सकेगा—

इस अपंग को आप ४ मील चला कर देख सक्ते हैं आयु ११॥ वर्ष और हिन्दी अपर प्राइमरी उत्तीर्ण है इन्दौर शिक्षा विभाग से भी ६३१४/२६-४-२१ को सारटिफिकट मिला है। सांताक्रुज गुरुकुल के प्रवेश में केवल पांवों को छोड़कर शारीरिक और मानसिक परीक्षा में उत्तम पास हुआ है यह सदाचारी और विद्याग्राही है. कामों में भी (जो इससे हो) भली रुचि रखता है.

मुझे आप के आश्रम के विषय में कुछ भी मालूम नहीं है अत एव मेरी यही प्रार्थना स्वीकार हो और आश्रम के नियम, अवश्य पत्रादि प्रदान करिये और प्रवेश की तिथि बताइये ताकि मैं समय पर इसको आश्रम में उपस्थित करूं

गौरीलाल

(२)

ओ३म्　　　　　　　　महेश्वर २३-६-२१
अषाढ़ कृ. ३ सं. १९७८

सेवा में:—

श्रीमन्महामान्य संचालक महाशय
विरजानन्द आश्रम
हरदुवागंज

नमस्ते.

आप की भेजी हुई आश्रम नियमावली प्राप्त हुई. तदनुसार विनय है.

मेरे विचार से महर्षि प्रदर्शित पाठ्यप्रणाली प्रचालन से वैदिक धर्म्मप्रचार और राष्ट्रीय सेवा के अर्थं आपका उद्योग सहायक होगा. आश्रम को शिशु अवस्था है नियमावली और पाठ्यक्रम को अभी संक्षिप्त रूप मात्र आपने प्रकाशित किया है. परमात्मा से मेरी प्रार्थना है कि वे आपकी देशोपकारी मंगलेच्छा को पूर्ण करें.

मेरा पुत्र युधिष्ठिर जिसके विषय में प्रथम पत्र में स्पष्टता की थी और समक्ष होने पर तथा चार मास की परीक्षा में आशा है उद्देश्य पूर्ति योग्य सत्पात्र माना जावेगा. आश्रम की सेवा में उपस्थित होने को उद्यत है कृपया आज्ञा प्रदान करियेगा. कि मैं छुट्टी की व्यवस्था करूं और इसे लेकर सेवा में उपस्थित होऊं

मान्यवर ! मुझे पश्चात्ताप है कि मैं आर्य्यसमाज की सेवा के योग्य नहीं बन सका और ऐसा न हो कि मेरा एक मात्र बच्चा भी इस महत्वाकांक्षा से वंचित रह जावे. आशा है मेरे पश्चात्ताप का नाश का ही साहस श्रीमान् करेंगे और इसे बुलाने की आज्ञा प्रदान करेंगे.

और एक ८ वर्षीय दूसरे अनाथ बालक के लिये भी मैंने विनय किया था आज्ञा प्रदान हो वह यद्यपि केवल वर्णमाला और अंक जानता है तथापि युधिष्ठिर की सहायता से उन्नति दिखा सकेगा. और होनहार निकलेगा.

डेढ़ वर्ष प्रथम मेरे पास में रह चुका है अब इन्दौर में है उसकी माता ने वैशाख में जब मैं उज्जैन गया था मुझे कहा था. इति

विनीत—गोरीलाल आचार्य्य
हि. प्र. अ. ए. व्ही. स्कूल
महेश्वर
होलकर स्टेट.

(३)

ओ३म्

महेश्वर

२७-७-२१

सेवा में:—

श्रीमन्महामान्य. संचालक जी म०

विरजानन्द आश्रम हरदुआगंज.

नमस्ते.

आपकी सेवा में प्रथम विनय ता. ६-६-२१ को अर्पण की थी तो ता. २२-६-२१ को आश्रम की नियमावलि मुझे प्राप्त हुई और द्वितीय विनय ता. २३-६-२१ को सेवार्पण की १ मास से उत्तर की प्रतीक्षा करता हूं.

मान्यवर ! मेरे ब्रह्मचारी युधिष्ठिर का समय व्यर्थ नष्ट हो रहा है. कृपया मुझे शीघ्र ही स्वीकृति प्रदान करियेगा. कि मैं इसको लेकर श्रीमान् की सेवा में उपस्थित करूं नियमानुसार ४ मास का भोजनादि व्यय देऊंगा अनंतर भी १०० रु० वार्षिक से आश्रम की सेवा करते रहने की इच्छा रखता हूं.[1]

द्वितीय दीन ब्रह्मचारी को भी आश्रम में आश्रय देने की स्वीकृति प्रदान करिये.

(४)

ओ३म्

विरजानन्द आश्रम

२६-४-७८

श्रीमान् महाशय जी

नमस्ते । पत्र आप के प्राप्त हुये । यद्यपि आप के पत्र के सम्बन्ध में सर्वसम्मति कठिन सी प्रतीत होती है । परन्तु तो भी परीक्षणार्थ आप उसे ला सकते हैं जैसा कि नियमों में है ही । परीक्षण में उत्तीर्ण तथा सर्वसम्मति होने पर वह प्रविष्ट हो सकेगा । आश्विन मास के अन्त में आश्रम का उत्सव होगा सो आप बालक को परीक्षणार्थ शीघ्र ला लकते हैं जिस से उत्सव तक पर्याप्त परीक्षण हो जायगा ।।

अनाथ बालक को भी साथ ला सकते हैं परन्तु यदि वह पात्र सिद्ध न हुआ तो वापस ले जाना होगा ।

भवदीय

ब्रह्मदत्त जिज्ञासु व० प्रबन्धकर्ता विरजानन्द आश्रम

---

१. इस विषय में इसी परिशिष्ट में संख्या ७ पर छपा 'विरजानन्द आश्रम में दिये गये रुपयों का ब्यौरा' देखें ।

(५)

ओ३म्

महेश्वर
भा. कृ. ६ सं. ७८

श्री मन्महामान्यवर जी. महाशय
विरजानन्द ब्रह्मचर्याश्रम.

नमस्ते.

आप का कृपापत्र २९-४-७८ प्राप्त हुआ मैं आपका आभार मानता हूं कि आपने बालकों को आश्रम में आश्रय देने की स्वीकृति दी आगे परमात्मा की कृपा से पात्र सिद्धि भी होवेगी. आशा है १० दिन में श्रीमान् की चरण सेवा में इन बालकों को उपस्थित कर सकूंगा. दर्शन पाकर मैं कृतार्थ होऊंगा.

देरी के अपेक्षणीय कारण हैं छुट्टी स्वीकृति मिलना. इन्दोर से उक्त अनाथ को लेना अजमेर समीपस्थ मांगलियावास मेरे जन्मस्थान पर बालक को कुटुम्ब से मिलाना.

विनीत
गौरीलाल आचार्य्य.

(६)

(प्रार्थना-पत्र)

सेवा में:—

श्रीयत्परममान्यवर ; प्रवंधकर्त्ता जी महाशय
विरजानन्द-ब्रह्मचर्य्याश्रम
पुल काली नदी- हरदुआगञ्ज.

नमस्ते.

प्रार्थी हूं कि मैंने विरजानन्द ब्रह्मचर्याश्रम की नियमावली को अवलोकन करके अपने पुत्र ब्र० युधिष्ठिर को, जिसकी जन्मतिथि भाद्रपद शुक्ल ८ बुधवार सम्वत् १९६६ वि० (२२-९-०९) है; और हिन्दी अपर प्रायमरी (प्रमाणपत्र साथ में है) उत्तीर्ण है; आश्रम की सेवा में समर्पण किया है.

आशा करता हूं कि इस बालक पर दया करके इसे आश्रम की ब्रह्मचारी-मंडली में प्रविष्ट करके मुझ सेवक को अनुगृहीत करियेगा.

आश्रम की आज्ञाओं को पालन करने में मैं सर्वदा उद्यत रहूंगा.

विनम्रः—

गौरीलाल आचार्य्य.

हिन्दी प्रथमाध्यापक-ए० व्ही० स्कूल

महेश्वर (होलकर राज्य)

निवासी:—बिड़गच्यावास

स्टेशन—मांगलियावास (पो०)

जिला—अजमेर.

(७)

[विरजानन्द आश्रम में दिये गये रुपयों का व्योरा]

ओ३म्

श्री विरजानन्द ब्रह्मचर्याश्रम की सेवा में दिया हुआ नीचे लिखे प्रकार याद आता है. आज ता० १०-१०-२३

५०) युधिष्ठिर को परीक्षण में ४ मास के लिये रखा था तब (हरदुआगंज में) भोजनार्थं ४०) कंबलार्थं १०) ४-६-२१

२५) भेजे जनवरी १६२२ में |
२५) भेजे अप्रैल १६२२ में | अमृतसर को
२५) भेजे जुलाई १६२२ में |

१२५)

अक्टोबर १६२२ में मैं उत्सव में गया तब से श्रीमान् प्रबन्धकर्त्ता जी ने लेने की आवश्यकता नहीं समझी थी.

असली पत्रादि विड़कच्यावास में रह गये.

गौरीलाल आचार्य्य

चतुर्थ परिशिष्ट

स्थानान्तरण सम्बन्धी आदेश पत्र आदि

(१)

Education Department, Indore

Order

No. 7798 Dt. 26/7/1926

To.

The Headmaster

A. V. School Maheshwar.

Sir,

An application has been received from maheshwar in which statement is made that Mr. Gaurilal, Teacher in the A. V. School Maheshwar always tries to foment quarrels between the Hindus and the Mohomedans. He also advises those who are the bearers of the Tajiyas not to bear them and also punishes those Hindu boys who turn Fakirs during the Taziya.

Festival. It has been also intimated by the Inspector General of police to this office that during the last Taziya Festival he had advised the Kahars not to be the bearers of the Taziyas and that some of these Kahars and others have made a statement to this office before the Magistrate at Maheshwar. Such conduct is likely to strain the relations that (?)the Hindus and the Mohomedans and might lead to some trouble at Maheshwar and Mr. Gaurilal is therefore transferred to Khargone A. V. School under Director of Schools Education's Order

No. A. 25 dated the 26th of July 1926. He should also be warned that in case he persisted in such behaviour severe steps will have to be taken against him.

Mr. Ramchandra Ramnarayan Assistant mandleshwar is transferred to your School in place of Mr. Gaurilal. Please relieve him at once without waiting for the reliever and report. (sd. illegible)

Head Inspector of Schools. Holkar State. Indore.
Dt. 26/ 26/7/26

Copy of the original English Order is given Mr. Gaurilal Acharya according to his application of 29-7-26.

D. R. maheshwarker
Head master
A. V. School. Maheshwar
29-7-26.

[साथ में इस आदेश पत्र का हिन्दी अनुवाद भी दिया गया था। उसे हम पूर्व पृष्ठ ६६ पर छाप चुके हैं।]

(२)

श्री.

नं० ३५० २६-७-२६

रा. रा. गोरीलाल आचार्य
ह. मास्टर ए. व्ही. स्कूल महेश्वर

न. वि. वि.—श्रीमान् हेड् इन्स्पेक्टर साहब शिक्षा विभाग इन्दौर के हु. नं. ७७६८/२६-७-२६ के अनुसार तुम्हारी बदली खरगोन ए. व्ही. स्कूल में की गई है। अतः अपने काम का चार्ज ता० २६-७-२६ को शाला के अन्तिम समय में रा. रायसिंग जी को देकर चार्ज रिपोर्ट पेश करो. श्रीमान् हेड् इन्स्पेक्टर साहब के हु. नं. ७७६८ का हिंदी अनुवाद तुम्हें बदली का कारण सूचित करने वास्ते साथ दिया जाता है इति.

Mr. Gaurilal Acharya
join his duty at Khargone on
7th Aug. 1926

D, R. Maheshwarkar
Hd. Master
A. V School
Maheshwar

(३)

Copy of Letter No. 2873 of 22nd Sept. 1926 from the D. S. E. Holkar State Indore to the Head Inspector of Schools Holkar State Indore.

With reference to your Eng. No. 1038/18 Aug. forwarding coppy of Mr. Gaurilal Raghunath Acharya's letter Dated the 29th Jul. 1926 asking for copies of letters sent by the Maheshwar Magistrate regarding him. I have the honour to request you to inform him that the Magistrate has brought no charge against him and it is quite unnecessary for Mr. Acharya to take any action in the matter. His transfer to Khargone is not understood as a punishment but is ordered for departmental convenience.

Office of the Head
Inspector of Schools Indore

No. 561/13-I-27 25th Sept. 1926

Copy forwarded to the Head Master A. V. School Khargone for information to Mr. Gaurilal Acharya in ref. to his application forwarded to this office through Hd. Master A. V. School Maheshwar.

Sd/. D. M. Godshay
Insp. of Schools
Southern Circle Holkar State
Indore.

No. 166 of 21-2-27

Forwarded to Mr. Gaurilal Raghunath Acharya for information.

(Sd. illegibl)
21/2/27
Head Master
A. V. School. Khargon

(४)

No 5516 of 1928
Dated 1st. Nov. 1928

From—

The Director
School Education
Holkar—State, Indore.

To

The Head Master
D. S. A. High School
Khargone

Dated, Indore, The 1st November 1928.

Sir,

I have the honour to inform you that under this office order No. A 72 Dated 31st October 1928, Mr. Gaurilal Acharya, Assistant teacher has been transferred to Peeplya in Jirapur Pargana as Head Master and to request you kindly to releive him at once and inform this office. He should take charge of the Head Master's work at Peeplya from Mr. Balbhadra Jagannath.

I have the honour to be
Sir,
Your most obedient servant
(sd. illegible)
Director School Education
for Holkar State, Indore
1-11-1928

No. 51 Dated 5-11-28

Given to Mr. G. R. Acharya for information and guidance.

True—Copy
(sd. illegible)

(sd. illegible)
5/4/28
Head Master
D. S. A. High Schoo

(५)

(आदेश-पत्र)

नंबर ५२/५-११-२८ श्री ऑर्डर

रा. रा. हेडमास्तर सा.

देवी श्री अहिल्याबाई हाय स्कूल | की तरफ से
खरगोण |

पं. गौरीलाल रघुनाथ आचार्य |
सहायक पाठक हायस्कूल | की तरफ
खरगोण

ता. ५-११-१९२८ ईसवी.

कृ. सा. नमस्कार वि. वि. श्रीमान् डायरेक्टर सा० के पत्र नं. ५५१६ ता० १-११-२९२८ के आने परसे आपको यह हुक्म दिया जाता है कि आपका तबादला श्री डायरेक्टर सा० के आफिस से आर्डर नं. ७२ ता० ३१-१०-२८ के अनुसार, जीरापुर परगने के पीपल्या स्कूल में हेड मास्तर की जगह पर हुआ है. इसलिये आप अपने यहां के काम का कुल चार्ज पं. रामचन्द्र शंकर प्रसाद चतुर्वेदी को समझाकर शीघ्र ही पीपल्या के हेड मास्तर पं. बलभद्र जगन्नाथ से वहां का चार्ज ले लेवें और आफिस को इतल्ला करें आपने इस साल में १ एक दिन की किरकोल छुट्टी उपभोग की है. फक्त ता० ५-११-२८

भवदीय
Sham
5-11-28
Head Master
D. S. A. High School
Khargone

नोट—आज आप स्कूल में न होने से यह हुक्म आपके मकान पर भेजा जाता है. इसके मिलने बाबद पावनियें भेजें।

(६)

श्री नंबर ६४

ता० ७-११-१९२८

रा. रा. हेड मास्तर साहब

देवी श्री अहिल्या वाई हाय स्कूल } के तरफ से
खरगोण }

रा. रा. पंडित गौरीलाल जी रघुनाथ आचार्य }
असिस्टंट टीचर. डी. एस. ए. हाय- } के तरफ
स्कूल खरगोण

कृ. सा. नमस्कार. वि. वि. श्रीमान् डायरेक्टर साहब के हुक्म नं. ५५१६ ता० १-११-१९२८ के अनुसार आपको इस पाठशाला से आज ता० ७-११-१९२८ के दिन स्कूल समय के पश्चात् कार्य से मुक्त किया जाता है आप शीघ्र ही पीपल्या (जीरापुर परगना) जाकर वहां के हेड मास्तर, पं. बलभद्र जगन्नाथ से स्कूल का चार्ज लेकर हेड आफीस को रिपोर्ट करें आपने चालू साल (१९२८-२९) में फक्त ३ दिन की किरकोल रक्षा उपभोग की है. इत्यलम्.

भवदीय

Sham

7-11-28

हेड मास्तर.

डी. एस. ए. हाय स्कूल खरगोण।

[पिताजी के हाथ का लेख]

हाईस्कूल खरगोण में चार्ज दिया ७-११-२८

लो. प्रा० पीपलिया में चार्ज लिया २२-११-२८

(७)

।। ओ३म् ।।

आवश्यकीय निवेदन

श्री. पं. गौरीलाल जी आचार्य अध्यापक महारानी देवी श्री अहिल्याबाई हायस्कूल का तबादला होने से आज शाम के ८ बजे हजारी मन्दिर में जनता तरफ से उनका सम्मान किया जायगा। अत एव आप मित्रमंडली सहित पधारियेगा।

निवेदक

ओंकारलाल गुप्त खरगोन।

(८)

अमृतसर
१-१-३०

सेवा में:—

श्रीमान् मान्यवर इन्स्पेक्टर साहब
शिक्षणविभाग—उत्तरीय डिवीजन
इन्दोर

सादर नमस्ते।

विनय है कि मैं २३-२-३० तक हक की छुट्टी पर हूं. और ता: १-२-३० को मैं इन्दोर पहुंचूंगा। तब तक मैं आशा करता हूं कि मेरी बदली की निम्न विनय पर कृपया यथोचित विचार किया जा करके स्थान निश्चित हो जावेगा।

महोदय जी ! मैं जिला अजमेर का निवासी हूं । एक सतत २०॥ वर्ष दूरस्थ और उष्ण नीमाड़ जिले में सेवा करते हुए, जब मैंने इन्दोर की बदली के लिये प्रार्थनाएं कीं तो परिणाम में ऐसा ही दूरस्थ (परगना जीरापुर में) पीपलिया दिया गया, जहां से घर जाके आने के मार्ग में १ सप्ताह चाहिये यहां भी १। वर्ष हो गया।

मेरी अभिलाषा को श्रीमान् जी की सेवा में अर्पण करता हूं कि मुझे यदि इन्दोर में नहीं बदला जाय तो कृपया सावेर, गोतमपुरा, पेटलावद, स्टे. पीपलिया आदि अजमेर की रेलवे के आस-पास कोई स्कूल में मुझे बदल दिया जाय। अन्ततः में नन्दवाई को स्वीकृत कर सकूंगा।

श्रीमान् जी से मैं आशा करता हूं कि दूरातिदूर रखे जाने पर विचार करके, मेरी सर्विस के इस अंतिम भाग में, मुझे कोई सुविधाजनक स्थान प्रदान किया जायगा। वि. वि.

अनुगृहीत—गौरीलाल आचार्य
हेड मास्टर-पीपलिया
(जीरापुर)
छुट्टी में पता—बिड़कचियावास
पोस्ट—मांगलियावास
जिला—अजमेर

(६)

इन्दोर
ता० १६-२-३०

अपील

सेवा में:—

श्रीमान् माननीय डाइरेक्टर साहब-शिक्षणविभाग
होलकर राज्य-इंदोर

द्वारा:—

श्रीमान् इन्स्पेक्टर साहिब-शिक्षण विभाग
उत्तरी सर्कल-इन्दोर

महोदय जी ! क्योंकि मैंने अपनी बदली कराने के निमित्त एक प्रार्थना ता० १-१-३० को श्रीमान् इन्स्पेक्टर साहब की सेवा में भेजी थी, और आशा है वह श्रीमान् जी की सेवा में उपस्थित हुई होगी। मुझे उसके विषय में अभी तक कोई उत्तर नहीं मिला।

हाई स्कूल खरगोण से पीपलिया की लो. प्रा. स्कूल में मुझे अनायास बदला गया था, इसका कोई कारण होना सम्भव है !! मैने श्रीमान् जी की आज्ञा का १५ मास से वहां पर शांति पूर्वक पालन किया है, मैं समझता हूं अब उस शांति की अवधि शेष नहीं रही।

इन ३ वर्षों में मेरे कार्य के विषय में अथवा ग्राम और शाला के प्रत्येक मास्टर वा विद्यार्थी के प्रति मेरे उचित वर्तावों के विषय में यदि मेरा प्रमाद अथवा अप्रेम की कोई शिकायत मेरी जान में नहीं जान पड़ती है। यदि श्रीमान् को भ्रम हुआ हो तो वड़ी दया होती कि उसका मुझ से निवारण कराते। मेरे इन ३ वर्षों के परीक्षा-परिणामों का माध्यम निकालियेगा, और श्रीमान् हेड मास्टर साहब हाई स्कूल खरगोण से और श्री इन्स्पेक्टर साहबों तथा ग्रामनिवासियों से मेरे लिये (यदि हो तो) दूषित विचारों को हटाने का मैं प्रार्थी हूं किन्तु हर हालत में वह मुझ पर प्रकट किया जाय। मैं तो विश्वास करता हूं कि मेरे विषय में कार्य और वर्तावों के लिये श्रीमान् के विचार शुद्ध और अमिश्रित ही होंगे।

कृपा करके मेरी बदली पूर्वोक्त प्रार्थना के अनुसार की जाय वरन् बढ़कर सुयोग्य स्थान का योग प्रदान किया जाय ताकि मुझे मेरे २२ वर्ष के ज्ञान की उन्नति में गत वर्षानुसार हानि न सहनी पड़े। और मैं आज तक के समान अपने कार्य-सेवा का परिचय देता रहूं।

आशा करता हूं कि प्रार्थी की इच्छा पूर्ण शीघ्र ही की जायगी और योग्य काल तक वास्तविक उत्तर प्रदान करके मुझे अनुगृहीत किया जायगा।

गौरीलाल आचार्य (छुट्टी में) हेडमास्टर पीपलिया।

(१०)

नकल नं. ६८

ता० ५-६-३०

सेवा में:—

श्रीमान् माननीय डायरेक्टर साहब-शिक्षण विभाग

होलकर राज्य—इन्दोर

द्वारा:—

श्रीमान् मा० इन्स्पेक्टर साहिब—शिक्षण विभाग

उत्तरी डिवीजन—इन्दोर

सादर नमस्ते !

महोदय जी ! सेवक ने अपनी ग्रेड प्रमोशन और बदलियों के विषय में, कुछ काल से स्वामी की ओर से समाधान कारक वर्ताव नहीं होते देखकर, ता. १६-२-३० की प्रार्थना में विनय की थी, कि यदि श्रीमान् जी को मेरे व्यक्तित्व में कोई भ्रम उत्पन्न हुआ हो, वा उत्पन्न करा दिया गया हो तो निर्णय करके उसे निवारण करने का श्रम फर्माया जाय आदि... किन्तु विपरीत इसके आज्ञा नं. ए. १८/१२-४-३० के अनुसार नन्दवाई ही को मेरी बदली कर देना उसी की विशेष पुष्टि करता है।

ऐसी दशा में श्रीमान् जी की सेवा में विनय करता हूं कि यदि सेवक से कोई अपराध बन गया हो तो कृपा करके उसे मुझे प्रकट किया जाय। जिस से मैं उस दोष को दूर कर ही अपने आत्म—क्लेश और अपनी सर्विस में होती हुई हानियों से मुक्ति पाऊं।

आशा करता हूं कि सेवक को उचित उत्तर प्रदान होगा। और उसके लिये भी सदा की भांति मैं अपने को श्रीमान् जी का कृतज्ञ मानूंगा।

गौरीलाल आचार्य

हेड मास्टर—नन्दवाई

(११)

श्री

नंबर ५९२८ तारीख २७ माहे ६ सन १९३०

रा० रा० इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्स
उत्तर विभाग इन्दौर | ह्यांजकडून.

रा० रा० हेड मास्टर साहेब
पाठशाला नंदबाई | ह्यांजकडेस.

विनंती विशेष

आपकी रि. नं. ९८ ता. ५.६.३० की आपके बदली बाबत.

अब हम इस मामले में अधिक कार्रवाई बढ़ाना नहीं चाहते हैं. आपकी बदली आपकी इच्छानुसार की गई है.

(हस्ताक्षर अस्पष्ट)
इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्स
उत्तर विभाग इन्दौर

२४.६

प्राप्ति ता. ४-७ ३०
गो.

नं. १२० ता. ४-७-३०

इस हुक्म भी नकल आफिस में रख कर के असल हुक्म गोरीलाल आचार्य हेड मास्टर नन्दबाई को दिया गया है।

गोरीलाल आचार्य
हेडमास्टर—नन्दबाई

(१२)

॥ श्री ॥

नंबर २२
तारीख ३०।११।३५

शिक्षा विभाग इन्दौर.

हेड पाठक म. प्रा. पाठशाला नन्दबाई से

मेहरबान इन्स्पेक्टर साहब, शिक्षा विभाग
उत्तरीय डिवीजन इन्दौर } की सेवा में.

पिछले कारवाई का नंबर

सा० न० वि०—क्योंकि मुझको अपने पुत्र के विवाह-सम्बन्ध करने के लिये प्रयत्न करने को फिरना आवश्यक होगा और पचपन साला समाप्ति ४-७-३६ से ३ मास पूर्व अपने स्थान पर उपस्थित होना भी आवश्यक है। अनन्तर इसके वर्षाकाल में फिरना हो नहीं सक्ता। इसलिये मेरी प्रार्थना है कि साथ में सेवार्पण किये हुए ३ फार्मों के अनुसार ता. १७ जनवरी सन् १९३६ से ३१ मार्च १९३६ तक २ मास १५ दिन की हक की छुट्टी देना कृपा करके स्वीकार फर्माया जाय।

वार्षिक परीक्षा की तिथियें मेरे सम्मुख अभी निश्चित नहीं हैं संभवतः उक्त तारीख तक हो भी जाय। इसका विचार श्रीमान् ही करियेगा। वि. वि.

गौरीलाल आचार्य
हेड मास्टर
नन्दवाई

१ रजा मांगने वाले का पूरा नाम	गौरीलाल रघुनाथ आचार्य
२ ओहदा या दर्जा	हेडमास्टर
३ मेहकमा या दफ्तर	अपर प्राइमरी पाठशाला नन्दवाई
४ पचपन साल होने की ता०	४ जुलाई सन् १९३६
५ (अ) रजा का प्रकार और मुद्दत	हक की, २ मास १५ दिन
(ब) किस तारीख से (दुपहर पहले या दुपहर बाद	१७ जनवरी १९३६ दुपहर पहले से
स० किस तारीख तक (दुपहर के पहले या दुपहर बाद	३१ मार्च १९३६ दुपहर बाद तक
६ पेश्तर रजा ली उसकी तपसील	किस ता. से किस ता. तक सा. म. दिन
हक की.	१-४-३४ ३१-५-३४ १
बीमारी	
फर्लो.	

नन्दवाई
३०-११-३५

गौरीलाल रघुनाथ आचार्य.
हेड मास्टर
नन्दवाई

पञ्चम परिशिष्ट

पूर्व प्रकरणों में संकेतित पत्र

(१)

ओ३म्

कार्य्यालय आर्य्यप्रतिनिधि सभा, राजस्थान व मालवा.

संख्या ८९९ अजमेर, ता० ७ मई १९२७

श्रीमान् म० गौरीलाल जी,

खरगौन.

श्रीमन्नमस्ते

आप का कृपा पत्र बहुत दिन हुए आया था. कार्य्यवशात् मैं उसका समय पर उत्तर न दे सका था, क्षमा करें। मैं अब आप से पूछना चाहता हूं कि आप के सम्बन्ध में स्थिति क्या है. स्टेट की ओर से यह जो आपको लिखा आया था कि आपकी बदली आप का कोई अपराध मानकर नहीं किन्तु शिक्षाविभाग की आवश्यकता को समझ कर की गई है इन शब्दों को आप अपने लिये कैसे समझते हैं तथा सभा आप की किस प्रकार की सेवा व सहायता करे। कृपया यह सब स्पष्ट रूप से लिख कर कृतार्थ करें, वैसे आप जैसे उत्साही सज्जन का महेश्वर से चला आना महेश्वर-समाज के लिये अच्छा नहीं हुआ. हां खरगौन समाज की रौनक बढ़ गई है और आप को भी कार्य्य करने का अच्छा क्षेत्र मिल गया है क्योंकि खरगौन में पहले ही समाज का कार्य्य अच्छा हो रहा है। वैसे आर्य्य पुरुष ऐसे कष्टों को बड़े धैर्य्य से सहना किया करते हैं, आशा है कि आप भी आर्य्योचित दृढता से अपना धर्म्म का कार्य्य करते जायेंगे. सत्य की अवश्य जय होती है। आप का आर्य्यकुटुम्ब सहायकसभा का प्रस्ताव बहुत उत्तम है, परन्तु क्या ही उत्तम हो कि आप इसे स्वयं सभा के अधिवेशन में पधारकर उपस्थित करें, अधिवेशन के स्थानादि की सूचना निश्चय होने पर आप को दी जायगी. सभा को आपके हरेक कष्ट में पूरी सहानुभूति है और वह यथाशक्ति उन कष्टों को हटाने को उद्यत है।

विनीत—सुरजकरण

मंत्री. शारदा

(२)

ओ३म्

आर्यसमाज–खरगोण
नं. ६५ ता. २५-१०-२८

सेवा में:—

श्रीमान् मान्यवर मंत्री जी आर्य प्रतिनिधि सभा
राजस्थान—अजमेर

सादर नमस्ते ।

कदाचित् मार्च में आप की सेवा में पत्र दिया था कि जिसमें स्पष्ट लिखा था कि 'इस समाज में फूट पड़ चुकी है किंतु हम भी प्रयत्नशील हैं' निश्चय २।३ साल ऐसा ही चला, श्रीमान् प्रधान मूलचन्दसिंह जी और हमारा प्रयत्न कार्य करते रहने की ओर रहा, निदान भ्रम निकल गया जिनने बहकावट में सब को विरुद्ध कर दिया उन की कलई निकल चुकी सत्यता और सत्य के भक्तों पर से भ्रम का आवरण हट गया। जून के आरम्भ में श्री रघुवीर सिंह जी जब मैं छुट्टियों में इन्दोर में था खरगोण में आये उनका प्रचार बिगड़े दिल के सभासद् लोग न करा सके, उलटा वही भाव भरा कि प्रधान और मंत्री स्वार्थी हैं दूसरे लोगों के लिये अपना स्थान रिक्त नहीं करते। जून के अन्त में साधारण सभा एकत्र करके इधर से त्यागपत्र दिये गये जब उन्हें काम करने वाले न मिले तो अपने हृदयों के फफोले फोड़ कर अंत में प्रकाश में आ गये। क्रमशः प्रेम और संगठन से साथ देने लगे व्याख्याताओं और भजनीकों के आने पर उनके प्रचार हुये उपाकर्म भुजरिया हरितावली अहिल्योत्सव विजय दशमी डोलग्यारस आदि मेलों पर प्रचारादि के कार्य और पर्वोत्सव समारोह के साथ किये। जिला डि. मैजिस्ट्रेट सा. की आज्ञा से श्रद्धानन्दोत्सव का नगर कीर्तन बंद किया गया था, किन्तु तत्पश्चात् आज तक विना आज्ञा के ६।७ जलूस निकाले जा चुके हैं। श्री छत्रसिंह जी का डोलग्यारस पर गिरफ्तार होना भी विशेष जागृति का लक्षण हुआ। आज खरगोन नगर के वैश्य समूह और पुरे के क्षत्रिय समुदाय में २ वर्ष की सेवा का प्रभाव संगठन के रूप में प्रारम्भ हो चुका है। परमात्मा ने यदि ऐसा ही कार्यक्रम चलाया तो आपका यह आर्यसमाज २ वर्ष में सर्वजनता की सम्पत्ति बन जायेगा जिसके अंकुर प्रकट आ गये हैं युक्तिपूर्वक सिंचन की आवश्यकता तो अवश्य रहती जायेगी।

नोट—पत्र के आरम्भ में कोने पर 'केवल स्मरणार्थ, डो० ओ'० लिखा है।

श्रीमान् प्रधान मूलचन्दसिंह जी अत्यंत विनयी और वीर योद्धा हैं। श्रीमान् छत्रसिंह जी की भक्ति सराहनीय है, प्रधान जी से आगे बढ़कर कार्य करने वाले हैं जनता के प्रेम को आकर्षित करने की शक्ति इनको प्राप्त है। इन दोनों का कर्तव्य आर्यसमाज खरगौन के पालन का प्रधान कारण बन रहा है। इन्हीं के कारण कार्यकर्ता सभासदों में ही नहीं, बरन् सारे नगर और पुरे में आर्यसमाज के उदार कार्य व्याप्त हो रहे हैं। मुसलमान भाइयों के प्रयत्नों से इन लोगों पर और प्रह्लाद सिंह जो स. पर मुकद्दमे एक २ दो २ चल ही रहे हैं। सत्य की जय सदा होती है। विजय दशमी पर्वोत्सव पर ४ दिन तक खेलों और भजनों से सेवा की दशहरा पुरे के क्षत्रिय वीरों का एक संगठन से ठाठ के साथ बाजे गाजे सहित निकला ओ३म् के झंडों का मान भी इनोंने किया कि इसी के साथ सब क्षत्री वीर थे। एक अखाड़ा आर्यसमाज के साथ काम करते २ प्रेम पूर्वक समाज में सम्मिलित हो गया सेवा समिति भी मिलके ही कार्य कर रही है वैश्यों के युवक, समाज के साथी हितचिंतक बन रहे हैं मुसलमानों ने कुछ न कुछ मूर्त्ति मस्जिद टूटना, मार पीट के अवसर ढूंढना, मुकद्दमेबाजी आदि की नोक चोक जागी रखी है किंतु भयभीत भी हैं समाज के सिद्धान्तों को वे भ्रम रूप से देखते हैं जहां तहां समाज की बुराई की बातें चलाना उनका काम रहता है। पुलीस ऐसे समय में छेद करती है कि कैसे बलवा हो और दबाकर के बहादुरी के बिल्ले प्राप्त करें किंतु डोलग्यारस पर सब से तीव्र आर्यवीर छत्रसिंह को बार बार छेड़कर भी पुलिस के बड़े आफिसर ने शांति ही देखी, सफलता के बदले जनता में बदनामी प्राप्त की मुकद्दमा चल रहा है। आदि

इस समय समाज यथावत् अग्रसर हो रही है नगर में माली जाति में कल आर्य समाज का सूत्रपात हुआ खेल उपदेश हुए २००० उपस्थिति थी कई दिनों से वर्तमान परिस्थिति सेवा में अर्पण करता हूं।

आपका—गोरीलाल आचार्य

[इस पत्र के साथ भेजा गया खरगोन की विशेष परिस्थिति का बोधक अंश हम पूर्व पृष्ठ ७५-७६ पर अविकल रूप से छाप चुके हैं। अतः यहां नहीं दे रहे हैं। यु० मी०]

(३)

ओ३म्

आर्यसमाज खरगोन
ता० ५-११-२८
नं० ६७

सेवा में:–

मेरे परम श्रद्धेय और उद्धारक श्रीमान् सूरजकरण जी शारदा, महोदय जी
मंत्री–श्रीमती आर्यप्रतिनिधिसभा राजस्थान, अजमेर

सादर नमस्ते।

मैं इस पत्र के साथ साथ आप की गोद को कि जिसमें पोषण पाकर आज सेवकों की नीची श्रेणी में गिना जाने लगा हूं, त्याग रहा हूं। विवश त्याग रहा हूं इसलिये केवल इतना ही खेद है कि मेरे जीवन का आत्म संतोष,सेवा का सुविस्तृत आंगण मेरे हाथ से निकल गया। महेश्वर से खरगोन मेरी बदली होने पर मैं मानता हूं कि आप की छत्र छाया में यहां के श्रीमान् प्रधान जी मूलचंद्र सिंह जी आदि, सर्व सभासद समुदाय ने मेरा ठीक मानवी जीवन बनाने में भरसक ही नहीं बरन् अनथक परिश्रम किया जिसके लिये मैं आप और इन सर्व का हृदय से कृतज्ञ हूं।

पुलिस के डिस्ट्रिक्ट सुपरटेंडेंट महाशय जो एक चौबे नाम से अभिमानित, पुराने अनुभवी, मेरे मीठे मित्र, (मैं भी ठीक मीठा ही हूं) आर्य समाज के कार्यों को श्रवण से अधिक प्रयत्नों द्वारा उन्नत करने वाले और अभी तक बहादुरी के बिल्ले प्राप्त करने की लालसा से न भगने वाले मेरा धन्यवाद लेने के पात्र हैं। महेश्वर में भी झूठी विकट परिस्थिति बनाई और यहां भी! किंतु मुझे खेद है कि उनकी इच्छानुसार (बलवा न होने से)बलवा दवाने का अवसर ईश्वर ने नहीं दिया!! शांत आर्यसमाज को भां [......]कर समझने वाले न ही यहां से मेरी बदली कराने का प्रयत्न पुलिस इन्स्पेक्टर जनरल द्वारा किया। श्रीमान् मूलचंद सिंह जी और छत्रसिंह जी आदि पर मुकद्दमे चिपकाने का श्रद्धानंद जलूस रोकने आदि का टीका आप ही के मस्तक पर है।

खरगोन से इंदोर, उज्जेन होते हुए, भोपाल से कुछ इधर, शुजालपुर स्टेशन से, ५२ मील मोटर, ७ मील गाड़ी से चलकर इतना सामान ढोते हुए (जीरापुर परगने के छोटे ग्राम) पीपलिया स्कूल में पहुंचने की मुझे आशा श्रीमान् डायरेक्टर सा० से प्राप्त हुई है इन भावहीनों की नीति छोटे नगर महेश्वर से बड़े नगर खरगोन में बदलने पर असफल रही थी, अब देखता हूं कि इन्दोर आदि से अति दूर, गांबड़े ग्राम

मैं, जिसके आस पास २५;२५ कोसों तक समाज रहित कोरा कट मैदान हो वह नीति बांझ वन के छूटेगी इस बार कार्यवाही कानफीडेंशल रखी गई है केवल सीधे सादे हुक्म के रूप में बदली की गई है। यदि मैं चला गया तो:—किंतु मैंने इन्कार लिख दिया है इसका परिणाम जो होगा देख रहा हूं। कृपा कर मेरा एक ध्यान रखिये कि मैं निर्विकल्प हूं चिंता न कीजियेगा। मेरे परम मित्र श्रीमान् उवाना जी से मेरी प्रार्थना कहिये कि प्रतिनिधि सभा में, खरगोन आर्यसमाज के अधिकारों पर दृष्टि रखते हुये मुझे ऋणी वनाये रखें।

गोरीलाल आचार्य
पूर्व मंत्री आर्यसमाज-खरगोण

महेश्वर मन्दिर के मुकद्दमे[1] और आर्य कुटुम्व सहायक भंडार की अधूरी सेवायें उचित कालों में करने के लिये मैं कटिबद्ध रहूंगा। गो.

(४)

ओ३म्

छांवनीं इन्दोर
१७-११-२८

सेवा में

श्रीमान् माननीय मंत्री जी महोदय
श्रीमती आर्यप्रतिनिधिसभा राजस्थान

सादर नमस्ते।

मैं यहां पर कसरावद महेश्वर सनावद होता हुआ ता. १० को पहुंचा। मेरी बदली की कार्यवाही कान्फीडेंशल है किंतु जहां तक ज्ञात हो सका यह है कि पुलीस के इन्सपेक्टर जनरल साहब ने श्री प्रायममिनिस्टर महोदय को लिखा कि "गोरीलाल की बदली मैंने ही खरगोन करवाई थी पर वह जगह महत्व की होने से अच्छी न रही। डोलग्यारस की गड़बड़ में इनका भी अंग था इसलिये बहुत एकांत में इन्हें बदल दिया जाना चाहिये। श्रीमान् प्रा. मि. म. ने श्री डायरेक्टर सा. को लिखा कि गोरीलाल को जीरापुर परगने में बदलो इन्होंने ये कागजात श्रीमान् जनरल मिनिस्टर सा. को ले जाके बताये निश्चय हुआ कि पीपलिया में बदलो। जीरापुर परगना एकल्ला ही दूर है उस में ५।६ छोटी मोटी स्कूलें हैं। रतलाम से मथुरा जाते पचपहाड़

---

१ आर्यसमाज मन्दिर महेश्वर से सम्बद्ध जो पत्र मिले हैं उन्हें हम आगे षष्ठ परिशिष्ट के 'ग' भाग में दे रहे हैं।

स्टेशन से दक्षिण २२ कोस गाड़ी मार्ग है इधर भोपाल रेल में शुजालपुर स्टेशन ३०। ३२ कोस मोटर और गाड़ी मिल के है शुजालपुर और ब्यावरा २० कोस दो समाजें बताई जाती हैं।

अतएव जब श्री प्रा. मि. सा. की आज्ञा है तो वह परिवर्तित न होने से सर्व की सम्मति से वहां ता. १८ को प्रस्थान करूंगा।

ता. ७ को हाईस्कूल में ता. ८ को नागरिक जनता ने सम्मान पूर्वक इत्रपान व्याख्यान किये थे सम्मान करने की सूचनार्थ एक प्रस्ताव श्री डायरेक्टर सा. की सेवा में भेजा है। श्री हेडमास्टर सा. मास्टर मंडल, विद्यार्थी वृंद जनता शिक्षा विभाग सर्व को मैं प्रसन्न रख सका। पुलीस को नहीं रख सका।

महोदय जी ! मैं नहीं यह महर्षि की कीर्ति और सत्यता ही हम सरीखे जन्तुओं को सम्मान दिलाती है। पीछे भी कार्य चलेगा आप चिंता न कीजियेगा।

श्रीमान् प्रायम् मिनिस्टर महोदय ने आज १७ को १ बजे मिलने को श्री छत्र सिंह जी आर्य वीर को खरगोन से बुला लिया है देखें क्या होता है।

महेश्वर के आर्यसमाज भवन के मुकद्दमे की तारीख ७।१२।२८ केबिनेट से लगी है मुझे आज सूचना प्राप्त हो चुकी है क्या आप श्रीमान् पं. परमानन्द जो महाराज के वचनानुसार श्रीमान् मा. गौरीशङ्कर जी बैरिस्टर सा. को ता. ५ दिसम्बर को १० बजे इन्दोर में भेजने की व्यवस्था कर सक्ते हैं ? और लिखने की आवश्यकता नहीं है, श्री बैरिस्टर साहब का भवन विषय में पधारना प्रत्येक अन्य विचारों से भी इस स्टेट में प्रभावोत्पादक हो जायगा मार्ग व्यय भवन सभा देवेगी। इस विषय में आवश्यक कागजात मेरे पास में हैं मैं समझाऊंगा। यथासंभव मुझे शीघ्र उत्तर वा उचित समझिये तो डेपुटेशन भेजिये मैं ता. ४,५ को इन्दोर आ जाउंगा। पीपलिया से मैं ता. १ शनि को इन्दोर के लिये निकल जाऊंगा, पीपलिया पोस्ट मांचलपुर (हालकर स्टेट) से ५ कोस दूर है एक पत्र मंत्री जी आ. स. इन्दोर को भी दे रखेंगे तो मुझे ज्ञात हो जावेगा।

श्रीमान् प्रायम् मिनिस्टर सा. ने श्री छत्रसिंह जी से पूछा कि डोलग्यारस के गड़बड़ के विषय में तुम्हारी शिकायत है इन्होंने कहा कि हमने शिकायत का काम ही नहीं किया पर पुलीस बनावटी काम करती है, हमें ही आई. जी. ने गालियें तक दीं हमने सहन किया आदि उस दिन की बातें कहीं। उन्होंने कहा कि तुम सरकारी नौकर हो पवलिक कामों में भाग मत लेओ हम जुबानी समझाते हैं तुम्हारा मुकद्दमा चल रहा है वहां से क्या होता है आगे फेर देखेंगे। श्री हरकिशन जी बैरिस्टर भी इन्दोर में हैं पत्र देके स्वीकार करावें।

आपका गौरीलाल आचार्य
स्कूल मास्टर ग्राम पीपलिया
पोस्ट मांचलपुर होलकर राज्य

(५)

ओ३म्

पीपलिया
३०-६-३०

सेवा में:—

श्रीमान् पं. गौरीलाल जी आचार्य, हेड मास्टर
साहिब नन्दवाई
सादर सप्रेम नमस्ते।

आपका लेटर मिला पढ़कर चित्त को अतिप्रसन्नता हुई। यहां पर जगदीश्वर की कृपा से अमन चैन है। आपके पत्र के लिखे मुताबिक ही कार्य चल रहा है। मैंने इस काम में मुख्य नारायण कुंवर जी साहेब को बनाया है। ईश्वर की कृपा हुई तो सब काम सफल होगा मेरे समझाने में मैंने कोई कसर नहीं रक्खी है। आशा है कार्य पूर्ण होगा।

आगे हाल यह है कि ता. ···को मोहर्रम का झगड़ा हो गया। गये साल इन लोगों से मुसलमानों ने २५) रुपये ले लिये थे. सो इस साल भी लोभ था। इस वास्ते झूठ मूठ ही कह दिया कि औरतें मेड़ियों पर से पत्थर व कंकड़ फेंक रही हैं। इस पर मुसलमान ताजियों को रास्तों में छोड़कर माचलपुर पोलिस में गये वहां से रात को नौ बजे के करीब पुलिस आई। इस बीच में मुझसे गांव के लोगों ने पूछा कि क्या करें कुछ देकर अलग करें। इस पर मैंने इनकार दिया था सो लोगों ने मान लिया और जैसा रास्ता बताया उसी तरह से चले। आखिर नतीजा कुछ भी नहीं हुआ हिन्दुओं की विजय हुई।

दूसरे दिन सवेरे फिर मुझे पूछा कि हम सब मुसलमानों की अर्ज देवें अर्ज लिखी गई कि या तो इस गांव में मुसलमान रहें या हम ही रहें! बाद में विचार आया कि अर्ज देने से मुकद्दमा चलेगा काश्तकारों के खेती का समय है। अतएव अर्जी रोक दी गई।

तीसरे दिन सुबह पूछा कि क्या किया जाय तो मैंने राय दी कि सत्याग्रह किया जाय। अभी तक सत्याग्रह जारी है। मुसलमानों से बोलना व लेन देन सब बन्द है गांव में कोई भी एक पैसे तक सौदा नहीं देते हैं। यहां तक कुओं नहाना तक बन्द कर दिया जो गापरी तक बकरी चराते थे वे भी छोड़ दी गई यहां तक कस्टम्प

इन्सपेक्टर साहेब की माचलपुर से बकरियां चराने को आईं । यहां पर चराने से इनकार दिया । बहुत कोशिश की परन्तु कुछ भी दाल नहीं गली ।

अब अनकरीब ही समझौता होने वाला है क्योंकि बहुत से मुसलमान मजूरी करनेवाले हैं सो इनकी मजूरी बन्द होने से भूखे मरने की नौबत आ गई सो अब नारायन कुंवर व पटेलों के हाथ जोड़ रहे हैं की हमारा गुनाह माफ किया जाय ।

इस समय पाठशाला में जगदाधार की कृपा से ५२ विद्यार्थी हैं और ५ विद्यार्थियों की अर्ज पड़ी है । शीघ्र ही दूसरा पाठक आनेवाला है । आने वाले महाशय जी रापुर के हैं । पत्र दें । मेरे लिये कार्य लिखें ।

आपका नम्र.
भागीरथ उपाध्याय

महाशय जी ! हमारे घर से सब का तथा रामप्रताप जी, गल्लाबाई उज्जैन वाले का और पीपल्ये ही से किशन हीराजी ब्राह्मण का सादर नमस्ते स्वीकार हो ।

आप का. व. श. पी.

षष्ठ परिशिष्ट

मन्त्री आर्यप्रतिनिधिसभा, राजस्थान व मालवा को लिखे गये पत्र

(क)

आर्य समाज महेश्वर खरगोन और पीपलिया से सम्बद्ध पत्र

(१)

ओ३म्

महेश्वर
२१-१०-२५
फा० शु० ४ सं. १०१

श्रीमान् महामान्य,

सादर नमस्ते

मेरी विनय है कि नीमाड़ के लिये एक भजनोपदेशक प्रतिसमय आवश्यक है, उनके वेतनार्थ रुपये उनके आने से ही प्राप्त हो सकेंगे। यदि नीमाड़ वेतन न चला सकेगा तो आप अपने उपदेशक को पीछा बुला लेवेंगे. एक सप्ताह हुआ मैंने श्रीमान् रामसहाय जी को लिखा था उन्होंने सेवा में निवेदन किया होवेगा. परन्तु कल से यहां आर्यसमाज मन्दिर बनवाने का कार्य प्रारम्भ हो गया है. पूंजी में ।॥ ≡) थे. आज १००) प्राप्त हुये हैं और ४० रु० सामग्री की साई दी गई है. ८ दिन की छुट्टी मुझे [का०] सुदी १५ से महाराजाधिराज के जन्मदिवसोत्सव की होवेगी उन दिनों मैं २।३ सज्जन द्रव्यसंग्रहार्थ निकलेंगे। ऐसे अवसर पर और पश्चात् भी हमको भ० उप० की सहाय की आवश्यकता है। प्रभो! कृपा करके यदि और उपदेशक न मिले तो श्रीमान् छोगालाल जी को ही छः मास के लिये तो भेज दीजियेगा। और इसकी सूचना श्रीमान् पं. दीनदयाल जी रेंजर साहब सनावद को कीजियेगा। छोगालाल जी प्रथमतः (पूनम से पहले) महेश्वर ही आवें, मैंने श्रीमान् मन्त्री जी की सेवा में अजमेर में खूब प्रार्थना कर ली थी, वे कोई भ० उ० के तलाश में हैं. द्रव्य बड़े श्रम से प्राप्त होवेगा. परमात्मा करें यह मन्दिर पूर्ण बने. और केन्द्र महेश्वर से नीमाड़ को लाभ होगा, कसरावद से व्यास जी परसों पधारेंगे. म्यूनिसिपिल उस भूमि को वापस खींच लेने को बैठी है। यदि कुछ रही हुयी अवधि में कार्य न कर के दिखाया जाय, तो फिर इस मुख्य स्थान पर भूमि मिलना दुर्लभ होगा। कुटुम्ब सहाय करना होगा स्मरणार्थ प्रार्थना है।

गौरीलाल आचार्य

(२)

ओ३म्

महेश्वर
होलकर राज्य
१६-११-२५

पत्र सं० ९

सेवा में:—

श्रीमान् महामान्य मंत्री जी आर्य प्रति० सभा राजस्थान—अजमेर

सादर नमस्ते;

स्वाभाविक है कि हमारा आकर्षण, केन्द्र (आय) की ओर है जैसे उत्तर में बीकानेर,शेखावाटी सीमांत प्रान्त है उसी प्रकार(चाहे निर्धन की निर्बुद्धि)नीमाड़ प्रांत भी आप का दक्षिणी सीमांत परिधि पर है इस को सुदृढ़ करना होगा. भगवन् एक क्षुद्र सेवक की यह प्रार्थना है.

१—यहां की आवश्यकता देख कर मैंने एक विस्तृत निवेदन पत्र इसके संग सेवार्पण किया है श्रीमान् संपादक महाशय जी को देकर कहियेगा कि आगामि प्रथम अंक में प्रकाशित कर मुझे आभारी बनावेंगे. आगे विस्तृत का मौका न आने दूंगा इस से तो कार्य लेना है.

२—यह डेढ़ कालम का लेख ऐसे आकार में छापा जाय कि उसी आकार में उसी जोड़े हुये टाइप से ५०० वा १००० प्रति हलके चटकीले कागजों पर अलग छाप-कर व्ही. पी. द्वारा मुझे भिजवाइयेगा इस में टाइप जोड़ने का व्यय हमें नहीं लगेगा. थोड़े खर्च में काम चलाना हमारा अभीष्ट है.

उक्त कार्य होने से और भजनोपदेशक के साथ होने से यहां के आर्यसमाज मंदिर के लिये द्रव्य मिल सकेगा, महेश्वर में नहीं मिलेगा परंतु ग्रामों से लाना होगा जहां कृषिकार लोग इन्ही दिनों में दुमाल होते भी कपासी की उत्पन्न में से दे सकेंगे. दो चार सज्जन बाहर जावेंगे. मैं इक दो ग्रामों में गया था छोगालाल जी महोदय को याद भी करते हैं वि, वि.

विनीत—गौरीलाल आचार्य
सेवक आर्यसमाज

नोट—उक्त कार्य न हो सके तो उत्तर प्रदान करियेगा और भजनोपदेशक छः मास के लिये तो नीमाड़ को अनुभव के लिये दीजियेगा. वे पहले महेश्वर पधारें और श्रीमान् पं. दीनदयालु जी रेंजर साहब सनावद को वेतनादि के लिये सूचना कर दीजियेगा. ईश्वर करे सदा के लिये प्रबंध हो जावेगा. गौ.

(३)

नकल डायरी

भजनोपदेशक—सुखबासीलाल शर्मा

नीमाड़

ता. २५ से २६—७—२६

मैं आज ता. २५ को प्रारम्भ में महेश्वर आकर पं. गौरीलाल आचार्य के गृह पर निवास किया बाजा ढोलक और ढोलकिये का प्रबंध करके इन्हीं के गृह पर धर्म प्रचार किया. उपस्थिति श्रोता ५० से ८० तक रहती रही श्रोताओं ने उपदेश को अपनाया जिसका प्रभाव होना अपने शब्दों में प्रगट करते थे.

ता. ३०—७—२६

श्रीमान् छोटेलाल जी सभासद के गृह पर धर्म प्रचार किया गया उपस्थित श्रोता १५० की संख्या में थे.

ता. ३१—७—२६

प्रातः—श्रीमान् महोदय सरदार रामसिंह जी सेटिलमेंट असिस्टेंट आफिसर साहब ने श्रीमान् महोदय पं. शिवचरनलाल जी तहसीलदार साहब की बदली के समय के उपलक्ष्य में विदाई का इत्रपान किया जिसमें श्रीमान् म० मजिस्ट्रेट साहिब तथा श्रीमान् म० बहिवटदार साहब से लेकर सर्कारी कर्मचारी व शिक्षित गण और नग्र के मान्य प्रतिष्ठित गणउपस्थित होते हुए श्रोता संख्या ७०० तक थी. जिसमें श्रीमान् सर्दार साहब ने मुझे बुलवा करके प्रचार करवाया. वैदिक धर्म की सत्यता दृढ़ता और लोकसेवा श्रोता गण के हृदय में स्थान पाती थी.

रात्रि को वहीं श्री पं० छोटेलाल जी के गृह पर धर्म प्रचार हुआ श्रोता संख्या २०० थी.

नकलकर्त्ता
गौरीलाल आचार्य
५-८—२६

(४)

प्रमाण-पत्र

आर्यसमाज महेश्वर

श्रीमान् पंडित सुखबासीलाल जी शर्मा भजनोपदेशक को नीमाड़ में वैदिक धर्म प्रचार के लिये हम योग्य समझते हैं इस लिये पंडित जी को चाहिये कि कृपा करके धर्म प्रचार चालू रखें, आप का गंभीर आलाप के साथ सुरीला गायन, बाजा बजाने की क्रिया भजनों का उत्तमता से क्रम बांधना और उत्साहित वाक्यों में टीका करना यह एक ऐसा संयोग है कि हमारा सौभाग्य है.

पंडित जी नेत्रांध होकर धन्यवाद के पात्र हैं कि वे आर्यसमाज जैसी तपस्वी संस्था में धर्मोपदेशक का विकट कार्य बड़ी शांतता और धैर्यता से कर रहे हैं.

सही–कस्तूरचंद जी की
मंत्री.

सही–नत्थूप्रसाद जी की
प्रधान.

सही गीरीलाल आचार्य
सेवक.

नोट—ता. २५ से ३१–७–२६ तक पंडित जी का कार्य देखकर[1] प्रमाणपत्र दिया है.
गोरीलाल आचार्य

(५)

ओ३म्

आर्यसमाज खरगोण
८–८–२६

सेवा में:—

श्रीमान् मान्यबर मंत्री जी महोदय
आर्यप्रतिनिधिसभा–राजस्थान मालवा

सादर नमस्ते

नीमाड़ में प्रचार करने के लिये श्रीमान् पं. सुखबासीलाल जी शर्मा सुत श्याम

---

१. कार्य विवरण पूर्व संख्या ३ पर दिया है।

लाल जी निवास स्थान गोरमी भजनोपदेशक को बुलवाया है और उन्होंने महेश्वर आर्यसमाज का एक प्रमाणपत्र[1] लेकर कार्य प्रारम्भ महेश्वर परगने में कर दिया है १ दस्ता कागज की कापी में आवश्यकीय २ बातें लिखने के लिये उन्हें हिदायत कर दी है. २ मास प्रचार करने पर वेतनादि ठहरा कर उन्हें निश्चित रूप से रखना स्वीकार किया जावेगा. श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा से प्रमाण पत्र फार्म डायरी आदि देने के लिये प्रार्थना की जावेगी. डायरी की नकल पाक्षिक ले २ कर आर्यसमाज खरगोन से भेजने का प्रबंध निश्चित हुआ है।

ओंकारसिंह मंत्री
आर्य्यसमाज खरगोन.

(६)

ओ३म्

२७–२–२४

श्रीयुत मंत्री जी

सादर नमस्ते

खरगोन में आर्य्यसमाज स्थापित होने के समाचार अन्यत्र आर्य्यमार्तंड द्वारा विदीत होंगे.अतः सभासद होने के फार्म पचास ५० निम्न लिखित पते पर भेजिये इति.

भवदीय
ओकारसिंह मंत्री
आर्य्यसमाज खरगोन
जिल्हा नेमाड़ रिआसत
इन्दौर

---

१. यह प्रमाणपत्र पूर्व संख्या ४ पर देखें।

(७)

आवश्यक पत्र

ओ३म्

आर्यसमाज खरगोण
होलकर राज्य
५-११-२७

सेवा में:—

श्रीमान् मान्यवर मंत्री जी महोदय
श्रीमती आर्यप्रतिनिधिसभा
राजस्थान—अजमेर

सा. नमस्ते.

ईश्वर की कृपा से श्रीमान् मान्यनीय सेठ बालकृष्ण गणपति जी महोदय के लघुभ्राता जी के शुभ विवाह संस्कार मार्गशीर्ष शुक्ल ८ सं. १९८४ को निश्चित हुआ है आप खरगोण में एक सुयोग्य सर्वोपरि मान्य धनी पुरुष हैं आपने इस शुभ अवसर पर वेश्यानृत्य के परिवर्तन में विद्वान् मंडल द्वारा धर्म प्रचार की जो योजना सोची है वह उनकी वैश्य जाति तथा नग्र के लिये अकथनीय प्रशंसित और लाभदायक रहेगी यहां की जनता व आर्यसमाज के लिये यह पहला ही अवसर है कि ऐसे २ भजनोपदेशक पधार कर हमें कृतार्थ करें इसलिये यहां की आर्यसमाज श्रीमान् सेठ जी के धार्मिक उत्साह को देखकर सविनय प्रार्थना करती है कि इस शुभ लाभ में प्रचार के लिये श्रीमान् पूज्यपाद स्वामी लक्ष्मणानन्द जी सरस्वती श्रीमान् पं. परमानन्द जी श्रीमान् पं. प्रकाशचन्द्र जी को मार्गशीर्ष शुक्ल १ सं. १९८४ तक यहां भेजने की व्यवस्था शीघ्र कर रखियेगा. ताकि आपको श्रीमान् सेठ जी महोदय की ओर से तार द्वारा निमंत्रण और मार्गव्यय अर्पण करते ही उक्त विद्वान् पधारने की कृपा करें यहां पर लगभग आठ दिन प्रचार कार्य होता रहेगा श्रीमान् पं. श्रीपाद दामोदर जी सातवलेकर औंध का उत्तर आज आया कि 'अवकाश नहीं है' श्रीमान् पं. माखनलाल जी चतुर्वेद को खंडवा से एवम् हरिकथा करने वाले पंडित विद्वानों को भी निमंत्रित किया है आप भी विद्वानों को भेजकर कृतार्थ कीजियेगा. अतः इस पत्र का उत्तर लौटती डाक से दीजियेगा. श्री पं. प्रकाशचन्द जी का आना अनिवार्य हो. समाज की व्याख्यान वेदी का पृथक् स्थानों में प्रबंध होगा. क्योंकि अभी भ्रम और ग्लानि निकले नहीं हैं.

विनीत

गौरीलाल आचार्य, मंत्री आर्य समाज, खरगोण, होलकर राज्य।

व्यय का अनुमान से हिसाब पृथक् कागद में साथ भेजियेगा. गौ.

(८)

१२।११।२७

गौरीलाल आचार्य
मंत्री आर्य समाज
खरगोण
होलकर राज्य

श्रीमन्नमस्ते.

आपका कृपापत्र सं. ६६ ता. ५।११।२७ का प्राप्त हुआ उत्तर में निवेदन है कि सेठ जी के भ्राता का विवाह नोट कर लिया है और समय पर यथोचित प्रबन्ध कर दिया जावेगा और जहां तक बनेगा यह प्रबन्ध आपकी इच्छानुसार ही होगा. आपने ३ मनुष्यों के लिये लिखा है भजनोपदेशक जी के साथ ढोलकिया भी होगा ६०) के लगभग तो रेल का आने जाने का भाड़ा लग जावेगा मोटर का आपको मालूम होगा. १००) के लगभग मार्गव्यय समझ लीजिये और ऐसे शुभ प्रसंग और सेठ जी की स्थिति और धर्म्म प्रेम को देखते हुये एक पुष्कल धनराशि वेद प्रचारार्थ मिलने की भी आशा की जाती है.

आशा है कि आप इसमें विशेष प्रयत्न करेंगे यदि इसमें आपको विशेष सफलता की आशा दीखती हो तो शीघ्र लिखिये जिससे हम सेठ जी की पूरी सहायता कर सकें.

मेरे योग्य सेवा.

(६)

१८।११।२७

गौरीलाल आचार्य
खरगोण

आप का तार आया आपने प्रकाशचन्द्र को अभी फौरन भेजने को लिखा है सो यह असम्भव है प्रकाशचन्द्र व पं. परमानन्द जी शेखावाटी की ओर गये हैं और २४,२५ नवम्बर तक वापिस आवेंगे आपने पहले पत्र में यह लिखा था कि मंगसर शुदी १ तक उपदेशक व भजनीक भेजना सो हमने उसी प्रकार प्रोग्राम बनाया है और उनको आपके यहां २६ नवम्बर तक पहुंचने को कह दिया है सो ज्ञात रहे, आपके यहां विवाह संस्कार का कार्य्य खतम होते ही उन्हें इन्दौर के लिये रवाना कर देना क्योंकि फिर उनका प्रोग्राम उधर का है.

(१०)

आवश्यक

ओ३म्

आ. स. खरगोण
१८-११-२७

सेवा में

श्रीमान् मान्यनीय मंत्री जी महोदय.
आ. प्र. सभा राजस्थान

सादर नमस्ते.

आपका पत्र प्राप्त होने पर कल तार आप की सेवा में अर्पण किया है. इसलिये मार्ग. बदि ११ से बिवाह मंडप में विवाह कृत्य संबंधी कार्यारम्भ हो जायेगा और बैठकें आरंभ हो जावेंगी. हरिदास (हरिकथा वाले) आजकल में आने वाले हैं अतः श्रीमान् पं. प्रकाशचन्द्र जी को भी यथाशक्य शीघ्र भेजने की कृपा करियेगा चाहे लग्न तिथि सुदी ८ से पहले ही इनको छोड़ देवेंगे. लग्न तिथि के पश्चात् (यहां) कोई महत्व नहीं रहता है. साथ में ढोलकिया भी भेजियेगा.

मेरे स्वभावानुसार मैं किसी की बड़ाई और चापलूसी बढ़ाके नहीं लिखता परंतु व्यर्थ मुझ से लोगों ने पहले पत्र में बढ़ा के लिखवा दिया कोई चिन्ता नहीं परंतु आप को अनदुधारू गाय नीमाड़ की सेवा करना ही है. प्रतिनिधि को घाटा नहीं रहने देवेंगे कृपा करके अवश्य आप पं. प्रकाशचन्द्र जी को शीघ्रतम भिजवाइयेगा. श्रीमान् पं. परमानन्द जी और पूज्य लक्ष्मणानन्द जी महाराज का बुलाना रहित हो गया क्योंकि दूसरे हरिदास भी बुलाये हैं. आर्यसमाज का प्रभाव तो यहां मैं जानता हूं. इस वर्ष प्रारम्भ हुआ ही है. लोग भयभीत होते हैं. ईश्वरकृपा से भय के स्थान को प्रेम जीत लेगा. अवश्य ही सातवलेकर जी को बुलवाया था इसलिये कि राजकर्मचारी दक्षिणी लोग भी जो पूर्ण उपेक्षित हैं आकर सम्मिलित होवेंगे. पं. माखनलाल जी नहीं बुलाये जायेंगे. उचित प्रचार तो हमारे एक मात्र स्तम्भ पं. प्रकाशचन्द्र जी के कन्धे पर रह गया है.

मार्गव्यय के रुपये अग्रिम नहीं भेजे हैं वह शीघ्रता कारण से:—इस विषय में मैं जिम्मेदार हूं मुझे भी चिन्ता है कि गत वर्ष ५०) प्रतिनिधिसेवा में भेजे थे इस वर्ष यहां प्रचार अधिक चलाने से नहीं भेजे हैं. प्रतिनिधि की सेवा ऐसे विवाह में भी हो जावे तो काम चले. शीघ्र भेजने की कृपा करियेगा. खंडवा समीप होने से वहां से भजनोपदेशक का प्रबंध शीघ्र हो सक्ता है पर श्रीमती सभा का प्रचार हम चाहते हैं आदि.

भवदीय—गौरीलाल आचार्य

(११)

गौरीलाल आचार्य
खरगोण

आपके पत्र आये वृत्त ज्ञात हुआ आपके लेखानुसार ही श्री प्रकाशचन्द्र को आज की गाड़ी से रवाना कर दिया है आशा है कि वह निश्चय समय पर पहुंच जावेंगे. विशेष सेवा से सूचित करें.

(१२)

ओ३म्

आर्यसमाज खरगोण
ता० ७–१२–२७

सेवा में:—

श्रीमान् मान्यनीय मंत्री जी महोदय, आर्यप्रतिनिधिसभा राजस्थान, अजमेर सादर नमस्ते ।

आप की आज्ञानुसार श्रीमान् पं. प्रकाशचन्द्र जी महोदय भजनोपदेशक ने पधार कर के तारीख २६–११–२७ से १–१२–२७ तक प्रेमपूर्वक, सोत्साह और अथक श्रम से वैदिक धर्म का प्रचार किया । श्रोताजन उपस्थिति ७०० से १५०० तक रहती रही । आप के उपदेशामृत ने जैसा हम चाहते थे उस से बढ़कर लोगों में आर्यसमाज के प्रति श्रद्धा उत्पन्न कर दी । हम कृतज्ञता प्रगट करते हैं पंडित जी ने ता० ३-१२-२७ को यहां से प्रस्थान किया है ।

श्री पं० प्रकाशचन्द्र जी के साथ में १७६) रु० आप की सेवा में अर्पण किये हैं कृपया निम्न प्रकार जमा करके पावती प्रदान कीजियेगा ।

श्री पं० प्रकाशचन्द्र जी द्वारा मार्गव्यय मध्ये

४०) आर्यसमाज खरगोन से

श्रीयुत सेठ बालकृष्ण जी से प्राप्त वेद प्रचार मध्ये

१३६) आर्यसमाज खरगोण से

६१) श्रीयुत सेठ बालकृष्ण जी से प्राप्त

७५) चन्दे द्वारा प्राप्त

---

१७६) एक सौ छहत्तर रुपये मात्र.

आपका—गौरीलाल आचार्य
मंत्री—आर्यसमाज

खरगोण

(१३)

ओ३म्

आर्यसमाज खरगोण
सं. ९८ ता. १४-१२-२७

सेवा में—
श्रीमान् मान्यवर मन्त्रीजी महोदय
आर्यप्रतिनिधिसभा राजस्थान अजमेर.

सादर नमस्ते.

विनय है कि खरगोण में नवग्रह का मेला प्रतिवर्ष १ मास के लिये भरता है। जिसका प्रारंभ हो गया है। उसमें प्रचार का प्रबन्ध करने की इच्छा है। अतः आप श्रीमान् पं. परमानन्द जी महोदय और पं. प्रकाशचन्द्र जी महोदय भजनोपदेशक को ता. २४-१२-२७ से १० दिन प्रचार करने के लिये खरगोण को भेजियेगा. इस प्रचार में इन्हीं महाशय की आवश्यकता है इसलिये औरों को भेजने का प्रोग्राम न देवें। आप तार द्वारा हमें सूचना दीजिये ताकि पिंडाल बनाना प्रारंभ कर देवें। पंडाल के लिये बड़ी आशा से मेले के भीतर बड़ा स्थान ले लिया है अतः आप इन्हें भेजने की निश्चय कृपा करियेगा. तार खर्च के लिये ।।।) के टिकट साथ में रखे हैं शीघ्र उत्तर दीजियेगा।

गौरीलाल आचार्य
मंत्री आर्यसमाज
खरगोण

(१४)

ओ३म्

ता. ५-१-२८
आर्यसमाज खरगोन से

श्रीमान् संपादक जी आर्यमार्तंड, अजमेर
नमस्ते। कृपया छापियेगा।

शुद्धि

आर्य समाज खरगोन ने ता. ५-१-२८ को श्री दयारामसिंह जी सुत गोविंदसिंह जी को उनकी प्रार्थनानुसार शुद्धि और उपनयन संस्कार कराकर वैदिकधर्म में सम्मिलित किया।

गौरीलाल आचार्य
मंत्री—आर्यसमाज
खरगोण

(१५)

ओ३म्

आर्यसमाज खरगोण
ता. ३०–९–२८

सेवा में:—

श्रीमान् मान्यनीय मंत्री जी महोदय
आर्यप्रतिनिधिसभा–राजस्थान–अजमेर

विनय है कि डोलग्यारस के उत्सव में स्थानीय आर्यसमाज को निमंत्रण पत्र देकर के बुलाया था, आर्यसमाज ने हजारों की संख्या में विस्तृत कार्य शांति और अपनी युक्ति शक्ति से कर्तव्य का पालन किया, निदान पुलीस की डी. आई. जी. ने व्यर्थ ही आर्यवीर छत्रसिंह जी को प्रचार करते गिरफ्तार करके धारा नं. १०७ और १८६ के मुकद्दमे लगाये हैं।

इस संबन्ध के एक प्रस्ताव की प्रति साथ भेजी है दूसरी प्रति जो भेजी है आर्य-मार्तंड के सम्पादक जी महोदय को देकर प्रसिद्धि करने की आयोजना करावेंगे।

गोरीलाल आचार्य
मंत्री आर्यसमाज खरगोण (इंदोर)

(१६)

खरगोन आर्यसमाज
३०–९–२८

प्रस्ताव सं. १ की प्रति:—

ता. २५–९–२८ को खरगोण में डोलग्यारस उत्सव में भजन कहते हुये आर्य-वीर श्रीमान् छत्रसिंह जी को पुलीस के मान्यनीय मि० जोशी डिपुटी इन्सपेक्टर जनरल और मा० मि० चौबे डिस्ट्रिक्ट सुपरिटेंडेंट सा० ने गिरफ्तार किया, और २।३ मुकद्दमे लादे हैं।

आर्यसमाज खरगोण अपने साप्ताहिक अधिवेशन ता. ३०–९–२८ में अपनी शिशु अवस्था को ध्यान में रखता हुआ, मान्यनीय पुलीस आफिसरों के प्रति, रोष दिखाता हुआ वेदना के दो शब्द प्रकट करता है, कि आपके इस असावधानी के कृत्य से एक "नि:स्वार्थ, होनहार, धार्मिक संस्था आर्यसमाज खरगोण" को बड़ा भारी असह्य धक्का लगा है। साथ ही अपनी शिरोमणि आर्यप्रतिनिधि-सभा राजस्थान, और

सार्वदेशिक सभा दिल्ली से प्रार्थी है कि इस असह्य घटना पर ध्यान रखें, किंतु विशेष योजनाओं की अभी आवश्यकता न समझें, जिस दशा में कि स्टेट के न्याय विभाग की न्यायप्रियता पर हम विश्वास रखते हैं।

गौरीलाल आचार्य
मंत्री आर्यसमाज खरगोन (इन्दोर)

(१७)

सेवा में:—

श्रीमान् मान्यवर मंत्री जी आर्यप्रतिनिधिसभा
राजस्थान अजमेर

सादर नमस्ते।

मार्तंड, कर्मवीर, और विश्वमित्र में प्रकाशित होने को तथा एक प्रति श्रीमान् दीवान साहब धार स्टेट की सेवा में उक्त प्रस्ताव की भेजी हैं कदाचित् और भी आर्यसमाजें साथ में उठें वा न उठें, अतएव कृपा करके सभा की ओर से मार्तंड में प्रकाशित कराइये और श्री दीवान साहब को भी पत्रव्यवहार करियेगा, मेरी ऐसी प्रार्थना है। कारण भी है कि हमारा धार से निकट संबन्ध है आप को ध्यान में रखना होगा।

गौरीलाल आचार्य
मंत्री आ. खरगोन

(१८)

ओ३म्

आर्यसमाज खरगोण
नं. ६६ ता. ३-११-२८

सेवा में:—

श्रीमान् मान्यनीय मंत्री जी महोदय
आर्यप्रतिनिधिसभा राजस्थान, अजमेर

सादर नमस्ते।

खरगोण में दिसम्बर के अंत में (जिसकी तारीखें सरकार से निश्चित होने पर सूचनार्पण करूंगा) नवग्रह का मेला १ मास भर रहता है। यह मेला इस राज्य में उच्चश्रेणी का है।

खरगोण आर्यसमाज इस मेले में प्रचार करना निश्चित करता है जिससे यथा-सम्भव जिले में प्रभाव पहुंच सक्ता है। गत वर्ष आपसे भजनोपदेशक की सहायता मांगी थी किंतु नहीं मिलने से चुप रहना पड़ा। इस वर्ष आशा करता हूं कि आप १५ दिन के लिये दो नामांकित भजनीक, और वैसे योग्य १ व्याख्याता सहायता के लिये भेजेंगे। इसकी स्वीकृति यदि आप शीघ्र प्रदान करेंगे तो हम उचित स्थल मेला कमेटी से लेकर अपने हस्तगत कर लेवें।

यदि आप के यहां से योग्य भजनीक नहीं दे सक्ते हैं तो श्री डोरीलाल जी, नत्थासिंह जी, वा सुखलाल जी का पता दीजियेगा। साधारण भजनीकों का कार्य यहां की जनता पर प्रभाव नहीं डाल सक्ता।

कृपा करके उत्तर दीजियेगा। और क्योंकि इधर भजनीकों का अभाव होने वा सभा का केन्द्र दूर होने से व्यय बहुत ही होता है, तो उस समय उनका दौरा नीमाड़ मालवा के लिये निकाल दीजियेगा, किंतु आप के लिखे अनुसार सभा को सहायता पहुंचाने का भरसक प्रयत्न किया जायेगा। आप का यह प्रचार नीमाड़ प्रांतीय आर्य सम्मेलन के रूप में हो जायेगा। अतएव हमारी प्रार्थना स्वीकार करके हमें निराश नहीं कीजियेगा।

गौरीलाल आचार्य
मंत्री आर्यसमाज—खरगोण

(१६)

ओ३म्

पीपलिया
२१-७-२६
पो. मांचलपुर
होलकर राज्य

सेवा में:—

श्रीमान् मान्यनीय मंत्री जी, महोदय
आर्यप्रतिनिधिसभा राजस्थान

सादर नमस्ते।

(१) एक पत्र नं. ७२/१२-४-२६, ७६/११-६-२६ द्वारा आप से प्रार्थना की थी कि आप लाला हरकिशन लाल जी बैरिस्टर को लिखकर महेश्वर आर्यसमाज के मुकद्दमे के कागजात भिजवाइयेगा, आशा है आपने लिखने का कष्ट किया

होगा। मैंने भी जवाबी पत्र दिये थे कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ। कृपया उत्तर दीजियेगा.

(२) आर्यकुटुम्ब सहायक भंडार पर सदस्य वर्ग की सम्मतियें अभी नहीं मिलीं आपने श्री उबाना जी को यह कार्य दिया हो तो मैं उधर पत्रव्यवहार करूं। उत्तर दीजियेगा।

(३) झालरा पाटन और आगर की ओर आने वाले भजनोपदेशक जी को पीपलिया, माचलपुर, जीरापुर का प्रोग्राम दीजियेगा। मैंने इन्दौर में ता. ३-६-२९ को श्री रघुवीर सिंह को समझा दिया था.

गौरीलाल आचार्य

(२०)

ओ३म्

पीपलिया

श्रीमान् जी; झालरा पाटन, खिलचीपुर, व्यावरा, शाहजहांपुर, सारंगपुर, आगर आदि स्थानों में कोई भजनोपदेशक जी का प्रोग्राम हो तो इधर भी माचलपुर, जीरापुर, सोयत, पीपलिया का प्रोग्राम उनको देकर के इधर के इस टुकड़े को उत्थाना चाहिये। इन चारों स्थानों में मैं जबकि उनका प्रचार होगा स्वतः दृष्टि रखूंगा। अगर सोयत के बीज…[1] कस्बे में कभी आर्यसमाज था…………भूमि खरीदी थी। वह………… के लगभग शाहजहांपुर निवासी किसी सज्जन ने निजी कार्य में लिये। सोयत के पास घरोना ग्राम में आर्यसमाज खुलने का अवसर निकट है सुसनेर मैं गया था वहां विलम्ब लगेगा। क्या करूं, कोई कस्बे में मेरी बदली होती। पर तो भी बीजे फेंक रहा हूं। परमात्मा की कृपा से समय पर निष्फल नहीं होवेंगे। पीपलिया ग्राम में मुझे कुछ करना नीति अनुसार है। एक बार भजन उपदेश भेज के कुछ सार निकालना चाहिये।

प्रार्थी—गौरीलाल आचार्य

---

१. जहां जहां……रखे हैं वहां वहां का पाठ कागज के जीर्ण हो जाने से नष्ट हो गया है।

(२१)

ओ३म्

नं.
१०६
६।११।२७

सेवा में:—

श्रीमान् मंत्री जी आर्यप्रतिनिधिसभा अजमेर

सादर नमस्ते

सार्वजनिक कामों में भाग लेने की वजह पंडित गौरीलाल जी आचार्य हिन्दी हेड मास्तर हाय स्कूल का तबादला स्टेट के दूसरे कोने पर जीरापुर परगने के पीपल्या गांव में कर दिया गया है। पंडित जी ने आर्यसमाज के मंत्रित्व का कार्य कितनी संलग्नता और सुचारुरूप से किया वह आपकी उदार दृष्टि के भी प्रत्यक्ष है। आर्यसमाज की सेवा के समय ईश्वर ने उन्हें वन देकर हमें निराश्रित कर दिया है। आपकी जुदाई से हमीं क्या खरगौन की सारी जनता और विद्यार्थी समुदाय भी दुखी हैं। आपके मंत्रित्व कार्य का भार समाज ने मुझ सेवक को उठाने की आज्ञा प्रदान की है लेकिन मैं भी उसी कोटि में गिना जाने वाला पामर पुरुष हूं जिसकी वजह पंडित जी को यह दिन देखना पड़ा है। और यह अतिशयोक्ति न समझा जाय कि देश और धर्म में श्रद्धा रखनेवाले मुझ पामर को भी निरङ्कुश नौकरशाही बागी ठहराकर स्टेट या मातृभूमि से जुदा करने में अपने को अमन रखने का जरिया समझ ले चुंकि एक वक्त हमें भी इसी अभियोग में यहां से बदल दिया गया था और इस समय सस्पिड कर दिया है इस समय पुलिस आर्यसमाज के कार्यकर्ताओं पर जो कुछ भी अत्याचार करले थोड़ा ही है। इस विषय के हालात दूसरे पत्र से ज्ञात हो सकेगें। अस्तु

छत्रसिंह दांगी
मंत्री आर्यसमाज, ख़रगोन

(२२)

ओ३म्

ता० २७-११-२७

सेवा में:-

श्रीमान् मंत्री जी आर्यप्रतिनिधिसभा अजमेर

सादर नमस्ते

मुझे प्राइम मिनिष्टर बापना साहेब ने ता० १७-११-२७ को एक बजे इन्दोर

बुलवाया था। डोलग्यारस के झगड़े के हालात पूछ कर मुझे हिदायत दी गई के, "तुम सरकारी कर्मचारी हो तुमने सार्वजनिक कामों में भाग नहीं लेना चाहिये तुम्हारी पहिले भी पुलिस ने शीकायत की थी जिससे तुम्हें खरगौन से बदल दिया गया था अब फिर और शीकायत का मोका आया है इस समय तुम सस्पिंड हो और तुम पर दो तीन मुकद्दमें पुलिस ने मजिष्ट्रेट कोर्ट में दायर किये हैं उनका फैसला होने पर तुम्हारा विचार किया जावेगा जब तक तुम्हें हम जवानी अगामी समझा देते हैं कि कि तुमने सार्वजनिक कामों में भाग नहिं लेना" ।

आर्यसमाज के कार्यों में भाग लेन की बजह ही मुझे और श्रीमान् ओंकारसिंह जी भूतपूर्व मंत्री आर्यसमाज को यहां से तबदिल कर दिया गया था और इसी अपराध में पं. गोरीलाल जी मंत्री आर्यसमाज को भी यहां से वदल दिया गया है। कारण यह हुआ कि जितने भी सरकारी कर्मचारी आर्यसमाज में श्रद्धा रखते थे वे सब इसी देह-शत से किनारा कर गये हैं।

पुलिस का कोप इस समय आर्यसमाज पर जोरों से है और वे हर एक कार्य-कर्ताओं को जेल की या इसी तरह की अनुचित धमकी देकर तोहिन करते हैं । हर मजहबी मामले में आर्यसमाज के कार्यकर्ताओं की चोकसी और जमानत ली जाती है। इस संस्था के प्रधान श्रीमान् मूलचन्द्रसिंह जी, आर्यवीर प्रह्लादसिंह जी और मुझ पर दो दो हजार की नेक चलनी की जमानत दफा १०७ के मुताबिक लेने के लिये मजिस्ट्रेट तरफ मुकद्दमा भी पुलिस ने दायर किये हैं हर शक्स इज्जतदार और सभ्य गृहस्थ हैं। आज तक ऐसा कोई इलजाम हमारे शिर पर नहीं लगा है जिसकी वजह हम अशान्तता की बुनियाद समझे जावें। हमें यह डिफाल्टर लगाना एक आर्यसमाज का अपमान करना है। इसी तरह हमारे श्रद्धानन्द संकीर्तण आदि जलूस भी रोके जा चुके हैं।

मि. जोशी डेपुटी इन्सपेक्टर जनरल पोलिस ने भी प्रधान जी साहेब को कई अनुचित शब्द कई लोगों में कहे और मुझे भी बागी बतलाया गया। खरगौन से हटाये जाने की और मेरा घर वार निलाम करवाने की मुझे धमकियें दीं, अगर ऐसा ही और इस उमर में कुछ सोचा नहीं गया तो हमें भी अपने प्रचार से कदम हटाना भाग पड़ेगा।

इसलिये सेवा में प्रार्थना है कि, जो हालात इस समय तक आर्यसमाज पर गुजर चुके हैं उनमें से कुछ हालात रोषन किये हैं इस उमर में आप हम दोनों को ही आन्दोलन कर होलकर गव्हंमेंट से प्रार्थना करना चाहिये, नहीं तो आगे आर्यसमाज का कार्य करना हमें मुश्किल हो जावेगा और ताज्जुब नहिं के नवग्रह का मेला प्रचार

भी रोक दिया जावे । इस विषय में आप जो कुछ ठीक समझें हमें अपनी राय से परिचित कीजियेगा और हम किंकर्तव्यविमूढ़ों को रास्ता वतलाइयेगा जिससे आर्यसमाज को ऐसी विपत्तियों का सामना न करना पड़े और उसका कार्य सुचारुरूप से प्रसार करे

विनीत
छत्रसिंह दांगी,
मंत्री आर्यसमाज
खरगोन

(२३)

ओ३म्

१४।१२।२८

सेवा में:—

श्रीमान् मंत्री जी आर्यप्रतिनिधिसभा अजमेर
सविनय नमस्ते ।

नवग्रह की यात्रा खरगौन में एक सप्ताह तक प्रचार करवाना आर्यसमाज ने तय ठहराया है । इस कार्य में हमारी सहायतार्थ दो भजनीक और एक योग्य उपदेशक मिलने के लिये प्रार्थना नंबर १६/३।११।२८, १०८/२७।११।२८ से की गई थीं लेकिन अभी तक भी जिसकी स्वीकृति न आने से फिर सेवा में प्रार्थना करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है । दुःख है कि हमारे किसी पत्र पर भी अभी तक उचित रीति से ध्यान नहीं दिया गया है जिससे कार्यकर्ताओं की बढ़ती हुई उमंगों पर शिथिलता छा जाती है ।

ता० २६।१२।२८ से ता०२५।१।२९ एक माह तक मेले की तिथियां निश्चित हुई हैं । यह मेला नेमाड़ जिले भर में सब से बड़ा भारी भरता है । इसमें प्रचार के लिये ईसाई मिशनरी यहां अभी से आ गई है । हिन्दुओं के धार्मिक स्थान के मेले पर यहां वैदिकधर्म का प्रचार न होना यहां के आर्यसमाज के लिये लज्जाजनक बात थी इस ख्याल से तथा सभ्य हिन्दुओं की प्रेरणा से ही प्रचार की यह व्यवस्था निश्चित की गई है । आर्यसमाज ने शुभ मौका ता० २५।१।२९ से एक सप्ताह तक प्रचार करने का प्रोग्राम निश्चित कर लिया है । पंडाल के लिये जमीन भी शीघ्र ही ली जावेगी और उसके बनवाने का कार्य भी प्रारंभ कर दिया जावेगा ।

हमारे इस कार्य में कोई बाधा न आवे इसलिये हमने दो माह पेश्तर इस कारवाई से आपको सूचित कर देना ठीक समझा लेकिन फिर भी हमने आपकी स्वीकृति

पर विश्वास करते हुये उपरोक्त कार्य कर लेने का साहस कर लिया है। इसलिये पहिले हमारे दो पत्रों की याद दिलाते हुये प्रार्थना करता हूं के

ता० १५।१।२६ से दो सुयोग्य भजनीक व एक उपदेशक एक सप्ताह मेला प्रचार के लिये यहां भेजना स्वीकारियेगा जिससे हम हमारे कार्य में सुचारुरूप से सफलता प्राप्त कर लेवें।

कृपाकर देखते पत्र के स्वीकृतिमय उपदेशकों के नाम के भेजियेगा जिससे हमें हैंडबिल आदि छपवाने में सहूलियत पहुंचेगी। प्रत्युत्तर शीघ्र ही भेजियेगा। इत्यलम्

मूलचन्द्रसिंह
प्रधान आर्यसमाज
खरगोन

(२४)

ओ३म्

२६।८।३०

सेवा में:—

श्रीमान् मंत्रीजी आर्यप्रतिनिधिसभा राजस्थान,
अजमेर।
सादर नमस्ते।

महोदय जी।

गत वर्ष की भांति इस वर्ष भी स्थानीय आर्य्यसमाज ने श्रीदेवी अहिल्योत्सव मनाना निश्चित किया। पुलिस कर्मचारी सदा से वरिष्ठ राज्याधिकारियों का भाव इस आर्य्यसमाज के विरुद्ध करते आये हैं। फलस्वरूप आर्य्यसमाज के प्रचार में दिन प्रतिदिन कड़ाई दी जाती है प्रचार में निर्विघ्नता की सदैव शंका बनी रहती है जो भी हमने इसकी सूचना आजपर्यन्त उच्चाधिकारियों तथा सभा को नहीं दी और विघ्नों का स्वागत करते आ रहे हैं। तो नतीजा यह दृष्टिगोचर हुआ कि यहां के आर्य्यसमाज का भविष्य राजकर्म्मचारियों द्वारा दिनप्रतिदिन विषैला वातावरण तैयार कर रहा है।

स्थानीय आर्य्यसमाज के कार्य्यकर्त्ताओं पर कई मुकद्दमें चलाये गये आर्य्यसमाज सभासद कर्मचारी पुलिस की शीकायत को मद्देनजर समझकर यहां से तब्दील कर दिये गये थे। आर्य्यसमाज के जलसे रोके गये। कार्य्यकर्त्ताओं की दो दो हजार की जमानत ली गई। गवरमेंन्ट द्वारा आर्डिनन्स जारी कर किसी सभा में सरकारी

कर्मचारियों को भाग न लेने की मुनादी की गई जिसका प्रभाव आर्य्यसमाज सभा पर काफी पड़ा। राज कर्मचारी लोग आर्यसमाज सभा से किनारा कर गये।

ये सभी बातें एक से एक ऐसी हैं जिनका सरकारी कर्मचारियों द्वारा अकारण ही किया जाना अन्यायोचित है। हमें उच्च कर्मचारियों से न्याय ही मिलता रहा फलस्वरूप हम उन मुकद्दमों से आज तक वरी होते आये हैं।

आर्य्यसमाज तो क्या उनका एक भी सभासद आज तक राज का अपराधी नहीं बना फिर हर बात के लिये शान्त आर्यसमाज पर उसकी स्वतन्त्रता में बाधक होना अन्याय है।

अहिल्योत्सव के जलसे के समय सिर्फ आर्यसमाज को ही बिना कारण व्यायाम तक के प्रचार में शास्त्रों की मनाई करना और लोग बखुवी अपने हर उत्सवों में ईद-मुहर्रमों में अपने व्यायाम का प्रदर्शन निकाल सकते हैं लेकिन आर्य्यसमाज नहीं यह हमारे प्रति अन्याय नहीं तो क्या है।

स्थानीय कर्मचारियों की मनशा आर्य्यसमाज द्वारा अशान्ति फैलाई जाय और उसके लिये यही सबसे पहिला मौका आया होता जिसमें पुलिस के हुक्म की अमान्यता करने के अपराधी ठहराये जाते।

इसलिये हम श्रीमान् से यह प्रार्थना करते हैं कि आर्य्यसमाज धार्मिक संस्था की परिस्थिती को पूर्णतया ध्यान में रखकर होलकर नरेश से ऐसी प्रार्थना कीजिये जिससे वैदिक धर्मियों के मार्ग में जो कठिनाईयां उच्च कर्मचारियों द्वारा की जाती हैं उनका इस प्रार्थना पत्र के साथ ही निराकरण हो जाय।

अतः श्रीमंत महाराजा श्री० यशवन्तराव होलकर नरेश इन्दौर से सभा तरफ से प्रार्थना कर शान्ति स्थापित कराई जाय यह आपसे सविनय प्रार्थना है।

प्रार्थी

कालूराम
प्रधान आर्यसमाज खरगोण.

छत्रसिंह दांगी
मंत्री, आर्य्यसमाज खरगोण

(२५)

ओ३म्

ता० २९-८-३०
खरगौन

सेवा में:—

श्रीमान् प्राईम मिनिष्टर साहेब होलकर स्टेट इन्दौर

महोदय जी,

सादर नमस्ते ।

स्थानीय आर्य्य समाज खरगोन ने गत वर्ष की भांती इस वर्ष भी देवी श्री अहिल्या मातेश्वरी के प्रति श्रद्धाञ्जलि समर्पित करने के उद्देश्य से उत्सव की तैयारी की थी किंतु खेद है कि इस राजभक्ति पूर्ण पवित्र कार्य में भी स्थानीय अधिकारी महानुभावों ने अपनी अनुचित तथा अप्रासङ्गिक आज्ञायें देकर हम लोगों को मर्माहत किया है।

हमारा उद्देश्य सर्वदा से देशी राज्यों के प्रति आदरणीय रहा है और रहेगा। हम लोग अपने प्रजाप्रिय श्रीमंत महाराजा साहेब के प्रति उस प्रेमपूर्ण भावों का प्रचार जनता में करते आये हैं कि, जो शास्त्रसम्मत तथा एक उन्नतिशील प्रजा के वास्ते उत्तम माना जाता है।

हमें अहिल्योत्सव के दिन स्थानीय पुलिस द्वारा यह कैसी सूचना मिली (जिसकी नकल इसके साथ है।) कि इस पुनीत अवसर में माता अहिल्या के डोल के सामने व्यायाम का प्रदर्शन इस वर्ष न कर सकेंगे जबकि अन्य धर्मावलम्बी लोग ऐसे शुभ अवसर पर व्यायाम प्रदर्शन करते हैं किंतु खेद है कि, हम बिना किसी कारण के अपने इस अधिकार से वञ्चित कर दिये गये।

स्थानीय अधिकारी वर्ग ने यह आर्य्यसमाज को अकारण ही बदनाम करने का एक विलक्षण तथा निन्दनीय तरीका निकाला है कि गांव में किसी भी सम्प्रदाय की कोई चहल-पहल हो तो बस वह आर्य्यसमाज ही करता है। फिर चाहे वह भली हो चाहे बुरी हो और समाज के सिद्धान्तों के अनुकूल हो चाहे प्रतिकूल हो।

यह निर्विवाद सिद्ध है कि आर्य्यसमाज एक धार्मिक संस्था है इसके सिद्धान्त किसी के लिये भी घातक नहीं हैं। ऐसी दशा में स्थानीय अधिकारियों द्वारा इसके लिये अनुचित कार्यवाही करना किसी भी दशा में उचित नहीं माना जा सकता।

मैं इस पत्र द्वारा श्रीमान् को यह सूचित कर देना अपना कर्तव्य समझता हूं कि उपरोक्त पंक्तियों की सत्य की ओर यदि श्रीमान् जी दृष्टिपात करेंगे तो श्रीमान् यह जान सकेंगे स्थानीय आर्य्यसमाज आज पर्यन्त कभी भी राजद्रोही तथा समाज विघातक बातों का पक्षपाती नहीं रहा है। समाज को अपनी सत्यता पर सर्वदा अभिमान रहा है यद्यपि जुम्मेदार अधिकारी लोगों ने इस पर कई बार अनुचित आक्रमण किये किन्तु "सत्यमेव जयते नानृतम्" सिद्धान्त के अनुसार सर्वदा इसी की अन्त में विजय हुई मुझे आशा है कि इस संस्था के उद्देश्य तथा कर्तव्यों की ओर ध्यान देते हुए श्रीमान् वह व्यवस्था करने की कृपा करेंगे जिससे की भविष्य में यह किसी प्रकार सताई न जा सके। दुनिया में निरपराधियों को अकारण सताना और असंतुष्ट लोगों की संख्या वृद्धि करना कभी भी उत्तम नहीं माना गया है। रामायण के इस सिद्धान्त के अनुसार "अतिशय रगर करे जो कोई। अनल प्रगट चन्दन से होई"॥ गरीबों को सताना बुरा होता है आशा है श्रीमान् इन पंक्तियों पर न्याय दृष्टि से विचार करेंगे।

विनीत

छत्रसिंह दांगी, सैक्रेटरी आर्य्यसमाज खरगोन

सही नकल

छत्रसिंह दांगी मंत्री

(ख)

आर्य-कुटुम्ब-सहायक द्रव्यनिधि[1]

(१)

पीपलिया पो० मोचलेपुर
होलकर राज्य
११.६.२६

सेवा में:—

श्रीमान् मंत्री जी महोदय—आर्यप्रतिनिधिसभा राजस्थान
अजमेर

सादर नमस्ते।

विनय है कि आपकी दूसरी आज्ञा सं. ६६१ ता. २६-४-२६ मुझे इन्दोर से आने पर यहां प्राप्त हुई।

---

१. 'आर्य कुटुम्ब सहायक द्रव्य निधि' से सम्बद्ध पिताजी के अनेक पत्र उपलब्ध हुए हैं, परन्तु उन में कुछ वैशिष्ठ्य न होने से हम उन्हें यहां नहीं दे रहे हैं। यु. मी.

शाला की वार्षिक परीक्षा २३।५।२६ तक कार्याधिकता से और पश्चात् इन्दोर जाने से अब मुझे अवकाश अलबत्ता है। मैं विचारता था कि वार्षिक अधिवेशन तक योग्य काल सभा की सेवा में रिपोर्ट पेश करना है, दीपावली से २।४ मास की छुट्टी मुझे लेना भी है। अतः अजमेर आके सर्व सेवा में उपस्थित होके काम तैयार कर सकेंगे।

बहुत ही एकांत होने से और रेल पोस्ट की सुव्यवस्था न होने से मैं पत्र द्वारा कार्य करने में, जो अभी से आरंभ करने को तैयार हूं बहुत काल लगना संभवनीय समझता हूं। अच्छा होता कि संचालक श्रीमान् उबाना जी को बनाते तो मेरी अपेक्षा उन्हें इसके सुचारु रूप से पूरा करने में सर्वभांति सुभीता होता।

मैं इसी पत्र द्वारा श्रीमान् उबाना जी से प्रार्थी हूं कि वे सर्व सभासदों से उचित सम्मतियें प्राप्त करके अपनी सम्मति भी निश्चित करके यथासंभव शीघ्र मेरी ओर प्रदान करेंगे तत्पश्चात् मैं भी उन सम्मतियों पर से अपना नया भाव प्रकट करूंगा (क्योंकि पूर्व नियमावली रचने में मेरा हाथ है)। और वे सर्व पत्रादि श्रीमान् उबाना जी महोदय की सेवा में ही मैं भेजूंगा जिनको वे स्व इच्छानुसार पूर्ण कर पेश करेंगे अर्थात् मैं सहायक रूप होकर, हम दोनों इस कार्य को पोस्ट द्वारा वा दीपावली पर एकत्र होकर तैयार कर लेंगे। किंतु सभा किस समय ये कागजात चाहती है, हमें ज्ञात हो जाना चाहिये।

मैं उन सदस्य महोदयों के पूरे पते भी नहीं जानता हूं, कि जिनके नाम आपने लिखे थे, और न जाने पत्र द्वारा वे कितनी शीघ्रता से उत्तर देने की रुचि रखते हैं। इन बाधाओं को देखते मेरी यह प्रार्थना श्रीमान् उबाना जी महोदय की सेवा में अर्पण कीजियेगा और इस आ. कु. स. भंडार की फाइल भी उन्हें दीजियेगा, पूर्व नियमावली की प्रतियें अजमेर में वा सदस्यों के पास में होंगी।

आप का—गौरीलाल आचार्य

यथोचित स्वीकृति वा आज्ञा से मुझे शीघ्र सूचित कीजियेगा।

(२)

ओ३म्

बरगोण

नं. २४ ता. २६–३–२७

सेवा में:—

श्रीमान् मान्यवर मंत्री जी महोदय

आर्यप्रतिनिधिसभा राजस्थान

सादर नमस्ते.

आप के पत्र नं. २९६ ता. २-९-२६ के अनुसार,मैंने आर्य कुटुम्ब सहायक सभा राजस्थान के विषय में विवरण लिख के सेवार्पण किया था और आपने आर्य मार्तंड ६/८-९-२६ में प्रगट किया था कि यह विषय अंतरंग सभा को पेश किया जावेगा.

परंतु अभी तक कोई फल दृष्टि नहीं, अतएव मेरी प्रार्थना है कि इस लाभकारी विषय को पेश करने के लिये श्रीमती आ० प्र० सभा के अधिवेशन में अनुकूल अवसर होगा. कृपया विचार करियेगा.

आपका
गौरीलाल आचार्य
मंत्री–आर्य कुटुम्ब सहा. सभा
राजस्थान

(३)

ओ३म्

नियम

आर्यसमाज के सभासदों का आर्य्य परिवार
सहायक द्रव्यनिधि.
आर्य्य प्र. नि. सभा राजस्थान मालवा

१. यह द्रव्यनिधि-'आर्य सभासदों का परिवार सहायक द्रव्यनिधि श्रीमती आर्य-प्रतिनिधिसभा राजस्थान मालवा अजमेर' कहलावेगा.

२. इस संस्था के सभासद की मृत्यु पश्चात् उसके परिवार की द्रव्य से सहायता करना इस द्रव्य निधि का मुख्य उद्देश होगा.

३. आर्य्यसमाज के सभासद का अर्थ जो महाशय(पुरुष या स्त्री) श्रीमती आर्य्य-प्रतिनिधिसभा राजस्थान मालवा अजमेर के अंतर्गत किसी भी आर्य्यसमाज का सभासद ही माना जायगा.

४. कोई भी आर्य्यसमाज का सभासद जिसकी के आयु १७ वर्ष से न्यून और ५० वर्ष से अधिक न हो इस द्रव्य निधि का सभासद इस संस्था के सामान्य नियम और उपनियमों के अनुसार हो सकता है.

यदि सभासद की आयु ४० वर्ष से अधिक न हो—

१. प्रवेश फी एक रुपया दाखिल कर ठहराये हुए नमूने के फार्म में प्रार्थना-

पत्र पेश करे और जिसकी सिफारिश इस निधि के दो सभासद या किसी आर्य्यसमाज के प्रधान या मंत्री करे.

२. प्रवेश पत्र की तारीख से छः माह के भीतर पांच रुपये इस संस्थान में अमानत रखे.

यदि प्रार्थी की आयु ४० वर्ष से ५० वर्ष तक हो—

१. ठहराये हुए नमूने में इस संस्था के दो सभासद या आर्य्यसमाज के प्रधान या मंत्री की सिफारिश.

२. प्रवेश फी रुपये १०) और रुपये ५) अमानत रखे.

५. उपरोक्त नियमों को स्वीकार करने पर प्रार्थी इस संस्था का सभासद बनाया जावेगा. जिसके प्रमाण के लिये इस सहायक द्रव्य निधि के मोहोर का सर्टिफिकेट उसको दिया जावेगा. और इस सर्टिफिकेट के तारीख से वह इस सहायक द्रव्य निधि के लाभ का हक्कदार होगा.

६. (अ) किसी सभासद के मृत्यु का दाखला कलम ८ अनुसार पेश होने पर एक मास के भीतर श्रीमती आर्य्यप्रतिनिधिसभा के मंत्री इस संस्था के सर्व सभासदों से एक एक रुपया मरतूम की सहायतार्थ देने की प्रार्थना करेंगे जिसके पहुंचते ही संस्था के सभासदों को निश्चित समय के भीतर प्रत्येक मांग पर एक रूपया भेज देना होगा.

(ब) उपरोक्त रीति से जो धन एकत्रित होगा उसका एक दशांश १/१० संस्था के काम के लिये निकालकर शेष रकम और उस मृत सभासद की अमानत उसके प्रवेश फार्म में लिखे हुए मनुष्य को या उसके अभाव में उसके वारीस को (जो कायदेसिर ठहरेगा) मृत्यु ता० से दो माह के भीतर संस्था से भेज दी जावेगी.

७. (अ) नियम ६ (अ) के अनुसार यदि किसी सभासद ने समय पर मांग का रूपया न भेजा तो उसने नियम भंग किया ऐसा मानकर मांग का रुपया उसकी अमानत से वसूल कर लिया जावेगा. और फिर सभासद को लाजिम होगा के वह इस अमानत को एक मास के भीतर पूरी कर देवे.

(ब) लगातार दो बार इस प्रकार नियम भंग होने पर यदि समय के भीतर अमानत पूरी न की गई तो वह सभासद इस संस्था के सभासदी से पृथक् किया जावेगा और पृथक् होने के अवस्था में उसके अमानत पर के तथा अन्य सर्व हक नष्ट होंगे.

(क) नियम ७ ब) के अनुसार इस सहायक द्रव्य निधि से पृथक् किया हुआ सभासद यदि फिर से सभासद होना चाहे तो हो सकता है यदि वह—

(१) पृथक् होने से दो मास के भीतर वह श्रीमती आर्य प्र. निधि का समाधान करदे कि उसके नियम ७ (ब) के अनुसार नियम भंग का कारण योग्य था जो क्षमा करने के लायक है.

(२) यदि नियम भंग का कारण योग्य न हो तो अमानत पूरी करने के अतिरिक्त दंड रुपया एक जमा करे.

(३) उस मांग का रुपया दे जो उसके पृथक् रहने के अवस्था में अन्य सभासदों से की गई हो.

८. मृत समासद की मृत्यु बाबत जहां मृत्यु हुई हो वहां के दो सभासदों का अथवा मंत्री आर्यसमाज या स्थानिक मजिस्ट्रेट अथवा म्युन्सपिलिटि के प्रेसिडेन्ट का दस्तखती दाखल पेश होने पर उसके वारिसों को कलम ६ (अ) मुताबिक रकम इस संस्था से पाने का हक होगा.

९. इस सहायक द्रव्यनिधि का सभासद कलम ७ (ब) के अतिरिक्त यदि अपना सम्वन्ध जानवूझकर तोड़ना चाहे तो ऐसी अवस्था में उसकी अमानत पर का हक नष्ट होगा.

१०. श्रीमती आर्यप्रतिनिधिसभा के संचालक ही इस संस्था के संचालक समझे जावेंगे. काम के तरीके भी वही होंगे जो प्रतिनिधि सभा के हैं.

११. इस सहायक द्रव्यनिधि का सर्व धन श्रीमती आर्यप्रतिनिधिसभा के कार्यकर्ताओं के बहुमत से किसी सुरक्षित बैंक या व्यापारी फर्म में जमा रहेगा.

१२. निम्न लिखित धन इस संस्था का निज धन समझा जावेगा.

(१) अमानत का व्याज जो वसुल आवेगा.

(२) जब्तशुदा अमानत कलम ७ (ब) के अनुसार.

(३) प्रवेश फी कलम ४(अ) के अनुसार.

(४) दंड की रकम कलम ७ (क) की पोट कलम २ अनुसार.

(५) कलम ६ (ब) अनुसार १/१० की रकम.

१३. कलम १२ के स्थाई धन में से संस्था के सम्बन्ध में होने वाला खर्च स्टेशनरी, छपाई, पोस्टेज आदि का संस्था से हुआ करेगा.

१४. श्रीमती आर्य्यप्रतिनिधिसभा को अधिकार होगा कि इस संस्था के लाभ की दृष्टि से नियमों में परिवर्तन करे.

१५. इस संस्था के कार्य का वार्षिक रिपोर्ट वर्ष में एक बार श्री आर्यप्रतिनिधि-

सभा के वार्षिक रिपोर्ट के साथ साथ प्रकाशित हुआ करेगा जिसकी कापी संस्था के प्रत्येक सभासद के पास भेजी जावेगी.

१६. इस संस्था के उद्देश्य जनता को समझाकर सभासद बढ़ाना और फीस की लेन देन आदि कुल कार्यवाही स्थानिक आर्यसमाज के मंत्री महोदय करेंगे. जहां समाज स्थापित न हो किसी निकटवर्ती समाज के मंत्री द्वारा कार्यवाही हो सकेगी.

ओ३म्

प्रार्थना-पत्र

प्रार्थना नं.

सभासद नं.

आर्य्यसमाज के सभासदों का आर्य परिवार

सहायक द्रव्यनिधि.

श्री. आर्यप्रतिनिधिसभा राजस्थान मालवा

(अजमेर)

——×——×——×——×——×——

श्रीयुत मंत्रीजी-श्रीमती आर्यप्रतिनिधिसभा राजस्थान.

निवेदन है कि मैं इस संस्था का सभासद होना चाहता हूं. संस्था के नियमों का मैंने अवलोकन किया है मैं उन नियमों तथा परिवर्तित नियमों का ठीक ठाक पालन करूंगा प्रवेश फी रुपया एक और अमानत रुपये (   ) कुल रुपये (   ) अक्षरों में......इस पत्र के साथ भेजकर अभिवचन देता हूं कि, नियत समय पर (६ मास के भीतर) अमानत की शेष रकम जमा कर दूंगा. कृपया मुझे सभासद बनाया जावे.

१ मेरा पूरा नाम.............

२ आयु........................

३ धंदा.......................

४ किस समाज का सभासद है.....................

५ मेरे पश्चात् जिनको इस द्रव्यनिधि से सहायता दी जाय उनके क्रमवार दो नाम	१............ २............

उपरोक्त लिखी हुई बातें अक्षरशः सत्य हैं ऐसा प्रतिज्ञापूर्वक जाहिर करता हूं.

मुकाम..........तारीख.........हस्ताक्षर.........

दाखला

(अमानत पूरी करने पर दिया जावे)

मैं नीचे सही करने वाला दाखला देता हूं कि,

महाशय··· ···· को मैं स्वयं जानता हूं यह आर्यसमाज ( ) के सभासद हैं और निर्व्यसनी तथा निरोगी हैं इन्होंने प्रार्थनापत्र में लिखी हुई बातें सत्य हैं.

दस्तखत सभासद या]
मंत्री आर्यसमाज]

ओ३म्

सदस्यता-स्वीकृति-पत्र

सभासद संख्या

आर्यसमाज के सभासदों का आर्यपरिवार
सहायक द्रव्यनिधि श्रीमती आर्य प्र० निधि
सभा राजस्थान का प्रमाणपत्र

श्रीयुत ···········आपका प्रार्थना पत्र नं.·········तारीख का प्राप्त होने पर सभा के नियमानुसार आप इसी निधि के सभासद बनाये गये हैं इस निधि के नियमोपनियम पालने के आप जबाबदा रहेंगे.

तारीख

दस्तखत मंत्री सभासद प्रधान.

सूचना—मृत सभासदों के वारिसों को लाजिम होगा के सभा से सहायता मांगते समय यह प्रमाण पत्र मंत्री सभा के पास पेश करें.

(ग)

महेश्वर के आर्यसमाज भवन (मन्दिर) से सम्बद्ध पत्र आदि

(१)

[आर्यसमाज भवन के निर्माणार्थ धन की अपील आर्यमार्तण्ड में छपने को १७-११-२५ को भेजी थी, उसके प्रकाशित न होने पर लिखा गया पत्र]

ओ३म्

महेश्वर
५–१२–२५

सेवा में:—

श्रीमान् मान्यवर सम्पादक महाशय जी
आर्यमार्तंड—अजमेर

सादर नमस्ते.

"उस दाता से सूम भलो, जो वेगो उत्तर देय"

श्रीमान् सूरजकरण जी महोदय के द्वारा आप की सेवा में १७–११–२५ को श्रम समर्पण किया था प्रति अंक को देखता हूं निराशा··· क्षमितव्य हूं.

श्रीमान् जी १ मास के बाद हम को १ कोड़ी न मिलेगी. कपासी की उत्पन्न में से मिल सक्ता है. और वह भी मार्तंड में छापने पर और वैसे ही फार्म पर ४०० वा १००० अलग छापकर हमें प्रदान करेंगे तो—यदि यह कार्य आप न करा सकें तो कृपया उत्तर दीजियेगा. और स्थान पर छपवा लेवेंगे. नरसिंहपुर से रसीद के १००० फार्म छपकर मुफ्त में मिले हैं यह उत्साह है.

(२)

ओ३म्

एक निवेदन-पत्र

महेश्वर
मार्गशीर्ष सोमवती
सं. १९०२

नीमाड़ के प्रान्त में इने गिने प्रतिष्ठित पुरुष धार्मिक जागृति में कर्मवीर हैं। परंतु न वे संगठित हैं, न पर्याप्त अवकाश ही पाते हैं और न उन्होंने युवक मंडल को

ही योग्य बनाकर सेवा में उपस्थित किया है। ऐसी दशा में वे निःशक्त और परिणाम को खतरे (धर्म की इति श्री तक) में डालने वाले हैं वे अपने हृदय तल तक गहरे पैठ कर सोच लें कि सारा जीवन समाप्त करके उन्होंने आगे के लिये कितने धर्मवीर पैदा किये. जो धर्म पर न्योछावर होकर अपनत्व का अस्तित्व बनाये रखें.

प्रिय सज्जनवरो; आपके पुरुषाओं का इतिहास परम पवित्र और उज्वल है वह आपके मस्तक को नीचा झुकने नहीं देता; समझ लीजिये कि देश के इतिहास को निष्कलंक और उच्च आदर्श बनाये रखने वाले, धर्मवीर, कर्मवीर और दानवीर ही होते हैं। परंतु हां सक्ता है कि भावी संतान के पुरुष आलसी होकर अपने खेत (धर्मक्षेत्र) को ढोरों से उजड़ने देकर कायरता और नीचता का टीका अपने मस्तक पर लेते हैं, कर्म प्रधान है.

हे धर्मप्रचारप्रेमियो ! सम्मिलित होकर अपने प्रान्त में समयोचित डटवां (ठोस) कार्य करिये, अपने देश के अन्य प्रान्तों के साथ २ चलिये, महेश्वर नीमाड़ का केन्द्रस्थान है और यह नर्मदा तट पर श्रीमती प्रातःस्मरणीया दानशीला भगवती अहिल्या देवी का मुख्य कर्मक्षेत्र होने से, वरन् पुरातन ऐतिहासिक होने से तथा सोमवती, शिवरात्रि, भवानी माता, ओंकारेश्वर, संवाजी के मेलों के यात्रियों का आवागमन होने से एक विशेषता प्राप्त है, कुछ सज्जनों की सुरुचि और कार्य तत्परता ने राजदुर्ग के मुख्य द्वार के सम्मुख सड़क पर जहां होकर सहस्रों मनुष्य एवम् हमारे अन्नदाता धर्मप्राण श्रीमंत महाराजाधिराज महोदय का शुभागमन होता रहता है मन्दिर बनाना आरंभ तो कर दिया है, इस मन्दिर में यज्ञ हवन, धार्मिक पढाई व्याख्यान, विद्वानों महात्माओं की सेवा सत्संग होवेंगे, वार्षिक उत्सव और सभा होकर अपने प्रिय प्रान्त नीमाड में धर्मरक्षा और "धर्मप्रचार के प्रयत्न निश्चय किये जावेंगे, ऐसें कार्यों की हमारे यहां सदा आवश्यकता समझी जा रही है. अन्य धर्मावलम्बी अपनी उन्नति और मनुष्य संख्या बढ़ाने में तल्लीन हैं. रक्षण सफलता तब ही है जब गीता की आज्ञा मान कर्मयोगी रक्षक बनें.

दानवीरों को उचित अवसर हाथ लगा है कि वे इस पवित्र यज्ञ में अपनी गाढ़ी कमाई के धन की आहुतियें देकर दान का एक सदुपयोग कर सक्ते हैं "सर्वेषां दानानां ब्रह्मदानं विशेषतः" इस में गरीब अमीर और प्रत्येक जाति के व्यक्ति की सुदृष्टि और सहाय सेवा की आवश्यकता है. पाव आने से लेकर यथाशक्ति तक सादर लिया जावेगा. १००) रु० और अधिक दानदाताओं की नामावली खुदवा कर मंदिर के द्वार पर लगाई जावेगी. अथवा उत्तम तो यह है कि कोई एक श्रद्धालु सज्जन ही चाहे, और इस मंदिर को अपना उत्तमतर कीर्तिस्थंभ बना लेवे. वर्त्तमान में लागत ३०००) रु० अनुमान किये गये हैं.

४०६।≡१) दान आया है ५) कर्ज भी लिया है इतने में कुर्सी और पेड़ियों की रचना करके कार्य को द्रव्य आने तक ठहरा दिया है धन व सामग्री कोषाध्यक्ष श्रीमान् सेठ व्रजलाल जी जड़िया महेश्वर-होलकर राज्य के पते पर आना चाहिये, जिसकी प्रसिद्धि मार्तंड में छपा दी जावेगी. दानदाताओं, सेवा के काम में ऋतु और सुकाल की प्रतीक्षा नहीं की जाती, शीघ्र हाथ उठाने की आवश्यकता है, सब दानों के साथ २ इस मंदिर को भी याद में रखियेगा. दान प्राप्ति सादर स्वीकार.

(१) कसरावद के पांच पंच दाताओं ने भूमि ५३ × ३०/१/३ फीट मोल लेकर अर्पण की मूल्य १०५॥)

(२) एक महानुभाव का निर्माण कार्यारंभ दान ॥।≡।)
(३) श्रीमान् छीतर जी भाई साटकूर १००)
(४) " कुशल जी भाई सुन्दरेल ५०)
(५) " गोपाल देवचंद्र जी पटेल समसपुरा ५०)
(६) " गोपाल महादेव जी तिवारी महेश्वर १००)

४०६।≡।)

सेवक—गौरीलाल आचार्य.

(३)

ओ३म्

महेश्वर
२२-१२-२५

सेवा में:—

श्रीमान् महामान्य मंत्री जी महोदय
आर्यप्रतिनिधिसभा राजस्थान
अजमेर

नमस्ते.

आपका का कृपापत्र सं. २८२ ता० १८-१२-२५ कल प्राप्त हुआ तदनुसार निवेदन है कि:—

श्रीमान् छोगालाल जी महाशय ने ता० १७-१२-२५ को रात्रि समय महेश्वर पहुंचकर ता० १८-१२-२५ को और कसरावद में ता० २० व २१-१२-२५ को भजनों द्वारा उपदेश किया, कसरावद में भी गया था. ता० २१ को श्रोतामंडली अधिक हुई, उपदेशक जी ने जुखाम होते भी लोकसेवा की. ता० २२ को कोटा समाजोत्सव के लिये प्रस्थान किया.

महाराज ! इस प्रकार ४ दिन में नीमाड़ प्रांत में प्रचार समाप्त कर दिया गया, धन्यवादार्पण करता हूं कि मेरी इच्छानुसार मुझे आभारी बनाया.

हेंड बिल छपाने के लिये आज इन्दोर भेज दिये हैं आप परिश्रम अब न करियेगा.

नीमाड़ को दान विधि सिखाने का श्रीगणेश ही अभी नहीं हुआ, सभा को यह क्या सहायता करेगा अभी तो आप के मुख की ओर देखना सीखता है. जैसे शिशु पुत्र पिता की ओर.

श्रीमान् छोगालाल जी के साथ हम लोगों में से कोई न कोई रहकर १ मास में समाज मंदिर महेश्वर के लिये द्रव्यसंग्रह करते । भगवन् ! इस गिरे प्रदेश में यह एक समाज मंदिर बन जावे और सं. १०२ की शिवरात्रि पर वार्षिक मेला द्वारा आर्य संगठन के बीजारोपण हो जावें तथा श्रीमती प्रतिनिधिसभा को आप अर्पण करें तो नीमाड़ में जागृति का सूर्योदय होवे. आप के सहित मार्तंड का आश्रय हमें चाहिये.

माघ शुक्ल १५ तक भी श्रीमान् छोगालाल जी महोदय को (जैसा कि उनने विचार बताया है) आप भेजेंगे तो नीमाड़ पर आपकी बड़ी कृपा होगी—हमारे आ··· लक्ष्य मंदिर बनवाने का हो उनको कम से कम २।३ मास का वेतन तो नीमाड़ चुका सकेगा आप विश्वास रखियेगा. उत्तर दीजियेगा.

देखिये एक पत्र रेलवे की पटड़ी के विषय में श्रीमान् प्रधान जी (गुलराज गोपाल जी) महोदय की सेवा में ५—१२—२५ को अर्पण किया था उत्तर के लिये कार्ड भी रखा था परंतु स्वामी भी सुनने में संकोच करते हैं भला ! समाज मंदिर के लिये रेलवे स्टोअर अजमेर का काम आप लोगों के बिना और करने वाला कौन है ?

बड़ी वा छोटी लाइन की रेलवे की पटड़ीयें पाटों के लिये ३० फीट ४० वा ४३ फीट तक लंबी मिल सकेगी क्या ? किस भाव से ? बड़वाह स्टेशन पर चाहिये मूल्य यहां देवेंगे । क्या मैं आशा करूं कि आप स्पष्ट और शीघ्र उत्तर देकर मुझे अनुगृहीत करेंगे. विस्तृत पत्र श्रीमान् प्रधान जी महोदय से लीजियेगा.

गोपीलाल आचार्य
सेवक—आर्यसमाज
महेश्वर.

(४)

ओ३म्

पत्र सं. १६

महेश्वर
३–१–२६
होलकर स्टेट.

सेवा में:—

श्रीमान् माननीय प्रधान जी महोदय
आर्यप्रतिनिधिसभा राजस्थान
अजमेर

नमस्ते.

श्रीमान् का पत्र प्राप्त हुआ. श्रीमती जी को स्वास्थ्य लाभ हुआ होगा.

१—मंदिर में स्त्रीमंडली की बैठक निर्माण की योजना, यहां के श्री इंजिनियर सा. और ओव्हरसियर सा. सोचेंगे, और वह यहां की परिस्थिति अनुसारतः उचित रहेगी. अभी कोई २।३ सज्जन द्रव्य संग्रहार्थ बाहर निकलेंगे, तब आगे का विचार बंधे. केवल १२॥) रु० कर्ज रहा है. निवेदन पत्र सेवा में अर्पण किया है यदि कोई सहाय पहुंचा सके:—यदि संभव हो तो उत्तम होगा कि कम से कम २।३ मास के लिये पं. छोगालाल जी को माघ के अंत तक कृपा कर भेजियेगा तो द्रव्यसंग्रह में सुविधा हो जावे. विशेष विनय.

२—आर्य कुटुम्ब सहायक सभा के सभासद बनाने के लिये अवकाश पाकर मैं राजपुताने में फिरूंगा ईश्वर और आपकी कृपा से कार्य सफल होगा.

३—आर्य कुटुम्ब स. स. के और प्रचार के मेरे कागजात श्रीमान् मंत्री जी महाराज आर्यसमाज अजमेर के दफ्तर में पड़े हैं. मैंने उनसे बेरंग ही मांगे थे पर अब आप सत्यार्थप्रकाशों की पार्सल में रखा देने की व्यवस्था करा दीजियेगा. तो वे सब के सब मुझे मिल जावेंगे.

गौरीलाल आचार्य
सेवक आर्यसमाज—महेश्वर

(५)

नकलें

श्री

जावक नं.

मुहर ७५६

१४-६-२६

नोटिस[१]

हुजूर खासगी संस्थान महेश्वर से

बनाम—रामचन्द्र गणेश व्यास तर्फे गौरीलाल मास्टर ए. व्ही. स्कूल महेश्वर—किले के पुश्त की मिट्टी खोद कर मकान न बांधने बाबद दरबार हुक्म होकर—बाबत इसके तुमको हिदायत रूबरू में दी है. लेकिन तुमने दरबार हुक्म की तामील न करते, मसाला वगैरः लाकर, तुम्हारी मनशा काम फेर शुरु करने की दीखती है, सबब जरिये नोटिस के सूचना की जाती है कि:—

दरबार हुक्म माफीक श्री अनंत नारायण मंदिर के एलीवर[१] होतें किले के पुश्त में तुमको इमारत बांधते आती नहीं, और मकान की नीव येह समझकर तुमने जो किले की पुश्त की मिट्टी खोदी है येह दिन ८ के अन्दर जैसी के वैसी डलवा दी जाकर पुश्त पेश्तर माफीक करा दी जावे और इधर इत्तिला करें—वरना बरसात का मौका होने से खोदे हुये गढ़े में पाणी भरकर किल्ले को नुकसान न पहुंचे. इस गरज बाद मियाद के काम सरकार से कराया जावेगा और उस खर्चे के जवाबदार तुम रहकर लगने वाला आकार[२] वसूल किया जावेगा. येह मालूम हो. फक्त. ता. १४-६-२६

हस्ताक्षर मराठी में—शंकर माधव

बहिवटदार खां. महेश्वर.

(६)

नकल-कार्यक्रम

राजमान्य राजश्री बहिवटदार सा० हुजूर खासगी संस्थान महेश्वर की ओर से नोटिस नं. ७४६/१४-६-२६ का प्राप्त हुआ उसके उत्तर में विचार संगठित होकर उत्तर दिया गया. नोटिस और उसके उत्तर नं. ३०/१४-६-२६ की नकल फाइल में रखी गई। इसी प्रकार निश्चित हुआ कि इन दोनों की नकलें श्रीमती आर्यप्रतिनिधि-सभा राजस्थान और मालवा की सेवा में मालूम होने के लिये भेजी जाय.

१४-६-२६

हस्ताक्षर हिंदी में—कस्तूरचन्द जैन-मंत्री, छोटूलाल सदस्य, गौरीलाल आचार्य-संचालक, रायसिंह उपमंत्री. सेठ वृजलाल जी कोषाध्यक्ष.

---

१. एलीवर=इधर। २. आकार=द्रव्य।

(७)

ओ३म्

उत्तर-नकल

नं. ३०
१४–६-२६

आर्यसमाज मन्दिर निर्माण सभा–महेश्वर

सेवा में:—

श्रीमान् मान्यवर व्हैवटदार जी सा. महाशय
हुजूर खासगी संस्थान—महेश्वर

सा. नमस्कार

आपका नोटिस नं. ७५६/१४-६-२६ का प्राप्त हुआ. तदनुसार निवेदन है कि:—

१—न आपने मुझको रूबरू में हिदायत देने को कभी बुलवाया, और न मुझको दरबार का कोई हुक्म दिखाने का प्रयत्न किया.

इसलिये कृपा करके आप उक्त हुक्म की नकल प्रदान करियेगा.

२—किले की पुश्त की (हद की) मिट्टी खोदी नहीं है.

३—मकान बांधने का कार्यारंभ ता. २०–१०–२५ को हो गया था जिसको ८ मासहो चुके हैं.

४—यह मकान (मंदिर) जो बांधा जा रहा है वह किले की पुश्त से बाहर है.

५—किले की पुश्त की मिट्टी जब कि खोदी ही नहीं है तो भरेंगे किसको ?

६—यह इत्तिला सेवा में समर्पण की जाती है.

७—किले की पुश्त की हद में मैंने कोई गढ़ा नहीं किया है कि जिसमें बरसाती पानी भरकर किले को नुकसान पहुंचा सके.

८—इसके विपरीत यदि कोई खर्चा आप करेंगे तो उसका जवाबदार मैं नहीं होऊंगा.

रामचन्द्र गणेश
व्यास आदि—

तर्फे—गोरीलाल आचार्य
संचालक
आ. स. मंदिर निर्माण सभा
महेश्वर

(८)

ओ३म् ता०[1]..........

सेवा में

श्रीमान् मान्यवर मंत्री जी महाराज
आर्यप्रतिनिधिसभा राजस्थान
अजमेर

सादर नमस्ते

आप का पत्र ता. ९-७-२६ मुझे प्राप्त हुआ था उसके अनुसार आपने इस भूमि की रजिस्टरी करा लेने का कार्यक्रम छोड़ दिया. परंतु कोई चिन्ता न करियेगा कार्यवाही चल रही है. मैंने ६-७-२६ को इन्दौर जाके श्रीमान् सुपरटेंडेंट साहब चारीटेबल विभाग की सेवा में अपील की थी उन्होंने श्री इन्स्पेक्टर सा. चारीटेबल से जांच कराई फिर श्रीमान् होम मिनिस्टर साहब की सेवा में कार्यवाही को भेजी इन्होंने नकशा भी मंगाया अब यह कार्यवाही श्रीमान् महोदय प्रायम् मिनिस्टर साहब की सेवा में जावेगी. एसा ता. १७-१-२७ को तय हुआ मैं जुलाई में और नवंबर दिसम्बर जनवरी में ४ बार इन्दोर गया और कोई ३४ दिन लगाकर के यथाशक्ति कार्यवाही (पड़ी न रहकर) को आगे बढाते रहने के लिये पीछा पकड़े रहा चारीटेबल विभाग में नकशा बनाने में आधी भूमि को सर्कारी दबाई हुई बताया था. उसको समाधान करके फिर अनुकूल नकशा बनवा के भिजवाया. परंतु इस समय श्री होम मिनिस्टर साहब ने क्या लिखा होगा यह पता नहीं लगा. उनके सेक्रेटरी साहब मुझको शीघ्रता में उत्तर नहीं दे सके थे. और ता. १८ को नियत समय पर श्रीमान् प्रायम् मिनिस्टर साहब की सेवा में मिलने गया था परंतु उस दिन और ता. १९ को मिलना कोई कारणवश बन्द था. परंतु अब मैंने ऐसी योजना सोची है और सम्मति भी ले ली है कि एक दरखास्त......साथ में......सेवा में भी भेजी है), उनकी सेवा में रजिस्ट्री द्वारा भेजी है और आप से भी विनय करता हूं कि इस विनय को पढ़ने के साथ ही (विलम्ब न हो के) शीघ्रतया एक पत्र प्रार्थनापत्र के तौर पर श्रीमती प्रतिनिधिसभा से रजिस्ट्री द्वारा भिजवा ही दीजियेगा जिससे उनके चित्त पर गंभीर प्रभाव पड़ेगा और सभा का कार्य सुचारु रूप में बनकर निकलेगा.

महोदय जी ! अब यही मोका आप को सम्हाल लेने का है. यदि इस जगह पर कार्यवाही बिगड़ गई तो आज तक की सपरिश्रम तपस्या मारी जावेगी और उसे

---

१. कागज फटने से ता० नष्ट हो गयी है ।

सुधारने में न जाने मुझे क्या २ विकट परिस्थिति भोगनी पड़ेगी क्योंकि स्यासती मामला है. आप जानते हो कि यह भूमि प्रतिनिधिसभा की संपत्ति है. उसके लिये इतनी ऊंची प्रतिष्ठित जगह में पत्र-व्यवहार करने से प्र. सभा का गहरा मान होगा. आप जानते होंगे कि श्रीमान् प्रायम मिनिस्टर साहब, बापणे साहब हैं. आपकी पत्रिका का बहुत मान करेंगे. मैं इस समय महेश्वर में हूं. और एक-दो ग्रामों में जाके ता. २ तक खरगोण अपनी नोकरी पर चला जाऊंगा. इन्दोर जाना अभी नहीं हो सकेगा.

ता. १७ दिसम्बर २६ को श्रीमान् बापणे साहब की सेवा में मैं उपस्थित हुआ था उस समय भवन निर्माण में सहायता मिलने के लिये प्रार्थना दी थी और कुछ बात की थी उस प्रार्थना पर भी कुछ न कुछ हुक्म होवेगा.

आप पत्र लिखें उस में मन्दिर शब्द का उपयोग न करें और बदले में भवन वा मकान आदि का उपयोग करें कारण मंदिर मस्जिद बनवाने वालों को मंजूरी लेनी पड़ती है और कई शर्तें हैं. मंदिर शब्द का उपयोग अपने लिये वैसा अर्थ नहीं रखता है इति.

सेवक—गोरीलाल आचार्य. आ. संचालक आ. स. मं. नि. सभा महेश्वर

मुझे भी उत्तर शीघ्र देकर अनुग्रहीत करियेगा. ताकि मेरे ध्यान में रहे.

(६)

ओ३म्

१३-८-२६

सेवा में:—

श्रीमान् मान्यवर मंत्री जी महोदय आ. प्र. सभा

सादर नमस्ते.

मैंने ता. ७-८-२६ को खरगोण जाकर चार्ज लिया मुहर्रम के दिनों में हिन्दु मुसलमानों के बीच झगड़ा उपस्थित होने की संभावना के भय से मेरी बदली हुई.

समाज मंदिर महेश्वर के बनाने में श्रीमान् वहिवटदार साहब ने रुकावट दी थी. उस विषय में श्रीमान् सुपरटेंडेंट चारीटेबल की सेवा में अपील ता. ६-७-२६ को की थी उस पर से श्रीमान् इन्स्पेक्टर साहब चारीटेबल मौका देखने के लिये महेश्वर पधारे हैं मैं भी कल आया और मेरे तथा गवाहियों के बयान हुए इस वक्त तक काम अनु-

कूल रहा है. कल सवेरे एक पंचनामा बाकी है वह होने पर और इन्स्पेक्टर साहब की रिपोर्ट से दरबार से यह रुकावट दूर होकर हुक्म मिल जायगा. श्रीमान् इन्स्पेक्टर साहब की बुद्धिमानी सराहनीय है आपने रुकावट के प्रश्नों को युक्ति से मिटाया जोकि ऐसा करना उचित था. मैं कल खरगोण को जाऊंगा. पं. छोगालाल जी सनावद होकर सडक के गांओं का भ्रमण करते २ खुरगोण पधारेंगे. इस समय दुर्भिक्ष होने से कदाचित् आय में बराबरी भी आ जावे तो अच्छा है. कार्तिक दीपावली के समय से मंदिरार्थ द्रव्य संग्रह करने को मैं निकलूंगा. .. मण्डलेश्वर...गांव वड़वानी होता हुआ कसरावद जाउंगा.

विनीत—गौरीलाल आचार्य

(१०)

ओ३म्

खरगोण
१४-८-२६

सेवा में:—

श्रीमान् महामान्य मंत्री जी महोदय
श्रीमती प्रतिनिधिसभा राजस्थान
अजमेर.

मैं आज महेश्वर लौट आया, चारीटेबल विभाग के श्रीमान् इन्स्पेक्टर साहब इन्दोर को आपकी ओर से आर्यसमाज इन्दोर के द्वारा धन्यवाद देना चाहिये कि जिन्होंने महेश्वर आर्यसमाज के भवन की भूमि का मौका देखकर के व्यर्थ फंसाई हुई जटिल समस्या को सरल कर दिया. निर्माण सभा के मंत्री जी ने सभा की ओर से विदाई के समय श्री इन्स्पेक्टर साहब की सेवा में सत्यार्थप्रकाशादि भेंट अर्पण किया जिसको महानुभाव ने सादर स्वीकार किया.

पहले १ पत्र द्वारा महेश्वर से, इन्स्पेक्टर साहब की जांच का समाचार दिया है परिशिष्ट में यह विनय है कि दूसरे दिन श्रीमान् व्हेवटदार सा. के भेजे हुए क्लर्क और निर्माण सभा के पंचों द्वारा पंचनामा इस बात का करा लिया कि यह सब जमीन मकान मालिक की है सरकारी नहीं है. बहिवटदार सा. ने उसे इन्दोर भेजा होगा; पहुंचने पर श्री इन्स्पेक्टर साहब की रिपोर्ट पर चारिटेबल सुपरटेंडेंट सा० दरबार से मंजूरी मंगवा के आज्ञा देवेंगे. इतनी शेष कार्यवाही को शीघ्र पूर्णता पर लाने

के लिये भी आर्यसमाज इन्दोर के श्रीमान् मंत्री जी महोदय को प्रयत्न करने को लिख दीजियेगा, दीपावली होने के साथ ही भवन का कार्य आरंभ करना होगा इसलिये हुक्म कुवार के प्रथम पक्ष में मिल जायगा तो उत्तम होवेगा.

गोरीलाल आचार्य.
संचालक
आर्यसमाज मंदिर निर्माण
सभा महेश्वर

(११)

नकल

ओ३म् आर्यसमाज भवन निर्माणसभा महेश्वर
नं. ३५ २३-१-२७

सेवा में

श्रीमान् महामान्य श्री प्रायम् मिनिस्टर सा. महोदय
होलकर राज्य—इन्दोर

सादर नमस्ते

आर्यसमाज महेश्वर का भवन बनाने का कार्य ता. २०-१०-२५ को म्यूनिसिपिल की आज्ञानुसार आरंभ करके १ मास में नीवें और मेड़ियें बना रखी थीं तत्पश्चात् फिर से चलाए हुए काम को ता. २०-६-२६ को श्रीमान् बहिवटदार सा० खासगी महेश्वर ने बलपूर्वक रोक दिया.

काम बंद करने का कारण जनरल डिपार्टमेंट की आज्ञा नं. ५५०२ ता. ११-१२-११ का बताया है उक्त हुक्म की नकल ली गई है तदनुसार:—(१) जब उक्त सरक्यूलर हुआ था तब इस खरीदी हुई भूमि पर दो मकान खड़े थे उन्हीं के गिर जाने के कारण बना रहे हैं उसमें ऐसा अभिप्राय नहीं है कि किले की निकटस्थ बस्ती तक के पश्चात एक मकानों के गिर जाने पर क्रम २ से हटा दी जावेगी. (२) बिलकुल नये स्थान पर नया मकान नहीं बनाया जा रहा है. बरन् वैसे के लिये भी सर्कारी आज्ञा से बनाने का आश्वासन हुक्म में रखा हुआ है. (३) इस कार्य को रोका भी है तो आरम्भ होने के ८ मास पश्चात्. (४) श्रीमान् बहिवटदार साहब अथवा छत्री के कई तैनाती पुरुषों को इधर होकर प्राय: सदैव निकलना ही पड़ता है. अफसोस कि इन लोगों ने एक मुख्य मार्ग पर के प्रत्यक्ष स्थान में चलते हुये ......आर्य.............. आरंभ में मनाई न करके एक निर्धन संस्था को लगभग ६००) की नुकसानी में गिरा देने का प्रयत्न खड़ा किया यदि आरंभ में ही मनाई करते तो इसका निकाल पहले करवा लेते.

श्रीमान् मा० सुपरटेंडेंट साहब चारीटेबल इन्दोर की सेवा में मैंने एक अपील ता० ६-७-२६ को अर्पण की थी. श्रीमान् इन्स्पेक्टर साहब चारीटेबल और श्रीमान् सुपरटेंडेंट साहब ने भी स्वतः मौका देखा है अब इसकी कार्यवाही क्रमपूर्वक श्रीमान् मा० होम मिनिस्टर सा० महोदय के द्वारा आप श्रीमान् जी की सेवा में उपस्थित हुई है या होने वाली है. मुझ से इस विषय में कुछ भी नहीं पूछा गया है अतएव मुझे यह भी नहीं मालूम कि कार्यवाही समाज के अनुकूल है वा प्रतिकूल !!

अतएव मैं नम्र निवेदन करता हूं कि अब तो इस कार्यवाही का निर्णय शीघ्र होकर के श्रीमान् बहिवटदार साहब महेश्वर को इस रुकावट को हटा लेने की आज्ञा प्रदान की जाय. और साथ ही इसके मुझे भी आज्ञा से सूचित किया जाय.

यदि इधर से भी पूछने की आवश्यकता हो तो मुझे बुलवा लिया जाय ताकि आर्यसमाज का नुकसान मेरी जिम्मेदारी में होने से बच सके. क्योंकि वह अपनी समझ से सत्यमार्ग पर है. विशेष विनयः

भवदीय
गौरीलाल आचार्य
संचालक
आर्यसमाज भवन निर्माण सभा
महेश्वर.

(१२)

ओ३म्

खरगोण १३-२-२७
होलकर राज्य

सेवा मेंः—

श्रीमान् मान्यवर मंत्री जी महोदय
आ. प्र. सभा राजस्थान

सादर नमस्ते.

मैंने ता. २३-१-२७ को एक पत्र आपकी सेवा में भेजा था और विनय किया था कि "आप भी श्रीमान् प्रायम् मिनिस्टर साहब स्टेट इन्दोर की सेवा में, महेश्वर आर्यसमाज भवन के बनाने में श्री बहिवटदार साहब की दी हुई रुकावट को दूर करने के लिये शीघ्र लिखियेगा; क्योंकि कागजात उनके पास पहुंचे हैं आदि २" मैं भरोसा करता हूं कि आपने लिखा होगा परंतु आपने मुझ को इस के लिये सूचित नहीं किया कृपया शीघ्र सूचित करियेगा.

इस वर्ष आपने नीमाड़ में प्रचार होने का बहुत उद्योग लगा रखा है. धन्यवादार्पण करता हूं.

(२) आर्य कुटुम्ब सहायक सभा को खड़ा करने की आवश्यकता है. कोष अजमेर रखिये. दफ्तर मैं समालूंगा पर काम होना चहिये.

गौरीलाल.

(१३)

नकल

पी. ड. डी. सेक्रेटरी साहब का पत्र नं. २८१७/१२-७-२७
श्रीमान् सुभे साहब जिला नीमाड के नाम

१—सरकार की नजर में आर्यसमाज महेश्वर को मकान बांवने की परवानगी दी गई है.

२—पिछला इतिहास किले का देखने से वहां पी डवल्यू. डी. में बर साहब की राय में एसी इजाजत नहीं दी जाना चाहिये.

३—लिखें कि आप पी. ड. डी. में बर साहब की राय से इत्तिफाक करते हैं.

तामील में ४५७०/२०-७-२७ महेश्वर म्यू. की तरफ मे धारा नं. १,२ की नकल भेजकर खुलासा रिपोर्ट बुलाया जावे. परवानगी दी हो तो रद्द करने का लिखना.

पी. ड. डी. सेक्रेटरी सा. से मैं इत्तफाक करता हूं. परमीशन रद्द करने का लिखा है. व रिपोर्ट मंगाया है.

भेजा. नं. ११२५/२०-७-२७ से.

(१४)

ओ३म्

नकल

जा. नं. २३८
६-८-२७

रा. रामचन्द्र गणेश व्यास कसरावद वि० तुमको मालूम होवे के महेश्वर में गाड़ी दरवाजे के नीचे अनंत नारायण के मन्दिर के पास तुमको मकान बांधने बावद दाखला नंबर ६७/५-२-२५ कमेटी से दिया गया है वो दरबार हुक्म सेक्रेटरी पी. डी. डी. के हु. नं. २८१७/१२-७-२७ के लगत सुबायत हुक्म नंबर ४५६०/२०-७-२७ के आधार तुमको दी हुई परवानगी रद्द की गई है सो मालूम होवे फक्त.

सही नाना जी सदासिव बाघमारे.

इंग्रेजी में
मीर मोहम्मद खां
प्रे. म्यू. २ महेश्वर

(१५)

ओ३म्

१८-८-२७

श्रीमान् मान्यवर मंत्री जी महाराज
श्रमती आर्यप्रतिनिधिसभा राजस्थान
अजमेर

सादर नमस्ते

विनय:—महेश्वर आर्यसमाज भवन के लिये जो नीव और पेड़ियें बनाई गई हैं उस मकान के बनाने का दिया हुआ हुक्म रद्द किया गया है. श्रीमान् पं. रामचन्द्र जी व्यास कसरावद आर्यसमाज के प्रधान जी ने उन्हें मिले हुए म्यूनि० के हुक्म की नकल मेरे पास भेजी है तदनुसार आपके पास सेवार्पण करता हूं. श्रीमान् होम मिनिस्टर सा० की ओर से यह कार्यवाही श्रीमान् पी० ड० डो० मेजर सा० की ओर गई वहां से श्रीमान् सूपा साहब (क्लेक्टर) नीमाड़ की ओर आकर के फिर महेश्वर के तहसीलदार सा० जो महेश्वर की म्यूनि० के प्रेसीडेंट हैं द्वारा यह हुक्म मिला है. मुझको अक्टोबर से नवीन वर्ष आरंभ होने पर छुट्टियें प्राप्त हो सकेंगी. संभवत: दीपावली की १५ दिवस की छुट्टियों में महेश्वर और अन्य स्थानों में प्रचारार्थ मुझे जाना भी है आप जो कार्यवाही करेंगे उसके अनुसार यदि कोई आफिसर मौका देखने महेश्वर जावें तो अक्टूबर से पहले नहीं. और मौका देखने के समय मुझे बुलवाया जाय. किसी प्रकार इस स्थान से निराशा हो भी जावे तो ६००) रु. से अधिक लगे हुये रुपयों में जमीन के बदले जमीन और शेष रुपये वसूल करना पड़ेगा. जमीन लेने स कदाचित् नवीन हुक्म भवन बांधने के लिये नहीं लेना पड़ेंगे. रुपये म्यूनि० देवेगी वा चारीटेबल विभाग से जिसने रुकावट डाली है लेने होवेंगे. कदाचित् दीवानी करना पड़े. अथवा अपील श्रीमान् प्रायम् मिनिस्टर महोदय की सेवा में की जांय वा डेपुटेशन काम लीजियेगा. आदि.

२०-८-२७

अब ऐसा निश्चय हो चुका है कि नियम ८५ के अनुसार श्रीमान् शुभ साहब नीमाड़ स्थान खरगोन की सेवा में अपील ता. १-६-२७ को की जायगी. इधर से उत्तर मिलने पर श्री प्रायम् मिनिस्टर महोदय की सेवा में अपील करेंगे. इतने में अवकाश अच्छा मिल जायगा.

और इधर श्रीमान् प्रेसीडेंट सा० म्यूनि० महेश्वर को नोटिस नियम १७ अनु-

सार ता० १-९-२७ को देवेंगे. जिसमें २ मास पश्चात् भूमि और मुबादला लेने के लिये नालिश की जा सके.

और आप की सेवा में विनय है कि आप इस विषय में विचार करके आर्यसमाज भवन महेश्वर के कुल पत्रादि जो ता. ३१ को मैं सेवा में दे आया हूं इधर मेरे पास में पोस्ट से रजिस्टरी करके भेजियेगा अपील करने की अधिक से अधिक तिथि ५-६. तारीख सितंबर की रख सकेंगे. और आपका विचार जो निश्चय हो वह मुझे लिखियेगा ताकि दोनों के कृत्यों में संगति बनी रहे. पृथक् बुक पोस्ट से इन्दोर डिस्ट्रिक्ट म्यूनिसिपिल एक्ट सेवा में भेजा है वह विचारने में सहायक होगा. पूर्व फाइल में इसे लगा लीजिये.

हर्ष है कि श्रावणी पर खरगोण में ५ दिन उत्तम प्रचार हुए आज जन्माष्टमी गोशाला के साथ कृष्ण चरित्र पर होगा.

विनीत गौरीलाल आचार्य
संचालक. आर्यसमाज भवन
निर्माण सभा महेश्वर
स्थान खरगोण।

आवश्यक पत्र

(१६)

ओ३म्

नं० ३८.
ता. १२-९-२७.

सेवा में:—

श्रीमान् मान्यवर मंत्री जी आर्यप्रतिनिधिसभा
राजस्थान अजमेर

सादर नमस्ते.

श्रीमान् जी का कार्ड नं० १२१/२४-८-२७ प्राप्त हुआ परंतु महेश्वर म्यूनिसिपिल का हुक्म रद्द करने का नोटिस नं० २३७ की नकल और म्यूनिसिपिल एक्ट रयासत इन्दोर सेवार्पण मैंने किये थे आशा है विचार किया गया होगा.

आज अपील श्रीमान् सूबे सा. नीमाड़ स्थान खरगोण की सेवा में दे दी है या

तो यह आज्ञा मिलने वाली है कि जिससे दरबार केबिनेट में अपील करने के लिये जाना पड़ेगा अथवा कदाचित् ही ये इस लाभ में हाथ डालेंगे तो चौकसी होवेगी.

किसी भी दशा में मुझ को मंदिर के उन कागजों की आवश्यकता है जो मैं वार्षिक अधिवेशन के समय सेवा में दे आया था. जमीनों की रजिस्टरी आदि कागदों का काम पड़ेगा. ऐसा न हो कि मैं कागदों की बाट देखता ही रह जाऊं !!! आप शीघ्र ही उन कागदों पर विचार निर्णय करके ता. २५-९-२७ तक मेरे पास पहुंचा देने के लिये आप २०-९-२७ को रजिस्ट्री करके रवाना करियेगा.

श्रीमान् महामान्य प्रधान जी महाराज कुमार महोदय यदि श्रीमान् सिरोमल जी बापणा प्रायम् मिनिस्टर सा. इन्दोर को कि जो उदयपुर निवासी हैं कोई भी युक्ति से उनके पास महेश्वर आर्यसमाज भवन के विषय में रक्षा के लिये प्रयत्न कर सकें तो दरबार में अपील होने के साथ ही सफलता प्राप्त होने का विश्वास है, यह १ मास में होना ही चाहिये, मुझे उत्तर दीजियेगा.

भवदीय —गौरीलाल आचार्य

(१७)

नकल ओ३म्

।।) स्टांप १२-९-२७

सेवा में:—

श्रीमान् मान्यवर सूबे साहब जिला नीमाड़
के कोर्ट खरगोण में
रामचन्द्र गणेश व्यास कसरावद-अपीलांट
विरुद्ध
प्रेसीडेंट म्यूनिसिपिल कमेटी महेश्वर-रिस्पार्डेट
दावा
म्यूनिसिपिल कमेटी महेश्वर
का दाखला नं. ६८/५-२-२५
कायम रहने बाबद

इस में म्यूनिसिपिल कमेटी महेश्वर से दाखला नं. २३८/९-८-१७ दावे के दाखले के विरुद्ध ता. १२-८-२७ को मिला उसके विरुद्ध अपीलांट इस अपील में विनती करता है उसके कारण निम्न प्रकार हैं—

कमेटी से दाखला नं. ६७/५-२-२५ अपीलांट को मिला उसके आधार पर उक्त

भूमि में काम मकान आरंभ किया. यह भूमि अपीलांट ने स्वत: सन् १६२४ में भूत-पूर्व स्वामी एक बोहरा और एक ब्राह्मण से जिनके कि कुछ काल पहले मकान आबाद थे. क्रमश: ७५) और २५) रु० में मोल लिया है और तब से आज तक अपीलांट उस पर स्वत्वाधीश है और कमेटी की परवानगी से मकान का काम चलाया है.

कमेटी का दिया हुआ नोटिस नं. २३८/९-८-२७ अपीलांट के परोक्ष होने से प्रथम दाखला नं. ६७/५-२-२७ रद्द किया गया है इस में अपीलांट की बहुत हानि हुई है और हो रही है.

बिना चौकसी कमेटी ने प्रथम दाखला रद्द किया यह अन्याय हुआ है इस पर पूर्ण विचार होकर कमेटी का दिया हुआ नोटिस २३८/९-८-२७ रद्द होकर प्रथम दाखला नं. ६७/५-२-२५ स्थाई रहे और अपीलांट को व्यय मिले.

इस अपील के साथ असल नोटिस नं. २३८/९-८-२७ और मुख्तार पत्र की प्रति तथा अपील की दूसरी प्रति सेवा में अर्पण करता हूं.

गोरीलाल रघुनाथ आचार्य
संचालक
महेश्वर आर्य भवन निर्माण सभा
वर्तमान स्थान-खरगोण

सूचना—ता० ९-९-२७ को श्रीयुत पं० रामचंद्र जी गणेश व्यास कसरावद ने अपील करने आदि कार्यों के लिये मजिस्ट्रेट कोर्ट खरगोण से तसदीक कराके मुख्तार पत्र मुझ को दिया है. गोरीलाल.

(१८)

ओ३म्

खरगोण
१८-९-२७
नं. ३९

सेवा में:—

श्रीमान् मान्यवर मंत्री जी महोदय
आ. प्र. सभा राजस्थान

सादर नमस्ते.

मैं नहीं जानता कि क्यों ? अथवा अनायास ही, श्रीमान् सूबे साहब नीमाड़ से

पी. ड. डी. सेक्रेटरी सा. ने इन्दोर से पूछा है कि श्रीमान् प्रायम् मिनिस्टर महोदय को विदित होने के लिये इन दो बातों का स्पष्ट भरके भेजो. १–विवादग्रस्त भूमि आर्यसमाज के पास कैसे आई ? २–किस सरक्यूलर और किस कानून के आधार से उक्त जमीन पर मकान बांधने की आज्ञा नहीं देना चाहिये.

अब श्रीमान् सूबे साहब महेश्वर म्यूनि० से यह बातें पूछते हैं उस पर महेश्वर म्यूनिसि० को रजिस्टरियों की नकलें देना है. कृपा करके उक्त सारे कागद पोस्ट रजिस्टर करके शीघ्रतर प्रदान करियेगा. इधर जब ऐसी कार्यवाही उठ खड़ी हुई है तो श्री प्रतिनिधिसभा अथवा श्रीमंत महाराज कुमार महोदय श्रीमान् प्रायम् मिनिस्टर म. से पत्र व्यवहार कर ही देवेंगे तो सर्वथा सफल होगा.

यह बात क्यों उठी मुझे जान नहीं पड़ता. हम तो वहां केबिनेट में अपील ले जाने वाले हैं. अलबत्ता प्रा. मि. सा. को मैंने एक पत्र नं. ३५/२३-१०-२७ को सेवार्पण किया था. आप को नकल भेजी थी.

गोरीलाल

(१६)

नकल

स्टांप ॥=) मुहर सूभा कचेरी खरगोन की

को. र. नं. २१/२८

कि. अ. मु. नं. १३/२७

लिखाई ≡।।।)
रजुआत –)
।)।।।

व इजलास सुभायत आफिस नीमाड़ खरगोण

रामचन्द्र व. गणेश व्यास सा. कसरावाद अपीलांट
प्रेसीडेंट सा. म्यूनि० कचेरी महेश्वर–रिस्पाडेंट

दावा–म्यूनिसिपिल कमेटी महेश्वर का
दाखला नं. ६७/५-२-२५ का कायम रहने बावद

ता. ५-१-२८ को प्रोसीडिंग हुआ उसकी नकलः—

ये मिसल मोका देखने के लिये रखी गई थी मगर महेश्वर कमेटी के फाइल में जनरल डिपार्टमेंट में हुक्म नं. ५५०२/११-१२-११ की नकल देखी गई जिसमें बगैर इजाजत मकान किले के आस पास नहीं बांधा जावे ऐसा लिखा है. अलावा सुभायत फाइल नं. ४७८/२७ में दरबार पी. ड. डी. के हुक्म नं. २८१७/१२-७-२७ से भी

सदर मकान न बनाने बाबद लिखा है वास्ते अब मौका देखने की जरूरत न होकर हुक्म दिया जाता है कि दरबार पी. ड. डी. के खिलाफ मकान बांधने की इजाजत नहीं दी जाती अपील नामंजूर. ईस हुक्म की समझ अपीलांट को दी जाकर अपील निकाल में रहे। कमेटी की फाइल २६४/२६, १०३/१५-७-२७ के २ नग वापस भेजे जावें ता. ५-१-२८

मुहर

सही अंग्रेजी में
वी. एन. जोसी
सूभा नीमाड़
खरगोण

आदि शेष कार्यवाही नीचे

(२०)

ओ३म्

आर्यसमाज खरगोण
संख्या ४३ ता. २८-१-२८

सूचना-पत्र

सेवा में:—

श्रीमान् मान्यनीय मंत्री जी महोदय
आर्यप्रतिनिधिसभा राजस्थान
अजमेर

सादर नमस्ते

आप का पत्र २०-९-२७। महेश्वर समाज भवन के सर्व कागजात पाने पर श्रीमान् सूबा साहब नीमाण खरगोण की सेवा में अपील की थी और मौका देखने का हुक्म हुआ था सो रद्द होकर निर्णय हुआ उसकी नकल साथ में सेवार्पण करता हूं.

पश्चात् मैं इन्दौर गया। पी. ड. डी. के पूर्व निर्णय की नकल के लिये प्रार्थना दी। उसी समय नकल न मिली मेरे लौट आने पर एक सभासद महोदय को मिल गई होगी.

श्रीमान् मेंबर साहब पी. ड. डी. अब छुट्टी से आ गये होवेंगे । निश्चय हुआ

कि मैं ता. ५ फरवरी को इन्दोर पहुंचूंगा और एक मंडली बना के मेंबर साहब के पास में पुनः विचार करने के लिये प्रार्थना करेंगे। आशा है स्वीकृत होवे। हम चाहे सत्य पथ पर हैं किंतु राज्यधोरण ही अद्भुत होता है। इस मंडली के साथ श्रीमान् महोदय जालमसिंह जी ने पत्र देने का विश्वास मुझे दिया है (इनका नाम गुप्त रहेगा)।

इनके पुत्री का विवाह २७-१-२८ को हुआ उसमें उपदेशक श्रीमान् पं. प्रकाश चन्द्र जी को आप से तार द्वारा मांगा था मैं उनके वहीं था यदि आपने स्वीकार करके श्री पं. प्रकाशचन्द्र जी को उनके यहां भेज दिया हो तो एक कार्य यह करियेगा कि आप एक पत्र द्वारा वा तार द्वारा श्री जालिमसिंह जी को निवेदन करियेगा कि ता. ५ फरवरी को गौरीलाल आचार्य खरगोन से आपकी सेवा में आयेगा आप महेश्वर आर्यसमाज भवन के लिये जो सेवा बने करियेगा······(संक्षिप्त और प्रोगम हो) यदि पं. प्रकाशचन्द्र जी को देने से आप ने अस्वीकार किया हो तो कुछ न लिखियेगा.

विनीत—गौरीलाल आचार्य संचालक
महेश्वर आर्यभवन निर्माण सभा

और श्रीमान् सुपरिटेंडेंट साहब चारीटेबल आफिस इन्दोर के पास नोटिस ता० २५-१-२८ को भेजा है कि हमें उक्त विषय में ७००) रु० खर्च पड़े हैं और गढ़हे हम से यथाविधि दीवारें बनवाकर व्यवस्थित कराये जावेंगे तो ४००)और लगेंगे। पी. ड. डी. के निर्णय लेने पर श्रीमान् वहिवटदार सा. खासगी महेश्वर पर वेमौके रोक कर खर्चा करा देने के वदल दावा मांगेंगे परवानगी दी जाय. २ मास पश्चात् आप की अनुकूलता समझ दावा मांगा जावेगा। आदि······

गौरीलाल आचार्य

(२१)

नं. ६३६
ता. ३-३-२८

श्री गौरीलाल जी.
खरगोण.

श्रीमान् जी,

आपका कृपापत्र प्राप्त हुआ। पढ़ कर बड़ा दुःख हुआ कि इन्दोर राज्याधिकारी अपनी मन-मानी चला रहे हैं। आपका उद्योग सर्वथा सराहनीय है आशा है कि आप

अपने परिश्रम को शिथिल नहीं करेंगे । आपका पत्र मैंने ज्यों का त्यों श्री जालमसिंह जी कोठारी के पास भेज दिया है । मुझे विश्वास है कि वह राय साहिब रामस्वरूप और श्री माढूलालजी आदि सज्जनों की सहायता से इस मामले को सुलझाने में आप की मदद करेंगे ।

समय समय पर जो कार्यवाही होवे. सूचना देते रहें । निवेदक

(२२)

स्टांप

नकल ५) ता. ६-३-२८

ब इजलास कैबीनेट दरबार होलकर सरकार
इन्दोर

तपासणी अर्ज
रामचन्द्र गणेश व्यास सा. कसराबाद] अर्जदार
जिला नीमाड़]
प्रेंसीडेंट म्यूनि. कमेटी मु. महेश्वर] विरुद्ध पक्ष
जिला नीमाड़]

दावा

म्यूनि० कमेटी महेश्वर का दाखला
नं. ६७/५-२-२५ कायम रहने बाबत

पी. ड. डी. सेक्रेटरी साहब के यहां से दाखला नं. ६१३/६-२-२८ का अर्जदार के विरुद्ध होने से उसकी ना खुशी से यह अर्ज सेवा में पेश करके विनती है कि

मातहत कोर्ट ने इस विषय में उपरोक्त दाखले में जो कारण बतलाया है यह योग्य नहीं है क्योंकि सूबे साहब ने जिन हुक्मों के हवाले दिये हैं वे अर्जदार विरुद्ध एक तरफा दिये हुए हैं और सर्वसाधारण लोगों को मकान बनाने की आज्ञायें कमेटी ने जनरल डिपार्टमेंट हु. नं. ५५०२/११-१२-११ के पश्चात् किले के आसपास दी हैं उसी मुताबिक अर्जदार को भी मकान बनाने की परवानगी का दा. नं. ६७/५-२-२५ दिया और इसी दाखले के आधार पर अर्जदार ने लगभग ८००) का खर्च मकान की खुर्चा और मसाला इत्यादि में कर दिया तब तक इसी प्रकार मनादी हुई नहीं इसका विचार मातहत कोर्ट ने किया नहीं ।

अर्जदार का घर किले के आसपास की पुश्ती की मिट्टी की सीमा से बाहर है और इस घर की भूमि भी म्यूनि० कमेटी की सीमा के अंदर है ऐसी दशा में अर्जदार

ने मातहत कोर्ट को मौका देखने के लिये भी लेखी विनंती की परंतु उस पर भी कुछ ध्यान नहीं दिया। और मातहत कोर्ट का हुक्म नं. २८१७/१२-७-२७ अर्जदार के विरुद्ध एकपक्षीय हुआ है इस का भी विचार हुआ नहीं.

मातहत कोर्ट ने उक्त स्थान का ऐतिहासिक महत्त्व बतलाया उस में मकान बनने की परवानगी देने से किसी प्रकार त्रुटि नहीं आती इसका भी विचार होवे.

और कारण वक्त चौकसी के निवेदन करूंगा. उपरोक्त कारणों पर न्याय के लिये कृपा दृष्टि से विचार होकर म्यूनि० कमेटी का दिया हुआ दा. नं. ६७/५-२-२५ कायम रखने की अनुकम्पा हो साथ में दाखला नं. ६१३/८-२-२८ असल वास्ते होने रद्द और मुख्तार पत्र की नकल पेश करता हूं यह विनंती।

गौरीलाल आचार्य

संचालक—महेश्वर आर्यभवन निर्माणसभा

मुख्तार—रामचन्द्र गणेश व्यास तरफे

निवास स्थान खरगोण

नोट—आज ही की तारीख में एक अर्ज मौका देखने के लिये श्रीमान् पी. ड. डी. में वर सा. की सेवा में फिर पेश की है. गौ. आ.

(२३)

५६२ ओ३म् ता. १५-३-२८
नं. ४७

सेवा में:—

श्रीमान् महामान्य मंत्री जी महोदय
आर्यप्रतिनिधिसभा राजस्थान
अजमेर.

सादर नमस्ते.

आप का कृपापत्र नं. ०३६/३-३-२८ प्राप्त हुआ और आप ने मेरा पत्र इन्दोर के दो तीन प्रतिष्ठित पुरुषों की सेवा में प्रयत्नार्थ भेजा इससे मुझे संतोषरूप आनन्द प्राप्त हुआ. परमात्मा आपकी कर्मशीलता पर सफलता दान देवे।

मैं ता. ६-३-२८ को श्री मेंबर साहब पी. ड. डी. के बंगले पर ही गया और मौका देख लेने की अर्ज दी. उन्होंने फर्माया कि हमने ६१३/६-२-२८ का दाखला अच्छा दिया जिससे आप श्रीमान् प्राइम मिनिस्टर सा के यहां अर्ज कर सको, यहां से मौका देखने का हमको हुक्म मिलने पर ही हम मौका देखेंगे तो आपके कार्य पक्ष में अच्छा होगा आदि २।

उपरोक्त अर्ज मेंबर सा. ने प्रसन्नतापूर्वक ले ली और उसी समय आकर कैबिनेट में अर्ज दी जिसकी नकल साथ में सेवार्पण है. अब जो तारीख निश्चित होकर आवेगी उस पर जाऊंगा. जहां तक बना, सेवार्थ वा कुछ फीस से एक बैरिस्टर करने का विचार करूंगा ।

मेरे स्वत: के १०८) से अधिक लगे हैं. १०।१२ बार इन्दोर गया हूं. केवल रेल मोटर तांगा भाड़ा और स्टाप खर्च किये हैं शेष मेरा निर्वाह भी मा. शिवचंद जी के यहां ठहरने से होता रहता है । मकान की बनाने की स्वीकृति मिलने पर तो रुपये एकत्र हो सकेंगे ।

इसी अंतिम कोर्ट के न्याय पर हमारी सफलता है । आश्चर्य है कि हम हर प्रकार से सच्चे है परंतु होता वही है जो आफिसरों ने ठान रखी है । कोई गृहस्थी का घर होता समाज का न होता तो कोई रुकावट आती ही नहीं । पर सत्यता युक्त मर्दानगी के कामों में सब को चकाचौंधी आती है । कभी सत्य की विजय होती ही है ।

भवदीय
गौरीलाल आचार्य
खरगोन

(२४)

ओ३म्

इंदोर २५-५-२८

सेवा में

श्रीमन्नमस्ते ।

आपका कृपापत्र स. १२२० ता. १५-५-२८ खरगोन से लौटकर प्राप्त हुआ. आज श्री माथूलाल जी ने कहा कल मिलूंगा । श्री रामस्वरूप जी अपने घर जन्मस्थान को गये हैं । प्रकरण महेश्वर भवन का इस प्रकार है केबीनेट में ता. ६-३-२८ को अर्ज किया. उन ने म्यूनिसिपल महेश्वर, डिस्ट्रिक्ट म्यू. खरगोन, पी. ड. डी. की फाइलें उस मुकद्दमे संबंधी मंगाली हैं वे केबीनेट में सम्मिलित हो गईं. मैंने ता. १५-५-२८ को अर्ज दिया तदनुसार चारीटेबल आफिस से भी फाइल मंगाने को केबीनेट से ५-४ दिनों में लिखा जावेगा. उसके आने पर पूरी फाइल पर नोट देकर केबीनेट आफिस से श्रीमान् कारभारी साहब बापना महोदय की सेवा में भेजेंगे उनकी इच्छानुसार या तो फैसला देवेंगे वा मुझ से पूछना उचित समझेंगे तो तारीख डाली जावेगी. मैं ता. ३० तक आपकी सेवा में अजमेर पहुंचना चाहता हूं २-३ दिन

विड़गच्च्यावास जा के लोटूंगा पुनः इंदोर के लिये श्रीमान् कुंवर साहब और श्रीमान् मास्टर सा. तथा मैं प्रस्थान करेंगे. श्री उपप्रधान नानूराम जी ने कहा कि एक पत्र वहां से श्री मंत्री जी महोदय श्रीमान् बापना सा. को देवें और जबाबी तार देवें कि महेश्वर समाज भवन के विषय में मिलने के लिये तारीख नियत करें तब आना सार्थक है. फाइल मैं साथ लाता हूं.

मेरा पता
गौरीलाल
श्री मा. शिवचंदजी
दलिया बाखल घर नं. ४९ इंदोर

(२५)

ओ३म्

पीपलिया
ता० २९-१२-२८

सेवा में,

श्रीमान् माननीय मंत्री जी महोदय
आ० प्र० सभा राजस्थान

सादर नमस्ते ।

आप का कृपापत्र सं ५६ ता० २१-१२-२८ ठीक समय पर पहुंचा था, मुकद्दमे की पेशी ७।१२।२८ को न हो सकने की सूचना इंदोर से मैंने अर्पण कर दी थी अतएव उत्तर देने में विलम्ब हुआ ।

श्रीमान् हरकिशन लाल जी बैरिस्टर साहब ने दूसरी तारीख पड़ने की सूचना मुझे नहीं दी है परन्तु वे इसलिये दत्तचित्त हैं, यथासंभव मैं आगामि पेशी पर चला जाऊं ! उज्जेन स्टे० यहां से २० मील है । इंदोर जाऊंगा तब सूचनार्पण करुंगा ।

एक नकशा साथ में है[1] वह अनुमान से दिशा जानने के लिये हो सक्ता है । कभी झालरा पाटन को कोई उपदेशक वा भजनोपदेशक आवें तो और उन का प्रोग्राम हमारे इधर के कस्बों के लिये आप बना सकें तो यह प्रथम अवसर होगा । मेरे पीपलिया ग्राम में तो परसों आई हुई साइकल को देखने की भीड़ लगी थी । कभी भ. उपदेशक महाशय को कृपा कर भेजियेगा.

एक नोटिफिकेशन की नकल (कदाचित् शुद्ध की होगी) आप की जानकारी के

---

१. नकशे की नकल नहीं मिली ।

लिये भेजी है ये बंधन कपटमय हैं। आर्यमार्तंड के अंक ऋषि अंक सहित मेरे लिये अभी तक बन्द ही रहे, खुल जावें तो मुझे राजस्थानीय प्रचार समाचार प्राप्त हुआ करें। मेरे योग्य सेवा के लिये आज्ञा करते रहिये।

अधिवेशन समाचार आपने भेजे मुझे सफलता और उन्नति पर अपार आनन्द प्राप्त हुआ। आर्य कुटुम्ब सहायक भंडार सभा नियत कीजियेगा उसमें पत्र द्वारा मेरी भी क्षुद्र सम्मतियें ली जाने के लिये मैं आशा करता हूं।

आप का
गौरीलाल आचार्य
पीपलिया
पोस्ट मांचलपुर
होलकर राज्य

(२६)

अत्यावश्यकीय

ओ३म्

पीपलिया
ता० १२-४-२९
नं० ७२

सेवा में,

श्रीमान् माननीय मंत्री जी महोदय
आर्यप्रतिनिधिसभा राजस्थान

सादर नमस्ते।

दिसंबर १९२८ की ६ तारीख को इंदोर में मैंने श्रीमान् हरकिशनलाल जी बैरिस्टर साहिब को मुख्तार पत्र, महेश्वर आर्यसमाज भवन के मुकद्दमे के लिये दे दिया जिसका मुकद्दमा कैबीनेट में है। ता० ७-१२-२८ की पेशी इसलिये नहीं हो सकी थी कि श्रीमान् कारभारी (प्राइम मिनिस्टर) साहब दौरे में गये थे। दूसरी ता० १९-२-२९ (मेरे पीपलिया को आजाने पर) लगाई गई। श्रीमान् बैरिस्टर साहब तो इंदौर को परित्याग करके कहीं चले गये थे मुझे ता० २५-२-२९ को उसका पता लगा। ता० २-३-२९ को ता० १९ की पेशी का परिणाम पूछने को मैंने जवाबी तार दिया। उत्तर नहीं आने पर ता० १८-३-२९ को मैंने इन्दोर जाके सूचना प्राप्त की कि मुकद्दमा खारिज हो गया। और साथ ही ता० १९-६-२९ को फैसले की नकल के लिये दर-

खास्त देकर फी और स्टांप देके श्री नांनूराम जी वर्मा ५८ आड़ा बाजार इन्दोर को नकल मिलने के लिये लिख दिया अभी तक श्री नांनूराम जी ने न जाने क्यों बिलम्ब किया है। नकल मिलने पर पुनः मुकद्दमा पेशी में लेने की दरख्वास्त भेज सकूंगा। मुझे मु० के खारिज होने का भारी खेद है। जिन बैरिस्टर सा० ने कहा था कि 'अब मैं सम्हाल लूंगा आप के आने की कोई आवश्यकता नहीं' उन्हीं ने मुझे इन्दोर त्यागने की सूचना तक न दी न मुकद्दमे के पत्र ही मुझे अभी तक लौटाये हैं। 'पराधीन सपने सुख नाहीं' क्या किया जाय। पता मैंने श्री हरिश्चन्द्र जी शर्मा से लिया है कृपा करके कागजात मेरे पास भेजने के लिये उन बेपरवाह—बैरिस्टर सा० को आप भी लिखियेगा और मैं भी लिखता हूं। किसी प्रकार पुन: पेशी में आजाने का प्रयत्न कर रहा हूं आगे जो होगा, होगा। यहां इन्दोर ६० कोस १०) मार्ग व्यय आते जाते ४ दिन सहज लगते हैं पोस्ट का भी मुझे सुख नहीं। पता:—

श्रीमान् हरकिशनलाल जी० बार एट ला०
के० आ० नारायणदास हंसराज
१० पंचकुमार रोड—दिल्ली

मुकद्दमे का नं० No १६२०—२८

आप का
गौरीलाल आचार्य
ग्राम पीपलिया
पोस्ट माचलपुर
होलकर राज्य

श्री नांनूराम जी से भी लिखिये कि इस मुकद्दमे के मध्य में कुछ न कुछ सहायता दिया करें। पहली सहायताओं के लिये धन्यवाद।

(२७)

ओ३म्

पीपलिया पो. मांचपुर
होलकर राज्य
ता० ११-६-२६
नं० ७६

सेवा में:—

श्रीमान् मंत्री जी महोदय. आर्यप्रतिनिधिसभा राजस्थान. अजमेर.

सादर नमस्ते।

ता. १६-२-२६ को श्री लाला हरकिशनलाल के कैबिनेट में उपस्थित न होने से महेश्वर आर्यभवन का मुकद्दमा खारिज हो गया। उसकी फैंसले की नकल पुनः

इन्दोर जाने पर ता. ३१-५ को मुझे मिली। आशय है कि "पेशी पर उपस्थिति न होने से मुकद्दमा खारिज किया गया और महेश्वर किल्ले के पास में हम बिल्डिंग बनाने देना नहीं चाहते"। इस पर से फिर "तपासणी अर्ज" दिया है कि हम वकील लाला के भरोसे पर रहे वे इन्दोर छोड़ गये हैं। और आपका एक तरफी न्याय समाधानकारक नहीं है। तथा अन्य मकान बन गये हैं, हमारे ही लिये रुकावट क्यों? आदि २ अर्ज लिख के दिया है।

मुकद्दमे के कागजात लाला हरकिशनलाल ले गये हैं. आप की सेवा में प्रथम विनय किये अनुसार आपने उनको पत्र दिया होगा, और भी पत्र भेजने का कष्ट कीजियेगा। मैंने इन्दोर में जिस मकान में वे रह रहे थे उस में अव्यवस्थित छोड़े हुए कागजों को ता. ३० को देखा. अपने कागज उनमें नहीं मिले।

आज्ञाकारी—गौरीलाल आचार्य

पताः—हरकिशनलालजी, बार. एट. ला.
मार्फतः—नारायणदास हंसराज। १० पंचकुमार रोड—दिल्ली।

(२८)

ओ३म्

पीपलियां
२७-११-२६

श्रीमान् मान्यवर मंत्री जी महाराज
आर्यप्रतिनिधिसभा, अजमेर

सा. नमस्ते।

मेरी छुट्टी ३ मास की मंजूर होके तो नहीं आई परंतु छुट्टी पर प्रस्थान करने की आज्ञा आ गई है. एवजी में कार्यकर्ता मास्टर साहब आवेंगे कि मैं वहां से पहले महेश्वर समाज भवन के मुकद्दमे के विषय में ज्ञात करने को इन्दोर जाऊंगा। महेश्वर और खरगोन तक जाके संभवतः १६ दि. तक इन्दोर में पुनः आ के २१ तक अजमेर में सेवा में उपस्थित होने का सङ्कल्प है।

महेश्वर समाज भवन का मुकद्दमा केबिनेट में चालू है. क्या मैं आशा करूं कि आप १ पत्र शीघ्र ही श्रीमान् भार्गव बैरिस्टर सा. के नाम पर श्रीमान् मा. शिवचंद जा ईनानी दलिया बाखल, मल्हारगंज के पते पर मुझे दीजिये ताकि मैं उनकी सेवा में जाके इस उलझे हुए कार्य को ठीक करने में उनकी सहायता ले सकूं। थोड़ी फीस ले सकूंगा।

आ. कु. स. भंडार की उपसमिति के सदस्यों की सम्मति आपके वहां भिजवाई थी. यहां केवल १ सम्मति श्री उबाना जी की आई है. यह सब अजमेर में हो सकेगा आप जोधपुर श्री देवीदयाल जी से सम्मति भेजने की ताकीद कीजिये और वा. अधिवेशन में आने को लिखियेगा।

गोरीलाल आचार्य

(२६)

२६-१-३०

श्रीमान् जी,

मैं आज रात्रि १०॥ की गाड़ी से जा रहा हूं। ता. ३०, ३१ नारायणगढ़। १ से ४ फरवरी इन्दोर। ता. ५ से ८ महेश्वर। ६ को कसरावद। १० से १३ खरगोन। ता. १४ से २० इन्दोर पश्चात् पीपलिया (पो. माचलपुर होलकर स्टेट) मेरे स्थान पर पहुंचूंगा। मेरे योग्य सेवा हो आज्ञा प्रदान करेंगे।

श्रीमान् मा. दयाशंकर जी महोदय से महेश्वर समाज भवन के विषय में लिखा लिया है. आगे की कार्यवाही यथासमय अर्पण करता रहूंगा।

आपका गोरीलाल आचार्य

सप्तम परिशिष्ट

(१)

धर्म की अधर्म पर विजय

[लघु एकाङ्की नाटक]

[यह एकाङ्की लघु नाटक महेश्वर(=भूतपूर्व इन्दौर राज्य, सम्प्रति मध्यप्रदेश) के ए. व्ही. स्कूल के बालकों ने सन् १६२१ में 'पुरस्कार वितरण समारोह' के अवसर पर अभिनीत किया था ।]

[इस एकाङ्की नाटक के पात्र]

१. सूत्रधार—
२. गंगाधर यशवन्त – महेश्वर के मुख्यमन्त्री ।
३. दत्तू—दूत (१) प्रथम गंगाधर का; फिर अहल्या बाई का ।
४. प्रशंसक—
५. दूत (२)—गंगाधर यशवन्त का ।
६. राघोवा—पेशवा का काका (चाचा) ।
७. सेनापति—राघोवा का ।
८. तुकोजी—अहल्या का सेनापति ।
६. दूत (३)—तुकोजी का ।

[(१) स्थान—महेश्वर]

सूत्रधार—स्वार्थी दोषं न पश्यति । संसार को दु:खित किया किसने ? स्वार्थियों ने !! निर्बलों अनाथों और विधवा स्त्रियों को जाल में फंसाए रखना, उनको भय दिखाना, धमकाना, बहकाना और उनकी सम्पत्ति को हरण करते जाना, यही स्वार्थियों का पापकर्म है । मैं आज इस सज्जन-समाज में महेश्वर के मुख्यमन्त्री गंगाधर यशवंत का एक छोटा सा अभिनय उपस्थित करना चाहता हूं । जिससे देवी श्री अहल्या बाई की वीरता क्षमता और दृढ कर्मण्यता का प्रचार हो, और जिससे हमारा सुधार हो । तो जाऊं और अभिनय का प्रबन्ध करूं ।

गंगाधर—दत्तू ! क्यों आये हो ? अरे कार्यों की अधिकता से मुझे स्मरण नहीं रहा, कि मैंने तुमको किस काम के लिये भेजा था ।

दूत (१) दत्तू—(प्रणाम करके) मंत्री जी ! मैंने आपका संदेश श्रीमती मातेश्वरी अहल्या बाई की चरण-सेवा में उपस्थित होकर निवेदन कर दिया । मातेश्वरी

ने उत्तर दिया है कि यह राज्य मेरे श्वसुर का है, मेरे पति का है और पुत्र का है। जब परमात्मा ने इन तीनों में से किसी राजा को भी नहीं रहने दिया, तो मेरी क्या शक्ति है कि मैं किसी बालक को गोद लेकर इस राज्य का राजा बनाऊं ? इसलिये मैं स्वतः ही इस राज्य को सम्हालूंगी।

गंगाधर—(ऊपर मुंह करके) अरे ! मैं खूब जानता हूं, वह बड़ी ही चतुर और बड़ी नीतिनिपुण स्त्री है। जब मल्हारराव युद्ध पर चले जाते थे, तब वह ईमानदारी और नीति न्याय पर ऐसी मरी जाती थी कि हमारे सरीखे नीतिकुशल मंत्रियों के होश ठिकाने आ जाते थे। किन्तु अब वह स्वतन्त्र होकर राज्य करेगी, तो हमारी दाल बिलकुल नहीं गलेगी। तो भी वह स्त्री जाति है ! हमारे रहते क्या वह महेश्वर की गद्दी पर राज्य करेगी ? कभी नहीं ! कभी नहीं !! मैं किसी बालक को राजा न बना दूं, तो मेरा नाम भी गंगाधर नहीं !!!

दत्तू—देखिये महाराज ! न्याय के ऊपर जुल्म का अधिकार सदा नहीं रह सक्ता है। महाराज ! मैं आपका दूत हूं। परंतु सत्य कहता हूं कि उस साक्षात् देवी के दर्शन करते ही उसकी सौम्य मूर्ति का प्रभाव मुझ पर ऐसा हो गया है कि मेरा बाल-बाल उसका चरण-सेवक हो गया है। भगवन् ! अबला जाति पर, जो पति और पुत्र से विहीन हो गई है उस पर, जिस को केवल ईश्वर के और किसी का सहारा नहीं है, उस निराधार पर आप जैसे नीतिप्रिय मंत्री हो करके सहायता न करेंगे ? और उलटा निर्दयता का वर्ताव करेंगे ? आप महारानी की आज्ञा का प्रतिपालन करते हुऐ राज्य-कार्य कीजिये, और संसार में यश और बड़ाई को प्राप्त कीजिये।

गंगाधर—नमकहराम ! तुझ से ऐसी सम्मति कौन पूछता है ? तू यहां से चला जा और अपने प्राणों को बचा।

दत्तू—अच्छा महाराज ! आप इतने क्रोधित क्यों होते हैं ? दूत का धर्म है कि उचित सम्मति प्रकट करे। जब आपके हृदय में न्याय के लिये भी स्थान नहीं है, तो मैं भी आपको नमस्कार करता हूं। ईश्वर आपको कल्याणकारिणी सुबुद्धि दे। (चला गया)

गंगाधर—अच्छा तो अब श्रीमंत राघोवा दादा को पत्र लिखकर उन्हीं को इस कार्य का मुखिया बनाता हूं (पत्र लिखता है)। हें ! बाहर कौन अहल्या की कीर्ति का मान करता है ?……अच्छा पहले यह तो सुन लेऊं।

प्रशंसक—अरे ! वह मर-मिटने की आन। अरे ! वह त्याग और बलिदान।
सादगी की वह ठसक महान्। देवि ! दुर्लभ है जग में आन ।।१।।

किसानों के आंसू के बूंद। प्राण में रखने की वह बान।
अकिंचन को कंचन से मान। मातु दुर्लभ है जग में आन ॥२॥

हथेली पर रख रण में प्राण। प्रजा का रमणी करती त्राण।
चरण पर गिरते शत्रु महान्। देवि ! दुर्लभ है जग में आन ॥३॥

सकल सद्‌गुण की सुन्दर खान। देश की ललनाओं की शान।
तुम्मारे सम हो तुम्हीं निदान। न जग में देखा तुम सा आन ॥४॥

अहल्या तेरे गुण के गान। जगत् में गूंज रहे सुख मान।
देश की आन, देश की शान। तुझे है बारम्बार प्रणाम ॥५॥

गंगाधर—अच्छा तो····· तेरे त्याग और बलिदान को मैं भी देखना चाहता हूं। (पत्र लिखता है)।

दूत (२)—मंत्री जी महाराज ! मैं प्रणाम करता हूं। मुझे आपने क्यों स्मरण किया है ? कृपा कर मेरे योग्य सेवा हो तो आज्ञा दीजिये।

गंगाधर—(पत्र लिफाफे में बन्द करता है) देखो ! तुम मेरे भरोसे के निजी दूत हो। पूना को चले जाओ और यह पत्र राघोवा दादा को देना।

दूत (२)—(पत्र लेकर प्रणाम करता है) जो आज्ञा महाराज ! मैं अभी प्रस्थान करता हूं। (चला जाता है)।

(पटाक्षेप)

[(२) स्थान—क्षिप्रा के उस पार]

गंगाधर—(राघोवा के सामने जाकर) मैं आपको प्रणाम करता हूं। आज हमारे अहोभाग्य हैं कि मैं दादा जी के दर्शन कर रहा हूं।

राघोवा—पधारिये, महेश्वर के मंत्री जी ! भगवान् आप का मनोरथ सफल करे। मेरे पास में अहल्या बाई का भी संदेशा पहुंचा था कि आप धन के लोभ में आकर गंगाधर का पक्ष लेते हो। किन्तु राज्य मेरे श्वसुर का है। मेरे पति का है। मेरे पुत्र का है, इसलिये अब वह मेरा है। यह मेरी इच्छा है कि मैं किसी बालक को गोद लूं अथवा न लूं। यदि आप लोग मुझको अबला जान करके अन्याय करने पर उद्यत होवोगे, तो उसके उचित फल को भोगोगे।

गंगाधर—हें ! हें ! क्या उसने हम लोगों का गुप्त भेद जान लिया ? महाराज जी ! वह बड़ी सावधान और प्रयत्नशील है। मैं समझता हूं कि अब आप उसके आगे विजय प्राप्त कभी नहीं कर सकेंगे।

राघोवा—मंत्री जी ! आपने ही तो हमको लिखा था कि मैं बहुत धन भेंट

करूंगा। और यदि इस समय आप महेश्वर पर चढ़ाई करके आ जाओगे, तो सहज में यह राज्य आप के हाथ में आ जायेगा।

दूत (२)—(राघोवा से) महाराज की जय हो ......। मैंने आपकी आज्ञानुसार जाकर अहल्याबाई से धन की मांग की। तो उन्होंने उत्तर दिया कि—'मैं अपने संचित धन पर तुलसीदल रख चुकी हूं। अब मैं उस में से कुछ भी नहीं निकाल सक्ती हूं। क्योंकि वह कृष्णार्पण हो चुका है। तथापि आप ब्राह्मण हैं। यदि दान लिया चाहें, तो प्रसन्नता से मैं तुलसी अक्षत ले संकल्प कर आपको दे सकती हूं। युद्ध में चाहे प्राण जांय तो जांय, परन्तु इस संकल्पित धन को यों ही न उठा दूंगी।

राघोवा—हां, क्या मैं दान लेनेवाला प्रतिग्रही ब्राह्मण हूं ? मन्त्री जी ! मैं समझता हूं कि मल्हार राव की पुत्रवधू को एक विधवा अवला होकर भी उसको इतना अभिमान हुआ है कि हम लोगों के आग्रह को नहीं मानती। इसलिये उसे अवश्य दवाना चाहिये। कहिये सेनापति जी ! आप की क्या राय है ?

सेनापति—महाराज जी ! आप कुछ सोच-विचार करके काम को कीजिये। क्योंकि मुझे अपने दूतों से ऐसे समाचार मिले हैं कि वह अहल्या बाई महारानी स्वतः वीर भेष धारण कर धनुष बाण तलवार हाथ में लेकर पांच सौ स्त्रियों की सेना साथ में लेकर आगे बढ़ी है। सो हे महाराज ! हमारे वीर महाराष्ट्रगण अवलाओं से युद्ध कदापि न करेंगे। स्त्रीजाति से युद्ध करके क्या हम अपने गौरव को मिट्टी में न मिला देंगे ? दूसरी बात और सुनिये, उन्होंने अपने वीर योद्धाओं में कैसी उत्तेजना भर दी है—

चाहे प्राण भले ही जाये, स्वाभिमान को ठेस न आये।
एक रोज मरना ही है जब, मरें न क्यों शुभ काज हेतु तब ॥

आगे बढ़ो देश के काज, बने रहो जग में सिरताज।
मस्तक ऊंचा कर ही चलना, रिपु का तलवा कभी न मलना ॥

भूखों मर जाना पर देखो, कभी झुकाना मत शिर देखो।
तुमको अपने प्रण की लाज, करो भूमण्डल पर राज ॥

दूत (२)—महाराज जी ! मैंने भी एक बार महारानी को अपनी सेना में कहते हुए देखा है—

धर्म वेदी पर बलिदान, कराना होगा।
सिंहपुत्रों की तरह शीश कटाना होगा ॥१॥

क्षत्रिय वीरों की भुजाओं में है कितनी शक्ति ?
मरते-मरते भी जमाने को दिखाना होगा ॥२॥

नवयुवकों की हिमायत को बढ़ाकर हिम्मत ।
वीर अर्जुन की तरह तीर चलाना होगा ॥३॥

जिसके जुल्मों के सबब मच गई घर-घर आफत ।
उस सितमगार को दुनियां से मिटाना होगा ॥४॥

'आफताब' आप की गर्दन पै रवां हो खंजर ।
सिर मगर कौम के कदमों में झुकाना होगा ॥५॥

दूत (३)—मैं श्रीमान् महामान्यवरों को प्रणाम करता हूं । सुनिये, ... श्रीमती प्रातःस्मरणीया, स्वनामधन्या देवी श्री अहल्या मातेश्वरी के सेनापति रणबांके, वीरशिरोमणि श्रीमन्त तुकोजी राव होलकर ने मेरे साथ में यह संदेशा भेजा है कि आप लोग इस क्षिप्रा नदी को पार करके इधर पधारिये । मैं आप लोगों की अगवानी करने के लिये कमर बांधे, हाथ में खड्ग लिये, दलबल सहित आगे खड़ी हूं । यदि आप आते हैं, तो सम्हलकर आना, आगा-पीछा सोच-विचार कर आना ।

सेनापति—(दूत से) आप कुछ देर बाहर जाकर ठहरो ।

दूत (३)—बहुत अच्छा । (बाहर चला गया) ।

सेनापति– हां तो महाराज ! तीसरा विचार भी सुनिये ! बड़ौदा के गायकवाड़ महाराज की बीस हजार सेना, और नागपुर के भौंसला महाराज स्वतः सेना लेकर, बाई जी की सहायता के लिये आ पहुचे हैं । अन्य दलपतियों के यहां से भी सहायताएं पहुंची हैं । न्यायपरायण पेशवा माधोराव जी ने भी पत्र के उत्तर में लिखा है कि जो कोई तुम्हारे राज्य पर पापदृष्टि करे, बिना सन्देह के तुम उसके दुष्कर्म का प्रतिफल दो । अब हे महाराज ! आपकी आज्ञा हो सो मैं करने को तैयार हूं ।

दूत (१)—महाराज ! मैं आप लोगों को प्रणाम करता हूं । श्रीमती भगवती देवी ने मुझे एक सन्देशा कहकर भेजा है । आशा है आप कृपा करके सुनियेगा ।···

(अहल्या शत्रु को सन्देश)

पाओगे बड़प्पन भला क्या अबला से लड़, जीत हो गई तो कीर्ति कौनसी कमाओगे ।
व्यर्थ ही कटाओगे सिपाहियों को आपस में, सर पर खून बेगुनाहों का चढ़ाओगे ॥

भाग्यवश मेरी तलवार ही गई जो जीत,सोचो सरकार ! तो क्या मुंह की न खाओगे।
वीरों के समाज में मिलेगी लाज बार-बार,गाज सी गिरेगी, मूंछ नीचे को झुकाओगे ॥

देती हूं प्रबोध नहीं,क्रोध भी बढ़ाती नहीं, समझो जो उचित तो विरोध पच जाने दो ।
'रसिकेन्द्र' एक बार सावधान करती हूं, कहती नहीं हूं—'प्राण मेरे बच जाने दो' ॥

वीर रमणी हूं, परवाह मरने की नहीं, चाहते समर तो, समर बच जाने दो।
आहुति जो रक्त की अखंडित अभीष्ट है, तो पावक प्रचंड करो, यज्ञ रच जाने दो ॥

राघोवा—गंगाधर ! तुम्हारी कुनीति और अदूरदर्शिता का यह जो परिणाम निकला है, उसे प्रत्यक्ष देख लो। तुमने व्यर्थ ही एक गृहकलह को उत्पन्न कर दिया है। उस महान् आत्मा बाई जी के हृदय को नहीं पहचाना। अब हमको हमारे विचार बदलने में ही भलाई है। तुम को भी चाहिये कि बाई जी के चरणों का ही आश्रय ग्रहण करो। वह क्षमामूर्ति अवश्य क्षमा प्रदान करेगी। (दूत को बुलाओ)

गंगाधर आप की सम्मति को मानकर मैं अब ऐसा ही करूंगा।

राघोवा—(दूत से) भाई ! आप तुकोजी से कह दो कि हम तो मालीराव बाबा की मृत्यु के समाचार को सुनकर बाई जी को सान्त्वना देने के लिये आ रहे हैं। परन्तु न जाने किस भय से आप लड़ने के लिये उद्यत हो उठे हैं ?

दूत (२)—यदि आप अनुग्रह और दया करके बाई जी से भेंट के लिये आये हैं, तो इतनी पचास सहस्र भीड़-भाड़ की क्या आवश्यकता है ?

राघोवा—दूत जी ! आप जाइये। हम अभी पालकी पर चढ़कर दस-पांच सेवकों के साथ तुकोजी के शिविर में आते हैं।

दूत (३)—धन्य है महाराज ! आप अवश्य पधारियेगा। वह धर्ममूर्ति भगवती देवी आप का यथोचित आदर-सत्कार कर अत्यन्त प्रसन्न होवेगी, और अपने को कृतार्थ समझेगी ॥ [पटाक्षेप]

(२)

आर्यसमाज का आत्म-सुधार

[यह 'आ. प्र. नि. सभा राजस्थान व मालवा' के आर्य-मार्तण्ड नामक पत्र के सं० १९८६ वि० के 'दीपावली अङ्क' में प्रकाशित हुआ था।]

महर्षि ने हमको आत्मिक और व्यावहारिक ज्ञान के लिये किसी का मोहताज नहीं रक्खा है। उनका उच्च आदर्श और रचना हमारे मार्ग-दर्शन के लिये सदा पर्याप्त रहेगा। आर्यसमाज को एक शरीर के तुल्य कल्पना किया जाय तो यह आवश्यक है कि इसका प्रत्येक सभासद् और परिवार शारीरिक प्रत्येक अङ्गों और नस-नाड़ियों के समान कार्य्य करे और सभासद् लोग कार्य्य करने के पूर्व कार्य्य-ज्ञानरूपी पूंजी का संग्रह करें। मैं छोटी आर्य्यसमाजों के सुधारार्थ निम्न लेख में दिग्दर्शन कराता हूं। आशा है विद्वान् लोग इस विषय पर अधिक प्रकाश डालेंगे।

(१) सहायक को भी आर्य्यसमाज में प्रवेश करते समय दस नियमों में सहानुभूति रखते हुए प्रार्थना अर्पण करना उत्तम होगा। दस नियमों की स्वीकृति में यदि किसी ने वैदिक सिद्धान्तों का ज्ञान और मान प्राप्त कर लिया हो वह आर्य, तथा यथाज्ञान और यथाशक्ति वह धर्मप्रचार भी करे तो उसे सभासद् श्रेणी में सम्मिलित कर लेना आर्यसमाज का कर्तव्य है। श्रीमान् ईश्वरदत्त जी की योजनानुसार उसे कम से कम आर्यसमाज के दस नियम, आर्य्य लघुत्रयी अर्थात् आर्योद्देश्य रत्नमाला, व्यवहारभानु, पंचमहायज्ञविधि के ज्ञान और कर्म का व्यवहार करना चाहिये। अन्तरंग-सभा के अधिकारी को आर्य वृहत्त्रयी—सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि और आर्याभिविनय के ज्ञान और कर्म को आचरित करना चाहिये। प्रत्येक सभासद् (प्रचार के लिये) अपने-अपने घर पर बाहरी भाग में नियमित समय पर सदैव (कथा के रूप में) उपर्युक्त ग्रन्थों का तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका और उपनिषदों का स्वाध्याय करते हुए अपने ज्ञान को निर्मल और अनुभवशील बनाते रहें। यहां सहायकों, सभासदों और अन्य श्रोताओं का आगमन होना चाहिये। प्रत्येक सभासद अपने सहचारी वर्ग को साथ लेकर समीपस्थ आर्यसमाज के अधिवेशनों और उत्सवों में अवश्य जावें और कार्य में भाग लेवें।

(२) आचरण सम्बन्धी विशेष नियम सभासदों के लिये बनाया जाना आवश्यक है। वास्तव में आर्यसभासद् का जो आचरण है वह संसार का आचरण है। आर्यसमाज यदि करवट बदल रहा है,यदि उन्नति की इच्छा में आतुर है तो उस महर्षि का आदर्श-चरित्र प्रत्येक सभासद् के हृदय में स्थापन करना होगा। सभासदों को सन्ध्या, हवन, आत्मचिन्तन, स्वाध्याय आदि उत्तम २ उपायों द्वारा आत्मिक विकारों को बरबस हटाते हुए यम-नियमों के पालनार्थ विवश करना होगा। यही भविष्य में आर्यों का स्वभाव प्रस्तुत होगा। इस विषय में बिना ढिलाई के निरीक्षण करना होगा। प्रेमपूर्वक वेदानुसार निबन्धों, व्याख्यानों और क्रियाओं से सभासदों की उत्सुकता और रुचि सुदृढ़ करना होगा। तम्बाकू, चाय चमचमाहट के व्यर्थ व्यय को हवन और स्वदेशी में लगाना होगा। सदाचरण के विषय में आबाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, शत्रु-मित्र, सज्जन-दुष्ट और देश-विदेश में विश्वास और श्रद्धा उत्पन्न करना होगा। निर्धन आर्यसमाज को भी सदाचार के गर्व पर प्रचार करना होगा। आर्यसमाज की यह वह चमकती हुई तलवार है जिसकी तीक्ष्ण धार में संसार के दुष्कृत्यों को साफ होने के लिये आना होगा।

(३) उपदेशक और भजनोपदेशक आर्यप्रतिनिधिसभा के अधिकार में होकर प्रान्त भर के प्रचार की नींद सभा को एकत्र करना चाहिये। इसकी व्यवस्था में प्रति-

निधिसभा की स्वीकृति से बड़ी आर्यसमाजें उपदेश रक्खें। प्रांत के विभाग में कई समाजों को संगठित करके प्रचारमण्डल स्थापन करें और सर्कल भजनोपदेशक नियत किये जावें। इनकी ६ मास में बदली हुआ करे। प्रतिनिधिसभा के पास में महोपदेशक और प्रभावोत्पादक भजनोपदेशक रहें जिनका भ्रमण बड़ी २ समाजों में और आवश्यकतानुसार निमन्त्रण आने पर उन २ स्थानों में हुआ करे।

(४) अवैतनिक उपदेशक—यह समुदाय विस्तृत होना चाहिये, जिसमें त्यागी महात्मा, संन्यासी, विद्वान् और अनुभवी पुरुष हों, इनका सम्बन्ध सीधा प्रतिनिधिसभा से रहे। गृहस्थी उपदेशक सप्ताह में १ दिन तो उपदेशार्थ बाहर जावें।

(५) संस्थाएं—आर्यसमाज का अथवा उसके प्रत्येक सभासद् का कार्य है कि वह प्रचार करे और अवसर पर लोकसेवा भी करे। जिस बड़ी आर्यसमाज के पास में अधिक सभासद् हों अथवा जो प्रचारमण्डल शक्तिशाली हों, वे प्रतिनिधिसभा से स्वीकृति प्राप्त करके अनाथालय, अछूतोद्धार, वनिता-आश्रम और पाठशालाएं खोल सकते हैं, जो आर्यसमाज रचित एक उपसमिति के आधीन रहें। परन्तु इस कार्य को विशेष उत्तेजना देना प्रचार को रोक कर गोरखधन्धे में फंसना और बदनाम होना है। स्वाभाविकता से आर्यसमाजों के पास में विधवा, अनाथ आ पहुंचते हैं। उनको आश्रम में पहुंचाना वा उनकी इच्छानुसार उत्तम सेवा कर देना आर्यसमाज का कर्तव्य होगा। अथवा हिन्दू समाज को संस्था खोलने के लिये उद्यत करके १-२ सभासद् सेवा के लिये देना होगा। छोटे आर्यसमाजों में आर्यकुमारों कुमारियों और आशावानों (चाहे मुसलमान ईसाई भी) के निमित्त लघुत्रयी और बृहत्त्रयी की परीक्षाएं जिनकी व्यवस्था प्र० सभाधीन हो. दिलाने के लिये पाठशालाएं रखना अनिवार्य हो।

(६) वार्षिक महोत्सव में सारी शक्ति लगा देने की अपेक्षा आर्यपर्वपद्धति के अनुसार त्योहारों को जोरों के साथ में मनावें। प्रति पर्व पर नगरकीर्तन अखाड़े के सहित अवश्य निकालें। ओ३म् का झंडा लेकर संगठितरूप से ईश्वर-भजन करते हुए जलाशय पर स्नानार्थ अवश्य जावें। साप्ताहिक अधिवेशन में ठीक समय पर पहुचना चाहिये, जिसमें १ प्रहर में सन्ध्या हवन कथा व्याख्यान और आवश्यकीय प्रबन्ध सरलता के पूरे हो सकें। किन्तु इस धार्मिक कृत्य के काल में अपने को अन्य कार्यों से रोक लेना विशेष महत्त्व का कार्य होगा।

(७) जातिपांति-तोड़क मण्डल के फार्मादि प्रत्येक आर्यसमाज में रहें और उन का उपयोग अपना कर्तव्य (धर्म) जान कर यथावसर अवश्य किया जाय। प्रायः देखने में आता है कि आर्य-परिवारों को कन्याएं ऐसे गृहों में व्याह दी जाती हैं कि वे अपने सिद्धान्तों और संस्कारों को परवशता से परित्याग करने में आत्मिक कष्ट पाती

हैं और आर्यों की गणना में वृद्धि के स्थान में भारी कमी सहनी पड़ती है। अनाथालय के बालक और विधवाएं भी जो आज तक आर्यसमाजों के आश्रित पोषित और शिक्षित हुए हैं, अधिक संख्या में आंखों से लोप हो जाते हैं। ये सब हमारी भूल और अव्यवस्था से उसी स्थान में जा पहुंचते हैं जहां उन्हें कारावास से बढ़कर कष्ट सहन करने पड़े थे। क्यों नहीं आर्यसमाज क्रियात्मक से इन रत्नों को अपना स्तम्भ बना लेती है। लज्जा सहनी पड़ती है जब कि कोई आर्यसभासद् भी अपने बालकों को आर्यसमाज के योग्य शिक्षित नहीं बना पाते हैं और उन बालकों को अन्य मत में शरण लेनी पडती है।

(८) श्रीमती आर्यप्रतिनिधिसभा को अधिक सुभीता होगा, यदि वह सम्पूर्ण आर्यसमाजों की परिस्थिति पर विचार करके १ से लेके ५ तक वर्ग निश्चित करके उन्नति के लिये मार्ग खुला रक्खे। प्रत्येक वर्ग की समाज को कार्य करने के अधिकार निश्चित करे। सामग्री पात्र, विछायत, पुस्तकालय, समाचारपत्रों आदि का प्रबन्ध रहे। पुस्तकालय में आ० प्र० सभा की स्वीकृत पुस्तकें ही हों। वर्गानुसार कार्यसंचालनार्थ रजिस्टर फार्म, मासिक वार्षिक फार्म, सब उपदेशकों के लिये भ्रमण वृत्तान्त मासिक फार्म, निरीक्षकों के लिये निरीक्षण फार्म छपवा के देना श्रेयस्कर होगा। आर्यप्रतिनिधिसभा के पदाधिकारी, संन्यासी, महोपदेशक, सुयोग्य वै० अवै० उपदेशक, आर्यसमाजों के आफिस वर्क, अखाड़े और संस्थाएं सदाचरण का निरीक्षण कर सकते हैं। उन्हें निरीक्षक के प्रमाण-पत्र देने उचित हैं। कुछ दिन रह कर समाज की परिस्थिति सुधार में सहायता देनी चाहिये। अनुचित कार्य-प्रणाली मेटने, समय पर आफिस कार्यालय को हस्तगत करने, पुनः संगठन तथा चुनाव करने, कलह-प्रिय सभासदों को पृथक् करने के अधिकार उनकी योग्यता और अनुभव के अनुसार देना चाहिये। पृथक् सभासद् आर्यपरिवार में रहकर समाज की सहायता कर सकते हैं और योग्य स्थिति उपस्थित होने पर पुनः प्रविष्ट हो सकते हैं। सभासदों के पृथक् करने के नियम अवश्य बनाना उचित है। सन् १९३० की ३१ जुलाई को प्रांत भर के आर्यों की मनुष्यगणना की जावे। जिसमें सहायक, आर्य, सभासद, उपदेशक, आर्यवीर स्त्री, पुरुष, कुमार, कुमारी, पठित, पठन का निर्णय निकल आवे। प्रत्येक आर्यसमाज का कार्य है कि वे आसपास ग्रामों में बसे हुए आर्य भाइयों को समाज से संगठित करें।

(९) आर्थिक स्थिति—जब सदाचारी, क्रांतिकारी और उत्तरदायी सभासद् ही आर्यसमाज का कार्य संचालन करेंगे तो उनके प्रभाव से और लोकप्रियता से द्रव्य की प्राप्ति भी होती रहेगी। आर्यप्रतिनिधिसभा के पदाधिकारी आदि भी अपना भ्रमण करेंगे। सहायकों और आर्यपरिवारों की बडी २ संख्याएं रखनी चाहिये। साप्ताहिक अधिवेशनों, त्यौहारों और संस्कारों पर यथाशक्ति कर और दशांश में मासिक चन्दे

लगाने चाहिये। तथा इसके लिये उनका धर्म दिखाना चाहिये। मासिक चन्दों का आधा भाग पर्व और संस्कारों की पूरी प्राप्ति तथा प्रचार द्रव्य आर्यप्रतिनिधि का ठीक समयों पर पहुंचाते रहना चाहिये। जिसका जिस विषय के लिये दान हो वह दाता की इच्छानुसार व्यय किया जाय। प्रत्येक द्रव्य की प्राप्ति पर रसीद अवश्य दी जाया करे। प्रत्येक सभासद् आर्यमार्तण्ड का ग्राहक बना रहे। इससे उसका व्यय-भार स्वतन्त्र रहे और सभासदों को प्रान्त भर की आर्यसमाजों से एक निकट सम्बन्ध के भाव बने रहें।

———

अष्टम परिशिष्ट

विरजानन्द आश्रम से सम्बद्ध विशिष्ट पत्र

[विरजानन्द आश्रम में ३ सितम्बर १९२१ के प्रवेश दिन से लेकर समावर्तन पर्यंत पूज्य गुरुवर्य पं. ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु का पिताजी के साथ बराबर पत्र-व्यवहार होता रहा। परन्तु मुझे पिताजी को लिखे गये पूज्य गुरुवर्य के चार ही पत्र उपलब्ध हुए हैं। उन्हें नीचे दे रहा हूं। मेरा समावर्तन संस्कार पिताजी के स्वर्गवास के पश्चात् २१-४-१९३६ को रावी पार (बारहदरी के पास) लाहौर में हुआ था। उस का जो विवरण लाहौर के ७ जून १९३६ के 'हिन्दी मिलाप' में छपा था, उसे अन्त में दे रहा हूं। यु० मी०]

(१)

ओ३म् काशी[1]

श्रीमान् पण्डित जी महाराज

नमस्ते ।। श्री पं. शङ्करदेवजी सोंगरा जि० एटा चले गये हैं। आप के बहुत से पत्र आये मैंने भी उत्तर दिये परन्तु वे सन्तोषजनक उत्तर नहीं थे इसलिये उनसे सन्तोष होता भी कैसे, मैं चाहता था कि आपको अपनी स्थिति का निश्चित विवरण ही लिखूं। जो बातें अभी विचारकोटि में ही थीं उनको लिखना अनावश्यक समझता था। अतः अब मैं आपको विस्तार से लिखता हूं।

आप को ज्ञात ही है कि हमारा सङ्कल्प काशी में कम से कम दो वर्ष रहने का था सो पूरा हो गया और दो तीन मास अधिक हो गये। जब आप यहां काशी में आये थे तब मैंने आपको सब स्थिति बतला दी थी उसी स्थिति में अब तक कार्य चलता रहा। पिछले वर्ष तीन चार महीने श्री पू. गुरु (देवनारायण) तिवारी जी महाराज के अत्यन्त आग्रह करने के कारण शुद्धि के कार्य में लगाने पड़े। उसी काल में श्री पं. शङ्करदेव जी के अधिक रुग्ण पड़ जाने और निरन्तर नौ मास काशी से बाहर रहने से मुझ पर पिछले वर्ष बहुत ही काम का भार रहा। मैं समय पर पत्र भी नहीं लिखता रहा। पण्डित जी के गूना चले जाने के पश्चात् बाहर जाना बन्द कर दिया

---

१. इस पत्र पर तारीख देनी भूल से रह गई थी। पिताजी ने इसके हाशिये पर प्राप्त ५-४-२८ लिखा है।

और पठन पाठन के कार्य में संलग्न हो गया। इन नौ या दश मास में मुझे बहुत सी कठिनाईयों का सामना करना पड़ा, जिनमें परमात्मा की ही कृपा से ही पार हो सके। श्री पण्डित जी का गूना में बीमार होना उन के लिये भी चिन्ता करना यथासमय यथा आवश्यक आर्थिक प्रबन्ध करना, उधर इतने आदमियों का प्रबन्ध, स्वास्थ्य का विचार, पठन पाठन की सारी व्यवस्था यह सब मुझे बहुत देर तक स्मरण रहेंगी, परन्तु ईश्वर की कृपा से सब काम चल ही गया। दिसम्बर में श्री पं. शङ्करदेव जी बनारस पहुंचे। मुझे आशा थी कि कोई बात नहीं कि आठ नौ मास पण्डित जी बाहर रह गये जब आवेंगे तब मुझे आराम अवश्य मिलेगा परन्तु उन्होंने यहां आकर भी अपना यह सङ्कल्प प्रकट किया कि मैं काशी से बाहर ही रहना चाहता हूं। तब 'बैजनाथ क्षत्रिय ब्रह्मचर्याश्रम' स्थान जिसके विषय में आपसे बातचीत की भी थी, पत्रव्यवहार किया। डा. बैजनाथ जी ने लिखा था कि आप आश्रम का सारा भार अपने ऊपर ले लें, परन्तु हम लोगों ने उन के विचारों को अनिश्चित सा समझकर हाथ नहीं डाला। उनके साथ पत्रव्यवहार बहुत देर तक होता रहा, अन्त में उनके अनिश्चित विचारों के कारण से ही विचार छोड़ दिया।

साधु आश्रम पुल काली नदी के प्रबन्धकर्त्ता श्री स्वामी कृपानन्द जी श्री पं. शङ्करदेव जी को साधु आश्रम पर कार्य करने को लेने के लिये काशी आये। पण्डित जी तैयार भी हो गये क्योंकि पण्डित जी यह निश्चय कर चुके थे कि हम को काशी में नहीं रहना। काशी से बाहर रहेंगे। अब मैं इसमें क्या कह सकता था, मैं यदि उनको रोकूं तो कम से कम तीस ३०) रु. मासिक का प्रबन्ध करूं तब रोकूं जिसको कि मैं कर नहीं सकता था। वे अपने स्वास्थ्य के कारण काशी में रहने को तैयार नहीं थे। उनके लिये प्रबन्ध हो जाता तो सम्भव था कि वे रह भी जाते, बाहर जाने पर उनको अपने विचार से इस प्रकार का सब सुभीता था इसलिये वे इस सुभीते के विचार से बाहर रहना ही अधिक अनुकूल समझते थे। मेरा अपना विचार तो यह रहा है कि समुदाय के काम में कुछ कष्ट भी होता है कुछ सुख भी होता है। समुदाय के कार्य चल तभी सकते हैं जब समुदाय का प्रत्यक अङ्ग समुदाय पर आये हुए कष्ट को समानता से सहन कर ले। आराम मिले तो समानता से आराम पाले। मैंने काशी में आ कर उसी दिन अपने आप को निश्चिन्त समझा कि हम काशी में कार्य चला सकेंगे कि जिस दिन मैंने सब से प्रतिज्ञा करा ली कि चाहे कुछ भी हो हम काशी में रहेंगे, सुख वा दुःख जो कुछ भी हो उसको बराबर मात्रा में बांट लेंगे। यही दृढ सङ्कल्प था कि जिसके कारण हम काशी में निर्विघ्न और आनन्द से रह सके। सिवाय एक आध मास के विद्यार्थियों को और हम सब को कष्ट भी नहीं हुआ। आर्थिक स्थिति अच्छी ही रहती रही, जिसका विवरण फिर लिखूंगा।

मेरा विचार पण्डित जी के जाने पर यह था कि हम यत्न करें और जो कुछ भी प्राप्ति हो उसी में आनन्दपूर्वक निर्वाह कर लेवें। काशी में ठहरने का इस से अच्छा साधन नहीं हो सकता। परन्तु स्वास्थ्य के कारण तथा जो कुछ कहिये पण्डित जी इस के लिये उद्यत नहीं हो सके। मैं इतना भार अपने ऊपर उठा नहीं सकता था इसलिये विवश होकर मुझे पण्डित जी के जाने पर मौन होना पड़ा। वे बहुत बल देने पर भी साधु आश्रम पर नहीं गये परन्तु दूसरे स्थान पर जि. एटा में सोंगरा में लगभग एक मास से अधिक हुआ चले गये हैं।

पण्डित जी ! आप जानते ही हैं जब से आश्रम चला है तब से ही लौट फिर कर इस बड़े भारी भार के नीचे अधिकतर मुझे ही आना पड़ा। इस समय आप सोचिये यदि मैं भी छोड़ दूं तो मेरा क्या अपराध हो सकता है क्योंकि कार्य समुदाय का था, जब समुदाय ही छिन्न भिन्न होने लगा तो मैं अकेला क्या कर सकता हूं। श्री पं. जी बीमार होकर गूना गये। मैंने उनकी बीमारी में जो कुछ खर्च पड़ा उसे किया यदि और भी अधिक करना पड़ता तो भी मेरा कर्तव्य था करना पड़ता ही, परन्तु समुदाय की रक्षा और समुदाय के भूत भविष्यत् को न सोचकर केवल अपनी अनुकूलता व प्रतिकूलता सोचने से यह इतना महान् कार्य कैसे पूर्ण हो सकता है। इन विद्यार्थियों को मैंने यह भी चाहा कि यदि श्री पं. जी सब को साथ बाहर ही ले जावें तब भी बहुत अच्छा हो परन्तु वे सब को साथ ले जाने पर भी उद्यत न थे और दो वर्ष बाहर रहने के लिये कहते थे। अन्त में मैंने उनसे कई प्रकार से बातचीत की तब यह निश्चय हुआ कि वे एक वर्ष बाहर रहेंगे। मैं विद्यार्थियों सहित काशी वा अन्यत्र रहूं उसके पश्चात् हम दोनों मिलकर कार्य करेंगे। मैंने यह भी कहा था यदि केवल स्वास्थ्य की दृष्टि से बाहर जाना चाहते हैं तो मैं जैसे आपको गूना नौ मास के लिये भेज ही दिया था उसी रूप से पुनः कुछ मास के लिये जाने की सम्मति दे सकता हूं परन्तु इस को भी उन्होंने अनुकूल नहीं समझा। अन्त में उन्होंने यही कहा कि अच्छा मैं जाता हूं मेरा आपका सम्बन्ध बना रहना चाहिये, आप मुझे जब भी लिखेंगे तब मैं आजाऊंगा। बस यही हमारी और उनकी अन्तिम बात है।

अब इस समय की जो स्थिति है आपको लिखता हूं। पिछले साल में लगभग ८०) अस्सी रुपये की आवश्यक पुस्तकें ली हैं, जिनके बिना कि कार्य चल ही नहीं सकता था। मकान का किराया १२) रु० मासिक देना ही पड़ता था। दो वर्ष का हमारे साथ सब का वचन था जो कि पूरा हो गया और उन्होंने हमको कह भी दिया कि दो वर्ष का आपका और हमारा वचन था सो पूरा हो गया अब हमारी इच्छा पर है जब कभी हमसे हो सकेगा हम सहायता कर सकेंगे। इस समय जो हमारी सहायता निश्चित है उस से अतिरिक्त रु० ५०) मासिक और चाहिये। यदि पण्डित जी हों उस

अवस्था में ९०) नब्बे रुपये और चाहिये जो मांगना हमको आता नहीं पू. श्री स्वा. महाराज से भी कहा था तो उन्होंने केवल १०) दस रु० मासिक सहायता कराने को कहा। इस सहायता से अतिरिक्त कम से कम ५०) रु० मासिक और चाहिये। यदि पण्डित जी होते तो हमारे में से कोई बाहर भी जा सकता था। परन्तु अब कैसे हो सकता है मैं एक दिन के लिये बाहर नहीं जा सकता। विद्यार्थी भी काशी के जलवायु से कुछ उदासीन हो रहे हैं। मैं काशी छोड़ना नहीं चाहता परन्तु न छोड़ने के साधन नहीं, हां इतना मैं अवश्य कर सकता हूं काशी में भी चाहे कुछ भी हो यह विचार के रहना चाहें तो रह सकते हैं। परन्तु यह सब के विचार पर ही है मेरे अकेले के विचार पर कुछ नहीं।

अब विद्यार्थियों ने तो काशी में भी जब तक भाष्य समाप्त नहीं हो जाता हमसे ही पढ़ना है। आगे जैसा होगा आगे देखेंगे। यह सब विद्यार्थियों के विचार हैं और उधर अमृतसर से एक सज्जन जिन्होंने कि हमको काशी में इन दो वर्षों में लगभग ७००) सात सौ रु० की सहायता दी और अमृतसर से आते समय भी बहुत ही आग्रह से रोकते थे वही सज्जन मुझे सब विद्यार्थियों सहित अमृतसर में बुला रहे हैं और सब विद्यार्थियों का प्रबन्ध वे स्वयं करेंगे। कोई कमेटी नहीं कोई झगड़ा नहीं केवल सेवा भाव से व्यय करने को उद्यत हैं। उन का अभी दो दिन हुए पत्र आया है कि आप तत्काल अमृतसर आजाईये। आप मुझे तार दे दें मैं आप को तार द्वारा किराये के लिये जितने भी रुपये चाहिये उतने भेज दूं। मैंने उनका कोई पूर्णतया अन्तिम निश्चय नहीं लिखा परन्तु मैं समझता हूं कि इस अवस्था में अमृतसर चला जाना ही हितकर है। आगे श्री पू. स्वामी जी जब कभी काशी में कार्य करेंगे जिसका कि अभी कोई पता नहीं कि कितना समय लगेगा जब होगा तब देखा जायेगा। अभी तक यह कार्य विचारकोटि में ही है।

एक बात आप को और लिख दूं कि आर्यसमाज फर्रुखाबाद को जायदाद दान में मिली है जिसमें पच्चास साठ हजार रुपया नकद और शेष गांव हैं जिसकी मासिक आय ६००) या ७००) के लगभग है। श्री पू. भाई परमानन्द जी से फर्रुखाबाद वालों ने कार्यकर्ताओं के लिये कहा। उन्होंने मुझे कहा कि आप और पण्डित शङ्करदेव जी फर्रुखाबाद में कार्य करो तो अच्छा है और फर्रुखाबाद वालों को भी लिखा कि आप लोगों को इससे अधिक सौभाग्य का समय नहीं मिलेगा कि इन दोनों पण्डितों को काशी से फर्रुखाबाद ले जावें।

पण्डित जी ! आप जानते हैं कि सभा सोसाइटियों के झमेलों से बहुत घबराये हुए हैं। ये जो सात या आठ विद्यार्थी हमारे साथ हैं इन पर ही हम को परिश्रम

करना पड़ेगा। मेरा विचार अमृतसर से चलने पर भी था और अब भी है कि मुझे छोड़कर के कोई विद्यार्थी चला जाय, मैं समझूंगा मेरा भार हलका हुआ। परन्तु मैं अपनी ओर से किसी को नहीं छोड़ना चाहता हूं। इसलिये फर्रुखाबाद की बात तो मेरे चित्त में नहीं बैठती। अब तो मैं उतना ही कार्य करूंगा कि जितना भार मैं अपने ही ऊपर उठा सकूं। जितने विद्यार्थी मेरे साथ हैं उनसे ज्यादह का भार नहीं उठा सकता। इसलिये मुझे अमृतसर की ओर अधिक अनुकूलता प्रतीत होती है। वास्तव में काशी में हमारे दो वर्ष अधिकतर अमृतसर निवासी सज्जनों की सहायता से सुख-पूर्वक व्यतीत हुए हैं। आपने जो इतने दिनों तक जो कुछ कष्ट उठाया है उसे मैं भूल नहीं सकता। आपकी उदारता तथा उद्देश्य के लिये सच्ची भक्ति मुझे अपने कार्य में सन्तोष का साधन प्रतीत होती रही है। चिन्ता न करिये आपका हमारा तथा हमारे पुत्रों का परिश्रम व्यर्थ नहीं जायेगा यह निश्चय है। आप अपने विचारों से विस्तार से सूचित करें जिससे कि मुझे सन्तोष हो। आप बुद्धिमान् हैं सब कुछ जानते ही हैं अपनी सम्मति विस्तार से शीघ्र ही प्रदान करें।

आपको मैं परीक्षाओं का परिणाम पीछे विस्तार से भेजूंगा अभी एक परीक्षा का परिणाम निकला है जो बहुत ही उत्तम है।

एक प्रसन्नता की बात और है कि काशी में विद्वत् परिषत् संस्कृत साहित्य समाज है जिस में बहुत से महामहोपाध्याय आचार्य शास्त्री तथा अन्य बड़े २ विद्वान् सम्मिलित हैं। काशी में इस परिषत् का वार्षिकोत्सव थोड़े दिन हुए हुआ। उसमें संस्कृत में शास्त्रार्थ हुआ जिसमें बड़े २ शास्त्री और आचार्यों ने भी भाषण किये। अपने दो विद्यार्थियों ने भी भाषण किया जिसमें प्रि. सत्यदेव ने लगभग १५ मिनट तक भाषण किया जिसमें वह सभा में दूसरे नम्बर रहा और उसको ५) पांच रुपया इनाम भी मिला। दूसरे पक्ष में किसी को भी इनाम नहीं मिला तथापि प्रि. याज्ञ-वल्क्य ने २) रु० इनाम प्राप्त किया। सबसे बड़ी बात यह कि विद्वन्मण्डली बहुत ही प्रसन्न हुई और सभा में बहुत करतल ध्वनि हुई।

तीसरी बात यह है प्रि. युधिष्ठिर और प्रि. सत्यदेव ने मिलकर खेल ही खेल में एक रेलगाडी बनाई है जिसमें सात गाड़ियां हैं एक इञ्जन है और ३५ फुट तक चलती है। काशी में कई स्थानों पर दिखाई गई है। वे लोग बहुत ही प्रसन्न होते हैं इस पर ७) रुपये इनाम भी दिया है। शेष परीक्षाओं का परिणाम पूर्ण हो जाने पर लिखा जायेगा।

शेष सब विद्यार्थी सानन्द सकुशल हैं और परीक्षाओं में लगे हुए हैं।

प्रिय युधिष्ठिर सादर नमस्ते कहता है।

भवदीय

ब्रह्मदत्त जिज्ञासु

(२)

ओ३म् काशी[1]

श्रीमान् पं. गौरीलाल जी

१· युधिष्ठि

२. भगवद्द

३. याज्ञवल

४. यश:पा

५. सत्यदेव

६. धर्मदेव

७. कृष्णान
(प्रज्ञाचक्ष

---

१. इस पत्र पर भी तारीख देनी रह गई है।

परीक्षा	१ श्री स्वा. रामानन्द जी गिरि				२ श्री पं. रुद्रदेव जी			३ श्री पू. पं. गिरीश जी शुक्ल			४ श्री पू. देवनारायण जी त्रिपाठी (तिवारी जी)			सर्वयोग	प्रतिशत
	लिखित धातुपाठ	मौखिक अष्टाध्यायी	मौखिक धातुपाठ	योग	लिखित धातु॰ अष्टा॰	मौखिक धातु॰ अष्टा॰	योग	लिखित अष्टा॰ धातु॰	मौखिक धातु॰ अष्टा॰	योग	लिखित धातु॰	मौखिक अष्टा॰ धातु॰	योग		
१. युधिष्ठिर	८८/१००	९०/१००	८०/१००	=२५८/३००	८२/१००	९०/१००	=१७२/२००	८५/१००	३५/५०	=१२०/१५०	४२/५०	७३/१००	=११५/१५०	६६५/८००	प्रथमः ८३%
२. भगवद्दत्त	९०/१००	९०/१००	७५/१००	=२५५/३००	८२/१००	९०/१००	=१७२/२००	६०/१००	३६/५०	=९६/१५०	३८/५०	७५/१००	=११३/१५०	६३६/८००	द्वितीयः ७८%
३. याज्ञवल्क्य	५५/१००	८३/१००	८०/१००	=२१८/३००	५५/१००	७०/१००	=१२५/२००	४०/१००	३६/५०	=७६/१५०	४०/५०	७०/१००	=११०/१५०	५२९/८००	चतुर्थः ६६%
४. यशःपाल	८३/१००	८०/१००	७५/१००	=२३७/३००	६५/१००	८९/१००	=१५४/२००	५५/१००	२९/५०	=८४/१५०	३८/५०	७०/१००	=१०८/१५०	५८३/८००	तृतीयः ७३%
५. सत्यदेव	अष्टाध्यायी				अष्टाध्यायी			अष्टाध्यायी			अष्टाध्यायी			५२४/७००	प्रथमः ७५%
	८५/१००	९०/१००	×	=१७५/२००	६२/१००	८५/१००	=१४७/२००	५०/१००	४०/५०	=९०/१५०	४०/५०	७२/१००	=११२/१५०		
६. धर्मदेव	९०/१००	८५/१००	×	=१७५/२००	४०/१००	७७/१००	=११७/२००	४५/१००	२५/५०	=७०/१५०	३५/५०	७१/१००	=१०६/१५०	४६८/७००	द्वितीयः ६७%
७. कृष्णानन्द (प्रज्ञाचक्षु)	×	५०/५०	×	= ५०/५०					३०/५०	=३०/५०		७० १००	= ७०/१००	१५०/२००	७५%

(२)

ओ३म् काशी[1]

श्रीमान् पं. गौरीलाल जी

नमस्ते

पूर्व भी आपको पत्र द्वारा यहां की व्यवस्था लिखी थी, परीक्षा का परिणाम आपकी सेवा में भेजता हूं. काशी के चार विद्वान् पण्डितों द्वारा परीक्षा कराई गई। जिसमें तीन पण्डित सनातनधर्मी हैं।

(१) श्री स्वामी रामानन्द जी गिरी शास्त्री व्याकरणाचार्य्य अध्यक्ष काशी देवी का मठ, प्रथम परीक्षक थे, उक्त स्वामी जी ने लिखित तथा मौखिक परीक्षा दो दिन ली।

२. श्री पं० रुद्रदेव जी वेदाचार्य्य प्रो० काशी विद्यापीठ ने भी लिखित तथा मौखिक दो दिन परीक्षा ली।

३. श्री पू० पं. गिरीश जी शुक्ल न्यायाचार्य्य दर्शनाध्यापक हिन्दू विश्वविद्यालय (हिन्दू यूनिवर्सिटी) ने भी लिखित तथा मौखिक दो दिन परीक्षा ली जो कि काशी विद्वन्मण्डली के विद्वान् हैं।

४. पूज्य श्री पण्डितवर्य्य देवनारायण त्रिपाठी जी (तिवारी जी) वैयाकरण केशरी जो कि वर्तमान में काशी के सबसे बड़े विद्वान् हैं, जिनके बराबर व्याकरण का विद्वान् भारत में अन्यथा काशी में तो कोई नहीं है. उक्त पण्डित जी महाराज ने भी लिखित तथा मौखिक परीक्षा ली।

ये दोनों अन्तिम विद्वान् काशी की संस्कृत परीक्षाओं के (जिनमें शास्त्री तथा आचार्य की परीक्षायें होती हैं, परीक्षक हैं, प्रथम दोनों भी विद्वान् परीक्षक हैं और काशी में अच्छे विद्वान् हैं, स्वर के विषय में भी जा कि बहुत कठिन समझा जाता है परीक्षा ली।

नम्बरों का ब्योरा दूसरी ओर लिखा है। ईश्वर कृपा तथा आप लोगों के कष्ट सहन करने, तथा विद्यार्थियों के परिश्रम से जो कुछ परिणाम है, सो आपके सामने है। यद्यपि हम तो अपने परिणाम के अन्त तक ही पहुंच कर अपने आपको सफल समझ सकते हैं, हां जहां तक कार्य हुआ है, वह कहां तक सन्तोषजनक है यह पता लग सकता है। यद्यपि विघ्न बहुत रहे। श्री पं० शङ्करदेव जी पिछले सम्पूर्ण वर्ष काशी से बाहर रुग्ण रहे। मैं अकेला सहायता भी जो कुछ पहुंच जावे उसी में निर्वाह,

---

१. इस पत्र पर भी तारीख देनी रह गई है।

मांगना किसी से हुआ नहीं, भेजने वालों को भी लिखने में संकोच रहा, कि आप आश्रम के विचार से या बच्चों के विचार से ही धन भेजिये। बिना कहे कोई देता नहीं, इन सब अवस्थाओं में जो कुछ हो सका वह कार्य हुआ, इसमें सब का सन्तोष होगा या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता, मैं अपने तथा बच्चों के समय को व्यर्थ नहीं खो रहा हूं इसका मुझे संतोष अवश्य है, परमात्मा करे कि आपका तथा हमारा सबका उद्देश्य पूर्ण हो।

अब आगे की व्यवस्था लिखता हूं, लगभग चार मास से हमें खर्च की तंगी रही। दो वर्ष समाप्त होने पर कुछ सज्जनों ने सहायता बन्द कर दी क्योंकि उनका वचन दो वर्ष का ही था। श्री पं० शङ्करदेव जी लगभग एक वर्ष रोगी होने पर बाहर रहे अब भी वह लगभग वर्ष भर बाहर रहे तब उनका स्वास्थ्य ठीक रह सकेगा इसी कारण वह एक मास से बाहर गये हुए हैं, मैं अकेला पठन पाठन की व्यवस्था तो करता हूं परन्तु खान पान का सब प्रबन्ध मैं नहीं कर सकता। लगभग ५०) रु० मासिक की निर्विघ्न सहायता किसी प्रकार से और मिले तब काशी में रहना हो सकता है, जिसका उपाय नहीं सूझता। इस समय निश्चित सहायता में ५०) रु० मासिक की कमी है। बाहर कई एक स्थानों से तथा अन्य कई एक संस्थाओं से भी बुलाया जा रहा है, कि विद्यार्थियों सहित आजाइये हम सब प्रबन्ध करेंगे। सब स्थानों की अपेक्षा अमृतसर ही मुझे अधिक अनुकूल प्रतीत हो रहा है, वहां एक ही सज्जन हमारा सब प्रबन्ध करना चाहते हैं। कोई झगड़ा बखेड़ा नहीं। वह सज्जन हमें काशी में भी इन दो वर्षों में भी ६००) रु० ७००) रु० की सहायता दे चुके हैं। वहां संस्था का रूप न होगा। अतः और प्रबन्ध की कोई आशा न होने से मैं अब अमृतसर जाने का विचार कर रहा हूं। सम्भव है १ एक मास में हम सब अमृतसर पहुंच जावेंगे। और कोई अनुकूल मार्ग प्रतीत नहीं होता। विद्यार्थी भी यहां के जलवायु से उदासीन हो रहे हैं अतः यह विचार और भी दृढ हो रहा है। आप अब जो कुछ समझें लिखें।

भवदीय
ब्रह्मदत्त जिज्ञासु

आप के पत्रोत्तर में पुनः लिखूंगा।
अन्तिम पङ्क्तियां तो आप को पूर्व ही लिखी जा चुकी हैं।

(३)

ओ३म् २८ श्रा० ८५

डकशाई (सिमला)

१३-८-२८

श्रीमान् पण्डित महाराज !

नमस्ते ।

आप का कृपा पत्र मुझे अमृतसर से चलते समय मिला जब कि चि. युधिष्ठिर डाक से (लुधियाना के रास्ते) अजमेर के लिये चल चुका था ।

प्रि० युधिष्ठिर समझवाला है बच्चा नहीं इसलिये उसकी इच्छा अजमेर हो आने की देख कर मैंने भी उचित ही समझा कि वह हो आवे तो अच्छा है। प्रिय युधिष्ठिर बुद्धिमान्, ऋषि के भावों को समझनेवाला, वैदिकधर्म प्रचार में उत्साही तथा कला कौशल में रुचि रखनेवाला, वैदिक साहित्य का अनुरागी है। साफ है जिस अंश में उसको सम्हालते तथा प्रोत्साहित करते रहना चाहिये उस को मैं नियमपालन रूप प्रतिबन्ध द्वारा सम्पादन करने का यत्न करता रहता हूं। उस के गुण की बातें उसे न कह कर उस की त्रुटियों का दिग्दर्शन कराता रहता हूं जिस से वह दिव्य ब्रह्मचारी, वैदिक धर्म का अपूर्व विद्वान्, जो कमियें हम में भी रहीं उन की पूर्ति करनेवाला बने। परमात्मा करें कि आपका पुरुषार्थ तथा उस की शुभकामनाएं पूर्ण हों।

अमृतसर में नगर से बाहर स्थान ८-९ कमरे, कुंवा बन गये तथा बन रहे हैं। १ मास में सब तैयार हो जायेंगे। प्रि० यु० बिगड़चियावास पहुंच चुका होगा १२ प्रातः—मैं इधर १५ दिन रहूंगा दो ब्र० मेरे साथ हैं। यहां के दृश्य तथा वायु जल अत्युत्तम कही जाती है। यहां के आर्य पुरुष हम लोगों की बहुत सेवा कर रहे हैं यहां से जाने नहीं देते। शेष कुशल है।

भवदीय

ब्रह्मदत्त जि०

द्वारा मन्त्री आर्यसमाज

डकशाई जि० सिमला

(४)

ओ३म्

श्रीमान् पण्डित जी महाराज

नमस्ते ।

पत्र आपके दोनों मिले थे । शारीरिक अवस्था मुख्यतया ठीक रहनी चाहिये यह ठीक ही है । मैं समझता हूं कि अब इस विषय में बहुत कुछ विद्यार्थियों की अपनी बुद्धिमत्ता है । इस विषय में इन को बहुत कुछ स्वतन्त्र करना अच्छा समझता हूं । क्योंकि सब की प्रकृति कुछ भिन्न २ भी होती है ।

क्या लिखा जावे संसार की गति के विपरीत चलते हैं आर्यसमाज का इस से कुछ लाभ भी होगा या नहीं यह ईश्वर ही जाने । जो आर्यसमाज के नेता कहलाते हैं वह भी नदी के बहाव में ही बहना अच्छा समझते हैं । जो प्रवाह के विपरीत यत्न करता है उस को भी डुबोना चाहते हैं यह बात अत्यन्त दुख देती है । अस्तु ।

श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज आज यहां आये थे २६-२७-२८ अक्टूबर को उदयपुर जाने के लिये अतीव आग्रह कर रहे हैं । अभी मैंने वचन तो नहीं दिया सम्भव है पांच सात दिन के बाद जाना ही पड़े । शेष कुशल है । प्रि० युधिष्ठिर सकुशल है । श्रीमान् प्रधान जी आदि सब आर्य सज्जनों को सादर नमस्ते । मेंने दो प्रति सत्संग गुटके की भेजी थीं सो प्राप्त हुई होंगीं ।

श्री पू. पा. स्वामी जी महाराज अक्टूबर के अन्त में साधु आश्रम के उत्सव पर जावेंगे । यदि बुलाना चाहें तो साधु आश्रम हरदुआगंज के पते पर पत्र लिखें ।

भवदीय

ब्रह्मदत्त जिज्ञासु

पता—द्वारा ला. रामलाल कपूर कागजों वाले

गुरु बाजार —अमृतसर

(५)

विरजानन्द आश्रम साङ्गवेदविद्यालय में

समावर्तन संस्कार हुआ

(एक संवाददाता द्वारा)

[यह हिन्दी-मिलाप, लाहौर रविवार ७ जून १९३६ को छपा था]

१० वैशाख सं० १९९३ तदनुसार ता० २१-४-३६ को **विरजानन्द आश्रम सांगवेद विद्यालय शहिदरा मिल्स (लाहौर) में ब्र० युधिष्ठिर का समावर्तन संस्कार हुआ।** यज्ञ में आश्रम के ब्रह्मचारी सत्यदेव सामवेदी द्वार सामवेद गान हुआ। आश्रम के कुलपति श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु ने आश्रम का संक्षेप से इतिहास बताया कि सन् १९०९, १० से सत्यार्थप्रकाश पढ़ने से ऋषिनिर्दिष्ट पाठविधि का विशेषकर अष्टाध्यायी का ज्ञान हुआ। स्व० श्री पूज्य गुरुवर स्वामी पूर्णानन्द जी सरस्वती महाराज की सङ्गति से उनके संन्यास प्रवेश के पश्चात् मैंने भी अष्टाध्यायी का व्रत धारण किया। सन् १९१८ तक उन की सेवा में रहा तत्पश्चात् लगभग ३ वर्ष के संग्रहणी रोग के समय में अकस्मात् साधु आश्रम हरदुआगञ्ज अलीगढ़ पहुंचा। वहां पूज्य स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज के साथ अत्यन्त विचार सङ्घर्ष के बाद अष्टाध्यायी पढ़ाने का निश्चय हुआ और श्री पूज्य स्वामी जी महाराज ने अगले ही दिन घोषणा कर दी कि जिसे अष्टाध्यायी पढ़नी हो वह यहां रहे अन्य अपना प्रबन्ध स्वयं कर लें। उसी दिन श्री पं० शङ्करदेव जी काशी से अकस्मात् वहां पहुंच गये, विचार के पश्चात् श्री पं० बुद्धदेव जी (धार निवासी) को भी श्री पं० शङ्करदेव जी के कहने से बुलाया गया और विचार विनिमय के पश्चात् तीनों का सङ्घ बना और साधु आश्रम का कार्य भार तीनों ने सम्हाला। इस तरह यह कार्य एक वर्ष तक हरदुआगञ्ज में चलता रहा, तदनन्तर अनेक स्थानों से निमन्त्रण आने पर १९२१ की दीपमालिका के पश्चात् आर्य सर्व हितकारिणी सभा के प्रबन्ध में गण्डासिंहवाला अमृतसर में यह आश्रम पहुंचा। श्री लाला गुलजारीमल जी, श्री देवप्रकाश जी तथा भक्त दुर्गादास जी आदि के प्रबन्ध से लगभग ४ वर्ष तक सुचारु रूप से आश्रम चलता रहा, पीछे से उक्त सभा में गुरुकुल और कालिज पार्टी के सङ्घर्ष के कारण इस आश्रम का प्रबन्ध न चल सका तथा कार्यकर्तृ मण्डल की त्रुटि ने भी इस में और सहायता दी। फलस्वरूप दिसम्बर सन् १९२५ में ११ विद्यार्थियों तथा २ उपाध्यायों के सहित काशी गया। लाहौर तथा अमृतसर के कुछ सज्जन यथा श्री पं० ठाकरदत्त जी अमृतधारा श्री लाला रामसाल जी कपूर श्री लाला राधाकृष्ण (शाहजादानन्द) श्री लाला बिल्लूमल

सन्तराम जी श्री लाला देवीदित्तामल जी सुजानपुर **श्री लाला मलावानन्द जी** पठानकोट **लाला मुनीलाल जी ला० बयाराम जी** काशी आदि महानुभावों के साहाय से लगभग २॥ वर्ष तक काशी में कार्य चलता रहा, सन् १९२७ में श्री पं० शङ्करदेव जी काशी छोड़ कर सोंगरा चले गये। अकेले रह जाने से कुछ मास बाद ही आश्रम को अमृतसर लाना पड़ा। स्वर्गीय श्री ला० रामलाल जी कपूर के सुपुत्र श्री लाला रूपलाल जी आदि भाइयों के अनुरोध से उन के स्थान व प्रबन्ध में **राम भवन अमृतसर** में लगभग ३॥ वर्ष चलता रहा। इस काल में श्री लाला राधाकृष्ण जी (शाहजादानन्द) श्री लाला बिल्लूमल जी सन्तराम श्री भक्त सुखदयाल जो निरन्तर सहायता करते रहे। पुनः यज्ञादि के साधनों की सुगमता के कारण **आश्रम ३॥ वर्ष के लिये काशी रहा।** अब यह आश्रम लाहौर में रावी के तट पर १ वर्ष से सांगवेद विद्यालय के रूप में उपस्थित है। इस आश्रम का प्रथम ब्रह्मचारी युधिष्ठिर यथाशकच वेद-वेदांगों का अभ्यास कर चुका है। इस आश्रम के **प्रथम सञ्चालक श्री लाला गुलजारीमल जी** तथा अन्य महानुभाव जो यहां उपस्थित हैं यदि अनुमति दें तो स्नातक बना दिया जावे। तत्पश्चात् गदगद हो श्री लाला गुलजारीमल ने कहा कि हम सब अपना बड़ा सौभाग्य समझते हैं कि जिस कार्य को हमने अमृतसर में बड़े उत्साह से आरम्भ किया था ईश्वर की महान् कृपा तथा श्री पण्डित जी के निरन्तर घोर परिश्रम के कारण इस की समाप्ति का अवसर भी प्राप्त हुआ। भाषण को प्रारम्भ रखते हुए उन्होंने कहा कि मुझे वह दिन स्मरण आते हैं कि जिस दिन गुरुकुल कांगड़ी तथा महाविद्यालय ज्वालापुर का प्रारम्भ मेरे सम्मुख हुआ, किन्तु आर्ष पाठविधि की प्यास वहां पर भी न बुझी। अकस्मात् सुजानपुर में भिक्षा करते हुए श्री पण्डित जी से भेंट हुई फिर गण्डासिंहवाला में उनके आ जाने से मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ और पाठविधि की चिराभिलाषा पूर्ण हुई जिस से हृदय गदगद होता है। इस कार्य में हम लोगों से जो सहायता हुई उसे हम अपना सौभाग्य समझते हैं।

'ब्र० युधिष्ठिर का भाषण'

श्रीमान् परम श्रद्धास्पद आचार्य जी तथा माननीय सज्जनवृन्द ! आज जो आप के सामने मैं इस रूप में उपस्थित हो रहा हूं उस का सब श्रेय श्री आचार्य जी को ही है जिनके चरणों में बैठकर मैंने गत १४ वर्ष के काल में विद्याध्ययन किया है। इस सुदीर्घ काल में आपने जो मेरे पालन-पोषण में निस्सीम कष्ट उठाया है उस से मैं इस जन्म में तो क्या अनेक जन्मों में उऋण नहीं हो सकता। एक बात और भी है कि आपने मुझे अपने चरणों में उस समय स्थान दिया जब कि आर्यसमाज की बड़ी बड़ी संस्थाओं ने गुरुकुल कांगड़ी और गुरुकुल सान्ताक्रुज बम्बई (जो कि इस समय गुरुकुल

सूपा के रूप में है) ने केवल मेरे पैर खराब होने से अपनी संस्थाओं में लेने से मना कर दिया। यदि आपकी असीम कृपा उस समय मुझ पर न होती तो मैं कम से कम संस्कृत विद्या से रहित ही होता। इस सब के लिये मैं केवल अपनी कृतज्ञता ही प्रकट कर सकता हूं। यदि मनुष्य किसी तरह से इस आर्ष-ऋण से उऋण हो सकता है तो उस का एक मात्र साधन शास्त्रों में स्वाध्याय प्रवचन कहा है। इस कार्य को मैं अपने जीवन में यथाशक्ति करता ही रहूंगा। अन्त में मैं पुनः अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हुआ अपने कथन को समाप्त करता हूं।

श्री पंडित भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर लाहौर का भाषण

श्री पण्डित भगवद्दत्त जी ने कहा कि श्री पण्डित ब्रह्मदत्त जी अपने योग्य छात्र की योग्यता का सम्भवतः इतना अनुभव न करते हों जितना मैं करता हूं। मैंने ब्रह्मचारी युधिष्ठिर जी की योग्यता के लिये व्याकरण निरुक्त मीमांसादि के गूढ सिद्धान्तों पर कई बार प्रश्न किये जिनके उत्तर सुनकर मुझे विश्वास हुआ कि ब्रह्मचारी युधिष्ठिर जी को वेदाङ्गों में असाधारण योग्यता है और अर्थशास्त्रादि जिनकी ओर संस्कृत के बड़े बड़े विद्वानों का ध्यान नहीं है ब्रह्मचारी जी ने अच्छा अभ्यास किया है। मैं इस अवसर पर स्नातक होते हुए ब्रह्मचारी युधिष्ठिर जी को बधाई देता हूं, साथ में इस कार्य की सफलता के लिये पण्डित ब्रह्मदत्त जी को भी बधाई देता हूं।

महात्मा हंसराज जी का भाषण

महात्मा जी ने बताया मुझे स्वामी जी की पाठविधि पर अत्यन्त विश्वास है। प्रारम्भ में ही हम लोगों ने अष्टाध्यायी की क्लासें खोली थीं जिनमें अनेकों व्यक्ति अष्टाध्यायी पढ़ते थे, जिसमें मैं स्वयं भी पढ़ाता था और श्री पंडित गुरुदत्त को तो इतनी धुन थी कि रात के १२ बजे तक आफिसों के क्लर्कों को अष्टाध्यायी पढ़ाते रहते थे जिस का प्रभाव उन के स्वास्थ्य पर अच्छा नहीं पड़ा। पर यह कार्य दो कारणों से सफल न हो सका। प्रथम जिन पण्डितों के द्वारा यह कार्य चलाया गया था उन्हें स्वयं अष्टाध्यायी पर विश्वास न था दूसरे पढ़ने वाले दफ्तरों के क्लर्क थे। स्वामी जी की पाठविधि में यदि किसी को सफलता हुई है तो श्री पण्डित जी ही को हुई है। ब्रह्मचारी जी को मैं बधाई देता हूं और साथ ही यह कहना उचित समझता हूं कि ब्रह्मचारी जी यह कार्य आगे जारी रक्खें और अपने आचार्य जी के नम्रता सुशीलता लगन आदि गुणों को भी धारण करें क्योंकि इसके बिना किसी व्यक्ति को किसी कार्य में सफलता नहीं हो सकती।

श्री प्रिंसिपल शिवदयालु जी एम० ए० का भाषण

प्रिंसिपल साहब ने कहा कि श्री महात्मा जी ने जो कुछ कहा है उस से मैं पूर्ण

सहमत हूं। एक बात मैं विशेष कहना चाहता हूं कि वेदों के भाष्य करने का कार्य वही व्यक्ति कर सकता है जो स्वामी जी की पाठविधि से अध्ययन करके अगाध विद्या वाला हो और ऋषि दयानन्द पर पूर्ण विश्वास रखता हो। इस के अतिरिक्त सभा सोसाइटियां कितने ही वेदभाष्य करा लेवें उसी प्रकार के होंगे जैसे ग्रिफिथ आदि के अंग्रेजी के विद्वानों के अनुवाद। मैं अमृतसर के महानुभावों तथा श्री बा० रूपलाल जी कपूर आदि को धन्यवाद देता हूं कि उन्होंने अपनी सम्पत्ति का एक अंश इस पवित्र कार्य में लगाया है।

श्री डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप जी एम० ए० डी० फिल पंजाब युनीवर्सिटी का भाषण

श्री डाक्टर जी ने महात्मा जी आदि की बातों का अनुमोदन करते हुए कहा कि यदि भारत पराधीन न होता तो इस कार्य में सर्वतोमुखी सफलता होती किन्तु आजीविका के कारण सारा देश इस लाइन पर नहीं चल सकता। इस के अतिरिक्त आजकल तो द्वादशभिर्वर्षैर्व्याकरणं श्रूयते वाली बात है। कौन इस पर इतना समय लगावे। आप यह जानकर आश्चर्य करेंगे कि जिन योरुप के स्कालरों को आप लोग अत्यन्त विद्वान् समझते हैं, वे सब अष्टाध्यायी ही पढ़कर विद्वान् बने हैं और अष्टाध्यायी के योरुप की भाषाओं में जितने भाष्य प्राप्त होते हैं उतने किसी देशी भाषा में उपलब्ध नहीं होते। आर्यसमाज को आप के कार्य से सफलता पहुंचने की संभावना है।

श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी सरस्वती का भाषण

स्वामी जी ने कहा कि ऋषि दयानन्द की पाठविधि का पागलपन आर्यसमाज के जिन थोड़े से व्यक्तियों पर सवार है, उन में से मैं भी एक हूं। मेरे विचार से देश में दो व्यक्तियों ने शिक्षा के सम्बन्ध में कार्य किया। प्रथम श्री महात्मा हंसराज जी और द्वितीय महामना मालवीय जी ने। इन दोनों का परिश्रम ऋषियों के शिक्षा के प्रचार में होता तो देश को महान् लाभ पहुंचता। किन्तु इन दोनों ने उलटे ढंग से देश में शिक्षा का नाश कर दिया। महात्मा जी की मेरे हृदय में अत्यन्त श्रद्धा है। महात्मा जी को मैं वास्तव में महात्मा ही समझता हूं।

इसी आदर के कारण मैं उन से प्रार्थना करता हूं कि अपने बिगड़े हुए काम को स्वयं शीघ्र ठीक करें। क्योंकि वे उसे ऐसा कर सकते हैं। किसी देश की सभ्यता का नाश तीन प्रकार से किया जा सकता है। प्रथम उसका साहित्य जला दिया जावे, द्वितीय दूसरे की संस्कृति का प्रचार उस देश में कर दिया जावे तीसरे उसके साहित्य का गलत अर्थ कर दिया जावे। स्वामी जी की पाठविधि पर विश्वास और ऋषि

दयानन्द जी पर पूर्ण श्रद्धा ये दो चीज जहां होंगीं उनसे आर्यसमाज तथा देश का कल्याण होगा। इस समय तक मेरी दृष्टि में दोनों भागों से पूर्ण तीन व्यक्ति आये हैं। (१) श्री पं० ब्रह्मदत्त जी (२) श्री पं० भगवद्दत्त जी (३) श्री आचार्य विश्वश्रवा: जी। ये तीनों साथ मिलकर यदि आयोजना करें और इसी प्रकार के अन्य अधिकारियों को साथ में लें तो आर्यसमाज को सफलता हो।

'श्री आचार्य विश्वश्रवा: जी का भाषण'

आचार्य जी ने कहा कि समय अधिक होने से मैं विशेष न कहूंगा। मुझे आर्ष अनार्ष दोनों पाठविधियों का अनुभव है। इस समय बड़े-बड़े नेता सब विभागों के उपस्थित हैं। दो शब्दों में एक भविष्यवाणी करता हूं। आर्यसमाज को लाभ स्वामी जी की पाठविधि से पढ़े हुए व्यक्तियों द्वारा ही होगा। और यदि आर्यसमाज को कोई हानि कभी पहुंची तो आर्यसमाज के खोले स्कूल और कालिजों के छात्रों की अपेक्षा अनार्ष पाठविधि वाले गुरुकुलों के स्नातकों से अधिक होगी।

नोट—इसके बाद उत्सव की समाप्ति हुई।

"साङ्गवेद विद्यालय की विशेषता"

इस विद्यालय में ऋषि निर्दिष्ट पाठविधि से अष्टाध्यायी महाभाष्य निरुक्त कल्प मीमांसा तथा अन्य दर्शन आदि के अध्यापन की व्यवस्था है। ऋषि दयानन्द वर्जित ग्रन्थों का सर्वथा बहिष्कार है। ऋषि दयानन्द के वेदभाष्य तथा अन्य वैदिक साहित्य का अनुशीलन हो रहा है। यहां के अध्यापक योग्य विद्वान् विना वेतन लिए अध्यापन कार्य के लिए सम्मिलित होकर रहते हैं। विना मांगे जो सहायता प्राप्त होती है उस से विद्यालय का कार्य चलता है, इस समय कार्य में स्वर्गीय श्री लाला रामलाल जी कपूर के सुपुत्र श्री बा० रूपलाल जी, बा० हंसराज जी, बा० ज्ञानचन्द जी, बा० प्यारे लाल जी विशेष सहायता है। विद्यालय के कार्यकर्त्ता बाहर से आने वाले छात्रों के भोजन आदि के प्रबन्ध का भार अपने ऊपर नहीं ले सकते। अपना प्रबन्ध करके जितने भी छात्र आर्ष पाठविधि से पढ़ने के इच्छुक हों उनके अध्यापन का प्रबन्ध हो सकता है। जो लोग यह समझते हैं कि उक्त आश्रम टूट गया, यह उनकी भूल है और साथ में जो वह समझते हैं कि आर्ष पाठविधि चल नहीं सकती, यह भी उनकी भ्रान्ति है। जिन महानुभावों को इस में सन्देह हो वह इस विद्यालय में जाकर अपनी भ्रान्ति का निवारण कर सकते हैं।

स्थायी पता—

C/o रामलाल कपूर ट्रस्ट सोसाइटी अनारकली लाहौर।

नवम परिशिष्ट

पिछले परिशिष्टों में मुद्रण होने से बचे पत्र

तृतीय प रशिष्ट 'ग' भाग का पुनर्मुद्रण

[तृतीय परिशिष्ट के 'ग' भाग में (पृष्ठ २४-२५ पर) केवल श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के पत्र ही छपे हैं। जिन पत्रों के उत्तर में श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ने पत्र लिखे थे वे भूल से छपने से रह गये। अतः हम यहां श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के साथ हुए समस्त पत्र व्यवह र को क्रमशः छाप रहे हैं।]

श्री स्वामी जी को भेजा गया पत्र

(१)

ओ३म्

महेश्वर
ज्येष्ठ सुदी ४ सं० १९७८

श्रीमान् महामान्य स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज

नमस्ते।

आपका कृपापत्र तिथि २४ ज्येष्ठ सं० १९७८ का आज पिताजी को मिला[१]। आप गुरुकुल कांगड़ी के स्थापक हो, इसलिये आपको विनय करता हूं कि आपके पत्र में पांवों के टेढ़ापन का उल्लेख नहीं है, वह तो आपको मान्य हो गया, रहा आयु का नियम, वह उचित नियम है तो भी हम कम बताने को झूंठ नहीं बोले, क्योंकि आयु अति अधिक नहीं, और क्योंकि एक प्रकार के गुरुकुल में से ही मैं निकलकर आ रहा हूं, इसलिये मेरे लिये तो आयु का नियम ढीला होवेगा।

मैं अकेला कांगड़ी पहुंचूंगा। सत्याग्रह आपकी सेवा में करूंगा, और आप मुझे प्रेम से पढ़ावें न पढ़ावेंगे, तो भी वहां से न हटूंगा। मेरे ब्रह्मचारी भाइयों की धोतियें धोऊंगा। और उनकी जय मनाऊंगा।

ब्रह्मचारी युधिष्ठिर
ए० व्ही० स्कूल
महेश्वर, होलकर स्टेट

---

१. यह पत्र तृतीय परिशिष्ट 'घ' में पृष्ठ २७ पर छपा है

(२)

श्री स्वामी जी का पूर्व मुद्रित पत्र का उत्तर

ओ३म्

गुरुकुल कांगड़ी
२ आषाढ, १९७२

प्रिय ब्रह्मचारी युधिष्ठिर,

तुम्हारा पत्र मिला।

यह नियम अनिवार्य है कि दश वर्ष की आयु समाप्त होने पर किसी बालक को प्रबन्धकर्त्री सभा भी प्रवेश की आज्ञा नहीं दे सकती, यदि तुम यहां इस पर भी आकर कुछ धरना आदि करोगे तो सत्याग्रह नहीं प्रत्युत दुराग्रह होगा। गुरुकुल कांगड़ी में तुम्हारी पढ़ाई का प्रबन्ध सभा भी नहीं कर सकती फिर मेरा तो कुछ भी वश नहीं है।

पोस्टमैन, ब्रह्मचारी युधिष्ठिर को खुद को ए. व्ही. स्कूल में देवे
महेश्वर,
होलकर स्टेट

तुम्हारा मङ्गलाभिलाषी
श्रद्धानन्द संन्यासी

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के नाम पत्र

ओ३म्

महेश्वर
आषाढ कृ० २ सं० १९७८

श्रीमान् की सेवा में नमस्ते।

मैंने आपका पत्र पिताजी को बता दिया, इन्होंने भी कहा कि सत्याग्रह के योग्य तेरी शक्ति नहीं है और दुःख यह है कि आर्यसमाज की सेवा करने के लिये मैंने कुछ नहीं पढ़ा और तुम भी सेवा नहीं कर सकोगे, सो अब मैं कहां जाऊं महाराज, आप ही बताइये। गांधी जी महाराज के पास जाऊं तो धर्म शिक्षा नहीं मिलेगी। श्रद्धा के लिये मेरे ३॥ रु० ता० २३-५-२१ ई० को पहुंच गये। अब श्रद्धा भेजना शुरु करें और नियमावली भेजें, हमारे पास नहीं है।

आज्ञाकारी बच्चा
ब्रह्मचारी युधिष्ठिर
सारस्वत ब्राह्मण
महेश्वर, होलकर स्टेट

श्री स्वामी जी के पूर्व मुद्रित पत्र का उत्तर

गुरुकुल कांगड़ी
१८-३-७८

प्रिय ब्रह्मचारी युधिष्ठिर !

नमस्ते ।

तुम्हारा पत्र पहुंचा। श्रद्धा के प्रबन्धकर्ता को कह दिया है कि उक्त पत्र को तुम्हारे पास नियम पूर्वक भेजते रहा करें।

२—कार्यालय में लिख दिया है कि गुरुकुल की नियमावली तुम्हारे पास भेज दी जावे। अपने पठन-पाठन का व्यौरा मुझे लिख कर भेजोगे और उसके विषय में सम्मति मांगोगे तो मैं लिखता रहूंगा।

अपने पिताजी को मेरी नमस्ते कहना।

तुम्हारा मङ्गलाभिलाषी
श्रद्धानन्द

(३)

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के नाम पत्र

सेवा में,

श्रीमन्महामान्य,

नमस्ते ।

श्रीमान् का कृपापत्र युधिष्ठिर को आज प्राप्त हुआ और वह विशेष आश्वासन का कारण हुआ। पठन-पाठन के विषय में आकांक्षा विनय करने इतना ज्ञान बालक को नहीं है, अतः मैं श्रीमान् की सेवा में संक्षेप में परिश्रम उपस्थित करता हूं। तथापि आशा है इस बालक के लिये आप स्वतः इच्छा को मुख्य लेकर कोई उचित स्थान सोचकर शिक्षण की व्यवस्था जमावेंगे। और हम दोनों को कृतार्थ करेंगे।

सधर्म राष्ट्रिय शिक्षण के विषय में श्रीमान् का जो अनुभव है उसके आगे मेरे विचार प्रति क्षुद्र जान पड़ेंगे। परन्तु 'महाजनो येन गतः स पन्थाः' इस उद्देश्य को लेकर मेरा विचार इसको कोई गुरुकुल आश्रम में रखने का था। विपदा भी एक ऐसी बाधा होती है कि इसके योग्य आयु में मैं कुछ कर न सका, क्योंकि उस समय केवल यह बच्चा और मैं, दो ही घर में शेष रहे, और मैं भी डेढ़ वर्ष बीमार रहा आदि कारण और होशङ्गाबाद से सान्ताक्रुज को ले जाने में दो वर्ष व्यर्थ जाना, यह

सब श्रीमती सार्वदेशिक आर्य प्रसभा को दिये हुए विनय के साथ श्रीमान् को ज्ञात हुआ होगा अब मेरी विनय श्री विरजानन्द आश्रम हरदुआगंज की सेवा में गई है, देखें इस बालक को स्वीकारते हैं कि नहीं। हार खाकर दूसरी विनय श्री भरत महा-विद्यालय ऋषिकेश की सेवा में भी भेजी थी। श्री व्यवस्थापक जी ने उत्तर दिया कि 'क्षमा करें, आपके बालक युधिष्ठिर के विषय में हम असमर्थ हैं।' मैंने सोचा था कि संस्कृत और शिल्पकला प्राप्त हो जावेगी, इतने पर से राष्ट्र की सेवा कर सकेगा। फिर मैंने बहुत कुछ निवेदन किया है कि मेरे आर्यसमाजी होने से आप इसे प्रविष्ट न करते हों तो यह आपका भ्रम है। यह सनातन (हिन्दू) धर्मावलम्बी होकर भावी जीवन व्यतीत करने को स्वतन्त्र है इत्यादि। देखें क्या उत्तर आता है।

भारत वाटिका की इन कलियों का (जो भावी पुष्प हैं) पालन और परिपुष्टता विना प्राचीन संस्कृत साहित्य ज्ञान के असम्भव है और उनमें व्याप्तरूप से सुगन्धि तब ही होगी जब वैदिक धर्म तत्त्व शिक्षा में…………

ऐसा सम्यक् विचार करके इसके लिये उचित योजना सोचियेगा और मुझे आज्ञा दीजियेगा। हरदुआगंज अथवा अन्य स्थान पर जहां श्रीमान् उचित समझें पत्र-व्यव-हार करके सिफारिश करेंगे तो इसको आश्रय मिल जावेगा। उस स्थान पर मासिक शुल्क लेने का नियम होगा तो भेजता रहूंगा।

यहां ए० व्ही० पाठशाला महेश्वर में इसने मार्च में हिन्दी अपर प्रायमरी पास किया है, अब अंग्रेजी की भाषा १८ जून से सीखने लगा है। राष्ट्रिय शाला जब… में भेजूं तो संस्कृत से अपरिचित रहेगा।

हमारी स्थिति—हमारा जीवन सादा है, इसकी माता ने भी अतिप्रेम नहीं रखा था। इसका स्वभाव ब्रह्मचारी आचरण को शीघ्र ग्रहण करने वाला है। मेरे और इसके दोनों के पांव में व्यंगता है। अवश्य ही इसका शिक्षण न हुआ तो यह पराश्रित भिक्षावलम्बी बन कर गृहस्थों को सतावेगा, अथवा मेरी तरह गुलामी में जीवन भ्रष्ट करेगा यही चिन्ता प्रतिदिन मुझे घेरे हुए रहती है। आप इस चिन्ता को काटने में समर्थ हैं, इसी से बच्चे ने पत्र-व्यवहार द्वारा श्रीमान् की शरण मान ली है।

बारम्बार विनय करके श्रीमान् के महत्कार्यों के अमूल्य समय को केवल एक ही व्यक्ति के हितार्थ नष्ट करते जाना मुझे उचित नहीं है। अतः श्रीमान् कोई भी प्रयत्न करें, शीघ्र ही करके निमटावें, मैं आजन्म आभार मानूंगा। भाद्रपद में मैं इसको

लेकर निकलूंगा और कहीं भी किसी के आश्रम में अवश्य विश्राम देऊंगा। चाहे ४-६ मास सत्पात्रता की परीक्षा में ही रहेगा।

श्रद्धा सा० पत्र और नियमावलि प्राप्त हुई।

भवदीय

गौरीलाल आचार्य

हिन्दी प्रथमाध्यापक

महेश्वर, होलकर स्टेट

श्री स्वामी जी का पूर्व मुद्रित पत्र का उत्तर

P.O. Gurukula Kangri

Distt. Bijnour

Dated 24।3।1978

महाशय !

नमस्ते।

आपका विस्तृत पत्र पहुंचा। जब आप ब्रह्मचारी युधिष्ठिर को लेकर भाद्रपद में बाहिर निकलेंगे और हरदुआगंज और ऋषिकेश इत्यादि में उसके लिए यत्न करेंगे उस समय आपने गुरुकुल भूमि में आ जाना, तो उसके पठन-पाठन विषय में मैं अपनी सम्मति भी दे दूंगा।

पत्र भेजते समय आप टिकट न भेजा करें, इसकी कुछ आवश्यकता नहीं। चिरञ्जीव युधिष्ठिर को आशीर्वाद कहिये।

आपका

श्रद्धानन्द

[साधु आश्रम हरदुआगंज (पुल काली नदी के निकट, अलीगढ़) में मेरे अध्ययन की व्यवस्था हो जाने[1] पर श्री पिता जी ने श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी को जो पत्र लिखा उसकी प्रतिलिपि प्राप्त नहीं हुई। उसके उत्तर में श्री स्वामी जी महाराज का निम्न पत्र प्राप्त हुआ]

श्री स्वामी जी महाराज का पत्र

ओ३म्

नया बाजार
देहली
ति० ७ आश्विन, १९७१

महाशय !

नमस्ते।

आपका पत्र पहुंचा। चिरञ्जीव युधिष्ठिर का ठीक प्रबन्ध हो गया, यह सुन कर सन्तोष हुआ।

श्रद्धानन्द

---

१. इसके लिये तृतीय परिशिष्ट 'भ' में संख्या ४ पर छपा पत्र देखें।

पूर्व पृष्ठ ६५ की टिप्पणी १ में निर्दिष्ट पत्र

७८६

मुहम्मद हफीजुल्ला
हफीज एस. एस. आर
अकबराबादी

पो० छोटी सादड़ी, मेवाड़
३० दिस० १९३४

करमफरमाएमन, तसलीम

आप का मोहब्बतनामा २४-१२-३४ का २८-१२-३४ को तीन बजे दिन मीला- २४ का खत २६ को मीलना चाहिए था। शायद दो दीन वहीं रोक्क गया हो—नंदवास छोड़ने बाद मुजेह सब से पहेला खता जो मीला वोह आपका हे इस में शक नहीं के- आप की मोहव्वत ओर आप का अखलाक एक हद तक वेनजिर हे- आप इस एक वाकेआ तसव्वर फरमावें के. मुजेह आप साहेवान की तरक सोहव से- काफी से ज्यादा रंज ओर अफसोस हे मास्टर- साहेव- आप इसे यकीन जान्ये के येह वात मेरे ख्वाब व खयाल में भी न थी के नंदवास जैसे मकाम पर मुजेह आप जैसे रत्न मीलेंगे ओर वक्त जुदाइ इतना सदमा होगा- सच हे- शराफत के जोहर ओर असली शरीफ छूपाए नहीं छूपते में एक मामूली दरजे का अदना ओर नाकारा इन्सान ओर आप जेसे -मोअज्जित साहेवान- ओर फिर मेरी-मेरे दरजे ओर रुतवे से बहोत ज्यादा इज्जत ओर मोहब्बत-वलके-इमदाद पर इमदाद- येह कीया कम थी इसने तो मेरी इज्जत ओर मरतबे में ओर भी "चार चांद" लगा दीए मास्टर साहेव अगर में येह कहूं के "नंदवास-एक गूदडी हे ओर उस मे आप ओर जनाव वाला अमीवसो; लाल हें" तो येह मुबालगा न होगा-इस जिन्दगी मे ऐसा संजोग- मुजेह मीलना. सीर्फ मुशकील ही नहीं बलके गेरमुमकीन ही हे खुदा जाने आप लोगों का येह वरताव मेरे दील पर कब तक असर पजिर रहेगा-में तो येह समजता हूं के जिन्दगी भर ही रहेगा- ओर येह इस वज्हे से अच्छा भी हे के-हमेशा यादगार कायम रहे मेने नंदवास ओर आप लोगों को बजाहीर छोड दीया हे- लेकीन- गोया- में हाजीर व गाएब आप साहेवान की खीदमत में नंदवास ही हूं नकशा वहां का-मेरी आंखों मे दीन रात फिरता हे ओर इस की मीसाल इस तरहा समज्ये

शेर

दील के आइने मे हे तसवीरे यार
जब जरा गरदन झुकाइ देख ली.

दून्या मे ग्राम दस्तुर हे—थाली मे भात तेरा मेरा साथ ,, कोया इमतेहां मे ने अकसर सरूर ,, जरूरत की कुछ दोस्ती हे जरूर ,, मगर येह आप साहेबान न नहीं कीया ग्रोर बेगरजाना सच्ची मोहबत रखी-वरना फिजमाना ऐसे शरीफ मीलते कहां हें— "दोहा"

सो साजन लाख मिन्त्र मजलिस मिन्त्र
१०० १०००००
अनेक दूख काटन बिपता हरन सो लाखन मे एक
१०० १०००००

गरज येह हे के मुजेह ऐसी मीसालें बहोत कम मीलेगी

मुग्राफ किज्ये मे ने ग्राप का वक्त बहोत खराव लेकीन दील से मजबुर हूं- जो कूछ समज मे ग्राया हवाले कलम कर दीया- ग्रब मुजेह उम्मीद बंधी हे के- इन ही एक बार ग्राप से फिर मिल लुं- मे २५-१२ को यहां से नंदवास रवाने होता था-लेकिन इदकरीब होने से इरादा मुलतवी रखा. ग्रब ग्रगर जिन्दगी हे तो इद के बाद १०-१२ जनवरी १९३५ तक जरूर नंदवास हाजिर होऊंगा- ग्राप इतना करम फरमाइ के एक लीफाफा रामकरन जी नरानीवाल को दे दिज्ये ग्रौर नगजीराम जी को केह दिज्ये के- मेरा जेवर जो उनके पास भी रहेन हे उसे वोह नंदवास तइयार रखें ताके रूपे देकर उन से ले लुं- बाकी खेरयत हे खुदा करे ग्राप भी बखेरो खुशी हों- "मेवाडी रसम के मुवाफीक आव भगत- सरदी ज्यादा पडती हे- शरीर को यत्न रखावें- काम काज हो सो- लीखावशी फक्त

आपका नियाजमन्द
(मुहम्मद हफीजुल्लाह)
३० दिस. १९३४

नोट:
नंदवास से लोटाए हूवे खत वगेरा
मुज को बराबर मिल रहे हें शुक्रया

चतुर्थ परिशिष्ट का छूटा हुआ पत्र

[निम्न पत्र को चतुर्थ परिशिष्ट के पत्र संख्या १२, पृष्ठ ५४ के आगे जोड़े ।]

जरूरी

(१३)

॥ श्री ॥

विद्याविभाग, इंदूर.

नम्बर १२०५ तारीख २१ माहे १२ सन १९३५

रा० रा० इन्स्पेक्टर, विद्याखातें इंदूर स्टेट, इंदूर. } ह्यांजकडून.

रा० रा. गौरीलाल, रघुनाथ आचार्य हैडमास्तर नंदवाई } ह्यांजकडेस.

संबंधी:—

पोट कागद ______

.... वि० वि० आपको सुचित किया जाता है कि आपकी ५५ साल की उम्र तारिख ५।७।३६ को होती है और उस तारिख को आपको रिटायर किया जावे इस विषय में कार्रवाई मेहरबान डायरेक्टर साहेब विद्याखाते, इंदोर. इन्हों के तरफ की गई है फक्त.

प्राप्त ता. १५।१२।३५

गौ० आ०

हस्ताक्षर अस्पष्ट

Inspector of School

Northern Division.

११।१२।३५

दशम परिशिष्ट

अध्यापन, शोधकार्य, ग्रन्थ-लेखन, प्रकाशन
तथा
प्राप्त विशिष्ट सम्मानों एवं पुरस्कारों का विवरण

अध्ययन और विवाह के अनन्तर संस्कृत वाङ्मय के रक्षण और प्रचार के लिये किये गये अध्यापन और शोधकार्य का विवरण प्रस्तुत किया जाना है—

(१) अध्यापन-कार्य

मैंने संस्कृत-वाङ्मय के अध्यापन का कार्य दो प्रकार से किया। एक किसी संस्था के साथ संबद्ध होकर और दूसरा स्वतन्त्ररूप से। यथा—

(क) सन् १९३६ से १९४२ पर्यन्त लाहौर रावी पार 'विरजानन्द साङ्गवेद-विद्यालय' में महाभाष्यपर्यन्त पाणिनीय व्याकरण और निरुक्त शास्त्र का अध्यापन कार्य किया।

(ख) सन् १९४३–४५ पर्यन्त अजमेर में रहते हुए स्वतन्त्ररूप से महाभाष्य और निरुक्त आदि का अध्यापन किया।

(ग) सन् १९४६ से ३१ जुलाई १९४७ तक लाहौर के पूर्व निर्दिष्ट विद्यालय में अध्यापन कार्य किया।

(घ) सन् १९४७ से देश-विभाजन के पश्चात् सन् १९४७ के अन्त से १९५० के आरम्भ तक अजमेर में रहते हुए स्वतन्त्ररूप से व्याकरणशास्त्र का अध्यापन करता रहा।

(ङ) सन् १९५०–५५ के आरम्भ तक लाहौर से स्थानान्तरित 'विरजानन्द साङ्गवेद-विद्यालय' अपर नाम 'पाणिनि महाविद्यालय' (मोतीझील) वाराणसी में अध्यापन कार्य किया।

(च) सन् १९५५ से १९५९ के आरम्भ तक देहली में स्वतन्त्ररूप में शास्त्री और संस्कृत एम० ए० के छात्रों को पढ़ाता रहा।

[सन् १९५९ के मई मास से सन् १९६१ तक 'महर्षि दयानन्द स्मारक महालय' टंकारा में शोधकार्य किया।]

(छ) सन् १९६२ से १९६६ तक अजमेर में अष्टाध्यायी, महाभाष्य, निरुक्त, पूर्वमीमांसा तथा कात्यायन श्रौतसूत्र आदि का स्वतन्त्ररूप से अध्यापन करता रहा।

(ज) सन् १९६७ में केन्द्र द्वारा भुवनेश्वर (उड़ीसा) में स्थापित 'सांध्य संस्कृत महाविद्यालय' में ३ मास तक (८०० रु० मासिक तथा मंहगाई भत्ता) आचार्य पद पर कार्य किया। वहां का जलवायु स्वास्थ्य के अनुकूल न होने से मुझे यह स्थान छोड़ना पड़ा।

(झ) जुलाई १९६७ से रामलाल कपूर ट्रस्ट बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा) में पाणिनि विद्यालय में यथासंभव अध्यापन कार्य कर रहा हूं।

विशेष—ख—घ—च—छ निर्दिष्ट कालों में घर पर अध्ययनार्थ आये हुये छात्रों को निःशुल्क पढ़ाता रहा।

(२) शोध-कार्य

शोध कार्य का आरम्भ—मैंने छात्रावस्था में सन् १९३० से ही शोधकार्य आरम्भ कर दिया था। तब से अब तक निरन्तर इस कार्य में संलग्न हूं।

अध्ययन के पश्चात् सन् १९३७ से जो शोधकार्य किया, वह दो प्रकार का है। एक किसी संस्था से संबद्ध होकर, दूसरा स्वतन्त्ररूप से।

(क) सन् १९३६ से १९४२[1]; १९४६ से ३१ जुलाई १९४७[2] तथा १९५० से १९५५[3] के आरम्भ तक 'विरजानन्द साङ्गवेद-विद्यालय' लाहौर में अध्यापन कार्य के साथ-साथ श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा क्रियमाण शोधकार्य में सहयोग देता रहा।

(ख) सन् १९४२ से १९४५[4] तक 'परोपकारिणी सभा अजमेर' का कार्य करते हुये अथर्ववेद (सं० २००१ षष्ठ सं०) और सामवेद (सं० २००४ षष्ठ सं०) का विशिष्ट संशोधन कार्य किया (सभा की नीति के अनुसार मेरे द्वारा शोधित संस्करणों पर मेरा नाम नहीं दिया गया)।

(ग) सन् १९४८ से १९५१[5] के आरम्भ तक 'आर्य साहित्य मण्डल अजमेर' में कार्य करते हुये श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती विरचित व्याकरण सम्बन्धी वेदाङ्ग-प्रकाश के १४ भागों का संशोधन कार्य किया। [इनका मुद्रण मेरी अनुपस्थिति में होने के कारण ये ग्रन्थ शुद्ध नहीं छपे।]

---

१. ३५ रुपया मासिक पर। २. ११० रुपया मासिक पर।
३. २०० रुपया मासिक पर। ४. ८० रुपया मासिक पर।
५. ८० रुपया से १०० रुपया मासिक पर।

(घ) सन् १९५५-१९५८[1] तक क्षीरस्वामी विरचित पाणिनीय धातुपाठ की प्राचीनतम व्याख्या **क्षीरतरङ्गिणी** का सम्पादन, तथा **वैदिकछन्दोमीमांसा** का लेखन-कार्य रामलाल कपूर ट्रस्ट की ओर से किया।

(ङ) सन् १९५९-१९६१[2] तक महर्षि दयानन्द स्मारक महालय टङ्कारा (सौराष्ट्र) द्वारा अनुसन्धान विभाग के अध्यक्ष के रूप में अनुसन्धान कार्य किया। इस काल में स्वामी दयानन्द सरस्वती विरचित ४० ग्रन्थों में उद्धृत तथा व्याख्यात २५ पच्चीस सहस्र वचनों की सूची तैयार की (यह प्रकाशित नहीं हुई)। पंजाब की शास्त्री परीक्षा में नियत श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती के यजुर्वेद भाष्य के नियत अंश का सम्पादन तथा प्रकाशन, और गोपथ ब्राह्मण के कुछ भाग के अनुवाद और व्याख्या का कार्य किया।

(च) १३ अप्रैल १९६१ के दिन मैंने कतिपय मित्रों के सहयोग से अजमेर में **भारतीय प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान** की स्थापना की। और उसके उद्देश्य के अनुसार शोधकार्य तथा संस्कृतवाङ्मय के प्राचीन दुरूह ग्रन्थों (महाभाष्य निरुक्त पूर्वमीमांसा) का अध्यापन कार्य आरम्भ किया। १ मार्च १९६३ से अन्य सब कार्य छोड़कर एकमात्र इसी कार्य में संलग्न हो गया। तब से सन् १९६६ तक अनेक ग्रन्थ लिखे, वा प्राचीन ग्रन्थों के सम्पादन वा प्रकाशन का कार्य किया।

(छ) १९६५ के आरम्भ से जनवरी १९६७ तक अजमेर में रहते हुये रा० क० ट्र० का कार्य करता रहा; उसके लिये २०० रु० मासिक ट्रस्ट देता रहा। जु० १९६७ से १९७३ तक ४०० रु० मासिक, तत्पश्चात् जुलाई १९७६ तक ५०० रु० मासिक, तदनन्तर ३०० रु० मासिक, और सन् १९७७ से कुछ भी मासिक न लेकर आज तक रामलाल कपूर ट्रस्ट बहालगढ़ (सोनीपत हरियाणा) में शोध कार्य कर रहा हूं। इस काल में अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों को सम्पादित करके प्रकाशित किया है।

(ज) रामलाल कपूर ट्रस्ट का कार्य करते हुये मैंने वैदिक आर्ष-वाङ्मय के प्रकाशन और प्रचार के लिये कई ग्रन्थों का सम्पादन एवं हिन्दी व्याख्या लिखकर श्री चौ० नारायणसिंह प्रतापसिंह धर्मार्थ ट्रस्ट (करनाल), द्राक्षादेवी प्यारेलाल धर्मार्थ ट्रस्ट (देहली) तथा सावित्री देवी बागड़िया धर्मार्थ ट्रस्ट (कलकत्ता) के द्वारा प्रकाशित करवाया। और स्वयं भी अनेक ग्रन्थ प्रकाशित किये।

सन् १९६१ से आज तक लिखे गये शोध ग्रन्थों और सम्पादित ग्रन्थों का वर्णन आगे किया जायेगा।

---

१. इस अवधि में १०० मासिक रा० ला० क० ट्रस्ट और १०० पं० भगवद्दत्त जी देते थे। २. ३०० रु० मासिक पर।

विशिष्ट शोधपूर्ण लेख

मेरे संस्कृत-वाङ्मय विशेषकर वेद और व्याकरणविषय में जो शोधपूर्ण अनेक लेख संस्कृत और हिन्दी में प्रकाशित हुये, उनमें से कतिपय विशिष्ट लेख इस प्रकार हैं—

संस्कृतभाषा में निबद्ध लेख—

१. **मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्**—इत्यत्र कश्चिदभिनवो विचारः। इस निबन्ध में **'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्'** इस सूत्र पर ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वथा नये रूप में विचार किया है। वेदवाणी (वाराणसी) मासिक पत्रिका में यह लेख छपा था।
सन् १९५२

२. **वैदिकछन्दःसंकलनम्**—इस लेख में निदानसूत्र, उपनिदानसूत्र, पिङ्गल छन्दःशास्त्र, ऋक्प्रातिशाख्य, ऋक्सर्वानुक्रमणी आदि ग्रन्थों में वैदिक छन्दःसम्बन्धी जितने भेद-प्रभेद दर्शाये हैं, उन सब का संकलन किया है। यह लेख 'सारस्वतीसुषमा' (वाराणसी) वर्ष ९ अंक १,२ में प्रकाशित हुआ। सन् १९५४

३. **ऋग्वेदस्य ऋक्संख्या**—ऋग्वेद की ऋग्गणना सम्बन्धी मतभेदों का विवेचन। यह 'सारस्वती सुषमा' (वाराणसी) वर्ष ९ अंक ३,४; वर्ष १० अंक १–४ में छपा है। सन् १९५५

४. **यजुषां शौक्ल्यकार्ष्ण्यविवेकः**—इस लेख में यजुर्वेदसम्बन्धी शुक्लकृष्ण भेदों की मीमांसा की है। यह सारस्वती-सुषमा (वाराणसी) वर्ष ११ अंक १–२ में छपा है। सन् १९५६

५. **काशकृत्स्नीयो धातुपाठः**—इस में कन्नड लिपि में कन्नडटीका सहित प्रकाशित काश-कृत्स्न धातुपाठ का परिचय दिया है। यह 'संस्कृत रत्नाकर' (देहली) पत्रिक के वर्ष १७ अंक १२ में छपा है।

६. **अष्टाध्याय्या अर्धजरतीया व्याख्या**—इसमें अर्वाचीन वैयाकरणों द्वारा की गई अष्टाध्यायी की आलोचना की है। 'सारस्वती सुषमा' (वाराणसी) भाद्र संवत् २०१७। सन् १९६०

७. **भारतीयं भाषा-विज्ञानम्**—भाषाविज्ञान के सम्बन्ध में भारतीय मत की विवेचना। यह लेख बड़ोदा की 'संस्कृत विद्वत्सभा' में अगस्त १९६० में पढ़ा था। 'गुरुकुल पत्रिका' के मई, जून, जुलाई के अंकों में प्रकाशित। सन् १९६१

पुनः परिशोधितरूप में यह लेख 'अखिल भारतीय संस्कृत परिषद्' लखनऊ से प्रकाशित **'ludwik sternbach filicitation volume'** में छपा था।

८. आदिभाषायां प्रयुज्यमानानाम् अपाणिनीयप्रयोगाणां साधुत्वविवेचनम्—इस लेख में संस्कृतभाषा के प्राचीन आर्ष ग्रन्थों में प्रयुज्यमान अपाणिनीय पदों के साधुत्व की विवेचना की है। 'वेदवाणी' (वाराणसी) वर्ष १४ अंक १, २, ४, ५ में प्रकाशित। सन् १९६१–६२

९. वेदानां महत्त्वं तत्प्रचारोपायाश्च—यह लेख 'राजस्थान संस्कृतसम्मेलन' (१९६६) के भीलवाड़ा (राज०) के अधिवेशन के अवसर पर वेदपरिषद् के सभापति-भाषण के रूप में पढ़ा था (सम्मेलन द्वारा मुद्रित)। यह लेख गुरुकुल-पत्रिका के अंकों में और संस्कृत-रत्नाकर में भी प्रकाशित हुआ। सन् १९६६

१०. संस्कृतभाषाया राष्ट्रभाषात्वम्—यह लेख 'राजस्थान संस्कृत सम्मेलन' के भीलवाड़ा अधिवेशन (सन् १९६६) के अवसर पर प्रकाशित स्मारिका में छपा है। यह अगस्त सितम्बर अक्टूबर सन् १९६६ की 'गुरुकुल पत्रिका' में भी छपा है। सन् १९६६

११. असाधुत्वेनाभिमतानां संस्कृतवाङ्मये प्रयुक्तानां शब्दानां साधुत्वासाधुत्व-विवेचनम्—यह लेख 'अखिल भारतवर्षीय संस्कृतसाहित्यसम्मेलन' के अक्टूबर १९६६ के देहली अधिवेशन में पढ़ा गया था। यह अप्रेल मई १९६७ की 'गुरुकुल-पत्रिका' में छपा है। सन् १९६७

१२. श्रीमद्भगवद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनो वेदभाष्यस्य वैशिष्ट्यम्—यह लेख 'आर्यप्रतिनिधि सभा राजस्थान' की हीरक जयन्ती के अवसर पर 'वेद-सम्मेलन' अजमेर (नवम्बर १९६६) में पढ़ा था। यह 'गुरुकुल पत्रिका' के जनवरी फरवरी के अंक में छपा है। सन् १९६७

१३. वेदसम्मेलनस्याध्यक्षीयं भाषणं—'राजस्थान संस्कृत परिषद्' के अजमेर नगर में १८-१९ मार्च १९७५ में हुये द्वितीय अधिवेशन में वेदसम्मेलन के अध्यक्ष का भाषण, परिषद् द्वारा मुद्रापित। सन् १९७५

१४. विलुप्तानां परःसहस्राणां संस्कृत-शब्दानां समुद्धारे अष्टाध्याय्याः साहाय्यम्—यह लेख पूना विश्वविद्यालय, पूना में ९-१४ जुलाई १९८१ में समायोजित 'इण्टर-नेशनल सेमिनार ओन पाणिनि' में पढ़ा था। इसे छपवाकर उस समय उपस्थित विद्वानों में बांटा था। सन् १९८१।

१५ किं यास्कीय-निर्वचनानि उन्मत्तगीतानि ? यह लेख बनारस विश्व-विद्यालय वाराणसी में २१-२६ अक्टूबर १९८१ में समायोजित 'पञ्चम–विश्वसंस्कृत-सम्मेलन' के अवसर पर पठनार्थ भेजा था और छपवा कर बंटवाया था। सन् १९८१

१६. वेदानां पुनः प्रसारोपायाः—यह लेख 'महर्षि दयानन्द निर्वाण-शती स्मृति' ग्रन्थ में छपा है। सन् १९८३

१७. सोमयागे वृष्टिविज्ञानम्—यह सन् १९८६ में वैदिकसंशोधन मण्डल, पूना द्वारा आयोजित 'यज्ञ-विचार-सत्र' में पढ़ा था। सन् १९८५

इसका परिष्कृत रूप 'दी अडियार लायब्रेरी बुलिटिन' १९८६, गोल्डन जुबिली वाल्यूम में छपा। सन् १९८६

१८. पूर्वमीमांसाया रथकाराधिकरणम्—Acharya Udayavira Shastri Felicitation Volume में छपा है। सन् १९८६

हिन्दी में निबद्ध लेख—

१. श्रौत-यज्ञों की वैदिकता—यह लेख आगरा से प्रकाशित होने वाले 'दिवाकर' पत्र के 'वेदाङ्क' में छपा है। सन् १९३५

२. महाभाष्य से प्राचीन अष्टाध्यायी की सूत्रवृत्तियों का स्वरूप। 'ओरियण्टल मेगजीन' (लाहौर) में छपा। सन् १९३९

३. वेद के अनुक्रमणीसंज्ञक ग्रन्थ और तत्प्रतिपादित ऋषि देवता-छन्दों पर विचार—'दयानन्द-सन्देश' (देहली) में छपा। सन् १९३९

४. ऋग्वेद की ऋक्संख्या—प्रथमवार, 'वैदिकधर्म' (औंध—जि० सातारा) में छपा। सन् १९४४

परिष्कृत संस्करण 'सरस्वती' (प्रयाग) में छपा। सन् १९५०

५. महाभाष्य के टीकाकार आचार्य भर्तृहरि—'जर्नल आफ दि यूनाइटेड प्रोवेंसिस्। हिस्टोरिकल सोसायटी' (लखनऊ) सन् १९४८

६. सामस्वराङ्कनप्रकार—सामवेद की मन्त्रसंहिता और उसके पदपाठ में प्रयुक्त स्वराङ्कन की सोदाहरण व्याख्या। 'वेदवाणी' (वाराणसी) सन् १९४९

७. संस्कृत-व्याकरण का संक्षिप्त परिचय—'कल्याण' पत्रिका (गोरखपुर) के 'हिन्दूसंस्कृत' अंक में छपा। सन् १९५०

८. आचार्य पाणिनि के समय विद्यमान संस्कृत वाङ्मय—'सरस्वती' (प्रयाग) में छपा। सन् १९५०

९. ऋग्वेद की कतिपय दानस्तुतियों पर विचार—'वेदवाणी' (वाराणसी) में छपा। सन् १९५२

१०. दुष्कृताय चरकाचार्यम्—मन्त्र पर विचार—'वेदवाणी' (वाराणसी) में छपा। सन् १९५२

यह लेख A Comperative & Analytical study of the vedas में भी छपा है।

११. दशमे मासि सूतवे—मन्त्र पर विचार—यह लेख 'कल्याण' पत्रिका (गोरखपुर) के 'बालक अंक' में छपा। सन् १९५३

१२. भारतीय संस्कृति में नारी—'सम्मेलन पत्रिका' (प्रयाग) सन् १९५३

१३. वेद-प्रतिपादित आत्मा का शरीर में स्थान—'वेदवाणी' (वाराणसी) में छपा। सन् १९५३

परिष्कृत संस्करण 'सरस्वती' (प्रयाग) में सन् १९५५

१४. वेदार्थ की विविध प्रक्रियायों का ऐतिहासिक अनुशीलन—'वेदवाणी' (वाराणसी) में छपा। सन् १९५४

१५. जैनेन्द्र व्याकरण और उसके खिल-पाठ—'काशी ज्ञानपीठ' द्वारा प्रकाशित जैनेन्द्रमहावृत्ति के आरम्भ में मुद्रित। सन् १९५६

१६. मूल पाणिनीय शिक्षा—इसमें पाणिनीय शिक्षा के विविध पाठो की विवेचना करके सूत्रात्मक शिक्षा के प्रामाण्य का प्रतिपादन किया है। 'साहित्य' पत्रिका (पटना) में छपा। सन् १९५९

१७. काशकृत्स्न व्याकरण और उसके उपलब्ध सूत्र—चन्नवीर कवि कृत काशकृत्स्न धातुपाठ की कन्नड टीका के आधार पर काशकृत्स्न व्याकरण का परिचय तथा उसमें उद्धृत १३५ सूत्रों की व्याख्या सहित। 'साहित्य' (पटना)। सन् १९६०,६१

संस्कृत ग्रन्थों का सम्पादन और अनुवाद

१. निरुक्त-समुच्चयः—वररुचिकृत यह नैरुक्त सम्प्रदाय का प्रमुख ग्रन्थ है। निरुक्त टीकाकार स्कन्दस्वामी ने इसे बहुत स्थानों पर उद्धृत किया है। इसके एकमात्र अशुद्धि-बहुल व त्रुटित हस्तलेख से सम्पादन कार्य किया है। 'ओरियण्टल मेगजीन' (लाहौर) में प्रथम बार प्रकाशित हुआ। सन् १९३८

द्वितीय संस्करण सन १९६५

तृतीय संस्करण सन् १९८३

२. भागवृत्ति-संकलनम्—अष्टाध्यायी की अति प्राचीन विलुप्त 'भागवृत्ति' नाम्नी वृत्ति के शतशः पाठ प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। मुद्रित तथा लिखित लगभग २०० ग्रन्थों का पारायण करके इस वृत्ति के पाठों का संकलन करके टिप्पणियों के सहित प्रकाशित किया है। प्रथम संस्करण 'ओरियण्टल मेगजीन' (लाहौर)। सन् १९४०

परिष्कृत संस्करण (सारस्वती सुषमा, काशी) सन् १९५५

परिवर्धित ,, (पुस्तकरूप में) सन् १९६५

३. दशपाद्युणादिवृत्तिः—पाणिनीय व्याकरण सम्प्रदाय में यह वृत्ति अत्यन्त प्रामा-

णिक मानी जाती है।[1] परन्तु इसके हस्तलेख अति दुर्लभ हो गये हैं। अत्यन्त प्रयास से इसके विविध स्थानों से अनेक हस्तलेख उपलब्ध करके शतशः अन्यग्रन्थों के साहाय्य से इस वृत्ति का सम्पादन किया है। आरम्भ में ५५ पृष्ठों में संस्कृत भाषा में उणादि-सूत्र और उनकी वृत्तियों का इतिहास लिखा है। यह वृत्ति राजकीय संस्कृत महा-विद्यालय वाराणसी (वर्त्तमान संस्कृत विश्वविद्यालय) की 'सरस्वती-भवन ग्रन्थावली' में प्रकाशित हुई है। सन् १९४२

द्वितीय संस्करण,[2] सहसम्पादक—पं० चन्द्रदत्त शर्मा। सन् १९८७

४. शिक्षा-सूत्राणि—आचार्य आपिशलि, पाणिनि और चन्द्रगोमी के मूलभूत शिक्षासूत्रों का सम्पादन तथा प्रकाशन। सन् १९४६

परिष्कृत वा परिवर्धित संस्करण। सन् १९६७

५. क्षीर-तरङ्गिणी—पाणिनीय धातुपाठ के औदीच्य पाठ पर क्षीरस्वामी विरचित क्षीरतरङ्गिणी नाम्नी सबसे प्राचीन व्याख्या का सम्पादन। इसमें लगभग ७०० महत्त्वपूर्ण टिप्पणियों में अनेक विषयों का स्पष्टीकरण किया है। आरम्भ में संस्कृत में ४० पृष्ठों में पाणिनीय धातुपाठ और उनके व्याख्या-ग्रन्थों का इतिहास लिखा है। (रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित)। सन् १९५८

द्वितीय संस्करण—पुनः परिशोधित। सन् १९८५

६. दैवं पुरुषकारवार्त्तिकोपेतम्—पाणिनीय धातुपाठ पर प्राचीन अति प्रामाणिक ग्रन्थ का विविध प्रकार की लगभग ६५० टिप्पणियों के साथ सम्पादन तथा प्रकाशन। सन् १९६२

७. काशकृत्स्न-धातुपाठ—की चन्नवीर कविकृत कन्नड टीका का संस्कृत रूपान्तर तथा सम्पादन। **उत्तर प्रदेश सरकार से पुरस्कृत।** सन् १९६५

८. काशकृत्स्न-व्याकरणम्—काशकृत्स्न-व्याकरण का परिचय, तथा उपलब्ध १३५ सूत्रों की संस्कृत में व्याख्या। सन् १९६५

---

१. प्रथम संस्करण के समय उपलब्ध हस्तलेखों के अन्त में वृत्तिकार का नाम निर्दिष्ट न होने से वृत्तिकार का नाम नहीं दिया है। द्वितीयावृत्ति (सन् १९८७) के समय इस वृत्तिकार का नाम **माणिक्यदेव** ज्ञात हुआ।

२. द्वितीय संस्करण के समय दशपादी उणादिपाठ की २-३ वृत्तियां और उपलब्ध हुईं। अतः द्वितीय संस्करण दशपाद्युणादिवृत्ति-संग्रह के अन्तर्गत प्रथम भाग के रूप में प्रकाशित किया गया।

९. **माध्यन्दिन-पदपाठ**—वि० संवत् १४७१ के विशिष्ट हस्तलेख तथा अन्य विविध मुद्रित वा हस्तलिखित ग्रन्थों के आधार पर आदर्श संस्करण का सम्पादन। इस कार्य पर राजस्थान सरकार ने ३ वर्ष तक १५०·०० डेढ़ सौ रुपया मासिक सहायता दी है। उत्तर प्रदेश शासन से पुरस्कृत। सन् १९७१

१०. **ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका**—स्वामी दयानन्द सरस्वती कृत ग्रन्थ के सटिप्पण संस्करण का सम्पादन। सन् १९६७

११. **विदुरनीति**—पदार्थ और व्याख्या सहित। सन् १९६८

१२ **ऋग्वेद भाष्यम्**—स्वामी दयानन्द कृत ऋग्वेदभाष्य का सम्पादन, सहस्रों टिप्पणियों एवं १०–१२ प्रकार के परिशिष्टों के सहित। १–२-३। प्रकाशित तीनों भाग उत्तरप्रदेश सरकार से पुरस्कृत। सन् १९७२-७६

१३. **उणादि-कोष**—स्वामी दयानन्द सरस्वती विरचित पञ्चपादी उणादिपाठ की उणादिकोष नाम्नी व्याख्या का सम्पादन। सन् १९७४

१४. **महाभाष्य (हिन्दी व्याख्या)**—पतञ्जलि मुनि विरचित महाभाष्य की हिन्दी व्याख्या। भाग १–२–३ मुद्रित। द्वितीय तथा तृतीय भाग उत्तरप्रदेश राज्य से पुरस्कृत। सन् १९७२-७६

१५. **मीमांसा-शाबर-भाष्य (हिन्दी व्याख्या)**—जैमिनिमुनि प्रोक्त मीमांसा शास्त्र पर सबसे प्राचीन भाष्य शबर स्वामी का है। इस पर आर्षमतविमर्शिनी नाम्नी हिन्दीव्याख्या लिखी जा रही है। अभी तक ५ भाग छपे हैं। इनमें मीमांसा के ६ अध्यायों की व्याख्या है। सन् १९७७–८६

१६. **ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन**—प्रस्तुत तृतीय संस्करण में दो भागों में ऋ० द० के पत्रों और विज्ञापनों का संग्रह है, और तृतीय चतुर्थ भाग में ऋ० द० के प्रति अन्य व्यक्तियों द्वारा लिखित पत्रों और विज्ञापनों का संग्रह किया है। द्वितीय और चतुर्थभाग के अन्त में पत्रों से सम्बद्ध अनेक परिशिष्ट जोड़े गये हैं। सन् १९८१–१९८३

१७. **कात्यायन-गृह्यसूत्र**—अनेक हस्तलेखों की सहायता से सम्पादन। सन् १९८३

१८. **सत्यार्थ प्रकाश**—स्वा० द० स० विरचित। पूर्वमुद्रित ३५ संस्करणों से मिलान ३५०० टिप्पणियों तथा शोधकार्योपयोगी १३ विशिष्ट परिशिष्टों वा सूचियों के साथ सम्पादन। सन् १९७५

१९. **संस्कारविधि**—स्वा० द० स० विरचित। हस्तलेखों तथा पूर्वमुद्रित २५

संस्करणों से मिलान, सहस्राधिक टिप्पणियों तथा शोधकार्योपयोगी ११ विशिष्ट परिशिष्टों का सूचियों के साथ सम्पादन। सन् १९७४

२०. **दयानन्दीय-लघुग्रन्थ-संग्रह**—स्वा० द० स० विरचित। १४ लघुग्रन्थों का पूर्ववत् टिप्पणियों, परिशिष्टों वा सूचियों के साथ सम्पादन। सन् १९७५

२१. **धातुप्रदीप**—पाणिनीय धातुपाठ की मैत्रेयरक्षित विरचित वृत्ति। सन्—१९८६

२२. **मीमांसा-शावरभाष्य (मूलमात्र)**—शास्त्रावतार, वेद-श्रुति-आम्नायसंज्ञा-मीमांसा और श्रौतयज्ञमीमांसा नामक ती संस्कृत निबन्ध सहित एवं ५ विविध परिशिष्टों एवं सहस्रों टिप्पणियों से युक्त। भाग १ (तीन अध्याय) सन् १९८७

मौलिक शोध-पूर्ण ग्रन्थ

१. **संस्कृत-व्याकरण-शास्त्र का इतिहास भाग १)**—इस ग्रन्थ में पाणिनि से प्राचीन तेईस वैयाकरणों का इतिवृत्त, उसमें अनेक आचार्यों के उपलब्ध सूत्रों का संकलन, पाणिनि और उसके व्याकरण पर टीका-टिप्पणी लिखनेवाले लगभग १६० आचार्यों, तथा पाणिनि से उत्तरवर्ती १८ प्रमुख व्याकरण-प्रवक्ताओं, और उनके लगभग १०० व्याख्याताओं का इतिहास लिखा गया है। न केवल राष्ट्रभाषा हिन्दी में, अपितु संसार की किसी भी भाषा में संस्कृत व्याकरणशास्त्र के इतिहास पर इतना विस्तृत ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ।

प्रथम संस्करण (उत्तर प्रदेश सरकार से पुरस्कृत)	सन् १९५१
द्वितीय परिवर्धित संस्करण (१५० पृष्ठ बढ़े)	सन् १९६३
तृतीय ,, ,, (५० पृष्ठ बढ़े)	सन् १८७३
चतुर्थ ,, ,, (८४ पृष्ठ बढ़े)	सन् १९८४

२. **संस्कृत व्याकरण-शास्त्र का इतिहास (भाग २)**—इसमें व्याकरणशास्त्र के परिशिष्टरूप धातुपाठ उणादिसूत्र लिङ्गानुशासन परिभाषापाठ और फिट्सूत्रों के प्रवक्ताओं और व्याख्याताओं का इतिवृत्त लिखा गया है। अन्त में प्रातिशाख्यों के प्रवक्ता और व्याख्याता. व्याकरणशास्त्र के दार्शनिक ग्रन्थकार तथा व्याकरणप्रधान लक्ष्यात्मक काव्यग्रन्थों के रचयिताओं का इतिहास भी दे दिया है।

प्रथम संस्करण	सन् १९६२
द्वितीय परिवर्धित संस्करण (५८ पृष्ठ बढ़े)	सन् १९७३
तृतीय ,, ,, (३३ पृष्ठ बढ़े)	सन् १९८४

३. संस्कृत व्याकरण-शास्त्र का इतिहास (भाग ३)—इसमें अवशिष्ट विषय अनेक परिशिष्ट तथा सूचियां आदि दी हैं।

प्रथम संस्करण — सन् १९७३
परिवर्धित संस्करण (१०८ पृष्ठ बढ़े) — सन् १९८५

४. वैदिक-स्वर-मीमांसा—इसमें वैदिक ग्रन्थों में प्रयुक्त उदात्त अनुदात्त स्वरित आदि स्वरों का वाक्यार्थ के साथ क्या सम्बन्ध है, स्वर-परिवर्तन से अर्थ में किस प्रकार परिवर्तन होता है, स्वर-शास्त्र की उपेक्षा से वेदार्थ में कैसी भयंकर भूलें होती हैं, इत्यादि अनेक विषयों का सोपपत्तिक सोदाहरण प्रतिपादन किया है। अन्त में उदात्तादि स्वरों के विभिन्न प्रकार के संकेतों स्वरचिह्नों की सोदाहरण व्याख्या की है। परिशिष्ट में मन्त्र-संहिता पाठ से पदपाठ में परिवर्तन के नियमों की सोदाहरण विवेचना की है। द्वितीय संस्करण में पाणिनीय व्याकरण के अनुसार स्वर विषय का संक्षेप से ज्ञान कराने के लिये स्वामी दयानन्द सरस्वती कृत 'सौवर' ग्रन्थ भी अन्त में जोड़ दिया है।

प्रथम संस्करण (उत्तर प्रदेश सरकार से पुरस्कृत) — सन् १९५८
द्वितीय ,, (इसमें लगभग ७०–८० पृष्ठ बढ़े हैं) — सन् १९६३
तृतीय ,, — सन् १९८५

५. वैदिक छन्दोमीमांसा—इसमें वैदिक वाङ्मय से सम्बन्ध रखनेवाले ५–६ उपलब्ध छन्दःशास्त्रों के अनुसार सभी छन्दों के भेद-प्रभेदों के लक्षण और उदाहरण दर्शाये हैं। साथ में छन्दोज्ञान की वेदार्थ में उपयोगिता, छन्दःपरिवर्तन के कारण, और छन्दःशास्त्र का संक्षिप्त इतिहास आदि अनेक विषयों का समावेश किया है। वैदिक-छन्दःसम्बन्धी इतनी विशद विवेचना किसी भी भाषा के ग्रन्थ में नहीं की गई है।

प्रथम संस्करण (उत्तर प्रदेश सरकार से पुरस्कृत) — सन् १९६०
द्वितीय परिवर्धित संस्करण (२० पृष्ठ बढ़े) — सन् १९७९

६. ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास—इस ग्रन्थ में स्वामी दयानन्द सरस्वती के प्रत्येक ग्रन्थ का विशद इतिहास दिया है। उनके ग्रन्थों की पाण्डुलिपियों और उस समय तक अमुद्रित ग्रन्थों का विस्तृत विवरण दिया है। अनेक परिशिष्टों में विविध प्रकार की प्राचीन उपयोगी ऐतिहासिक सामग्री का संकलन किया है।

प्रथम संस्करण — सन् १९५०
द्वितीय परिष्कृत तथा परिवर्धित संस्करण (१३२ पृष्ठ बढ़े) — सन् १९८३

७. ऋग्वेद की ऋक्संख्या (हिन्दी तथा संस्कृत)—ऋग्वेद की ऋक्संख्या के

विषय में प्राचीन और अर्वाचीन विद्वानों में अत्यन्त मतभेद है। इस निबन्ध में सभी लेखकों की दी गई ऋक्संख्या की विवेचना और उनकी गणनासम्बन्धी मूलों का निदर्शन कराते हुये वास्तविक ऋग्गणना दर्शाई है। कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

८. श्रौतयज्ञ-मीमांसा—(संस्कृत-हिन्दी) इसमें अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेधान्त श्रौतयज्ञों के उद्भव विकास तथा उन में परिवर्तन, श्रौतयज्ञों का मूल प्रयोजन और पशुयागों के सम्बन्ध में विस्तार से मीमांसा की है। सन् १९८७

अप्रकाशित ग्रन्थ—

९. छन्दःशास्त्र का इतिहास।

१०. शिक्षा-शास्त्र का इतिहास।

११. निरुक्त-शास्त्र का इतिहास।

इन ग्रन्थों की सामग्री का संकलन तो बहुत वर्ष पूर्व कर चुका था, परन्तु कार्याधिक्य से लिख न सका। अब स्वास्थ्य अत्यन्त गिर जाने से इनका प्रकाशन सम्भव नहीं।

विशिष्ट सम्मान एवं पुरस्कार

पूर्व लिखित लगभग ५० वर्ष के संस्कृत भाषा के अध्यापन तथा उसमें किये गये विविध शोधकार्य के लिये जो विशिष्ट सम्मान एवं पुरस्कार प्राप्त हुए, वे इस प्रकार हैं—

विशिष्ट सम्मान—

१. राजस्थान राज्य के संस्कृत विभाग ने वेद और व्याकरण शास्त्र सम्बन्धी शोधकार्य पर ३०००-०० रुपया देकर सम्मानित किया। सन् १९६३

२. भारत के राष्ट्रपति ने संस्कृत भाषा की उन्नति और विस्तार तथा साहित्यिक सेवा के लिये सम्मानित किया। सन् १९७७

(राष्ट्रपति द्वारा सम्मान की घोषणा १५ अगस्त १९७६ को हुई थी। सम्मानित व्यक्ति को सरकार सम्प्रति ५००० रु० वार्षिक सहायता देती है)।

३. उत्तर प्रदेश शासन ने व्याकरण शास्त्र सम्बन्धी विशिष्ट सेवा के लिये १५०००-०० का विशिष्ट पुरस्कार दिया। नवम्बर १९७९

४. हिन्दी साहित्य-सम्मेलन द्वारा गाजियाबाद में हुये अपने ४२ वें अधिवेशन में १३ अप्रैल १९८५ को साहित्य वाचस्पति मानद उपाधि प्रदान की गई।

५. आर्यसमाज सान्ताक्रुज बम्बई ने मेरे द्वारा किये गए वैदिक वाङ्मय के प्रचार प्रसार वा शोधकार्य को ध्यान में रखकर ७५ वर्ष की आयु में १९ मई १९८५

को ७५ सहस्र रुपयों की थैली भेंट करके सम्मानित किया। (यह राशि मैंने वैदिक ग्रन्थों के प्रकाशन में ही लगा दी है।)

ग्रन्थों पर पुरस्कार—उत्तरप्रदेश शासन द्वारा—

१. सं० व्या० शास्त्र का इ० भाग १ पर ६००-०० सन् १९५२
२. वैदिक-स्वर-मीमांसा पर ७००-०० सन् १९५९
३. वैदिक-छन्दोमीमांसा पर ५००-०० सन् १९६१
४. काशकृत्स्नधातुव्याख्यानम् पर ५००-०० सन् १९७२
५. माध्यन्दिन-पदपाठ पर ५००-०० सन् १९७३
६. महाभाष्य-हिन्दी-व्याख्या, भाग २ पर ५००-०० सन् १९७४
७. ऋग्वेदभाष्य (स्वा० द० स०) भाग १ पर २५००-०० सन् १९७५
८. ऋग्वेदभाष्य ,, ,, ,, भाग २-३ पर ३०००-०० सन् १९७६
९. महाभाष्य-हिन्दी-व्याख्या, भाग ३ पर ३०००-०० सन् १९७६

(इसके पश्चात् उ० प्र० सरकार के उत्तरप्रदेशीय लेखकों तक यह पुरस्कार सीमित कर देने से अगले ग्रन्थों पर पुरस्कार प्राप्त नहीं हो सका।)

विशिष्ट संस्थाओं द्वारा सम्मान एवं पुरस्कार—

१. आर्यसमाज (बड़ा बाजार) पानीपत द्वारा ११०१-०० सन् १९७५

२. गङ्गाप्रसाद उपाध्याय स्मारक समिति द्वारा 'वैदिक-सिद्धान्त-मीमांसा' पर गङ्गाप्रसाद उपाध्याय पुरस्कार १२००-००

३. दयानन्द बलिदान (निर्वाण) शताब्दी के अवसर पर परोपकारिणी सभा अजमेर द्वारा १०००-०० सन् १९८३

४. श्री घूड़मल आर्य धर्मार्थ ट्रस्ट(हिण्डौन सिटी) द्वारा 'मीमांसा-शाबर-भाष्य' की हिन्दी व्याख्या पर १२०१-०० सन् १९८४

५. आर्यसमाज (बड़ा बाजार) पानीपत की स्थापना शताब्दी के अवसर पर १५००-०० सन् १९८४

६. जनकल्याण ट्रस्ट एवं हलवासिया विद्या-विहार भिवानी द्वारा सम्मान किया गया। सन् १९८७

शोधकार्य के लिये विशिष्ट सहायता—राजस्थान राज्य के संस्कृत शिक्षाविभाग द्वारा माध्यन्दिन-पदपाठ पर ३ वर्ष तक १५०-०० मासिक सहायता। सन् १९६५-१९६७

स्वयं प्रकाशित ग्रन्थ

सन् १९६२ में अपने ४० मित्रों से सौ-सौ रुपया प्रकाशन कार्य के सहयोग के लिये लेकर केवल चार सहस्र रुपयों से प्रकाशन कार्य अजमेर में आरम्भ किया था। अजमेर रहते हुए जो ग्रन्थ प्रकाशित किये थे उन्हें रामलाल कपूर ट्रस्ट के अन्तर्गत कार्य करने का निश्चय होने पर लागत मात्र मूल्य पर ट्रस्ट को दे दिया। तत्पश्चात् रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा अर्थाभाव के कारण 'संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास' जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का प्रकाशन सम्भव न हो सकने पर पुनः स्वयं प्रकाशन का कार्य आरम्भ किया। सन् १९७८ से ट्रस्ट से वृत्ति लेना बन्द कर देने के पश्चात् ऋषिभक्त आर्यजनों के सहयोग से मुख्यतया वैदिक-वाङ्मय से सम्बद्ध ग्रन्थों के प्रकाशन में विशेष ध्यान दिया। इस समय तक १४ ग्रन्थ प्रकाशित कर चुका हूं। इन ग्रन्थों के प्रकाशन में जिन महानुभावों से समय-समय पर सहायता प्राप्त हुई, उस का व्यौरा इस प्रकार है—

४०००-०० चालीस मित्रों से सौ-सौ रुपया प्राप्त

३६००-०० माध्यन्दिन पदपाठ के प्रकाशन में केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय से प्राप्त अनुदान

१०००-०० (श्री चौ० प्रतापसिंह जी (करनाल) मीमांसाभाष्य-व्याख्या भाग १ पर

२०००-०० पं० सोमदेवशास्त्री (मन्दसौर) ,, ,, ,, ,,

५००-०० फुटकर आर्य बन्धुओं से

१०००-०० श्री चौधरी प्रतापसिंह ,, ,, ,, २ ,,

५०००-०० श्री राजकुमार जी बम्बई ,, ,, ,, ,, ,,

५००-०० श्री चौ० प्रतापसिंह जी ,, ,, ,, ३ ,,

१०००-०० ,, ,, ,, ,, ,, ,, ४ ,,

१०००-०० ,, ,, ,, ऋग्वेदानुक्रमणी पर

५०१-०० ,, ,, ,, दर्शपूर्णमास-पद्धति पर

१२५०-०० श्री पं० मनोहर विद्यालङ्कार देहली, वैदिक-साहित्य सौदामिनी पर

२५००-०० श्री कुलभूषण जी और उनके भाई ,, ,, ,, ,,

६०००-०० स्वयं प्रकाशन में लगाया (सन् ७६–७७)

३०००-०० ,, ,, ,, ,, (सन् ७८)

————————

३२८५१-००

७५०००-०० आर्यसमाज सान्ताक्रुज बम्बई द्वारा वैदिक वाङ्मय के प्रचार-कार्य के लिये अभिनन्दन में भेंट राशि

————————

१०७८५१-००

इस धनराशि के अतिरिक्त प्रतिवर्ष विक्री से जो धन प्राप्त होता था उसे भी इसी कार्य में लगाता रहा। निजी काम में व्यय नहीं किया।

पुस्तकों की बिक्री रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा होती है। अभी तक भारतीय प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान (पूर्व निर्धारित नाम) के खाते में जमा खर्च होता रहता है।

१ जुलाई १९८७ को पुस्तकों का निम्न स्टाक था। सिलाई पर्यन्त लागत मूल्य के अनुसार स्टाक में विद्यमान पुस्तकों की लागत इस प्रकार है—

नाम	स्टाक में लागत	
१. ऋग्वेदानुक्रमणी	६६१×७	=४६२७-००
२. ऋ० द० के ग्रन्थों का इतिहास	३७९×२०	=७५८०-००
३. कन्योपनयन-पद्धति	७२०×२	=१४०४-००
४. तैत्तिरीयसंहिता (मूल)	३३१×१८	=५९५८-००
५. तैत्तिरीयसंहिता पदपाठ	३१९×३०	=९५७०-००
६. दर्शपौर्णमासपद्धति	५९२×७	=४१४४-००
७. बोधायन श्रौतसूत्र I	२९३×१२	=३५१६-००
८. माध्यन्दिन सं. पदपाठ	२६५×७	=१८५५-००
९. मीमांसा शाबरभाष्य		
व्याख्या भाग १	५४×१३	=७०२-००
,, ,, ,, ,, २	२०७×१०	=२०७०-००
,, ,, ,, ,, ३	२९४×१५	=४४१०-००
,, ,, ,, ,, ४	७०८×१२	=८४९६-००
,, ,, ,, ,, ५	८६४×१५	=१२९६०-००
१०. वेदोक्तसंस्कार-प्रकाश	४८२×६	=२८९२-००
११. वैदिकसाहित्य-सौदामिनी	२२९×१६	=३६६४-००
१२. श्रौतपदार्थनिर्वचनम्	३७४×१२	=४४८८-००
१३. सं. व्या. शास्त्र का इति०(सैट)	८३२×४९	=४०७६८-००
१ जुलाई १९८७ का स्टाक		११९१०४-००

१ जुलाई १९८७ के पश्चात् तैयार पुस्तकें —

१. बौधायन श्रौतसूत्र II	५०० × १२	=६०००-००
२. दशपाद्युणादिवृत्तिसंग्रह I	५०० × १५	=७५००-००
३. ,, ,, II	५०० × १२	=६०००-००
४. मीमांसाशाबरभाष्य I	१००० × २५	=२५०००-००
५. मीमांसाशाबरभाष्य-व्याख्या भाग १	१००० × २०	=२००००-००
		६४५००-००

पूर्व स्टाक का योग	११९१०४-००
नये स्टाक का योग	६४५००-००
कुल योग	१८३६०४-००

इस समय लगभग २००००-०० बीस हजार रुपया नये प्रकाशन के मुद्रणादि व्यय मध्ये देने हैं।

एकादश परिशिष्ट

सारस्वत-ब्राह्मण-वंश[1] के भेद-प्रभेद गोत्र-प्रवर-अवटंक (=आस्पद) तथा खांपादि का विवरण

बहुत काल पूर्व सारस्वत-ब्राह्मण-वंश के गोत्र प्रवरादि का विवरण एक लघु पुस्तिका में छपा था। वह पिताजी के पास थी परन्तु सम्प्रति मिल नहीं रही है।

'श्री सारस्वत धर्मशाला पुष्करराज' का 'विधान तथा प्रमाणपत्र एवं जाति-विवरण' १ मार्च १९५३ में छपा था, उस की मेरे पास जो प्रति है उसी के आधार पर सारस्वत-वंश के भेद-प्रभेद छाप रहा हूं।

उक्त विवरण में लिखा है—

'सारस्वत ब्राह्मणों के १५२ गोत्र जिनकी नख व खांप कहते[2] हैं, उनमें से १०४ के अवटङ्क, नख व खांप, कुलदेवी व गोत्रादिक मिले हैं और ४८ के नहीं मिलते हैं। १०४ के शुक्ल यजुर्वेद, उपवेद, धनुर्वेद, शाखा माध्यन्दिनी, सूत्र कात्यायन, शिखा दाहिन, पाद दाहिन व देवता शिव है और प्रत्येक के गोत्र, प्रवर, अवटंक, नख व खांप व कुलदेवी भिन्न २ हैं जो निम्न कोष्ठक में वर्ण क्रमानुसार लिखे जाते हैं।

("सारस्वत ब्राह्मण राजस्थान" से उद्धृत किये गये)

---

१. यद्यपि वैदिक मन्तव्यानुसार ब्राह्मणादि वर्ण गुण कर्म और स्वभाव पर आश्रित हैं पुनरपि इस में जिस वंश में जन्म लिया है वह स्ववंशानुसारी गुण कर्म और स्वभाव में सहायक होता है। मेरे पूज्य पिताजी ने मुझे वेदादि सच्छास्त्रों के अध्ययन में लगाया इस में उन्हें स्ववंश के परिज्ञान से ही प्रेरणा मिली। द्र०—पूर्व पृष्ठ ५५, पं० २, ९-१०।

२. सम्प्रति लोक में 'नख' वा 'खांप' को ही गोत्र रूप से माना जाता है। विवाह आदि में भी इन्हें ही टाला जाता है। इस से बहुधा एक ही गोत्र में विवाह सम्पन्न हो जाते हैं। इस पर विचार करना चाहिये।

गोत्रादि कोष्ठक.

अवटङ्क[1]	नख वा खांप	कुलदेवी	गोत्र	प्रवर[2]
आचार्य्य	कालाणी	मारोठणी	वशिष्ठ	वशिष्ठ, अत्रि, सांकृत
	गुड़गीला	भद्रकाली	काश्यप	काश्यप, अपसार, नैधुव
	गुरावा	भद्रकाली	भारद्वाज	भारद्वाज, आंगिरस, बार्हस्पत्य
	नागोरिया	मारोठणी	वशिष्ठ	वशिष्ठ, अत्रि, सांकृत
उपाध्याय	आंजर्डा	ज्वालामुखी	गोतम	गोतम, वशिष्ठ, बार्हस्पत्य
	कुकड़ा	कामाक्षा	अत्रि	अत्रि, अत्रेय, सातातप
	घोमंच	चामुंडा	भारद्वाज	भारद्वाज, आंगिरस, बार्हस्पत्य
	जांगलवा	चामुंडा	भारद्वाज	भारद्वाज, आंगिरस बार्हस्पत्य
	पांड्या	भद्रकाली	वशिष्ठ	वशिष्ठ, अत्रि, सांकृत
	मालिया	वीजासणी	भारद्वाज	भारद्वाज, आंगिरस, बार्हस्पत्य
ओजा-वट (बड़ ओझा)	केलवाड़ा	आदि ब्रह्माणी(फलौदी)	भारद्वाज	भारद्वाज, आंगिरस, बार्हस्पत्य
	ढिल्लीवाल	,,	,,	भारद्वाज, आंगिरस, बार्हस्पत्य

१. अवटङ्क=आस्पद=प्रतिष्ठाद्योतक पद। यु० मी०।

२. प्रवर नामों में बहुत अशुद्धियां हैं। यथा मेरे आचार्य अवटङ्कान्तर्गत 'गुरावा' खांप का भारद्वाज गोत्र है। इनके प्रवर 'भारद्वाज आङ्गिरस बार्हस्पत्य' लिखे हैं। ये अशुद्ध हैं। 'भरद्वाज बृहस्पति अङ्गिराः' होने चाहिये। इनका गोत्र प्रवराध्याय आदि से शुद्धिकरण होना चाहिये। मैं सम्प्रति अस्वस्थ होने से यह कार्य नहीं कर सका। यु० मी०।

अवटङ्क	नख वा खांप	कुलदेवी	गोत्र	प्रवर
	भटनेरी	आदि ब्रह्माणी (फलौदी)	भारद्वाज	भारद्वाज, आंगिरस, बार्हस्पत्य
	रैण्या	,,	,,	,, ,, ,,
	कोडूका	,,	,,	,, ,, ,,
ओजा-लव	ल्हौड़	डाहरा	गोतम	गोतम, वशिष्ठ, बार्हस्पत्य
ओजा	ओभाया	,,	,,	,, ,, ,,
	खड	,,	,,	,, ,, ,,
	धील	,,	,,	,, ,, ,,
	धमचक	,,	,,	,, ,, ,,
	भींढ़ा	,,	,,	,, ,, ,,
	बद्र	बिसबाई	मुग्दल	और्व्व,च्यवन,भार्गव, जामदग्नि,आप्नुवत्
ज्योतिषी	अवस्थी	चामुंडा	भारद्वाज	भारद्वाज, आंगिरस, बार्हस्पत्य
(ज्योषी)	अहीरी	जालाणी	भारद्वाज	भारद्वाज, आंगिरस, बार्हस्पत्य
	ईशर	सुसेणी	आंगिरस	आंगिरस, वशिष्ठ, बार्हस्पत्य
	ककु	परमेश्वरी	वशिष्ठ	वशिष्ठ, अत्रि, सांकृत
	कडमाण्यां	जुझेश्वरी	गोतम	गोतम, वशिष्ठ, बार्हस्पत्य
	कांथढ्या	कज्जली	वशिष्ठ	वशिष्ठ, अत्रि, सांकृत
	कालिया	योगिनी	उपमन्यु	उपमन्यु, वशिष्ठ, भार्गव
	काहल	चामुंडा	उपमन्यु	उपमन्यु, वशिष्ठ, भार्गव
	कुरल	भद्रकाली	उपमन्यु	उपमन्यु, वशिष्ठ, भार्गव

अवटङ्क	नख वा खांप	कुलदेवी	गोत्र	प्रवर
	कूर बिलाव	चंडिका	भारद्वाज	भारद्वाज, आंगिरस, बार्हस्पत्य
	काटू	जाजेसरी	उपमन्यु	उपमन्यु, वशिष्ठ, भार्गव
	खरपट	चंडिका	शांडिल्य	शांडिल्य, असित, देवल
	गीतावण्यां	संचाय	भारद्वाज	भारद्वाज, आंगिरस, बार्हस्पत्य
	गुसांई	मनसा	भारद्वाज	भारद्वाज, आंगिरस, बार्हस्पत्य
	चित्रचोट	भद्रकाली	च्यवन	और्व्व, च्यवन, भार्गव, जामाग्नि, आप्नुवत्
	छकड़ा	ज्वालामुखी	गर्ग	गार्ग्य, कौस्तुभ, मांडव्य
	जंवरिया	जुझेश्वरी	काश्यप	काश्यप, अपसार, नैध्रुव
	जासू	ज्वालामुखी	काश्यप	काश्यप, अपसार, नैध्रुव
	झींगरण	भटियानीचंडिका	भारद्वाज	भारद्वाज, आंगिरस, बार्हस्पत्य
	जयचंद	चामुंडा	कौत्स	कौत्स, आंगिरस, पौवनाश्च
	टण्डन	भटियानीचंडिका	कौत्स	कौत्स, आंगिरस, पौवनाश्च
	टिमटिमा	चतुर्भुजा	भारद्वाज	भारद्वाज, आंगिरस, बार्हस्पत्य
	डोडिया	ज्वालामुखी	भारद्वाज	भारद्वाज, आंगिरस, बार्हस्पत्य
	तंवालवा	चामुंडा	काश्यप	काश्यप, अपसार, नैध्रुव
	तावणिया	संचाय	भारद्वाज	भारद्वाज, आंगिरस, बार्हस्पत्य
	दीक्षित	कालिका	उपमन्यु	उपमन्यु, वशिष्ठ, भार्गव
	दुबे	ब्राह्मणी	गोतम	गोतम, वशिष्ठ, बार्हस्पत्य
	देहर	भद्रकाली	आक्षकर्ण	बक, सावकन, सत्यायिका
	धम्मू	कर्णेश्वरी	अत्रि	अत्रि, आत्रेय, सातातप

नवला	चामुंडा	भारद्वाज	भारद्वाज, आंगिरस, बार्हस्पत्य
पटखी	कनसूरी	अत्रि	अत्रि, ओत्रय, सातातप
पवर	संचाय	वशिष्ठ	वशिष्ठ, अत्रि, सांकृत
पल्लीवाल	कर्णेश्वरी	अत्रि	अत्रि, आत्रेय, सातातप
पंडित	चामुंडा	वशिष्ठ	वशिष्ठ, अत्रि, सांकृत
बालमीक	अर्णोली	शांडिल्य	शांडिल्य, असित, देवल
बावां	करणोली	अक्षकर्णं	बक, सावकन, सत्यायिका
बीजल	वटवासिनी	कौत्स	कौत्स, आंगिरस, पौवनाश्च
भंभर	योगिनी	उपमन्यु	उपमन्यु, वशिष्ठ, भार्गव
भाणोत	कामाक्षा	मौनस	मौनस, भार्गव, वेधस
भोलिया	योगिनी	उपमन्यु	उपमन्यु. वशिष्ठ, भार्गव
मकोड़ा	मोलदे	कौत्स	कौत्स, आंगिरस, पौवनाश्च
मोठ	ज्वालामुखी	कौत्स	कौत्स, आंगिरस, पौवनाश्च
मोटण	मारांठणी	पराशर	पराशर, शक्ति वशिष्ठ
रत्नपाल	चतुर्मुजा	भारद्वाज	भारद्वाज, आंगिरस बार्हस्पत्य
लखनपाल	संचाय	वशिष्ठ	वशिष्ठ, अत्रि, सांकृत
लांलड़िया	भद्रकाली	वशिष्ठ	वशिष्ठ, अत्रि, सांकृत
लुद्रवा	बीजासणी	कौत्स	कौत्स आंगिरस, पौवनाश्च
लोहजंग	चंडिका	भारद्वाज	भारद्वाज, आंगिरस, बार्हस्पत्य
[illegible]कीर	यशवंती	भारद्वाज	भारद्वाज, आंगिरस, बार्हस्पत्य

प्रवटङ्क	नख वा खांप	कुलदेवी	गोत्र	प्रवर
	समुद्र	सुसेणा	गोतम	गोतम, वशिष्ठ, बार्हस्पत्य
	शारद	ज्वालामुखी	मुग्दल	ग्रोर्व्व,च्यवन,भार्गव ,जामदग्नि,ग्राप्नुवत्
	सारसवा	बीजासणी	काश्यप	काश्यप, ग्रपसार, नैध्रुव
	सिंधुवेग	जीणा	भारद्वाज	भारद्वाज, ग्रांगिरस, बार्हस्पत्य
	शीली	भद्रकाली	भारद्वाज	,, ,, ,,
	सीलिया	नीलायण	काश्यप	काश्यप, अपसार, नैध्रुव
	सोतिंग	तेतली	भारद्वाज	भारद्वाद, आंगिरस, बार्हस्पत्य
	हुंडावण	चामुंडा	भारद्वाज	भारद्वाज, ग्रांगिरस, बार्हस्पत्य
त्रिपाठी	भूरला	भद्रकाली	वशिष्ठ	वशिष्ठ, ग्रत्रि, सांकृत
	राखसा	भद्रकाली	वशिष्ठ	वशिष्ठ, ग्रत्रि, सांकृत
त्रिगुणायत	करण	थानदेवती	ग्राक्षकर्ण	बक, सावकन, सत्यायिका
	कोडका	नवदुर्गा	ग्राक्षकर्ण	बक, सावकन, सत्यायिका
	क्रियाएत	भद्रकाली	भारद्वाज	भारद्वाज, आंगिरस, बार्हस्पत्य
	चौड़ा	जुझेसरी	कौशल्य	विश्वामित्र, अघमर्षण, मधुच्छंदस
	डीगिया	भद्रकाली	भारद्वाज	भारद्वाज, ग्रांगिरस, बार्हस्पत्य
	ढीढा	भद्रकाली	भारद्वाज	भारद्वाज, आंगिरस, बार्हस्पत्य
	मंढिया	भद्रकाली	भारद्वाज	भारद्वाज, आंगिरस, बार्हस्पत्य
	रल्यावत	नोदुर्गा	गोतम	गोतम, वशिष्ठ, बार्हस्पत्य

	सोदका	चामुंडा	भारद्वाज	भारद्वाज, आंगिरस, बार्हस्पत्य
पाठक	गंगवाल	भद्रकाली	काश्यप	काश्यप, अपसार, नैध्रुव
	सिरसीवाल	भद्रकाली	काश्यप	काश्यप, अपसार, नैध्रुव
	सोनामी	रोडशी	वशिष्ठ	वशिष्ठ, अत्रि, सांकृत
	हयताजा	ज्वालामुखी	भारद्वाज	भारद्वाज, आंगिरस, बार्हस्पत्य
पुरोहित	ढीलीवाल	आशावरी	अत्रि	अत्रि, आत्रेय, सातातप
व्यास	इंद्राणी	चटवासिनी	आक्षकर्ण	बक, सावकन, सत्यायिका
	मोठ्या	महाकाली	आक्षकर्ण	बक, सावकन, सत्यायिका
	मोतिया	ज्वालामुखी	गोतम	गोतम, वशिष्ठ, बार्हस्पत्य
	पवी	भद्रकाली	काश्यप	काश्यप, अपसार, नैध्रुव
	शांडिल्य	वटवासिनी	शांडिल्य	शांडिल्य, असित, देवल
वोहरा	आसाणी	माहेश्री	वशिष्ठ	वशिष्ठ, अत्रि, सांकृत
	मेहाणी	चामुंडा	भारद्वाज	भारद्वाज, आंगिरस, बार्हस्पत्य
शुक्ल	गोरा	अपत्तिहरा	भारद्वाज	भारद्वाज, आंगिरस, बार्हस्पत्य
	हरीला	विसबाई	भारद्वाज	भारद्वाज, आंगिरस, बार्हस्पत्य

अपूर्ण गोत्र

१ अंगफूक, २ अग्निहोत्रि, ३ अभट, ४ अवचल, ५ आर्ज्या, ६ उजागरा, ७ कटारमल, ८ काहलपाड़ा, ९ खजूरा, १० खरवाह, ११ खुंवाल, १२ गर्गंस, १३ गीया, १४ घग्घर, १५ घूरका, १६ चक्रचोट, १७ चणद, १८ चाबू, १९ चुलावट, २० चोखाचुडावण, २१ छप्पा, २२ तत्थड़, २३ दत्ता, २४ धरणोक, २५ नायक, १६ पराशर, २७ प्रधान, २८ प्रभाकर, २९ पुजाय, ३० भग्गा, ३१ मगतिया, ३२ मंडोवरा, ३३ मतवाह, ३४ मारकुंड, ३५ मुंदर, ३६ मुरड़, ३७ मुलमा, ३८ मोडल, ३९ लखानण, ४० लटूर, ४१ लवर, ४२ बरणा, ४३ संचाई, ४४ संड, ४५ सुंदर, ४६ पड़ी, ४७ पलभारला, ४८ हरजग।

उपरोक्त ४८ गोत्र के अवटंक, नख-खांप, कुल देवी व गोत्रादिक के पूरे विवरण नहीं मिलते हैं यदि किन्हीं स्वजातीय सज्जन महोदय को इनके गोत्रादि ज्ञात होवें तो वे महानुभाव कृपा करके भेज देवें।

'श्रीमती सावित्रीदेवी बागड़िया ट्रस्ट' संस्था के द्वारा
दश वर्ष के अल्प समय में प्रकाशित

अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ

१. **गोपथब्राह्मणम्** (मूलमात्र)—शुद्धतम संस्करण। सम्पादक—डा० विजयपाल। मुद्रणकाल—सन् १९८०।

२. **ऋषि दयानन्द के शास्त्रार्थ और प्रवचन**—इस ग्रन्थ में दयानन्द सरस्वती स्वामी के कुछ शास्त्रार्थ, पुणे और मुम्बई नगरों में किये हुए प्रवचनों का संग्रह है। मुद्रणकाल—सन् १९८२।

३. **निरुक्त-श्लोकवार्त्तिकम्**—ग्रन्थकार—केरलनिवासी नीलकण्ठ गार्ग्य। इसका एक ही अतिजीर्ण तालपत्र पर लिखित कोश है। सं०—डा० श्री विजयपाल। मुद्रणकाल—सन् १९८२।

४. **ध्यानयोगप्रकाश** (हिन्दी)—लेखक—योगिराज स्वामी लक्ष्मणानन्द। पातञ्जलयोगशास्त्र के अनुसार हिन्दीभाषा में लिखी सुगम पुस्तक। मु०—सन् १९८३।

५. **ANTHOLOGY OF VEDIC HYMNS**—लेखक—स्वामी भूमानन्द सरस्वती। वेद-विषयक अत्युपयोगी ग्रन्थ। सन् १९८४।

६. **कात्यायनीय-ऋक्सर्वानुक्रमणी**—षड्गुरुशिष्य द्वारा विरचित सम्पूर्ण वृत्ति के सहित। सम्पादक—डा० श्री विजयपाल। मुद्रणकाल—सन् १९८५।

७. **वैदिक-जीवन**—(हिन्दी)—लेखक—विश्वनाथ विद्यालङ्कार। अथर्ववेद के अनुसार वैदिक-जीवन-निदर्शक ग्रन्थ। मुद्रणकाल—सन् १९८५।

८. **सूर्य-सिद्धान्त**—पं० उदयनारायणसिंह-विरचित हिन्दीव्याख्या तथा विस्तृत भूमिका से युक्त। मुद्रणकाल—सन् १९८६।

९. **वैदिक-गृहस्थाश्रम** (हिन्दी)—लेखक—विश्वनाथ विद्यालङ्कार। अथर्ववेद के अनुसार लिखित वैदिक-गृहस्थाश्रम-सम्बन्धी श्रेष्ठतम ग्रन्थ। मु०—सन् १९८६।

१०. **उणादिकोश**—श्रीमद्दयानन्द सरस्वती स्वामी द्वारा विरचित वृत्ति तथा अनेकविध परिशिष्टों के सहित। सम्पादक—युधिष्ठिर मीमांसक। सन् १९८७।

११. **श्रौत-यज्ञ-मीमांसा** (संस्कृत और हिन्दी)—लेखक—युधिष्ठिर मीमांसक। मुद्रणकाल—सन् १९८७।

पुस्तक-प्राप्ति-स्थान

रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़

(सोनीपत-हरयाणा) पिन-१३१०२१

रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा

प्रकाशित वा प्रसारित प्रामाणिक ग्रन्थ

वेद-विषयक ग्रन्थ

१. **ऋग्वेदभाष्य** (संस्कृत हिन्दी; ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका सहित)—प्रति भाग सहस्राधिक टिप्पणियां, १०–११ प्रकार के परिशिष्ट व सूचियां। प्रथम भाग ४०-००, द्वितीय भाग ३५-००, तृतीय भाग ४०-००।

२. **यजुर्वेदभाष्य-विवरण**—ऋषिदयानन्दकृत भाष्य पर पं० ब्रह्मदत्तजिज्ञासुकृत विवरण। प्रथम भाग ११०-००, द्वितीय भाग ५०-००।

३. **तैत्तिरीय-संहिता**—मूलमात्र, मन्त्रसूचीसहिता। ५०-००

४. **तैत्तिरीय-संहिता-पदपाठः**—५० वर्ष से दुर्लभ ग्रन्थ का पुनः प्रकाशन, बढ़िया सुन्दर जिल्द। १००-००

५. **अथर्ववेदभाष्य**—श्री पं० विश्वनाथ जी वेदोपाध्याय कृत। ७-८ काण्ड ४०-००, ९-१० काण्ड ४०-००, ११-१३ काण्ड ३५-००, १४-१७ काण्ड ३०-००, १८-१९ काण्ड २५-००, बीसवां काण्ड २५-००। काण्ड ५-६ छप रहे हैं।

६. **ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका**—पं० युधिष्ठिर मीमांसक द्वारा सम्पादित एवं शतशः टिप्पणियों से युक्त। साधारण जिल्द ३०-००, पूरे कपड़े की ३५-००।

७. **ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका-परिशिष्ट**—भूमिका पर किए गए आक्षेपों के ग्रन्थकार द्वारा दिये उत्तर। ४०-००

८. **माध्यन्दिन (यजुर्वेद) पदपाठ**—शुद्ध संस्करण। ४०-००

९. **गोपथ-ब्राह्मण (मूल)** सम्पादक श्री डा० विजयपाल जी विद्यावारिधि। अब तक प्रकाशित सभी संस्करणों से अधिक शुद्ध और सुन्दर संस्करण। ५०-००

१०. **वैदिक सिद्धान्त-मीमांसा**—पं० युधिष्ठिर मीमांसक लिखित वेदविषयक १७ विशिष्ट निबन्धों का अपूर्व संग्रह। अप्राप्य

११. **कात्यायनीय ऋक्सर्वानुक्रमणी**—(ऋग्वेदीया)—षड्गुरुशिष्य विरचित संस्कृतटीका सहित। टीका का पूरा पाठ प्रथम बार छापा गया है। विस्तृत भूमिका और अनेक परिशिष्टों से युक्त। १००-००

१२. ऋग्वेदानुक्रमणी—वेङ्कटमाधवकृत । इस ग्रन्थ में स्वर छन्द आदि आठ वैदिक विषयों पर गम्भीर विचार किया है । व्याख्याकार—श्री डा० विजयपाल जी विद्यावारिधि । उत्तम संस्करण ३५-००, साधारण २५-०० ।

१३. वैदिक-साहित्य-सौदामिनी—स्व० श्री पं० वागीश्वर वेदालंकार । काव्य-प्रकाश साहित्यदर्पण आदि के समान वैदिक साहित्य पर शास्त्रीय विवेचनात्मक ग्रन्थ । साधारण जिल्द ४५-००, बढ़िया जिल्द ५०-०० ।

१४. ऋग्वेद की ऋक्संख्या—युधिष्ठिर मीमांसक ४-००

१५. वेद-श्रुति आम्नाय संज्ञा-मीमांसा (संस्कृत-हिन्दी)—यु० मी० २-५०

१६. वैदिक-छन्दोमीमांसा—यु० मी० । नया संस्करण २५-००

१७. वैदिक-स्वर-मीमांसा—यु० मी० । नया संस्करण ३०-००

१८. वैदिक वाङ्मय में प्रयुक्त विविध स्वरांकन प्रकार—यु० मी० । ६-००

१९. वेदों का महत्त्व तथा उनके प्रचार के उपाय, वेदार्थ की विविध प्रक्रियाओं की ऐतिहासिक मीमांसा (संस्कृत-हिन्दी)—यु० मी० ६-००

२०. देवापि और शन्तनु के आख्यान का वास्तविक स्वरूप—लेखक—श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु । २-५०

२१. वेद और निरुक्त—श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु । २-५०

२२. निरुक्तकार और वेद में इतिहास—श्री पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु । २-५०

२३. त्वाष्ट्री सरण्यू की वैदिक कथा का वास्तविक स्वरूप—लेखक—श्री पं० धर्मदेव जी निरुक्ताचार्य । २-५०

२४. वैदिक-जीवन—श्री विश्वनाथ जी विद्यामार्तण्ड द्वारा अथर्ववेद के आधार पर वैदिक-जीवन के सम्बन्ध में लिखा गया अत्यन्त उपयोगी स्वाध्याययोग्य ग्रन्थ । अजिल्द १२-००, सजिल्द १३-०० ।

२५. वैदिक-गृहस्थाश्रम—श्री पं० विश्वनाथ जी विद्यामार्तण्ड द्वारा अथर्ववेद के आधार पर लिखित महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ । अजिल्द २६-००, सजिल्द ३०-०० ।

२६. शिवशङ्करीय-लघुग्रन्थपञ्चक—इसमें श्री पं० शिवशङ्कर जी काव्यतीर्थ लिखित वेदविषयक चतुर्दश-भुवन, वसिष्ठ-नन्दिनी, वैदिक-विज्ञान, वैदिक-सिद्धान्त और ईश्वरीय पुस्तक कौन ? नाम के पांच विशिष्ट निबन्ध हैं । ८-००

२७. यजुर्वेद का स्वाध्याय तथा पशुयज्ञ समीक्षा—ले० पं० विश्वनाथ जी वेदोपाध्याय । बढ़िया जिल्द २५-००, साधारण जिल्द २०-०० ।

२८. **शतपथब्राह्मणस्थ अग्निचयन समीक्षा**—लेखक पं० विश्वनाथ जी वेदोपाध्याय। ४५-००

२९. **ऋग्वेद-परिचय**—श्री पं० विश्वनाथ जी विद्यामार्तण्ड। ऋग्वेद का परिचयात्मक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ। अजिल्द १२-००, सजिल्द १३-००।

३०. **वैदिक-पीयूष-धारा**—लेखक—श्री देवेन्द्र कुमार जी कपूर। चुने हुए ५० मन्त्रों की प्रतिमन्त्र पदार्थपूर्वक विस्तृत व्याख्या, अन्त में भावपूर्ण गीतों से युक्त। उत्तम जिल्द १५-००, साधारण १०-००।

३१. **क्या वेद में आर्यों और आदिवासियों के युद्धों का वर्णन है?** लेखक—श्री वैद्य रामगोपाल जी शास्त्री। १२-००

३२. **उरु-ज्योति**—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल लिखित वेदविषयक स्वाध्याय-योग्य निबन्धों का संग्रह। सुन्दर छपाई। पक्की जिल्द १८-००

३३. **वेदों की प्रामाणिकता**—डा० श्रीनिवास शास्त्री। १-५०

३४. Anthology of Vedic Hymns-स्वा० भूमानन्द सरस्वती ६०-००

कर्मकाण्ड-विषयक ग्रन्थ

३५. **बौधायन-श्रौत-सूत्रम्**—(दर्शपूर्णमास प्रकरण)—भवस्वामी तथा सायण-कृत भाष्य सहित (संस्कृत)। ४०-००

३६. **बौधायन-श्रौत-सूत्रम्** (आधान-प्रकरण)–सुबोधिनी वृत्ति सहित (संस्कृत)। ४०-००

३७. **दर्शपूर्णमास-पद्धति**—पं० भीमसेन कृत, भाषार्थ सहित। २५-००

३८. **कात्यायन-गृह्यसूत्रम्** (मूलमात्र)—अनेक हस्तलेखों के आधार पर हमने इसे प्रथम वार छापा है। २५-००

३९. **श्रौतयज्ञमीमांसा** (संस्कृत और हिन्दी)—श्रौतयज्ञों की कल्पना का आधार, उनका विकास, परिवर्तन, पशुयज्ञ आदि अनेक विषयों की सप्रमाण मीमांसा। ३०-००

४०. **श्रौतपदार्थ-निर्वचनम्**—(संस्कृत) अग्न्याधान से अग्निष्टोम पर्यन्त आध्वर्यव पदार्थों का विवरणात्मक ग्रन्थ। सजिल्द ४०-००

४१. **संस्कार-विधि**—शताब्दी संस्करण, ४६० पृष्ठ, सहस्राधिक टिप्पणियां, १२ परिशिष्ट। मूल्य लागतमात्र १५-००, राज-संस्करण २०-००, सस्ता संस्करण ९-००, अच्छा कागज सजिल्द १०-००।

४२. **वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश**—पं० बालाजी विठ्ठल गांवस्कर द्वारा मूल मराठी

में लिखे गये ग्रन्थ का हिन्दी-अनुवाद । इसी का गुजराती अनुवाद संशोधित संस्कार-विधि का आधार बना । २०-००

४३. **अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेधपर्यन्त श्रौतयज्ञों का परिचय**—इस ग्रन्थ में अग्न्याधान, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, सुपर्णचिति सहित सोमयाग, चातुर्मास्य और वाजपेय आदि यागों का वर्णन है । (दोनों भाग एकत्र) १२-००

४४. **संस्कार-विधि-मण्डनम्**—संस्कारविधि की व्याख्या । लेखक—वैद्य श्री रामगोपाल जी शास्त्री । अजिल्द १२-००, सजिल्द १६-०० ।

४५. **वैदिक-नित्यकर्म-विधि**—सन्ध्यादि पांचों महायज्ञ तथा बृहद् हवन के मन्त्रों की पदार्थ तथा भावार्थ व्याख्या सहित । यु० मी० । ४-००, सजिल्द ६-००

४६. **वैदिक-नित्यकर्म-विधि**—(मूलमात्र) सन्ध्या तथा स्वस्तिवाचनादिविधि बृहद् हवन के मन्त्रों सहित । १-००

४७. **पञ्चमहायज्ञ-विधि**—ऋषिदयानन्द कृत । ३-००

४८. **पञ्चमहायज्ञप्रदीप**—श्री पं० मदनमोहन विद्यासागर । ५-००

४९. **हवनमन्त्र**—स्वस्तिवाचनादि सहित । ०-६०

५०. **सन्ध्योपासनविधि**—भाषार्थ सहित । अप्राप्य

५१. **सन्ध्योपासनविधि**—भाषार्थ तथा दैनिक यज्ञ सहित । अप्राप्य

निरुक्त-शिक्षा-व्याकरण-ज्योतिष-छन्दःशास्त्र विषयक ग्रन्थ

५२. **वर्णोच्चारण-शिक्षा**—ऋषि दयानन्द कृत हिन्दी व्याख्या ०-७५

५३. **शिक्षासूत्राणि**—आपिशल-पाणिनीय-चान्द्रशिक्षा-सूत्र । ७-००

५४. **शिक्षा-शास्त्रम्**—(संस्कृत) जगदीशाचार्य । १०-००

५५. **अरबी शिक्षा-शास्त्रम्**—(संस्कृत) जगदीशाचार्य । १०-००

५६. **शिक्षा-महाभाष्यम्**—(संस्कृत) जगदीशाचार्य । १२-००, सजिल्द १५-००

५७. **वृद्धशिक्षा-शास्त्रम्**— " " । १५-००, सजिल्द २०-००

५८. **निरुक्त-श्लोकवार्त्तिकम्**—केरलदेशीय नीलकण्ठ गार्ग्य विरचित । एक मात्र मलयालम लिपि में ताडपत्र पर लिखित दुर्लभ प्रति के आधार पर मुद्रित । आरम्भ में उपोद्घातरूप में निरुक्त-शास्त्र विषयक संक्षिप्त ऐतिह्य दिया गया है (संस्कृत)। सम्पादक—डा० विजयपाल विद्यावारिधि । उत्तम कागज शुद्ध छपाई तथा सुन्दर जिल्द सहित । १२५-००

५९. निरुक्त समुच्चय— आचार्य वररुचि विरचित (संस्कृत)। सम्पादक— युधिष्ठिर मीमांसक। २०-००

६०. अष्टाध्यायीसूत्रपाठ— (मूल) शुद्ध संस्करण। ४-००

६१. अष्टाध्यायी-भाष्य (संस्कृत तथा हिन्दी)—श्री पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु कृत। भाग—I ५०-००, भाग—II ३०-००, भाग—III ३५-००।

६२. धातुपाठ—धात्वादिसूची सहित, शुद्ध संस्करण। ३-५०

६३. क्षीरतरङ्गिणी—क्षीरस्वामीकृत। पाणिनीय धातुपाठ की सबसे प्राचीन एवं प्रामाणिक व्याख्या। सजिल्द ६०-००

६४. धातुप्रदीप—मैत्रेयरक्षित विरचित पाणिनीय धातुपाठ की व्याख्या। सजिल्द ४०-००

६५. वामनीयं लिङ्गानुशासनम्—स्वोपज्ञव्याख्यासहितम्। १०-००

६६. संस्कृत पठन-पाठन की अनुभूत सरलतमविधि—लेखक—पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु। पहला भाग १५-००। दूसरा भाग—युधिष्ठिर मीमांसक। २५-००।

६७. The Tested Easiest Method of Learning and Teaching Sanskrit (First Book)—यह पुस्तक श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु कृत 'बिना रटे संस्कृत पठन-पाठन की अनुभूत सरलतम विधि' भाग १ का अंग्रेजी अनुवाद है। अंग्रेजी भाषा के माध्यम से पाणिनीय व्याकरण में प्रवेश करने वालों के लिये यह आधिकारिक पुस्तक है। कागज और छपाई सुन्दर। सजिल्द २५-००

६८. महाभाष्य—हिन्दी व्याख्या—(द्वितीय अध्याय पर्यन्त) यु० मी० भाग I ६०-००, भाग—II छप रहा है, भाग—III ३०-००।

६९. उणादिकोष—ऋषिदयानन्द कृत व्याख्या तथा पं० यु० मी० कृत टिप्पणियों एवं ११ सूचियों सहित। सजिल्द १५-००

७०. दशपाद्युणादि-वृत्ति-संग्रह:—(प्रथम भाग में अतिप्राचीन वृत्ति, विस्तृत उपोद्घात एवं सूत्रसूची शब्दसूची आदि के सहित)। ४०-००

द्वितीय भाग में तीन प्राचीन वृत्तियां छपी हैं। ४०-००

७१. दैवम् पुरुषकारवार्त्तिकोपेतम्—लीलाशुकमुनि कृत। १२-००

७२. लिट् और लुङ् लकार की रूप-बोधक सरलविधि— ४-००

७३. भागवृत्तिसंकलनम्—अष्टाध्यायी की प्राचीन वृत्ति। ८-००

७४. **काशकृत्स्न-धातुव्याख्यानम्**—संस्कृत रूपान्तर । यु० मी० । २०·००

७५. **काशकृत्स्न-व्याकरणम्**—सम्पादक—यु० मी० । १०-००

७६. **शब्दरूपावली**—विना रटे शब्दरूपों का ज्ञान करानेवाली । ३-५०

७७. **गणरत्नावली**—यज्ञेश्वरभट्ट कृत । छप रही है ।

७८. **संस्कृत-धातु-कोष**—पाणिनीय धातुओं का हिन्दी में अर्थनिदेश । सम्पादक—युधिष्ठिर मीमांसक । १२·००

७९. **अष्टाध्यायीशुक्लयजुःप्रातिशाख्ययोर्मतविमर्शः**—डा० विजयपाल विरचित पी० एच० डी० का महत्त्वपूर्ण शोधप्रबन्ध (संस्कृत) । सुन्दर छपाई, उत्तम कागज, बढ़िया जिल्द सहित । ५०-००

८०. **सूर्य-सिद्धान्त**—हिन्दी व्याख्या सहित । व्याख्याता–श्री उदयनारायणसिंह । इसके आरम्भ में १४६ पृष्ठ की अति विस्तृत एवं विविध विषय परिपूर्ण महत्त्वपूर्ण भूमिका छपी है । ५०-००

८१. **पिङ्गलनाग-छन्दोविचितिभाष्यम्**—यादवप्रकाशकृत । यह दुर्लभ ग्रन्थ प्रथम बार मुद्रित हुआ है । सम्पादक—डा० विजयपाल विद्यावारिधि । ४०-००

अध्यात्म-विषयक ग्रन्थ

८२. **ईश-केन-कठ-उपनिषद्**—श्री वैद्य रामगोपाल शास्त्री कृत हिन्दी अंग्रेजी व्याख्या सहित । ईशो० २-००, केनो० २-००, कठो० ४-०० ।

८३. **तत्त्वमसि अथवा अद्वैत मीमांसा**—लेखक—श्री स्वामी विद्यानन्द जी सरस्वती । ईश्वर जीव और प्रकृति रूप तीनों मूल तत्त्वों का प्रतिपादन करनेवाला दार्शनिक ग्रन्थ । ४०-००

८४. **ध्यानयोग-प्रकाश**—स्वामी दयानन्द सरस्वती के योगविद्या के शिष्य स्वामी लक्ष्मणानन्द कृत । बढ़िया पक्की जिल्द । १६-००

८५. **अनासक्तियोग**—लेखक—श्री पं० जगन्नाथ पथिक । ३५-००

८६. **आर्याभिविनय (हिन्दी)**—स्वामी दयानन्द । गुटका सजिल्द । ४-५०

८७. Aryabhivinaya—English translation and notes (स्वामी भूमानन्द) । दोरङ्गी छपाई । सजिल्द १०-००

८८. **वैदिक ईश्वरोपासना**—ऋ० द० । १-५०

८९. **विष्णुसहस्रनाम-स्तोत्रम्**—(सत्यभाष्य-सहितम्)—पं० सत्यदेव वासिष्ठ कृत आध्यात्मिक वैदिक भाष्य (४ भाग) प्रतिभाग २०-००

९०. श्रीमद्भगवद्-गीता-भाष्यम्—पं० तुलसीराम स्वामी कृत । ८-००

९१. अगम्यपन्थ के यात्री को आत्मदर्शन—चंचल बहिन । ४-००

९२. मानवता की ओर—श्री शान्तिस्वरूप कपूर के विविध विचारोत्तेजक सरल भाषा में लिखे गये लेखों का संग्रह । ५-००

नीतिशास्त्र-इतिहास-विषयक ग्रन्थ

९३. वाल्मीकि-रामायण—श्री पं० अखिलानन्द जी कृत हिन्दी अनुवाद सहित । सुन्दर काण्ड २०-००, युद्ध काण्ड १२-०० ।

९४. शुक्रनीतिसार—व्याख्याकार—श्री स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती । विस्तृत विषयसूची तथा श्लोकसूची सहित । उत्तम कागज, सुन्दर छपाई सजिल्द ५०-००

९५. विदुर-नीति—पं० युधिष्ठिर मीमांसक कृत प्रतिपद पदार्थ और व्याख्या सहित । बढ़िया कागज, पक्की सुन्दर जिल्द । ४०-००

९६. सत्याग्रह-नीति-काव्य—आ० स० सत्याग्रह १९३९ ई० हैदराबाद जेल में पं० सत्यदेव वासिष्ठ द्वारा विरचित, हिन्दी व्याख्या सहित । १०-००

९७. संस्कृत-व्याकरणशास्त्र का इतिहास—युधिष्ठिर मीमांसक कृत तथा परिष्कृत परिवर्धित संस्करण । तीनों भागों का १२५-००

९८. ऋषि दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों का इतिहास-लेखक—युधिष्ठिर मीमांसक । नया परिशोधित परिवर्धित संस्करण । ४० ००

९९. विरजानन्द प्रकाश—लेखक-पं० भीमसेन शास्त्री एम० ए० । नया परिवर्धित और शुद्ध संस्करण । ४-००

१००. ऋषि दयानन्द सरस्वती का स्वलिखित और स्वकथित आत्मचरित—सम्पादक—पं० भगवद्दत्त । २-५०

१०१. ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज की संस्कृत साहित्य को देन—लेखक—डा० भवानीलाल भारतीय एम० ए० । सजिल्द २५-००

दर्शन-आयुर्वेद-विषयक ग्रन्थ

१०२. मीमांसा-शाबर-भाष्य—आर्षमतविमर्शिनी हिन्दी व्याख्या सहित । व्याख्याकार—युधिष्ठिर मीमांसक । प्रथम भाग—५०-००, द्वितीय ४०-००, तृतीय ५०-००, चौथा ४०-००, पांचवां ५०-००, छठा यन्त्रस्थ ।

१०३. मीमांसा-दर्शनम्—शाबरभाष्य-सहितम् । विविधाभिः टिप्पणीभिः समलङ्कृतम्,शास्त्रावतारादिनिबन्धद्वयसहितम् । प्रथम भाग ६०-००

१०४. **प्रपञ्चहृदय-प्रस्थानभेदौ**—दर्शन व इतिहास विषयक अतिमहत्त्वपूर्ण ग्रन्थ। २०-००

१०५. **नाडी-तत्त्वदर्शनम्**—भाषानुवाद—पं० सत्यदेव जी वासिष्ठ। ३५-००

१०६. **चिकित्सा आलोक**—श्री कृष्णदेव चैतन्य पाराशर। १५-००

१०७. **षट्कर्मशास्त्रम्**—(संस्कृत) जगदीशाचार्य। अजिल्द १०-००

१०८. **परमाणु-दर्शनम्**—(संस्कृत) जगदीशाचार्य। अजिल्द १०-००

प्रकीर्ण ग्रन्थ

१०९. **सत्यार्थ प्रकाश**—(आर्यसमाज-शताब्दी-संस्करण) १३ परिशिष्ट, ३५०० टिप्पणियां तथा सन् १८७५ के प्रथम संस्करण के विशिष्ट उद्धरणों सहित। राज संस्क० ४०-००, साधारण संस्क० ३५-००।

११०. **दयानन्दीय लघुग्रन्थ-संग्रह**—१४ ग्रन्थ, सटिप्पण, अनेक परिशिष्टों के सहित। ४०-००

१११. **भागवत-खण्डनम्**—ऋ० द० की प्रथम कृति। अनुवादक—युधिष्ठिर मीमांसक। ४-००

११२. **आर्योद्देश्यरत्नमाला**—ऋषि दयानन्दकृत। ००-६०

११३. **काशी शास्त्रार्थ और सद्धर्मविचार**—(संस्कृत, हिन्दी) दिसम्बर १८६९ का छपा मूलपाठ। मूल्य २-५०

११४. **ऋषि दयानन्द के शास्त्रार्थ और प्रवचन**—इसमें पौराणिक विद्वानों तथा ईसाई मुसलमानों के साथ हुए ऋ० द० के शास्त्रार्थ तथा पूना में सन् १८७५ तथा बम्बई में सन् १८८२ में दिये गये व्याख्यानों का संग्रह है। उत्तम कागज कपड़े की जिल्द। ३५-००

११५. **दयानन्द-शास्त्रार्थ-संग्रह**—सस्ता संस्करण १२-००

११६. **दयानन्द-प्रवचन-संग्रह**—(पूना बम्बई प्रवचन)। १२-००

११७. **ऋषि-दयानन्द के पत्र और विज्ञापन**—इस बार इसमें ऋषि दयानन्द के अनेक नये उपलब्ध पत्र और विज्ञापन संगृहीत किये गये हैं। इस बार यह संग्रह चार भागों में छपा है। प्रथम दो भागों में ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन आदि संगृहीत हैं। तीसरे और चौथे भाग में विविध व्यक्तियों द्वारा ऋ० द० को भेजे गये पत्रों का संग्रह है। प्रत्येक भाग का ३५-००

११८. **व्यवहारभानु**—ऋषिदयानन्द कृत। ३-००

११९. **अष्टोत्तरशतनाममालिका**—सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास की सुन्दर प्रामाणिक विस्तृत व्याख्या। लेखक—पं० विद्यासागर शास्त्री। मूल्य १५-००

१२०. **कन्योपनयनविधि**—अर्थात् 'कन्योपनयन-प्रतिषेध' ग्रन्थ का खण्डन। श्री पं० महाराणीशंकर। अपने विषय की सुन्दर सामयिक पुस्तक। ४-००, सजिल्द ६-००

१२१. **संस्कृत-वाक्य-प्रबोध**—(मूल) ऋषि दयानन्द कृत। ४-००

१२२. **संस्कृत-वाक्य-प्रबोध**—(आक्षेपों के उत्तर सहित) ८-००

१२३. **जगद्गुरु दयानन्द का संसार पर जादू**—श्री मेहता जेमिनी बी० ए० (एम०-विज्ञानानन्द सर०) ५८ वर्ष बाद यह उपयोगी पुस्तक पुनः छापी गई है। १-००

१२४. **भारतीय प्राचीन राजनीति**—श्री पं० भगवद्दत्त जी। २-५०

१२५. **ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज से सम्बद्ध कतिपय महत्त्वपूर्ण अभिलेख**—इसमें ऋ० द० के नये उपलब्ध पत्र, बम्बई आ० स० के आदिम २८ नियमों की ऋ० द० कृत व्याख्या, पं० गोपालराव हरि देशमुख लिखित द० चरित्र मराठी का हिन्दी रूपान्तर, आर्यसमाज काकड़वाड़ी बम्बई की पुरानी गुजराती में लिखित कार्यवाही (सन् १९८२ में जब ऋ० द० बम्बई में थे) का हिन्दी रूपान्तर आदि। १०-००

१२६. **दयानन्द अङ्क**—१, २, ३, ४, ५ वेदवाणी सं० २०४०-४४ के विशेषाङ्क मूल्य प्रति अङ्क १२-००

वेदवाणी के इन विशेषाङ्कों में ऋषि दयानन्द के जीवन चरित्र से सम्बद्ध जो नये तथ्य प्रकाश में आये हैं उनका संकलन किया गया है। इसी प्रकार 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' ४ भागों में प्रकाशित करने के अनन्तर जो नये पत्र वा पत्रांश उपलब्ध हुए हैं उनका संकलन किया गया है। इसी प्रकार दयानन्द अङ्क ५ में प्रमुखरूप से सं० १९२६ के काशी-शास्त्रार्थ का उसी समय संस्कृत और भाषा में मुद्रित विवरण छापा है। साथ में उस समय ऋषि दयानन्द के साथ हुए प्रश्नोत्तर भी सद्धर्म-विचार नाम से छापे हैं। इन्हें सर्वथा पूर्व छपे के अनुरूप छापा गया है। साथ ही ऋषि दयानन्द से सम्बद्ध अनेक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज भी छापे हैं।

ये पांचों विशेषाङ्क पृथक् पुस्तक रूप में भी सीमित संख्या में छापे गये हैं।

पुस्तक प्राप्ति स्थान—

श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट

बहालगढ़, जिला सोनीपत (हरयाणा) १३१०२१

रामलाल कपूर एण्ड संस, २५९६ नई सड़क, दिल्ली।

मुद्रक:—रामकिशन सरोहा प्रेस, बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा)